॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGST-103
संस्कृत

खण्ड - एक

कादम्बरी-कथामुखम्

इकाई-01 5

संस्कृत गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास

इकाई-02 14

महाकवि बाणभट्ट : जीवनपरिचय, स्थितिकाल एवं कर्तृत्व

इकाई-03 22

कादम्बरी : कथानक एवं पात्रपरिचय (चरित्रचित्रण)

इकाई-04 33

कादम्बरी-समीक्षा

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव — कुलपति - अध्यक्ष

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल — कार्यक्रम - संयोजक

डॉ0 रत्नाकर शुक्ल — कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ-समिति

1- प्रो0श्री नारायण मिश्र — सेवानिवृत्त प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

2- प्रो0 युगल किशोर मिश्र — संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

3- प्रो0 हरे राम त्रिपाठी — म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

4- प्रो0 श्रीकिशोर मिश्र — काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सम्पादक

प्रो0 के0 पी0 सिंह — वरिष्ठ परामर्शदाता (संस्कृत)

लेखक

प्रो0 प्रभुनाथ द्विवेदी — म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डम मुक्त **विश्वविद्यालय** , प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उप्र राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष –2024

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा०लि०, ४२/७ जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज।

पाठ्यक्रम-परिचय

इस पाठ्यक्रम में कुल तीन खण्ड हैं **प्रथम खण्ड** के अन्तर्गत चार इकाइयाँ हैं जिनमें क्रमशः संस्कृत गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास; महाकवि बाणभट्ट का जीवन-परिचय, स्थितिकाल एवं कर्तृत्वः; कादम्बरी-कथानक एवं पात्र-परिचय (चरित्र-चित्रण) तथा कादम्बरी-समीक्षा की प्रस्तुति प्रमाणिक रूप में की गई हैं। **द्वितीय खण्ड** के अन्तर्गत चार इकाइयां हैं जिनमें कादम्बरी - कथामुख (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त) का हिन्दी अनुवाद, संस्कृत व्याख्या एवं टिप्पणी सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत है। **तृतीय खण्ड** के अन्तर्गत भी चार इकाइयाँ हैं, जिनमे सिद्धान्त कौमुदी के कारक प्रकरण का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है।

इकाई–1 से 4

(संस्कृत गद्य साहित्य, बाणभट्ट और कादम्बरी)

उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों, आप यू० जी० एस० टी० 3 के प्रथम भाग 'क' में महाकवि बाणभट्ट-विरचित 'कादम्बरी' नामक कथा-ग्रन्थ का प्रारम्भिक अंश पढ़ने जा रहे हैं। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य–इन दो भागों में बँटा हुआ संस्कृत साहित्य अत्यन्त विपुल है। आदिकवि वाल्मीकि कृत 'रामायण' से लौकिक साहित्य का आरम्भ होता है। लौकिक साहित्य के भी दो भाग हैं दृश्य (रूपक अर्थात् देखे जाने योग्य जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल आदि)। श्रव्यकाव्य के मुख्यत: तीन भेद होते हैं–गद्यकाव्य, पद्यकाव्य और मिश्रकाव्य। 'कादम्बरी' गद्यकाव्य के अन्तर्गत है।

'कादम्बरी' के निर्धारित अंश का अध्ययन करने के पूर्व आप गद्यकाव्य के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे। आपकी इस जिज्ञासा को दृष्टिगत कर इकाई 1 से 4 तक इस सम्बन्ध में आपको पूर्णत: परिचित कराने के उद्देश्य से 'सामान्य अध्ययन' की योजना की गयी है। इसके द्वारा आप संस्कृत गद्यकाव्य परम्परा और 'कादम्बरी' के विविध पक्षों से परिचित हो सकेंगे।

प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, 'कादम्बरी' के निर्धारित पाठांश का अध्ययन करने से पूर्व कादम्बरी और कादम्बरी गद्यकाव्य से सम्बद्ध विविध पक्षों को जानना आवश्यक है। अत: प्रारम्भ की चार इकाइयों में हमने इस सम्बन्ध में संक्षिप्त किन्तु सर्वाङ्गपूर्ण अपेक्षित विषय-विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। चूंकि 'कादम्बरी' एक गद्यकाव्य है; अत: पहली इकाई में संस्कृत गद्य-साहित्य के उद्भव और विकास का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी जैसी अद्वितीय कथा के कर्ता के सम्बन्ध में जिज्ञासा की शान्ति के लिए दूसरी इकाई में महाकवि बाणभट्ट के जीवन-परिचय, स्थिति और उनके कर्तृत्व का विवेचन किया गया है। तीसरी इकाई में कादम्बरी कथा का सारांश और उसमें आये हुए पात्रों का परिचय (चरित्र चित्रण) है। और, चौथी इकाई में आपके पाठ्यग्रन्थ कादम्बरी की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है जिसके अन्तर्गत 'कथा' और 'आख्यायिका' में अन्तर स्पष्ट करते हुए कादम्बरी का कथात्व प्रमाणित किया गया है; बाणभट्ट के गद्य का आदर्श निरूपित करते हुए वेबर नामक पाश्चात्य विद्वान् के आक्षेप का समाधान तथा कादम्बरी का गद्य-सौष्ठव निरूपित किया गया है। बाणभट्ट के अलङ्कार-प्रयोग, कादम्बरी में रसाभिव्यक्ति, प्रकृति-चित्रण के पश्चात् बाण विषयक सूक्तियों का उल्लेख करके, 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' का अभिप्राय स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार 'नामूलं लिख्यते नानपेक्षितमुच्यते'–न्याय से विषय-सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

प्रस्तावना

(सामान्य अध्ययन)

इकाई–01 संस्कृत गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास

'गद्य' शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ[1] का विश्लेषण करने से ऐसा ज्ञात होता है कि मनुष्य की सहज भावाभिव्यक्ति 'गद्य' के माध्यम से ही हुई होगी। किन्तु जब हम संस्कृत वाङ्मय पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि हमारा आदि-साहित्य पद्यमय है। ऋग्वेद अब तक ज्ञात विश्ववाङ्मय का सर्वप्राचीन

१. 'गद् व्यक्तायां वाचि'। 'गद्' का अर्थ है स्पष्ट साफ-साफ बोलना।
'गद्' से 'यत्' प्रत्यय के योग से 'गद्य' निष्पन्न होता है।

(अथवा, सर्वप्रथम) ग्रन्थ है। इसकी समग्र पद्यात्मकता सर्वविदित है। इसी प्रकार, लौकिक संस्कृत वाङ्मय का आदिकाव्य 'रामायण' भी पद्यात्मक है। क्रौञ्चवध की क्रूर घटना से आर्द्र हृदय आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने छन्दोमयी वाणी में ही व्याध को शाप दिया।[1] उनका शोक सहसा श्लोक के रूप में अभिव्यक्त हुआ–'शोक: श्लोकत्वमागत:' अथवा, 'श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक:।' लोक-जीवन में हम आज भी इस प्रकार की अभिव्यक्ति पाते हैं।

संस्कृत-वाङ्मय का सर्वप्राचीन गद्य कृष्णयजुर्वेद में प्राप्त होता है। कृष्णयजुर्वेद में अध्वर्यु यज्ञ के अवसर पर इन गद्यात्मक मन्त्रों का विनियोग करता है। पद्यात्मक मन्त्रों के साथ इन गद्यात्मक मन्त्रों का मिश्रण होने के कारण ही कृष्णयजुर्वेद का 'कृष्णत्व' है। कृष्णयजुर्वेद में पद्य की अपेक्षा गद्य भाग कुछ ही न्यून है। इस प्रकार, संस्कृत गद्य का प्रादुर्भाव वेद से ही हुआ है। यजुर्वेद के पश्चात् अथर्ववेद में भी गद्य का प्रयोग प्राप्त होता है। अथर्ववेद के पन्द्रहवें और सोलहवें काण्ड में गद्य पर्याप्त रूप से विद्यमान है। अत: गद्य के उद्भव और विकास में अथर्ववेद का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। स्पष्टत: मन्त्रद्रष्टा ऋषि पद्यों के साथ ही गद्य की ओर अपनी स्वाभाविक संवाद की प्रवृत्ति के कारण उन्मुख हुआ होगा। छन्दोनियम से आबद्ध न होने के कारण गद्य सहज संवाद के माध्यम होते हैं। 'यजुष्' की एक परिभाषा में कहा गया है–'अनियताक्षरावसानो यजु:।' यही गद्य का लाक्षणिक स्वरूप है। गद्य में वाक्य की प्राय: अन्वित योजना होती है और वह छन्द या वृत्त के नियमों (निश्चित पाद = चरण, गण-विधान, यति-विधान आदि) से रहित होता है। निष्कर्षत: इस प्रकार के गद्य के दर्शन हमें सर्वप्रथम कृष्णयजुर्वेद और अथर्ववेद में होते हैं।

उपर्युक्त दोनों वैदिक संहिताओं में जो भी और जितना भी गद्य उपलब्ध होता है वह सर्वथा अकृत्रिम अर्थात् निसर्ग सहज और सरल है। सरल इसलिए है कि उनमें छोटे-छोटे पदों का प्रयोग करके अनतिदीर्घ वाक्यों की योजना की गयी है। प्रारम्भिक गद्य होने के कारण प्रौढ़ि, जटिलता और समासगत विकटता का सर्वथा अभाव है। कहीं-कहीं सामान्य समास प्रयुक्त हैं। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होने का अनुप्रास, उपमा और रूपक जैसे अलङ्कार अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रविष्ट होकर गद्यमयी भाषा को सुन्दर रोचकता प्रदान करते हैं। संहिताओं में प्रयुक्त गद्य की एक बानगी द्रष्टव्य है–'व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्। स प्रजापति: सुवर्णमात्मन्न पश्यत् तत्प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललामभवत्, तन्महदमभवत्, तज्ज्येष्ठमभवत्, तद्ब्रह्माभवत्, तत्तपोभवत्, तत्सत्यमभवत् तेन प्रजायत्?–(अथर्ववेद, काण्ड 15 सूक्त 1)

वैदिक वाङ्मय में संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान है। ब्राह्मण ग्रन्थों का गद्य संहिताओं के गद्य की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और चारुतर है। ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य प्रसादमय अत: सरल और सरस हैं। शतपथ ब्राह्मण में विशेषरूप से हमें आर्ष गद्य का अत्यन्त उत्कृष्ट स्वरूप देखने को मिलता है। यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य वैदिक मन्त्रों की यज्ञ परक व्याख्या है किन्तु उनमें मन्त्र व्याख्या के साथ-साथ निर्वचन (शब्द व्युत्पत्ति एवं प्रकृति के आधार पर अर्थ प्रकाशन), यज्ञानुष्ठान विधियों का प्रतिपादन, व्यक्ति विशेष के गुण स्वभावादि का वर्णन, प्राचीन आख्यान और उपमान (समान दृष्टान्त देकर विषय को स्पष्ट करना) आदि विषय भी होते हैं। ब्राह्मण-गद्य की अपनी एक विशिष्ट शैली है। इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थों का गद्य तत्कालीन लोक व्यवहृत भाषा की प्रतीति कराता है। प्राचीन आख्यानों का वर्णन करते हुए अथवा संवादात्मक गद्य प्रयुक्त करते हुए ऋषि एकदम बोलचाल की भाषा-पद्धति का अनुसरण करता है। यही कारण है कि उन गद्य-वाक्यों में 'ह', 'वै' और 'खलु' आदि प्रचुरतया प्रयुक्त हुए हैं। वाक्य छोटे-छोटे किन्तु प्रभावोत्पादक होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में गद्य का बालरूप मीठी किलकारी

१. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।।

भरता हुआ दिखाई देता है क्योंकि अभी व्याकरण के कठोर नियमों ने भाषा को जकड़ा नहीं है और समासों का प्रयोग भी नगण्य सा ही है। यहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य का एक निदर्शन, शतपथ ब्राह्मण के 'वाङ्-मनस् संवाद' से कुछ वाक्य उद्धृत करके, कराना समीचीन होगा–

"तद् ह मनऽउवाच। अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि। न वै मया त्वं किञ्च नानभिगतं व्वदसि। सा यन्मम त्वं कृतानुकरानुवर्त्मास्यहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मीति।।" (शतपथ ब्राह्मण, 1, 4, 5, 9)।

ऐतरेय ब्राह्मण का गद्य भी प्रासादिक है–"अग्निर्वै देवानामभवो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। अग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽन्तरायं निर्वपन्ति।" (ऐतरेय ब्रा०, 1, 1)।

ब्राह्मण-साहित्य के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों का क्रम प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राधान्य कर्मकाण्ड का था तो आरण्यक ग्रन्थों में ज्ञानकाण्ड की प्रधानता हो गयी। इन आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञों की रहस्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। आरण्यकों के गद्य सरल होते हुए भी ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य की अपेक्षा प्रौढ़ हैं।

वैदिक वाङ्मय का चरम विकास उपनिषदो के रूप में हुआ। आरण्यकों के द्वारा प्रदर्शित ज्ञानमार्ग पर उपनिषदों का ऋषि चल पड़ा। उसने प्रत्यक्षतः कर्मकाण्ड का विरोध तो नहीं किया किन्तु उपेक्षा के स्वर अवश्य मुखरित हैं। मन्त्रों के रहस्य का उपबृंहण करने के साथ ही उपनिषदों ने लोकमानस को वैदिक ज्ञान की अक्षुण्ण ज्योति से भरने का स्तुत्य प्रयास किया। यद्यपि उपनिषदों की संख्या बहुत अधिक है तथापि मान्य प्रमुख उपनिषदों में भी कुछ पद्यमय हैं और कुछ गद्यमय। गद्यमय उपनिषदें हैं– बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, कौषीतकी, प्रश्न, माण्डूक्य और मैत्रायणी। इनमें से बृहदारण्यकोपनिषद् तो शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग होने से उसी प्रकार के गद्य से युक्त है। ऐसा ही गद्य, छान्दोग्य, तैत्तिरीय और ऐतरेय का भी है। शेष उपनिषदों का गद्य लौकिक संस्कृत साहित्य के गद्य के समीप है। इनकी भाषा परिष्कृत और प्रौढ़ है। बृहदारण्यकोपनिषद् से गद्य का एक अल्पांश उद्धृत किया जा रहा है।

'स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति, न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति, न वा अरे सर्व्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्व्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्व्वं विदितम् भवति।।'

(बृहदारण्यकोपनिषद्, 2,4,5)।

तैत्तिरीयोपनिषद् के कुछ गद्य खण्ड अवलोकनीय हैं–'भृगुर्वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार– अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत् प्रोवाच् अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तं होवाच–यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति।।'

(तैत्तिरीयोपनिषद्, 3।1)।

इसी प्रकार, तैत्तिरीयोपनिषद् की शीक्षावल्ली का, 'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।.........मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।.........श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रियादेयम्..........।।' इत्यादि गद्य द्रष्टव्य हैं। गम्भीर अर्थ को प्रकट करने वाले इन्हीं छोटे-छोटे वाक्यों वाले आचार्योपदेश ने निश्चय ही बाणभट्ट को शुकनासोपदेश में ऐसी ही भाषा के प्रयोग की प्रेरणा दी होगी।

उपनिषदों के पश्चात् गद्य के दर्शन हमें वेदाङ्गों में होते हैं। वेदाङ्गों में निरुक्त और कल्प ने गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। महर्षि यास्क ने वैदिक शब्दों का निर्वचन करने के लिए निरुक्त की रचना की। उदाहरणार्थ निरुक्त का एक गद्यांश प्रस्तुत है–

'अथ निर्वचनम्। तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेन अन्वितौ स्याताम्, तथा तानि निर्ब्रूयात्। अथ अनन्विते अर्थे, अप्रादेशिके विकारे अर्थनित्यः परीक्षेत केनचित् वृत्तिसामान्येन।।''

(निरुक्त, 2.1.)।

'कल्प' नामक वेदाङ्ग चतुर्धा विभक्त है–श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र औ शुल्बसूत्र। इन सूत्रों में हमें संस्कृत गद्य की नवीन परिष्कृत विधा के दर्शन होते हैं। व्यापक और गम्भीर अर्थ को अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर देना 'सूत्र' शैली की विशेषता है। विस्तृत विषय को अभिव्यक्त करने वाली भाषा की संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्त निरन्तर बढ़ती गयी और गम्भीर विषय की विवेचना करने वाले परवर्ती शास्त्रों का प्रणयन प्रायः इसी सूत्रात्मक गद्य की विधा में हुआ। व्याकरण और दर्शन जैसे गूढ विषय सूत्रों में ही उपनिबद्ध हुए। ब्रह्मसूत्र, सांख्यसूत्र, न्यायसूत्र, मीमांसासूत्र, व्याकरण (पाणिनिकृत अष्टाध्यायी) सूत्रादि विपुल सूत्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ जिन्हें स्पष्ट करने के लिए आचार्यों द्वारा परिष्कृत प्रौढ गद्य में भाष्यों का निर्माण हुआ। सम्भवतः इन्हीं सूत्रों से अनुप्राणित होकर लौकिक संस्कृत गद्य में समासबहुला शैली प्रवर्तित हुई।

वैदिक संस्कृत वाङ्मय में विकसित होकर आगे बढ़ता हुआ संस्कृत गद्य साहित्य लौकिक संस्कृत में जाकर दो प्रकार का हो गया–अनलङ्कृत गद्य और अलङ्कृत गद्य। पद्यात्मक आर्षकाव्य रामायण और महाभारत में से महाभारत में थोड़ा सा अंश गद्यात्मक है। इसी प्रकार विशाल पौराणिक वाङ्मय में श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण में क्वचित् गद्यात्मक अंश उपलब्ध हैं।

अनलङ्कृत गद्य-साहित्य के रूप में वैदिक संहिताओं, उपनिषदों से लेकर सूत्रों एवं पद्यात्मक असंख्य काव्यों एवं ग्रन्थों पर आचार्यों द्वारा किये गये भाष्यों, व्याख्याओं और टीकाओं के विशाल गद्य का गरिमामय संसार विलसित है। एक-एक ग्रन्थों की अनेक टीकायें हैं। श्रीमद्भगवद्गीता और मेघदूत पर की गयी शताधिक टीकाओं के समान ही अन्य अनेक ग्रन्थ विपुल टीकाओं से अलङ्कृत हैं। इस विधा के गद्यों में पतञ्जलिकृत महाभाष्य और आद्य शंकाराचार्यकृत ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों एवं गीता पर किये गये बाष्य समुल्लेख्य हैं। शङ्कराचार्य द्वारा किये गये भाष्य अनलङ्कृत गद्य के सर्वोत्तम निदर्शन हैं। पतञ्जलिकृत महाभाष्य भी उत्तम गद्य का नमूना है। व्याकरण जैसे गूढ़ और नीरस विषय पर महर्षि पाणिनि द्वारा विरचित सूत्रों पर भाष्य करते हुए पतञ्जलि ने अपनी लोकसम्मत सरल भाषा में उसे सुबोध और ग्राह्य बना दिया है। महाभाष्य में लोक प्रचलित मुहावरे भी हैं और सरस चुटीले संवाद भी हैं। उनका भाष्य अत्यन्त हृदयावर्जक और कहानी सुनने-सुनाने जैसा आनन्ददायक भी है। आद्य शङ्कराचार्य के भाष्यों के गद्य की अपनी अपूर्व विशेषता है। उसमें भावो की गहनता के साथ अर्थाभिव्यक्ति की सुस्पष्टता भी है। वाक्यों की संरचना सारगर्भित और प्रौढ़ है। भाषा सर्वथा व्याकरणसम्मत है। वाचस्पतिमिश्र सदृश उद्भट दार्शनिक विद्वान् भी शङ्कराचार्य की भाषा की प्रशंसा करते हुए उसे 'प्रसन्नगम्भीर' कहते हैं।

अलङ्कृत गद्य हमें कथा, आख्यायिका, चम्पू और नाटकों में दिखाई देता है। अलङ्कृत गद्य के उद्भव काल का निश्चित कथन प्रायः असम्भव है। पतञ्जलिकृत महाभाष्य में 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी'–इन तीन आख्यायिकाओं के नाम प्राप्त होते हैं किन्तु ये आज भी अनुपलब्ध हैं। इसी प्रकार 'मनोवती', 'तरङ्गवती' और 'आश्चर्यमञ्जरी' गद्य रचनायें भी विलुप्त हो गयी हैं।

भट्टारहरिचन्द्र, रामिल-सौमिल और शिलाभट्टारिका आदि गद्य रचनाकारों की कृतियां भी उल्लेखमात्र में अवशिष्ट हैं। इस तरह भास के नाटकों में प्राचीन अलङ्कृत गद्यकाव्य के दर्शन से ही हमें सन्तोष करना पड़ता है।

अलङ्कृत गद्य अथवा साहित्यिक गद्य के दर्शन हमें प्राचीन अभिलेखों में होते हैं। रुद्रदामन् का गिरिनार शिलालेख (150 ई०) अलङ्कृत गद्य-शैली में उत्कीर्ण है। काव्यात्मक गद्य की जो विशेषतायें होती हैं, वे सब इस शिलालेख में प्राप्त होती हैं। यथा–दीर्घसमासबहुला पदावली और अलङ्कारों का प्रयोग। निदर्शनार्थ इस शिलालेख की कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं–'गद्यपद्यप्रमाण-मानोन्मानस्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभि: परमलक्षणव्यञ्जनैरुपेतकान्तमूर्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमान्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शन सर: कारितम्। इसी प्रकार प्रयागस्थ स्तम्भोट्टङ्कित हरिषेणकृत समुद्रगुप्त की प्रशास्ति (350 ई०) में भी साहित्यिक गद्य का सुमनोरम प्रयोग हुआ है। इसमें भी समासबहुलापदावली, अनुप्रास श्लेषादि अलङ्कार की छटा विद्यमान है–'सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनरागमनावाप्तललित-सुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रित: स्तम्भ:।' गद्य की यह विशिष्ट विधा आगे चलकर अनेक महाकवियों की लेखनी के आश्रय से और अधिक सुपुष्ट हुई। पतञ्जलि, शङ्कराचार्य आदि के गद्य से उपर्युक्त गद्य का कोई मेल ही नहीं है। प्रतीत होता है कि प्रयाग-प्रशस्ति-स्तम्भ के काल तक संस्कृत गद्य अपने साहित्यिक स्वरूप को प्राप्त कर चुका था और उसका काव्यात्मकस्वरूप प्रतिष्ठित हो गया था।

आचार्य **दण्डी** ने अपने 'काव्यादर्श' में साहित्यिक गद्य का एक आदर्श प्रस्तुत किया और उस आदर्श के अनुरूप स्वयं भी 'दशकुमारचरित' नामक उत्कृष्ट कथाग्रन्थ का निर्माण किया। इनका दूसरा गद्यकाव्य 'अवन्तिसुन्दरीकथा' माना जाता है, जो अपूर्ण प्राप्त हुआ है। दण्डी का स्थितिकारण सातवीं शताब्दी ई० माना जाता है।

अलङ्कृत शैली के गद्यकाव्य-प्रणेता के रूप में आचार्य एवं महाकवि दण्डी सर्वप्रथम आते हैं। संस्कृत गद्यकाव्य के ज्ञात इतिहास में भावपूर्ण, प्राञ्जल एवम् ओजोगुणविशिष्ट, अलङ्कारमण्डित समासबहुला पदावली सम्पृक्त गद्यकाव्य निर्माता के रूप में दण्डी की कीर्ति अक्षुण्ण है। उन्होंने संस्कृत गद्यकाव्य को एक नयी दिशा प्रदान की और उनके द्वारा विरचित गद्यकाव्य ने परवर्ती गद्य लेखकों के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया। इसीलिए उनके प्रशंसकों ने उन्हें बाल्मीकि और व्यास की श्रेणी में अभिनन्दित किया।[1]

'दशकुमारचरित' महाकवि दण्डी-विरचित एक अपूर्व गद्यकाव्य है जिसमें कथा और आख्यायिका– दोनों के लक्षण घटित होते हैं। 'दशकुमारचरित' के प्रारम्भ में पूर्वपीठिका है जिसमें पाँच उच्छ्वास हैं। तत्पश्चात् आठ उच्छ्वासों में दशकुमारचरित है और अन्त में उपसंहार है। कुछ विद्वानो का मत है कि दशों कुमारों के चरित-वर्णन एवं कथा की पूर्णता के लिए पूर्वपीठिका और उपसंहार की योजना बाद में की गयी है क्योंकि मूल 'दशकुमारचरित' और इन दोनों अंशों में कुछ पात्रों के नामों में एकरूपता नहीं है, गद्यबन्ध में शिथिलता है, व्याकरण सम्बन्धी अनियमितताएँ हैं और इन अंशों की पाण्डुलिपियों में पर्याप्त पाठभेद हैं।

'दशकुमारचरित' में दस राजकुमारों की कथा है। मालव नरेश मानसार से पराजित अत: निर्वासित मगधनरेश राजहंस अपी रानी वसुमती के साथ विन्ध्याटवी में निवास करता है जहां उसकी

१. जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

रानी ने राजवाहन नामक पुत्र पैदा किया। राजवाहन के संरक्षण में सात मन्त्रिपुत्र और दो राजकुमार आये और ये दसों दिग्विजय के लिए संयुक्त अभियान में निकल पड़े। इस क्रम में वे परस्पर बिछुड़ जाते हैं और पृथक्-पृथक् राज्यप्रगति तथा कन्या लाभ के पश्चात् पुनः राजवाहन से मिलते हैं तथा अपनी-अपनी रोमाञ्चक कथायें सुनाते हैं। पूर्वपीठिका में दो कुमारों की पूर्ण तथा राजवाहन की अपूर्ण कथा है। बाद के आठ उच्छावासों में राजवाहन के अतिरिक्त शेष सातों कुमारों की कथायें हैं। 'दशकुमारचरित' संस्कृत गद्यसाहित्य में प्रथमतः इस प्रकार की काव्यगुणविशिष्ट रोचक कथा प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है। इसकी कथायें अद्भुत रस प्रधान हैं और अलङ्कारों की विच्छित्ति से परिपूर्ण हैं।

'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका में मालव नरेश की पुत्री अवन्तिसुन्दरी का प्रणयवृत्त संक्षेपतः वर्णित है। महाकवि दण्डी के द्वितीय गद्यकाव्य 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में उसी की विस्तृत और मनोरम प्रस्तुति की गयी है। दण्डी का यह गद्यकाव्य अधूरा प्राप्त होता है। दशकुमारचरित की अपेक्षा 'अवन्तिसुन्दरीकथा' का गद्य अधिक ललित और मनोहर है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है और अलङ्कृत समस्तपदावली का सुरुचिपूर्ण विन्यास है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के मतानुसार, इस अवन्तिसुन्दरीकथा के अनुपम भाषागत सौन्दर्य के कारण ही सहृदयों ने दण्डी के पदलालित्य की प्रशंसा की है–'दण्डिनः पदलालित्यम्।'

संस्कृत गद्यकाव्य के रचनाकारों में महाकवि **सुबन्धु** का नाम अत्यन्त सम्मानपूर्वक लिया जाता है। इनकी एक मात्र ललितकथाकृति 'वासवदत्ता' प्राप्त होती है। कुछ विद्वान् उन्हें महाकवि बाणभट्ट का परवर्ती मानते हैं।[1] बाणभट्ट ने हर्षचरित (1.11) में 'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया' लिखकर 'वासवदत्ता' की प्रशंसा की है किन्तु वे विद्वान् इस वासवदत्ता को पतञ्जलि के महाभाष्य में उल्लिखित 'वासवदत्ता' नामक आख्यायिका मानते हैं। जो भी हो, हमें यहां सुबन्धु के पौर्वापर्य पर विचार करना अभीष्ट नहीं है। पतञ्जलि के द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता' (आख्यायिका) अप्राप्त है और सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' (कथा) प्राप्त है। इसी 'वासवदत्ता' के आधार पर समीक्षकों ने वक्रोक्तिमार्गनिपुण कवियों में बाणभट्ट और कविराज का उल्लेख करते हुए सुबन्धु को प्रथम स्थान पर रखा है।[2] बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' की प्रस्तावना में (श्लोक 20) अपनी इस रचना को 'अतिद्वयीकथा' बतलाते हुए 'कादम्बरी' को सम्भवतः 'बृहत्कथा' और 'वासवदत्ता' से बढ़कर माना है।

'वासवदत्ता' का कथानक पूर्णतः 'कविकल्पित' (अर्थात् उत्पाद्य) है। ग्रन्थ में कथानक का कोई विभाजन नहीं है। इस गद्यकाव्य में राजकुमार कन्दर्पकेतु और राजकुमारी वासवदत्ता [3] के प्रणय और परिणय का रोचक वृत्तान्त वर्णित है। वासवदत्ता में सुबन्धु ने प्रत्यक्षर श्लेष-योजना का अपना निश्चय स्वयं व्यक्त किया है–'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्धनिधिर्निबन्धम्' (वासदत्ता, श्लोक 13)। सुबन्धु की यह रचना गौडीरीति का आश्रयण लेती है जिसमें समासबहुला क्लिष्टपदावली और ओजोगुण का प्राधान्य रहता है। सुबन्धु ने अपने वैदुष्य और काव्य प्रतिभा का उपयोग न केवल लघुकाय कथानक का विस्तार करने में किया है अपितु श्लेष, वक्रोक्ति, परिसंख्या, विरोधाभास आदि अलङ्कारों के विन्यास में भी किया है। वे सत्काव्य के निर्माण में इन तत्त्वों का सन्निवेश आवश्यक मानते हैं– 'सुश्लेषवक्रघटनापटुसत्काव्यविरचनम्।' इस प्रकार गद्यकाव्य के विकास में दण्डी की ही तरह सुबन्धु का भी योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

गद्यकाव्य के सम्राट् महाकवि **बाणभट्ट** तो अपनी अलङ्कृतगद्यशैली के कारण अत्यन्त महनीय हैं। इस अप्रतिम गद्यकवि के सम्बन्ध में हम आगे की इकाइयों में सविस्तर लिखेंगे।

---

१. द्रष्टव्य- डॉ० अमरनाथ पाण्डेय कृत 'बाणभट्ट का आदान-प्रदान' एवं 'बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन।'

२. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।।

३. महाकवि भास के नाटकों की प्रसिद्ध नायिका और महाराज उदयन (वत्सराज) की प्रिया महारानी से भिन्न वासवदत्ता।

यद्यपि महाकवि **बाणभट्ट** के समक्ष अन्य गद्यकाव्यकार हतप्रभ हो गये और उनकी समकक्षता किसी को न प्राप्त हो सकी तथापि बाणभट्ट के परवर्ती काल में गद्यकाव्य का प्रणयन निरन्तर निर्बाधरूप से होता रहा। निश्चय ही वे सभी रचनाकार पूर्ववर्ती दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट से प्रभावित रहे। बाणभट्ट के पश्चात् जो उल्लेखनीय गद्यकाव्य प्राप्त होता है, वह है **धनपालकृत** 'तिलकमञ्जरी।' धनपाल का स्थितिकाल ग्यारहवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध है। धनपाल, भोजराज के चाचा महाराज मुञ्जराज के सभासद जैनकवि थे। मुञ्जराज ने इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि दी थी। इनके इस गद्यकाव्य में कादम्बरी की पद्धति का अनुसरण करते हुए विद्याधरकन्यातिलकमञ्जरी और समरकेतु की प्रणय-कथा वर्णित है। धनपाल ने परम्परागत रूप से तिलकमञ्जरी की प्रस्तावना तिरपन (53) श्लोकों में दी है। श्रृङ्गाररसपेशल इस कथा में भाव और भाषा के सौन्दर्य का मणिकाञ्चन योग है। बाणभट्ट का अनुवर्तन करने पर भी धनपाल ने दीर्घसमास और श्लेष के पाण्डित्यपूर्ण प्रयोग की ओर कोई आसक्ति नहीं दिखायी है। भाषा सरल, प्राञ्जल और सुगम है। इसीलिए जैनकवि विजयगणि ने धनपाल की इस रचना को पूर्ववर्ती गद्यकवियों की रचनाओं से उत्कृष्ट माना है। इनके श्लोकमूलक प्रयोगों में भी सरलता है–'उच्चापशब्द: शत्रुसंहारे न वस्तुविस्तारे, वृद्धत्यागशीलो विवेकेन न प्रज्ञोत्सेकेन, गुरूणां वितीर्णाज्ञाशासनो भक्त्या न च प्रभुशक्त्या........।' यहाँ परिसंख्यालङ्कार के प्रयोग में अन्त्यानुप्रास हृदयावर्जक है। इसी प्रकार, 'यथा न धर्म: सीदति, यथा नार्थ: क्षयं व्रजति, यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्तिर्मन्दायते.........।' इत्यादि सरल, स्वल्पाक्षर प्रयोगों से भाषा का प्रवाह भी अबाधित है।

इस प्रकार काव्यगुणों से भरपूर 'तिलकमञ्जरी' गद्यसाहित्य के भव्य भाल पर विराजमान कस्तूरिकारचित तिलकमञ्जरी है।

धनपाल के कुछ समय पश्चात् **वादीभसिंह** दक्षिणभारत में हुए। उनकी पाँच कृतियों में 'गद्यचिन्तामणि' विशेष प्रसिद्ध है। यह गद्यकाव्य आख्यायिका के अन्तर्गत परिगणित है और ग्यारह लम्भकों में विभक्त है। इसमें महाराज जीवन्धर का वृत्तान्त उपनिबद्ध है। वादीभसिंह ने अपनी इस साहित्यिक गद्य रचना को सुनिपुणतया भरपूर अलङ्कृत करने का प्रयत्न किया है।

प्रभाचन्द्र ने बारहवीं शताब्दी ई० में 89 कथाओं की एक काव्यात्मक प्रस्तुति की जो 'गद्यकथाकोष' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार तेरहवीं शताब्दी ई० के **जिनभद्र** ने 'प्रबन्धावलि' नामक कथाग्रन्थ का प्रणयन किया जिसमें राजस्थान, गुजरात, मालवा और काशी के महापुरुषों की कथायें सरल गद्य के माध्यम से आकर्षक रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। चौदहवीं शताब्दी ई० के जैन आचार्य **मेरुतुङ्ग** ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' की रचना की। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व की गद्य रचना है जिसमें इतिहास- प्रसिद्ध विद्वानों, कवियों और आचार्यों से सम्बद्ध घटनाओं का अलङ्कृत गद्यशैली में वर्णन किया गया है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' को ग्यारह प्रबन्धों में विभक्त किया गया है। इसके गद्य में समासभूयिष्ठा दीर्घपदावली का सन्निवेश किया गया है।

चौदहवीं शती ई० के उत्तरार्ध में विराजमान राजशेखरसूरि ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें एक गद्यकाव्य 'प्रबन्धकोश' भी है। इसका अपर नाम 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' भी है क्योंकि इसमें चौबीस महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है। चरितमूलक प्रबन्धकाव्यों में यह कृति शीर्षस्थानीय है।

पन्द्रहवीं शताब्दी ई० के मध्य में त्रिलिङ्ग (तेलंगाना) के शासक वेमभूपाल के राजाश्रय में **वामनभट्टबाण** निवास करते थे। बाणभट्ट के समान ये भी वत्सगोत्रीय थे। अपने आश्रयदता के जीवनवृत्त को इन्होंने अलङ्कृत गद्यशैली में सुबद्ध कर 'वेमभूपालचरित' नामक एक आख्यायिका की रचना की। बाणभट्ट के समान गद्यकाव्यनिर्माण की प्रतिभा से प्रसन्न होकर सम्भवत: वेमभूपाल ने इन्हें 'बाण' की

उपाधि दे डाली जो इनके नाम के साथ जुड़ गयी। वामनभट्टबाण की अन्य भी कई कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

उत्तरकालिक गद्यकवियों मे **विश्वेश्वर पाण्डेय** (अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) का नाम पर्याप्त प्रसिद्ध है। अल्मोड़ा जनपद (वर्तमान उत्तराञ्चरम प्रदेश) के पाटिया ग्राम के निवासी श्री लक्ष्मीधर पाण्डेय के सुपुत्र श्रीविश्वेश्वर पाण्डेय उच्चकोटि के संस्कृत विद्वान् थे। ये अलङ्कारशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य होने के साथ ही विलक्षण काव्य प्रतिभा से मण्डित थे। इनकी अनेक कृतियों में 'मन्दारमञ्जरी' नामक गद्यकाव्य पर्याप्त प्रसिद्ध है। बाणभट्ट की कादम्बरी को आदर्श बनाकर सर्वथा उसी अलङ्कृत गद्य-शैली में 'मन्दारमञ्जरी' की रचना की गयी है। इसमें चित्रभानु एवं मन्दारञ्जरी की प्रणय तथा विवाह की कथा वर्णित है। रसपेशला, समासबहुला, अलङ्कारशोभाढ्या पदावली का प्रयोग आकर्षक है।

आधुनिक संस्कृत-साहित्य के यशस्वी विद्वान् रचनाकारों में **पं० अम्बिकादत्त व्यास** का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। मात्र 42 वर्ष की अल्पायु (1858-1900 ई०) ही इन्होंने प्राप्त की, किन्तु अपने कीर्तिकमनीय कर्तृत्व से ये अमर हो गये। इन्होंने संस्कृत और हिन्दी भाषा में अनेक रचनायें की हैं। महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी के जीवनवृत्त पर आधारित गद्यकाव्य 'शिवराजविजय' की रचना करके इन्होंने संस्कृत गद्यसाहित्य को एक अनुपम उपहार दिया। 'शिवराजविजय' की गणना 'आख्यायिका' के रूप में की जा सकती है किन्तु स्वयं व्यास जी ने इसे संस्कृत उपन्यास (Sanskrit Novel) कहा है। अपने 'गद्यकाव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थ में इनका कथन है–

"उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते।
यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजजयो मम॥"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'शिवराजविजय' संस्कृत साहित्य का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है 'शिवराजविजय' में तीन विराम हैं और प्रत्येक विराम चार निःश्वासों में विभक्त है। इसके गद्य पर बाणभट्ट का प्रभाव है। विषय आधुनिक होने के कारण व्यास जी को कुछ नये संस्कृत शब्द भी गढ़ने पड़े हैं। इसमे व्यास जी की काव्य चेतना के प्राचीन और नवीन, दोनों पक्ष स्फुरित है।

संस्कृत गद्यसाहित्य में निबन्ध-शैली के प्रवर्तक **पं० हृषीकेश भट्टाचार्य** (1850-1913 ई०) द्वारा लिखित 'प्रबन्धमञ्जरी' काव्यात्मक रूप से लिखे गये ग्यारह ललित संस्कृत निबन्धों का सङ्कलन है। जयपुर के **भट्टमथुरानाथ शास्त्री** विलक्षण प्रतिभा के धनी संस्कृत विद्वान् थे। संस्कृत-साहित्य को आपका योगदान अपूर्व है। आप संस्कृत गद्य-साहित्य में आधुनिक कहानी विधा के प्रवर्तक हैं। आपने संस्कृतकथा-लेखन का सूत्रपात किया। इसी प्रकार पण्डिताक्षमाराक ने भी अनेक संस्कृत कथायें लिखीं। इन कथाओं के विषय देश की स्वतन्त्रता, सामाजिक समस्यायें एवम् अन्यान्य समसामयिक घटनायें थीं। वर्तमान काल में संस्कृत गद्यसाहित्य अनेक धाराओं में विभक्त होकर प्रवाहित हो रहा है और शताधिक संस्कृत साहित्यकार गद्य की विभिन्न विधाओं में रचना कर रहे हैं। ऐसे गद्यकाव्य लेखकों में प्रमुख हैं– नवलकिशोर कोकर, नारायणशास्त्री खिस्ते, रामावतार शर्मा, श्रीपादशास्त्री हसूरकर, विश्वनाथ शास्त्री, महालिंग शास्त्री, मथुरादत्त दीक्षित, रामशरण त्रिपाठी, वागीश शास्त्री, राजेन्द्र मिश्र, केशवचन्द्र दाश, राधावल्लभ त्रिपाठी, वनमाली विश्वाल, प्रभाकर शास्त्री, मोहन लाल शर्मा पाण्डेय, प्रशस्य मित्र शास्त्री, प्रभुनाथ द्विवेदी, कृष्ण लाल परमानन्द शास्त्री, रामकिशोर शास्त्री आदि।

इकाई–01

बोधप्रश्न

1. संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम प्रयोग कहाँ हुआ है?–

(क) ऋग्वेद में (ख) कृष्णयजुर्वेद में

(ग) पुराणों में (घ) महाभारत में

2. वैदिक वाङ्मय का चरम विकास किन ग्रन्थों के रूप में हुआ?

(क) ब्राह्मणों के रूप में (ख) वेदाङ्गों के रूप में

(ग) उपनिषदों के रूप में (घ) पुराणों के रूप में।

3. पतञ्जलिकृत महाभाष्य में कितनी आख्यायिकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है?

(क) चार (ख) छः

(ग) दो (घ) तीन।

4. महाकवि दण्डी के प्रमुख कथाग्रन्थ का नाम है–

(क) उत्तररामचरित (ख) हर्षचरित

(ग) दशकुमारचरित (घ) कुमारपालचरित।

5. किस कवि ने अपनी किस रचना को 'अतिद्वयीकथा' कहा है?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. कृष्णयजुर्वेद में।
2. उपनिषदों के रूप में।
3. तीन।
4. दशकुमारचरित।
5. महाकवि बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' को 'अतिद्वयी कथा' कहा है।

इकाई – 02 महाकवि बाणभट्ट : जीवनपरिचय, स्थितिकाल एवं कर्तृत्व

बाणभट्ट का जीवनवृत्त–

हर्षचरित के प्रारम्भिक उच्छ्वासों से बाणभट्ट के जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है।[1] वे वत्सगोत्रीय ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे।[2] इनके पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था।[3] बाण की माता का निधन उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया था। बालक बाणभट्ट का पालन-पोषण उनके पिता चित्रभानु ने किया। जब बाण की आयु चौदह वर्ष की थी तभी दुर्भाग्य से उनके पिता का भी देहावसान हो गया। इसके पूर्व ही उनके पिता ने बाण के सभी ब्राह्मणोचित संस्कार यथासमय शास्त्रसम्मत रीति से अपनी कुलपरम्परा के अनुसार सम्पन्न करा दिया था।[4] बचपन में ही बाण के सिर से माता-पिता के हाथों की छाया उठ जाने से बाण अत्यन्त सन्तप्त हो गये किन्तु काल-प्रभाव से जब शोक कम हुआ तो बाण में सहज चपलता पूरी तरह घर कर गयी। पिता, पितामहादि के द्वारा अर्जित और सञ्चित धन-वैभव प्रभूत मात्रा में था। अत: बाण की मित्र-मण्डली खूब जम गयी और वे उन सबके साथ देशाटन के लिए घर से निकड़ पड़े। इस तरह विभिन्न स्थलों का भ्रमण करने के पश्चात् वे अपनी जन्मभूमि में वापस आ गये।

हर्षचरित के अनुसार, ग्रीष्मकाल में एक दिन महाराज हर्ष के भाई कृष्ण ने बाण को बुलवाया। बहुत विचार करके युवक बाण ने वहां जाने का निश्चय किया। प्रात:काल तैयार होकर वे अपने ग्राम प्रीतिकूट से निकले। प्रथम दिन मल्लकूट तथा दूसरे दिन यष्टिग्रहक नामक ग्राम में रात बिताने के पश्चात

---

१. हर्षचरित, उच्छ्वास १-३।

२. बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोग्रणी: सताम्।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कज: कुबेरनामांश इव स्वयम्भुव:।। (कादम्बरी, १०)।

३. अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्।

४. स बाल एव विधेर्बलवतो वशादुपसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्।

कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगात्।।

हर्षचरित और कादम्बरी के उल्लेखों के आधार पर बाण का वंशवृक्ष इस प्रकार है–

वत्स
↓
कुबेर (वत्स के कुल में उत्पन्न)
↓
अच्युत — ईशान — हर — पाशुपत
पाशुपत
↓
अर्थपति
↓
चित्रभानु (तथा अन्य १० पुत्र)
↓
बाणभट्ट

तीसरे दिन मणितार के समीप अजिरवती के तट पर स्थित महाराज हर्षदेव के स्कन्धावार में पहुँचे तथा राजभवन के समीप ही निवास किया।

सायंकाल बाणभट्ट महाराज हर्ष से मिलने पहुँचे। प्रथमत: उन्होंने हर्ष के हाथी 'दर्पशात' को देखा और तब राजभवन में प्रविष्ट होकर हर्ष के दर्शन किये। किन्तु 'यह वही भुजंग बाण है'–कहकर हर्ष ने बाण से बात नहीं की। बाण ने अपनी भुजंगता (लम्पटता) के भ्रम को मिटाने के लिए अपनी ओर से पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया किन्तु हर्ष उन पर प्रसन्न न हुए फिर भी हर्ष के प्रति बाण के हृदय में श्रद्धा भर गयी। वे राजभवन से निकलकर अपने मित्रों के यहाँ रुक गये। राजा ने धीरे-धीरे बाण के सम्बन्ध में अच्छी तरह पता किया और उनके वैदुष्य तथा ब्राह्मणोचित स्वभाव से परिचित होने पर प्रसन्न हो गये। पुन: बाण राजभवन में प्रविष्ट हुए तो राजा ने उन्हें प्रेम, मान, विश्वास और धन की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। महाराज हर्ष के साथ बहुत समय तक रहकर बाण पुन: अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट को लौट आए।

बाणभट्ट विवाहित थे। बाण के पुत्र का नाम भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट था। इस नाम के विषय में ऐकमत्य नहीं है। भूषणबाण, पुलिन्द, पुलिन्ध्र या पुलिन नाम भी कहे जाते हैं। कादम्बरीविषयक एक जनश्रुति के अनुसार बाणभट्ट के दो पुत्र थे। बाण के चन्द्रसेन और मातृषेण नामक दो पारशव भाई भी थे।

बाणभट्ट के गुरु का नाम भत्सु या भर्त्सु या भर्वु था। इनके अन्य भी पाठभेद पाये जाते हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि गुरु का सही नाम क्या था? वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में 'भश्चु' द्वारा निर्मित श्लोक उद्धृत किये गये हैं।[1]

महाराज हर्ष के यहाँ से लौटने के पश्चात् अपने बन्धु-बान्धवों के आग्रह पर बाणभट्ट ने महाराज हर्षवर्धन का चरित सुनाया था (अर्थात् अपनी अलङ्कृत गद्य-शैली में 'हर्षचरित' की रचना की)। इसके पश्चात् बाण के शेष जीवन का वृत्त उपलब्ध नहीं होता। हाँ, किंवदन्ती है कि बाण 'कादम्बरी' को पूरी नहीं कर सके थे और मृत्यु-शैया पर पड़ गये। अपने जीवन के अन्तकाल में उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर पूछा कि कादम्बरी कौन पूरी करेगा? दोनों पुत्रों ने इसके लिए हामी भरी। तब उन्होंने कादम्बरी के अनुरूप भावकल्पना और भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में परीक्षा लेकर भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट को कादम्बरी पूर्ण करने की आज्ञा दी।

बाण एक समृद्ध ब्राह्मण-परिवार में पैदा हुए थे। महाराज हर्ष ने भी उन्हें पर्याप्त धन प्रदान किया था। अत: भोग-ऐश्वर्य की प्रचुर सामग्री उन्हें उपलब्ध थी। इस तरह उन्हें किसी भी प्रकार का अभाव न था और उनका जीवन आर्थिक दृष्टि से निरापद एवं सुखमय था।

बाण और मयूर के सम्बन्ध की चर्चा अनेकत्र प्राप्त होती है। बाण की मित्रमण्डली में स्त्री-पुरुष मिलाकर प्राय: चालीस की संख्या में तरह-तरह के लोग थे। इनमें से एक विषवैद्य 'मयूरक' भी था। मित्रों के नाम और उनके गुण वैशिष्ट्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ये नाम उनके गुणों के आधार पर रख दिये गये थे (यथा–विषवैद्य मयूरक, पुस्तक-वाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर आदि)। किन्तु जिस मयूर के साथ बाण के मैत्री-सम्बन्ध की चर्चा मिलती है, वे हर्ष के सभाकवि के रूप में जाने जाते हैं। कुछ लोग मयूर को बाण का श्वसुर और कुछ लोग साला कहते हैं। प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित 'प्रभावकचरित' में बाण और मयूर का श्लोकबद्ध आख्यान मिलता है। तदनुसार मयूर ने विद्वान्

---

१. सुभाषितावली, श्लोक सं० ५१३, ६३७ और १८३८।

कवि युवक बाण के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। एक बार बाण अपनी रूठी हुई पत्नी को मना रहे थे। चूँकि बाण पद्य-कवि नहीं थे अत: एक श्लोक की तीन पंक्तियां ही बराबर दुहरा रहे थे, चौथी पंक्ति नहीं बन पा रही थी।[1] बाहर उनसे मिलने के लिए आये हुए मयूर खड़े थे। उनसे नहीं रहा गया और उन्होंने श्लोक के भावानुरूप चौथी पंक्ति बनाकर ऊँचे स्वर में कह दी।[2] इस पर पिता का स्वर पहचाने बिना बाण की पत्नी ने चौथी पंक्ति बनाने वाले उस व्यक्ति को मान-रस-भङ्ग करने के अपराध के लिये कुष्ठी होने का शाप दे दिया। बाद में अपने पिता को तत्काल कुष्ठी हुआ देखकर उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। फिर मयूर ने 'सूर्यशतक' की रचना करके भगवान् सूर्य की आराधना की और उनके प्रभाव से कुष्ठ रोग से मुक्त हो गये। मयूर की काव्यात्मक स्तुति का अद्भुत प्रभाव देखकर बाणभट्ट ने भी अपना प्रभाव प्रकट करने के लिए अपने हाथ-पैर काट डाले और देवी चण्डिका की स्तुति की। भगवती की अनुकम्पा से बाण पुन: पूर्ववत् कमनीय अङ्गों वाले हो गये। बाणभट्ट द्वारा विरचित 'चण्डीशतक' प्राप्त होता है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में भी इसी प्रकार का बाण-मयूर विषयक आख्यान मिलता है। अन्यत्र भी इस विषय में सङ्केत प्राप्त होते हैं। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में मयूर के सम्बन्ध में संकेत किया है।

बाणभट्ट की जन्मभूमि अथ च मूल वासस्थान शोणनद के समीप था। इनके ग्राम का नाम प्रीतिकूट था। यह शोणनद के पूर्वी तट पर अवस्थित था। हर्षचरित के अनुसार यह स्थान च्यवन ऋषि के आश्रम के पास था। वर्तमान में यह च्यवनाश्रम देवकुर (देवकुण्ड) के नाम से गया जिले में शोणनहर के पास और शोणनद की वर्तमान धारा से पूर्व की ओर, गया से पूर्व दिशा में रफीगंज से प्राय: 16 कि० मी० उत्तरपश्चिम में अवस्थित है। बाणभट्ट का जन्मस्थान इसी के आसपास होना चाहिए।[3]

बाणभट्ट शैव अर्थात् शिव के भक्त थे। उनकी इस धार्मिक आस्था के पर्याप्त प्रमाण उनकी रचनाओं से प्राप्त होते हैं। हर्षचरित के प्रारम्भ में वे शिव और पार्वती की स्तुति करते हैं। जब वे हर्ष से मिलने के लिए जाने का निश्चय करते हैं तब कहते हैं कि भगवान् शिव मेरा कल्याण करेंगे। स्कन्धावार में भी राजभवन के लिए प्रस्थान से पूर्व उन्होंने शिव की पूजा की थी। कादम्बरी के प्रारम्भ में भी वे प्रथमत: शिव का स्मरण करते हैं। तदनन्तर विष्णु की स्तुति करते हैं। उज्जयिनी वर्णन में भी वे महाकाल का सादर वर्णन करते हैं। इस प्रकार वे शिव के अनन्य भक्त प्रमाणित होते हैं। अन्य देवी-देवताओं के प्रति भी उनकी आस्था है। वे दुर्गा के भी भक्त हैं। उमा और चण्डिका की स्तुतियां उन्होंने की हैं। हर्षचरित और कादम्बरी में बाणभट्ट ने अनेकत्र अपने पात्रों द्वारा भी शिव की पूजा-अर्चना करायी है। इससे भी बाण का परम शैव होना सिद्ध होता है।

बाणभट्ट का स्थितिकाल–संस्कृत साहित्य के जिन कवियों के स्थितिकाल का निर्धारण अत्यन्त दुष्कर है, महाकवि बाणभट्ट उनमें से नहीं हैं। अन्त:साक्ष्यों और बहि:साक्ष्यों के आधार पर बाणभट्ट के स्थितिकाल का निर्धारण आसानी से हो जाता है। सम्राट् हर्षवर्धन के साथ बाणभट्ट का सम्बन्ध ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट है। बाण, हर्ष की सभा के सम्मानित सदस्य थे। हर्षवर्धन का शासनकाल 606

---

१. गतप्राया रात्रि: कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो

२. कुचप्रत्सायत्त्या हृदयमपि ते चण्डि! कठिनम्।।

३. डॉ० अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन, पृ० १७।

ई० से 647 ई० तक था। अत: बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी ई० निश्चित **ही है।** चीनी यात्री हुएनसांग 629 ई० से 645 ई० तक भारत में रहा और उसने अपने यात्रा-विवरण में हर्षवर्धन और उनकी राज्यव्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। बाण ने भी हर्ष के जीवनवृत्त का कुछ अंश साहित्यिक रीति से हर्षचरित में सन्निविष्ट किया है। दोनों वर्णनों की तात्त्विक तुलना करने पर सिद्ध होता है कि दोनों द्वारा वर्णित हर्ष एक ही हैं।

बाणभट्ट के समय के सम्बन्ध में बहि:साक्ष्यों पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी ई०) ने अपनी रचनाओं में अनेकश: बाण का उल्लेख किया है। भोजराज अपने सरस्वती-कण्ठाभरण में बाण की रचनाओं से उद्धरण देते हैं। भोजराज भी 11वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में शासन करते थे। सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा में कई श्लोकों में बाण की प्रशंसा की है। सोड्ढल का समय प्राय: 1000 ई० है। आचार्य धनञ्जय (10वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) ने कादम्बरी और बाण का उल्लेख कई बार किया है। धनपाल ने भी 'तिलकमञ्जरी' बाणभट्ट और उनकी कृतियों–हर्षचरित तथा कादम्बरी की प्रशंसा की है। धनपाल का समय भी 10वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है। त्रिविक्रम भट्ट ने 'नलचम्पू' में बाणभट्ट की प्रशंसा के साथ ही कादम्बरी के गद्यबन्ध की भी प्रशंसा की है। 'नलचम्पू' का रचनाकाल 10वीं शताब्दी ई० का पूर्वाद्ध है। आनन्दवर्धन-कृत 'ध्वन्यालोक' में बाण और कादम्बरी का उल्लेख हुआ है। उसमें 'हर्षचरित' के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं। आनन्दवर्धन कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के समकालिक थे जिनका शासनकाल 855 ई० से 884 ई० तक था। अभिनन्द का समय नवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है। अभिनन्द ने 'कादम्बरीकथासार' की रचना की है जिसमें कादंबरी-कथा संक्षेपत: श्लोकबद्ध निबद्ध है। आचार्य वामन ने अपनी 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में कादम्बरी से उद्धरण दिये हैं। वामन का स्थितिकाल 800 ई० के आसपास माना जाता है। प्रकाशवर्ष ने अपने रसार्णवालङ्कार में बाण का उल्लेख किया है। प्रकाशवर्ष का समय सातवीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हमें यह ज्ञात होता है कि बाणभट्ट का उल्लेख तथा उनकी कृतियों से उद्धरणों का प्रयोग सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही किया जाने लगा था। अत: बाणभट्ट के स्थितिकाल की पूर्व सीमा सातवीं शताब्दी ई० के पश्चात् कथमपि नहीं रखी जा सकती।

सम्प्रति अन्त:साक्ष्यों का अवलोकन कर उन पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। बाणभट्ट की कृतियों में अनेक लेखकों और ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। कादम्बरी और हर्षचरित में रामायण और महाभारत (वाल्मीकि और व्यास) का उल्लेख हुआ है। ये दोनों आर्ष महाकाव्य निश्चित रूप से ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विरचित हो चुके थे। हर्षचरित में महाकवि (नाटककार) भास का उल्लेख हुआ है।[1] भास का समय ई० पूर्व चतुर्थ पञ्चम शताब्दी माना जाता है। कादम्बरी में 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता कौटिल्य का नामोल्लेख किया गया है। अर्थशास्त्र की रचना ई० पू० 321 से 300 के मध्य की गयी होगी। हर्षचरित में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की प्रशंसा बाण ने मुक्तकण्ठ से की है।[2] अधिकांश विद्वान् कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी मानते हैं। कुछ विद्वान् कालिदास को गुप्तकाल (350 ई० से 450 ई० के मध्य) में मानते हैं। बाणभट्ट ने गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' की प्रशंसा हर्षचरित में की

१. सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।

२. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।

है (हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।) 'बृहत्कथा' अब उपलब्ध नहीं है किन्तु बाणभट्ट ने अवश्य ही इसका अवलोकन किया होगा। 'बृहत्कथा' की रचना पैशाची प्राकृत में की गयी थी। 'बृहत्कथा' पर आधारित कथासरित्सागर' (सोमदेव) और 'बृहत्कथामञ्जरी' (क्षेमेन्द्र) दो ग्रन्थ संस्कृत में पद्यात्मक रूप में उपलब्ध होते हैं। उनसे तुलना करने पर प्रतीत होता है कि बाणभट्ट की 'कादम्बरीकथा' अवश्य ही बृहत्कथा की वस्तु और रचनाशिल्प से प्रभावित है। बृहत्कथा का रचना काल प्रथम शताब्दी ई० अनुमानित है। हर्षचरित में ही बाण ने 'सेतुबन्ध' के रचयिता प्रवरसेन का उल्लेख किया है। यह प्रवरसेन वाकाटक वंश के राजा प्रवरसेन द्वितीय हैं जिनका समय पांचवीं शताब्दी ई० है।

उपर्युक्त प्रमाणों की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि बाण ने अपनी रचनाओं में जिन कृतियों और कृतिकारों का उल्लेख किया है वे ई० पूर्व से लेकर पांचवीं ई० तक के हैं। इससे भी सातवीं शताब्दी ई०, बाण का स्थिति काल पुष्ट होता है। सबसे पुष्ट प्रमाण तो सम्राट् हर्ष का समकालिक होना ही है।

बाणभट्ट का कर्त्तृत्व–बाणभट्ट की तीन कृतियां प्रसिद्ध हैं–हर्षचरित, कादम्बरी और चण्डीशतक। प्रथम दो गद्यकाव्य हैं और तीसरी कृति पद्यकाव्य है। इनके अतिरिक्त भी बाण के नाम से कुछ अन्य ग्रन्थ कहे जाते हैं। यहाँ हम क्रमशः बाणभट्ट की कृतियों का परिचय संक्षेपतः प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. हर्षचरित–विदित ही है कि महाकवि बाणभट्ट ने अपने जीवन के अनेक वर्ष सम्राट् हर्षवर्धन के समृद्ध आश्रय में व्यतीत किये थे। इसलिए स्वाभाविक है कि हर्ष जैसे महान् सम्राट् का गुणकीर्तन उसके आश्रित प्रतिभाशाली विद्वान् कवि के द्वारा किया जाय। हर्षचरित, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक उच्चकोटि की गद्यकाव्य रचना है जिसे समीक्षकों ने 'आख्यायिका' की कोटि में रखा है। इसमें महाकवि बाण और सम्राट् हर्ष के जीवन के कुछ अंशों की अलङ्कृत गद्यशैली में काव्यात्मक प्रस्तुति है।

हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। इसके प्रारम्भिक तीन उच्छ्वासों में कवि ने वंशानुकीर्तन पूर्वक अपना परिचय तथा शेष पाँच उच्छ्वासों में अपने आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन के जीवन का कुछ अंश प्रस्तुत किया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि हर्षचरित एक अपूर्ण रचना है। किन्तु यदि हम हर्षचरित में बाण के कथनों का अनुशीलन करें तो ज्ञात होगा कि यह एक पूर्ण रचना है। बाण स्वयं कहते हैं कि पुरुषों की सौ आयु से भी हर्ष के चरित का वर्णन करना सम्भव नहीं है। डॉ० अमरनाथ पाण्डेय ने 'हर्षचरित' को अत्यन्त तर्कसम्मत विवेचना पूर्वक एक पूर्ण रचना सिद्ध किया है।

हर्षचरित की कई टीकायें हैं। रङ्गनाथकृत 'मर्मावबोधिनी' तथा शङ्करकृत 'सङ्केत' टीका प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त रुय्यक और शङ्करकण्ठ द्वारा की गयी टीकाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। रङ्गनाथकृत टीका के एक श्लोकबद्ध उद्धरण से अनुमानित होता है कि हर्षचरित पर कोई श्लोकबद्धटीका भी थी।

हर्षचरित का कथानक संक्षेपतः प्रस्तुतः किया जा रहा है–

प्रथम उच्छ्वास–भगवान शिव और भगवती उमा की स्तुति करने के पश्चात् कुकवि निन्दा और सुकवि प्रशंसा करके बाण ने पौराणिक शैली में अपने वंश के उद्भव की मनोरम कथा प्रस्तुत की है। ब्रह्मा की सभा में दुर्वासा से अभिशप्त होकर सरस्वती, सावित्री के साथ नियतकाल के लिए निर्वासित होकर मर्त्यलोक में अवतरित होती है और शोणनद के पश्चिमी तट पर एक मनोरम वन प्रान्त में निवास करने लगती है। वहां दैव योग से महर्षि च्यवन और सुकन्या के पुत्र कुमार दधीच से सरस्वती का सुन्दर प्रीतिमय मिलन हुआ। उससे सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्ति के साथ ही शाप समाप्त हो

जाने के कारण सरस्वती, सावित्री के साथ पुन: ब्रह्म लोक चली गयी। उदास दधीच ने पुत्र के पालन का भार भार्गव वंशोत्पन्न ब्राह्मण की पत्नी अक्षमाला को सौंप दिया। अक्षमाला को भी प्राय: उसी समय 'वत्स' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ थां। अक्षमाला ने समान वात्सल्य से दोनों का पालन-पोषण किया। सारस्वत ने वत्स को सभी विद्यायें प्रदान की तथा उसके लिए प्रीतिकूट नामक निवास बना दिया। स्वयं तपस्या के लिए पिता के पास चला गया।

वत्स के कुल में बहुत समय पश्चात् कुबेर पैदा हुए। उनके चार पुत्र हुए जिनमें से पाशुपत से अर्थपति नामक पुत्र हुआ। अर्थपति के ग्यारह पुत्र हुए जिनमें से चित्रभानु का विवाह राजदेही से हुआ। इसी दम्पत्ती के पुत्र बाण हुए। राजदेवी का निधन होने के पश्चात् बालक बाण का पालन पिता चित्रभानु ने किया। बाण जब चौदह वर्ष के हुए तो पिता भी दिवंगत हो गये किन्तु इसके पूर्व ही बाण के सारे संस्कार यथाविधि सम्पन्न हो चुके थे। पितृवियोग का शोक कम होने पर बाण अपने मित्रों के साथ देशाटन करने निकले और कुछ समय पश्चात् अपने गाँव लौटे। बान्धवों ने बाण का अभिनन्दन किया।

द्वितीय उच्छ्वास१ – सम्राट् हर्ष के भाई कृष्ण के बुलावे पर बाण हर्ष से मिलने गये। हर्ष के मन में बाण के प्रति जो कुविचार थे, वे दूर हो गये तथा वे सम्राट् के प्रेम-भाजन हो उनके आश्रय में रहने लगे।

तृतीय उच्छ्वास–पर्याप्त काल हर्ष की सन्निधि में व्यतीत कर बाण प्रीतिकूट में अपने बन्धु-बान्धवों के बीच पहुँचे। उन लोगों के कहने पर उन्होंने महाराज हर्ष का चरित सुनाना आरम्भ किया। प्रारम्भ में उन्होंने हर्ष के पूर्वज श्रीकण्ठ जनपदान्तर्गत स्थाणीश्वर प्रदेश के राजा पुष्पभूति का वर्णन किया।

चतुर्थ उच्छ्वास–पुष्पभूति से प्रवर्तित राजवंश में हूणहरिणकेसरी राजाधिराज प्रभाकरवर्धन उत्पन्न हुए। आदित्यपूजक उस राजा की पत्नी का नाम यशोमती था। इस दम्पती को राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री नामक तीन सन्तानें हुईं। यशोमती के भाई का पुत्र भण्डि इन दोनों राजकुमारों के अनुचर के रूप में साथ रहने लगा। दो मालव कुमार–कुमारगुप्त और माधवगुप्त भी इनके सहचर हो गये। राजश्री का विवाह मौखरिवंश के ग्रहवर्मा के साथ हुआ।

पञ्चम उच्छ्वास–राजा प्रभाकरवर्धन ने कुमार राज्यवर्धन को हूणों को परास्त करने के लिए उत्तरी सीमा पर भेजा। हर्षवर्धन भी कुछ दूर तक उनका अनुगमन करते रहे किन्तु बाद में आखेट के लिए रुक गये। एक रात उन्होंने दु:स्वप्न देखा और अगले दिन उन्हें पिता की गम्भीर रुग्णावस्था का सन्देश मिला। वे तुरन्त लौटे और पिता की दशा देखकर सन्तप्त हो गये। राजा ने किसी तरह आलिंगन पूर्वक हर्ष को भोजन के लिए राजी किया। राजा की हालत बिगड़ने लगी। चिकित्सा कर रहे वैद्य ने निराश होकर अग्नि में प्रवेश कर लिया। रानी यशोमती ने भी, हर्ष के लाख मनाने के बावजूद राजा की मृत्यु के पूर्व ही अग्निप्रवेश कर लिया। कुछ देर बाद ही राजा का भी प्राणान्त हो गया। हर्ष शोक-सन्तप्त हो गये और बड़े भाई के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

षष्ठ उच्छ्वास–राज्यवर्धन लौटे और दोनों भाई अत्यन्त शोक पूर्वक देर तक रोते रहे। राज्यवर्धन को राज्य से विमुख जानकर हर्ष ने अतिशय विनय किया। तभी राज्यश्री का परिचारक आकर रोने लगा कि मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या करके राज्यश्री को कारागार में डाल दिया है। हर्ष को राज्य-भार सौंप कर राज्यवर्धन, भण्डि और दश हजार घुड़सवारों के साथ मालवराज को विनष्ट करने हेतु चल पड़ा। कुछ ही दिनों बाद कुन्तल ने आकर बताया कि राज्यवर्धन ने मालवराज को परास्त कर दिया था किन्तु गौडाधिप ने धोखे से राज्यवर्धन को मार डाला। यह सुनकर हर्ष क्रोध से तमतमा उठा। हर्ष ने

सिंहनाद नामक सेनापति से प्रेरित होकर प्रतिज्ञा की कि गौडाधिप समेत सभी शत्रुओं का विनाश कर एकच्छत्र राज्य स्थापित करूँगा। इस अवसर पर गजाधिप स्कन्दगुप्त ने अनेक राजाओं की विपत्तियों का वर्णन किया।

सप्तम उच्छ्वास–महाराज हर्षवर्धन ने शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। एक पड़ाव पर प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार का दूत आकर उन्हें 'आभोग' नामक छत्र भेंट कर गया और राजा ने कुमार के अनुरोध पर उसे अपना मित्र बना लिया। कुछ समय बाद भण्डि (हर्ष के मामा का पुत्र) आया और उसने रोते हुए बताया कि राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद गुप्त ने कुशस्थल (कान्यकुब्ज) पर अधिकार कर लिया और राज्यश्री कारागार से निकलकर विन्ध्य के वनों में चली गयी है। उसने उसे खोजने के लिए कुछ आदमी लगाये किन्तु सफलता न मिली। तब सेना समेत भण्डि को गौड़ देश जाने का आदेश देकर हर्ष स्वयं राज्यश्री को खोजने चल पड़ा।

अष्टम उच्छ्वास–वन में कई दिन घूमने के पश्चात् एक शबर युवक की सहायता से हर्ष गिरिनदी के तट पर रहने वाले भिक्षु दिवाकर मित्र के आश्रम में पहुँचे। दिवाकर मित्र के साथी एक भिक्षु द्वारा तत्काल लाये गये वृत्तान्त को सुनकर वे सभी उस स्थान पर पहुँचे जहाँ एक स्त्री साहस पूर्वक अग्नि में प्रवेश करने जा रही थी। हर्ष अपनी बहन राज्यश्री को पहचान गये और उसे पकड़कर बचा लिया। भाई-बहन का यह मिलन अद्भुत कारुणिक था। राज्यश्री ने काषाय ग्रहण करने की आज्ञा हर्ष से मांगी किन्तु हर्ष ने उसे तब तक के लिए मना कर दिया जब तक वह दु:खी प्रजा को शत्रुओं का दमन करके सुखी न कर दे। दिवाकर मित्र ने इसका अनुमोदन किया। रात वहीं आश्रम में व्यतीत की। भाई-बहन दोनों अगले दिन प्रात:काल अपने शिविर को चले गये।

हर्ष का इतना ही चरित सुनाते-सुनाते दिवसावसान हो गया।

2. कादम्बरी–बाणभट्ट द्वारा विरचित यह गद्यकाव्य 'कथा' की कोटि में परिगणित है। इसके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण आगामी इकाइयों में प्रस्तुत किया जायेगा।

3. चण्डीशतक–102 श्लोकों में निबद्ध भगवती चण्डी की स्तुति बाण द्वारा विरचित है। देवी महिषासुर का वध करती है–यही इस स्तोत्रकाव्य का कथानक है। अमरूशतक के टीकाकार अर्जुनवर्मदेव ने अपनी टीका में चण्डीशतक को बाण की रचना कहा है। भोजराजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण में चण्डीशतक से श्लोक उद्धृत किया गया है। चण्डीशतक पर चार टीकाओं का उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ मार्कण्डेयपुराण के दुर्गासप्तशती (देवीमाहात्म्य) से प्रभावित है।

इन तीनों प्रसिद्ध रचनाओं के अतिरिक्त बाण के नाम से अन्य भी कई रचनायें जुड़ी हुई हैं। उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है–

4. मुकुटताडितक–चण्डपालकृत नलचम्पू की व्याख्या से ज्ञात होता है कि बाण ने 'मुकुटताडितक' नामक नाटक की रचना की थी। चण्डपाल ने इसका एक पद्य भी उल्लिखित किया है। भोजकृत श्रृङ्गारप्रकाश में इसका उल्लेख है।

5. शारदचन्द्रिका–शारदातनयकृत भावप्रकाशन से ज्ञात होता है कि बाण ने 'शारदचन्द्रिका' की रचना की थी।

6. पार्वतीपरिणय–कुछ विद्वान् गोत्र और नाम साम्य के आधार पर इसे बाणभट्ट की रचना मानते हैं। वस्तुत: यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दी ई० के वत्सगोत्रीय वामनभट्टबाण की रचना है।

इनके अतिरिक्त 'पद्यकादम्बरी', 'शिवस्तुति', 'सर्वचरितनाटक' रचनाओं को भी बाण के नाम

से जोड़ा जाता है।

इकाई 2

बोध प्रश्न :

1. 'दर्पशात' कौन था?
2. बाणभट्ट की जन्मस्थली (गाँव) का नाम क्या है?
3. त्रिविक्रमभट्ट ने कादम्बरी के गद्यबन्ध की प्रशंसा कहाँ की है?
4. कादम्बरी और हर्षचरित क्रमशः गद्यकाव्य के किन भेदों के उदाहरण बन सकते हैं?
5. हर्षचरित में कुल कितने उच्छ्वास हैं?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 'दर्पशात' महाराज हर्षवर्धन का हाथी था।
2. बाणभट्ट की जन्मस्थली का नाम है–'प्रीतिकूट'।
3. त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू में कादम्बरी के गद्यबन्ध की प्रशंसा की है।
4. 'कादम्बरी' कथा का और हर्षचरित आख्यायिका का उदाहरण है।
5. हर्षचरित में कुल आठ (08) उच्छ्वास हैं।

इकाई –03 कादम्बरी : कथानक एवं पात्र-परिचय (चरित्र-चित्रण)

कादम्बरी का कथानक–

संस्कृत गद्य-साहित्य का समुज्ज्वल रत्न 'कादम्बरी' एक कथा-ग्रन्थ है। आधुनिक काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसे एक मनोरम 'उपन्यास' कहा जा सकता है। कादम्बरी का कथानक चन्द्रापीड और पुण्डरीक के तीन जन्मों से सम्बद्ध है।

गद्यकाव्य कादम्बरी का आरम्भ पद्यबद्ध रूप से होता है। इन पद्यों के द्वारा महाकवि बाणभट्ट ने अजरूप परब्रह्म, शिव और विष्णु को नमस्कार करने के पश्चात् दुर्जन-निन्दा और सज्जन-प्रशंसा की है। कमनीय कथा का स्वरूप प्रतिपादित करने के पश्चात् क्रमश: वात्स्यायन वंश में उत्पन्न कुबेर, अर्थपति और अपने पिता चित्रभानु की महिमा का निरूपण कर अन्तत: अपना परिचय दिया है। तत्पश्चात् कथा प्रारम्भ होती है।

विदिशा नरेश शूद्रक एक प्रतापी राजा थे। कला-पारखी, गुणज्ञ, गोष्ठी-प्रिय विद्वान् शासक थे। एक दिन एक चाण्डाल कन्या पिंजड़े में वैशम्पायन नाम का तोता लेकर राजा की सेवा में उपस्थित हुई और उसने पक्षिरत्नभूत उस शुक को राजा को उपहार के रूप में समर्पित कर दिया। वैशम्पायन सभी शास्त्रों का ज्ञाता, बुद्धिमान् और मनुष्यवाणी में स्पष्ट बोलने वाला था। उसने अपना दाहिना पैर उठाकर राजा की जयकार की और उनके सम्बन्ध में एक 'आर्या' का पाठ किया। राजा अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुआ। उसने मध्याह्न भोजन के पश्चात् राजा को कथा सुनायी।

विन्ध्याटवी में अगस्त्य-आश्रम के समीप पम्पा सरोवर है। पम्पा सरोवर के पश्चिम तट पर विशाल सेमलवृक्ष की कोटर में एक वृद्ध पक्षी अपने शावक के साथ रहता था। एक दिन शबरों की सेना भीषण कोलाहल करती हुई उधर से गुजरी। सेना के निकल जाने के पश्चात् एक वृद्ध उस विशाल सेमल के वृक्ष पर चढ़ गया और कोटरों से शुकों को निकाल कर मारकर जमीन पर फेंक देता। उसने उस वृद्ध शुक को मारकर नीचे फेंक दिया और उसके साथ ही अपने पिता के पंखों में चिपका हुआ वह शिशु शावक भी नीचे गिर पड़ा। पुण्य बाकी रहने के कारण वह सूखे पत्तों के ढेर पर गिरा। शबर के भूमि पर उतरने के पूर्व ही अपने प्राणों के मोह में वह शुकशावक पास के तमाल वृक्ष की जड़ में जाकर छिप गया। वह शबर जमीन पर पड़े शुकों को बटोर कर (लेकर) चला गया। तब प्यास से व्याकुल वह डरा हुआ भी रेंगता हुआ पानी की खोज में धीरे-धीरे चल पड़ा। स्नान करने के लिए सरोवर की ओर जाते हुए जाबालि-पुत्र हारीत की दृष्टि उस पर पड़ी। वे एक ऋषिकुमार के द्वारा शुक-शावक को सरोवर के पास ले गये, उसके मुँह में पानी की कुछ बूँदें डालीं और स्नान करने के बाद उसे अपने रमणीय आश्रम में ले गये। शुक-शावक को अशोक वृक्ष के नीचे रखकर उन्होंने अपने पूज्य पिता जाबालि का चरण-स्पर्श पूर्वक अभिवादन किया। मुनियों के पूछने पर उन्होंने शुक शावक की प्रगति का वृत्तान्त बतलाया और कहा कि पंख निकलने तक इसे इसी आश्रम में पाला जायेगा। तब महर्षि जाबालि ने शुक-शावक की ओर देखकर कहा कि यह अपने ही अविनय का फल भोग रहा है। यह सुनकर हारीत समेत सभी मुनियों को बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने उसके रहस्य को जानना चाहा। तब सन्ध्याकालिक कृत्य सम्पन्न करके महर्षि जाबालि ने शुक के पूर्व जन्म का वृत्तान्त बताया।

उज्जयिनी के राजा तारापीड ने अपने योग्य महामन्त्री शुकनास पर समस्त राज्यभार छोड़कर चिरकाल तक यौवन सुख का उपभोग किया। जब आयु अधिक होने लगी और कोई सन्तान नहीं हुई

तो उनकी चिन्ता बढ़ने लगी। एक दिन महारानी विलासवती भी अपनी निःसन्तानता के कारण अत्यन्त दुःखी हीकर विलाप करने लगी। महाकाल के दर्शनों के लिए गयी हुई महारानी ने वहां हो रही महाभारत की कथा के एक प्रसङ्ग में सुना कि पुत्रहीनों को शुभ लोक नहीं मिलते। महाराज तारापीड ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि दैवाधीन वस्तु के लिए सन्तप्त होना उचित नहीं है। गुरु, ऋषि और देवों की अर्चना अपने अधीन है। भक्तिपूर्वक ऐसा करने पर वे प्रसन्न होकर मनोवाञ्छित उत्तम वर देते हैं।

राजा और रानी ने ऐसा ही किया। तारापीड को विलासवती से चन्द्रापीड नामक पुत्र तथा मन्त्री शुकनास को अपनी पत्नी ब्राह्मणी मनोरमा से वैशम्पायन नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। दोनों बालक परस्पर मित्रभाव से साथ ही साथ रहने लगे। दोनों को आचार्यों ने समग्र विद्याओं की शिक्षा दी। विद्या प्राप्त कर चन्द्रापीड इन्द्रायुध नामक अश्व पर सवार होकर वैशम्पायन के साथ राजभवन लौटा और माता-पिता के दर्शन कर आनन्दित हुआ। माता विलासवती ने चन्द्रापीड की ताम्बूलकरङ्कवाहिनी के रूप में कुलूतेश्वर की पुत्री पत्रलेखा को नियुक्त किया और वह कुमार का विश्वास अर्जित कर उनकी सेवा में लग गयी। तारापीड ने चन्द्रापीड को युवराज पद पर अभिषिक्त किया और चन्द्रापीड ने तीन वर्षों में दिग्विजय कर पृथ्वी मण्डल के राज्यों को अपने अधीन कर लिया। यौवराज्याभिषेक से पूर्व मन्त्री शुकनास ने चन्द्रापीड को राजनीति और आचार-व्यवहार की शिक्षा (उपदेश) दी।

किरातों के नगर सुवर्णपुर को जीत कर वह सेना को विश्राम देने के लिए कुछ दिनों के लिए वहां रुक गया। एक दिन उसने एक किन्नर युगल को देखा। कुतूहल वश उनका पीछा करते हुए वह वन में दूर तक निकल गया। किन्नर युगल तो पर्वत शिखर पर चढ़ गया और चन्द्रापीड जल खोजता हुआ अच्छोद सरोवर पर पहुँच गया। वहां शिवमन्दिर में वीणा बजाकर तन्मयतापूर्वक शिवाराधन में निरत एक दिव्यकन्या को देखा। बाद में वह उसके साथ बैठकर उसका सारा हाल जानने लगा। उस कन्या का नाम 'महाश्वेता' था और वह गन्धर्वराज 'हंस' तथा अप्सराकन्या गौरी की एकमात्र कन्या थी। एक दिन वह अपनी माता के सात स्नानार्थ अच्छोद सरोवर पर आयी थी। वहां उसे एक दिव्य सुगन्धि का अनुभव हुआ और उस सुगन्धि का अनुसरण कर वह आगे बढ़ी तो मुनिपुत्र पुण्डरीक और कपिञ्जल से उसकी भेंट हुई। पुण्डरीक ने वह पारिजत मञ्जरी महाश्वेता को दे दी। दोनों के बीच प्रणय अंकुरित हो गया। दोनों अपने-अपने घर लौट गये और परस्पर वियोग से सन्तप्त रहने लगे। एक दिन कपिञ्जल ने आकर पुण्डरीक की गम्भीर अवस्था का निवेदन महाश्वेता से किया। अपनी दासी तरालिका के साथ जब महाश्वेता पुण्डरीक को देखने उसके आश्रम पहुँची तब तक उसके प्राण निकल चुके थे। महाश्वेता विलाप करने लगी और आत्मदाह के लिए उसने तरलिका से चिता तैयार करायी। इसी समय चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष उतरा और पुण्डरीक का निर्जीव शरीर लेकर चला गया। उसने महाश्वेता को पुण्डरीक से पुनर्मिलन का विश्वास दिलाया और प्राणत्याग न करने के लिए कहा। कपिञ्जल भी उसका पीछा करता हुआ आकाश में उड़ गया।

महाश्वेता ने बताया कि गन्धर्व चित्ररथ की पुत्री कादम्बरी उसकी सखी है। उसने निश्चय किया है कि जब तक महाश्वेता शोकावस्था में रहेगी, तब तक वह अपना विवाह नहीं करेगी। फिर वह चन्द्रापीड को लेकर कादम्बरी से मलने उसके वास-स्थान हेमकूट गयीं। महाश्वेता ने कादम्बरी से चन्द्रापीड का परिचय कराया। कादम्बरी ने चन्द्रापीड को 'शेष' नामक दिव्य हार उपहार में दिया और साथ ही अपना हृदय भी अर्पित कर दिया। कुछ दिन वहां रहकर चन्द्रापीड और महाश्वेता वापस अच्छोद सरोवर के समीपस्थ आश्रम में लौट आए। कुछ दिन बाद कादम्बरी का सन्देश-वाहक केयूरक वह हार

लेकर आया जो चन्द्रापीड वहीं छोड़ आया था। उसने कादम्बरी की कामावस्था को भी चन्द्रापीड से निवेदित कर गया। तब चन्द्रापीड पत्रलेखा के साथ पुन: हेमकूट गया और पत्रलेखा को वहीं छोड़कर वापस आ गया।

पिता तारापीड का सन्देश पाकर चन्द्रापीड ने वैशम्पायन को सेना समेत आने के लिए कहकर स्वयं इन्द्रायुध पर सवार हो, शीघ्र उज्जयिनी पहुंच कर माता-पिता के दर्शन किये। कुछ दिनों बाद पत्र-लेखा आयी। उसने कादम्बरी और महाश्वेता का हाल बताकर चन्द्रापीड से कहा कि उसने कादम्बरी से आपको मिलाने का वचन दिया है। (यहां तक बाण-रचित कादम्बरी का पूर्वभाग समाप्त होता है और आगे भूषणभट्ट द्वारा लिखित कादम्बरी उत्तरभाग की कथा आरम्भ होती है।)

मेघनाद के साथ केयूरक और पत्रलेखा को पुन: कादम्बरी के पास जाने के लिए रवाना करके चन्द्रापीड स्वयं दशपुर तक आयी सेना के साथ आ रहे अपने मित्र शुकनासपुत्र वैशम्पायन से मिलने चल पड़ा। किन्तु स्कन्धावार में वैशम्पायन को न पाकर बहुत दु:खी हुआ। बाद में पता लगा कि वैशम्पायन तो अच्छोद सरोवर पर ही रह गया। तब चन्द्रापीठ वापस उज्जियिनी आया और तारापीड तथा शुकनास से यह वृत्तान्त बताकर वैशम्पायन को खोजने शीघ्रतापूर्वक अच्छोद सरोवर पहुंचा। वहां उसे न पाकर जब उसने महाश्वेता से उसके बारे में पूछा तो उसने रोते हुए बताया कि वह ब्राहम्ण युवक आया था और वह हठ पूर्वक मुझसे प्रणय निवेदन कर रहा था। मेरे निषेध करने पर भी जब उसने अपनी रट नहीं छोड़ी तो मैंने उसे शुक हो जाने का शाप दे दिया। वह निष्प्राण हो गिर पड़ा। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि वह आपका मित्र था। इतना सुनते ही चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो गया और वह भी निष्प्राण हो धराशायी हो गया।

उसी समय कादम्बरी भी महाश्वेता के आश्रम पर पहुँच गयी और चन्द्रापीड को मरा देखकर व्याकुल हो विलाप करने लगी। उसी समय चन्द्रापीड के शरीर से एक ज्योति निकली और आकाशवाणी हुई कि चन्द्रापीड का शरीर सुरक्षित रखना। उससे कादम्बरी का समागम अवश्य होगा। तत्काल बाद पत्र-लेखा, इन्द्रायुध को लेकर अच्छोद सरोवर में कूद गयी। कुछ देर बाद अच्छोद सरोवर से कपिञ्जल निकल कर बाहर आया उसने महाश्वेता को चन्द्रमा और पुण्डरीक के शाप-प्रतिशाप की कथा बतायी। उसने यह भी बताया कि उस समय आकाशमार्ग से जाते हुये एक, क्रोधी वैमानिक का उल्लङ्घन कर दिया था तो उसने मुझे अश्वयोनि में जाने का शाप दे दिया। बाद में उसने मुझे बताया कि चन्द्रदेव ही तारापीड के पुत्र चन्द्रापीड होंगे और पुण्डरीक उनका मित्र वैशम्पायन होगा। तुम चन्द्रापीड का वाहन बनोगे और चन्द्रापीड की मृत्यु के पश्चात् जब तुम स्नान कर लोगों तो मेरे शाप से मुक्त होकर पुन: कपिञ्जल हो जाओगे।

उससे प्रणय निवेदन करने वाला वैशम्पायन ही पुण्डरीक था--यह जानकर महाश्वेता विलाप करने लगी। कपिञ्जल ने उसे आश्वस्त किया तथा चन्द्रापीड, वैशम्पायन और पत्रलेखा के पुनर्जन्म का पता लगाने श्वेतकेतु मुनि के यहां चला गया। दूतों से यह वृत्तान्त जानकर तारापीड अपने परिजनों के साथ अच्छोद सरोवर पर जा पहुँचे और चन्द्रापीड के सुरक्षित शरीर को देखकर आश्वस्त हुए।

इतनी कथा सुनाकर महर्षि जाबालि ने कहा कि महाश्वेता के शाप के कारण शुक-योनि में जन्मा यह शावक ही वैशम्पायन है।

फिर शुक-शावक ने महाराज शूद्रक को बताया कि कपिञ्जल मुझे ढूँढता हुआ जाबालि-आश्रम

में आया था और पिता श्वेतकेतु की कुशलता बता गया था। जब मैं उड़ने योग्य हो गया तो एक दिन उत्तर दिशा की ओर जाते हुए एक व्याध के जाल में फँस गया और आज स्वर्ण-पिंजरे में इस चाण्डाल-कन्या ने मुझे श्रीमान् के चरणों में पहुँचा दिया है।

शुक-शावक की बातें सुनकर महाराज शूद्रक ने चाण्डाल-कन्या को बुलवाया। उसने आकर कहा कि महाराज आपने इसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन ही लिया है। अब इसके शाप की निवृत्ति सन्निकट है। मैं ही इसकी माता लक्ष्मी हूँ। आप चन्द्रापीड हैं और यह वैशम्पायन अर्थात् पुण्डरीक है। अब शाप की समाप्ति के बाद आप दोनों सुखपूर्वक साथ-साथ रहेंगे। इतना कह कर वह आकाश में उड़ गयी। तब शूद्रक को भी अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया।

उधर महाश्वेता के आश्रम पर बसंन्त के आगमन के साथ ही कादम्बरी ने चन्द्रापीड के शरीर को अलङ्कृत कर उसका आलिंगन किया। चन्द्रापीड जीवित हो गया। पुण्डरीक भी कपिञ्जल के साथ गगन तल से उतर आया। तारापीड, विलासवती, शुकनास, मनोरमा, चित्ररथ, हंस आदि सभी आनन्दित हो गये। कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डरीक के साथ विवाह हो गया और सभी सुखपूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कादम्बरी-कथा का संक्षेपतः यहाँ वर्णन किया गया।

कादम्बरी-कथा का मूल स्रोत–यद्यपि 'कादम्बरी' के प्रथम पात्र 'शूद्रक' को अनेक विद्वान् इतिहास प्रसिद्ध राजा सिद्ध करते हैं[1] तथापि कादम्बरी का कथानक वस्तुतः कविकल्पित (उत्पाद्य) है। गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' का मकरन्दिकोपाख्यान को कादम्बरी-कथा का मूलस्रोत माना जाता है। बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में निबद्ध थी और वर्तमान में अनुपलब्ध है किन्तु बाणभट्ट ने अवश्य ही उसका अवलोकन किया होगा। सम्प्रति बृहत्कथा के दो पद्यात्मक संस्करण प्राप्त होते हैं–सोमदेवकृत कथासरित्सागर और क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामञ्जरी। इसके अतिरिक्त 'बृहत्कथाश्लोकसङ्ग्रह' भी प्राप्त होता है। इन तीनों में ही 'मकरन्दिकोपाख्यान' प्राप्त होता है। 'मकरन्दिकोपाख्यान' के पात्रों के नाम कादम्बरी-कथा के पात्रों से भिन्न हैं किन्तु दोनों के ही कथानकों का ढांचा प्रायः मिलता-जुलता है। चूँकि बाण सप्तम शताब्दी ई० के हैं और गुणाढ्य ई० पूर्व चतुर्थ शताब्दी के आस-पास के। अतः निश्चय ही कादम्बरी का कथानक बृहत्कथा से प्रभावित है। कादम्बरी-कथा में और कथासरित्सागर के राजा सुमनस् की कथा में बहुत अधिक समानता है। कथासरित्सागर की यह कथा बृहत्कथा में रही होगी। बाण ने कादम्बरी की रचना में इससे प्रेरणा ग्रहण की है किन्तु अपनी काव्यप्रतिमा, वैदुष्य (पाण्डित्य), उत्प्रेक्षाशक्ति के बल पर उसे पूर्णतः स्वोपज्ञ (मौलिक) बना दिया। कादम्बरी के शूद्रक, चाण्डाल-कन्या, वैशम्पायन (शुक), जाबालि, हारीत, तारापीड, विलासवती, चन्द्रापीड, शुकनास, महाश्वेता, पुण्डरीक और कादम्बरी क्रमशः कथासरित्सागर के सुमनस्, मुक्तलता, शास्त्रगङ्ग, पौलस्त्य, मारीच, ज्योतिष्प्रभ, हर्षवती, सोमप्रभ, प्रभाकर, मनोरथप्रभा, रश्मिवान् और मकरन्दिका हैं। कुछ अन्य गौड़ पात्रों और स्थानों के नाम भी भिन्न हैं।

१. डॉ० उमाशङ्कर शर्मा ऋषि : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४९०-९१।

बाणभट्ट ने अपनी प्रतिभा और रचना-शक्ति से मूलकथा में पर्याप्त परिवर्तन करके कादम्बरी को वैसा ही नवीन रूप दे डाला है जैसे फाल्गुन के महीने में शोभाञ्जन वृक्ष (सहजन या सहिजन का पेड़) नवीन कलेवर धारण कर लेता है। उन्होंने उत्स के रूप में एक सामान्य लोककथा को लेकर उसे संस्कृत वाङ्मय की उत्कृष्टतम कथा के रूप में प्रस्तुत कर लिया। यह बाण के लोकोत्तरवर्णना निपुण कतिकर्म का ही परिणाम है। उन्होंने अलङ्कृत गद्य-शैली के आश्रय से काल्पिक प्रणय कथा को अत्यन्त हृदयावर्जक बनाने के साथ ही शुकनासोपदेश जैसे जीवन के व्यावहारिक पक्ष को भी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। औचित्य और रस के निर्वाह की दृष्टि से मूल कथा में आवश्यक परिवर्तन भी किये गये हैं।

पात्र-परिचय (पात्रों का चरित्र-चित्रण)

प्रमुख पुरुष पात्र

शूद्रक

संस्कृत वाङ्मय में 'शूद्रक' एक बहुचर्चित नाम है। पुराणों से लेकर लौकिक संस्कृत-काव्यों से इसे अनेकत्र राजा के रूप में चित्रित किया गया है। इसे 'मृच्छकटिक' नामक रूपक का कर्त्ता भी कहा गया है। इसके नाम से अन्य रचनायें भी प्राप्त होती हैं।

कादम्बरी-कथा का आरम्भ ही शूद्रक के उल्लेख (आसीत्.......................राजा शूद्रको नाम) से होता है। वह विदिशा का शासक और चन्द्रापीड का अवतार है। उसकी सभा शुकनास जैसे विशुद्ध आचरण वाले विद्वान् ब्राह्मण मन्त्रियों से सुशोभित थी। वह अमित पराक्रमशाली और अप्रतिहत शक्तिसम्पन्न था। सभी राजा सिर झुका कर उसकी आज्ञा का पालन करते थे। वह जितेन्द्रिय था और सदाचारी, धार्मिक तथा यज्ञों का अनुष्ठाता था। शास्त्रज्ञ और साथ ही काव्यज्ञ भी था। प्रजापालक और विद्वानों का समादरकर्ता था। वह गुणग्राही था। वैशम्पायन शुकशावक द्वारा उच्चारित आर्या–"स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपवर्ति हृदयशोकाग्नेः। चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।।"–सुनकर आश्चर्य चकित हो जाता है। प्रशंसा करता हुआ अपने मन्त्री कुमारपालित से कहता है–"श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे स्वरे च मधुरता।।"

कादम्बरी-कथा का आरम्भ जिस प्रकार शूद्रक के उल्लेख से होता है, उसी तरह कथा की समाप्ति पर भी शूद्रक का उल्लेख होता है। वह वैशम्पायन शुक द्वारा कही जा रही कथा को अत्यन्त धैर्य पूर्वक मन लगाकर सुनता है। कथा पूरी हो जाने पर वह पुनः चाण्डालकन्या को बुलाता है। चाण्डालकन्या द्वारा रहस्यकथन के पश्चात् शूद्रक को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है।

तारापीड

तारापीड उज्जयिनी के सम्राट् हैं। वे चन्द्रापीड के पुत्रवत्सल पिता और महारानी विलासवती के प्रणयी पति हैं। वे धर्म के अवतार और परमेश्वर के प्रतिनिधि हैं। वे कामदेव के समान शोभासम्पन्न हैं। वे एक योग्य शासक के सभी गुणों से सम्पन्न हैं तथा कौटुम्बिक सम्बन्धों के प्रति भी अत्यन्त संवेदनशीला हैं। विलासवती के साथ वे भी सन्तान सुख न पाने से दुःखी हैं तथा पत्नी का प्रसादन करते हैं। वे उसे कर्म और भाग्य का भरोसा दिलाकर आश्वस्त करते हैं तथा देव, गुरु और अतिथि के समाराधन सपर्या का सुझाव देते हैं। वे पुण्य और पाप को अच्छी तरह समझते हैं तथा अनजान में भी अपने द्वारा अपराध न होने देने के लिए सचेष्ट रहते हैं। तारापीड दैव के विधान से उद्विग्न नहीं होते। उनमें गाम्भीर्य, दृढता और मृदुता, हृदय की विशालता और उदारता ये सब कुछ हैं। आदर्श सम्राट के सभी गुण उनमें

मूर्तिमान हैं। वे अपने कर्तव्य का निर्वाह बड़ी कुशलता से करते हैं। उनका चरित्र अत्यन्त पवित्र और अनुकरणीय है।

चन्द्रापीड

चन्द्रापीड कादम्बरी कथा का नायक है। वह धीरोदात्त कोटि का नायक है।[1] लक्षण ग्रन्थों में इस कोटि में रखे गये नायक के जो गुण–महासत्त्व, अत्यन्त गम्भीर प्रकृति, क्षमावान्, आत्मश्लाघा से रहित, अचलबुद्धि, विनम्र, दृढसंकल्पवान्–कहे गये हैं, वे सभी चन्द्रापीड में पाये जाते हैं। चन्द्रापीड चन्द्रदेव का अवतार है। उसने उच्च राजर्षिकुल में जन्म लिया है। वह मनोहर कलेवर काला, बुद्धिमान्, स्नेही और पराक्रमी है। स्वाभाविक जिज्ञासा से भरा हुआ है। किन्नर युगल का पीछा करते हुए अच्छोद सरोवर तक पहुँच जाता है और फिर वहां शिवाराधन में तल्लीन वीणा वादिनी एकाकिनी कन्या को देखकर कुतूहल भरी जिज्ञासा होती है। बाल्यावस्था में उसने आचार्यों के चरणों में बैठकर अनेक शास्त्रों और विद्याओं का अध्ययन किया था। उसने व्याकरण, मीमांसा, तर्कशास्त्र, राजनीति, मल्लविद्या, नृत्यशास्त्र, चित्रकर्म, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वस्तुविद्या, नाटक, कथा, आख्यायिका, काव्य आदि में अध्ययन एवं अभ्यास द्वारा कुशलता अर्जित की थी। वह अत्यन्त धैर्यवान् है–"अहो बालस्यापि सतः कठोरस्येव ते महद्धैर्यम्।" उसमें गुरुजनों के प्रति असाधारण श्रद्धा एवं भक्ति है। शुकनास का उपदेश पाकर वह अपने को धन्य मानता है–"उपशान्त वचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरूपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।"

वह अपने गुरुजन का सम्मान रता है। माता-पिता की पाद वन्दना करता है। मन्त्री शुकनास का अभिवादन करता है और उनके समक्ष भूमि पर बैठता है। शिष्टाचार का वह जंगम स्वरूप ही है। अपने परिजनों का भी यथोचित आदर करता है। इन्द्रायुध अश्व को देखकर उसके विस्मय की सीमा नहीं रहती। वह मन ही मन कहता है–"महात्मन्! आप चाहे जो भी हों, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरे आरोहण की धृष्टता को क्षमा कीजिए। अज्ञात देवता भी अनुचित अनादर के भाजन हो जाते हैं।"

वह दूसरों की इच्छाओं का सदैव ध्यान रखता है। महाश्वेता के आग्रह पर वह हेमकूट जाने के लिए तैयार हो जाता है। उधर से लौटकर आने पर पिता के बुलाने पर शीघ्रतापूर्वक उज्जयिनी के लिए प्रस्थान कर देता है।

चन्द्रापीड परिहास कुशल भी है। कादम्बरी में उसके हास्य-व्यङ्ग्य के अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। चन्द्रापीड एक आदर्श मित्र और सखा है। 'सुहृद्' शब्द की अन्वर्थकता उससे ही है। वह मैत्री के पवित्र सम्बन्ध का प्रयत्नपूर्वक निर्वाह करता है। महाश्वेता के साथ उसकी मैत्री अत्यन्त पवित्र है। महाश्वेता द्वारा यह बताने पर कि वैशम्पायन को उसने शुक होने का शाप दे दिया है, वह महाश्वेता को कुछ नहीं कहता। उज्जयिनी में यह संवाद पाते ही कि वैशम्पायन सेना के साथ नहीं है, पीछे छूट गया है; वह तुरन्त ही वैशम्पायन को ढूँढ निकालने के लिए चल पड़ता है। वैशम्पायन उसका बालसखा है। महाश्वेता द्वारा शापग्रस्त होकर उसकी मृत्यु का संवाद सुनते ही उसका हृदय विदीर्ण हो गया और वह भी निष्प्राण हो गया। सच्ची मित्रता का यह अनुपम निदर्शन है।

---

१. धीरोदात्त नायक का लक्षण दशरूपक (२.४५) में इस प्रकार दिया गया है–

'महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥'

चन्द्रापीड यथार्थत: प्रेमी है। वह कादम्बरी को हेमकूट में देखकर उसके प्रति आकृष्ट होता है। उसकी अनुरागमयी स्मृति अपने हृदय में सदैव बनाये रखता है। अभी वह हेमकूट से महाश्वेता के आश्रम में आया ही था कि कादम्बरी की अस्वस्थता का हाल जानकर पुन: अविलम्ब पत्रलेखा के साथ कादम्बरी को देखने जाता है और पत्रलेखा को कादम्बरी के पास ही छोड़ कर वापस होता है। कुलूतेश्वर की राजकन्या पत्रलेखा (नवयुवती सुन्दरी) विलासवती के द्वारा, चन्द्रापीड, नवयुवक राजकुमार की ताम्बूलकरङ्कवाहिनी बनायी गयी। वह चन्द्रापीड की अतिविश्वासपात्र हो गयी किन्तु कादम्बरी में कहीं भी चन्द्रापीड का उसके प्रति आकर्षण सङ्केतित नहीं है। इस पर कुछ समीक्षकों ने चन्द्रापीड को निष्ठुर और हृदयहीन कहा है। किन्तु चन्द्रापीड पर ऐसा आक्षेप करना उचित नहीं है। वह एक आदर्श भारतीय युवक है और धर्माविरुद्ध काम की मर्यादा का पालन करने वाला है।

इस प्रकार, चन्द्रापीड को बाणभट्ट ने इस महनीय कालजयी कथा के आदर्श नायक के रूप में प्रस्तुत किया है।

शुकनास

सदाचारी ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न शुकनास, उज्जयिनी के सम्राट तारापीड का मन्त्री है। वह शास्त्रों का मर्मज्ञ वेत्ता है और नीतिशास्त्र के सम्यक् प्रयोग में अत्यन्त निपुण है। वह राजा का अत्यन्त विश्वास पात्र और सम्मान भाजन है। वह प्रजा के कल्याण के लिए सतत निरत रहता है। विपत्काल में भी उसकी प्रज्ञा तनिक भी मलिन नहीं होती और स्थिर चिन्तन में समर्थ रहती है। वह धैर्य का धाम, मर्यादा का स्थान, सत्य का दृढ़ सेतु, गुणों का गुरु और आचारों का आचार्य है। चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर चन्द्रापीड को उसके द्वारा प्रदत्त उपदेश संस्कृत साहित्य की अनुपम अमूल्य निधि होने के साथ ही एक शासक के लिए उसके धर्म-कर्म की आदर्श आचार संहिता है। शुकनास परिस्थितियों का ठीक-ठीक आकलन करता है और कालोचित निर्णय लेता है। वह राजा को सदैव सत्यपरामर्श देता है। शुकनास के विचार अत्यन्त पवित्र और दृष्टि सर्वथा निर्मल है। उसके लिए अपने-पराये में कोई भेद नहीं है। शुकनास एक योग्य शासक का सुयोग्य मन्त्री है।

वैशम्पायन

वैशम्पायन पुण्डरीक का अवतार है जो महाश्वेता के शाप से शुक की योनि में उत्पन्न होता है जिसे उसकी माता लक्ष्मी, चाण्डालकन्या के रूप में स्वर्णपिंजर में लेकर शूद्रक की सेवा में उपस्थित होती है। वैशम्पायन, पूर्व जन्म में महामुनि श्वेतकेतु का पुत्र होने के कारण सदाचार सम्पन्न संस्कारवान् और शास्त्रज्ञ है।

शुकनासपुत्र वैशम्पायन के रूप में वह चन्द्रापीड का बाल सखा है और उसने उनके साथ ही विद्याध्ययन किया है। वह सदैव चन्द्रापीड का अनुगामी रहता है।

पुण्डरीक

महामुनि श्वेतकेतु और लक्ष्मी का पुत्र मुनिकुमार पुण्डरीक है। मुनिवृत्ति के प्रतिकूल कामुकता इसके अन्दर भरी हुई है। यही कारण है कि महाश्वेता को देखते ही वह उस पर आसक्त हो जाता है और अपनी सुध-बुध खो बैठता है। उसका मित्र कपिञ्जल उसे लाख समझाता है किन्तु उसका कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता, उलटे वह उसी पर खीझने लगता है। पुण्डरीक की सुन्दरता अवर्णनीय है।

प्रमुख स्त्रीपात्र

विलासवती

उज्जयिनी-नरेश तारापीड की महारानी विलासवती है। वह नि:सन्तानता की असह्य पीड़ा से अत्यन्त दु:खित होती है। अपने पति महाराज तारापीड के समझाने पर गुरुजनसेवा और देवाराधन में तत्पर होती है। फलत: उसे चन्द्रमा के समान सुन्दर पुत्र प्राप्त होता है। उसका नाम चन्द्रापीड रखा जाता है। पुत्र के प्रति जो स्वाभाविक वत्सलता मां में होती है, विलासवती में उससे कहीं अधिक है क्यों कि अनेक व्रतानुष्ठानादि पुण्य उपायों से पुत्र-प्राप्ति हुई है। चन्द्रापीड, विलासवती का एकमात्र पुत्र है। आचार्य कुल में चन्द्रापीड के भेजे जाने का वह भरसक प्रयत्न करती है। इस विषय में वह अपने पति को कठोर हृदय कहती है।

विलासवती पति परायण एक आदर्श भारतीय स्त्री है। लज्जा उसका सहज अलङ्करण है। वह एक आज्ञाकारिणी भार्या है, पुत्रवत्सला माता है तथा उदार गृहिणी है।

महाश्वेता

चन्द्रापीड ने अच्छोद सरोवर पर शिवायतन में वीणावादनपूर्वक भगवान् शिव की आराधना करती हुई जिस अनिन्द्य सुन्दरी कन्या को देखा था, उसका नाम 'महाश्वेता' है। महाश्वेता कठोर व्रत और तपश्चर्या का मानो जीवित विग्रह है। उसका चरित एवं चरित्र सर्वथा निर्मल है। यथार्थनामा गौरवर्णा महाश्वेता के शरीर से चतुर्दिक प्रभामण्डल का विस्तार हो रहा है मानो सुदीर्घकाल से राशीभूत तप:प्रभा ही विकीर्ण हो रही है। समीपवर्ती वनप्रान्त को वह अपनी कान्ति से धवल बना रही है। वन्य पशु पक्षी भी उसके सान्निध्य में मन्त्रमुग्ध से वीणा की स्वरलहरी का आनन्द ले रहे हैं। चन्द्रापीड महाश्वेता के दिव्य सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो उठा।

जिस तरह महाश्वेता का शरीर श्वेताभ है उसी तरह सका अन्त:करण भी नितान्त निष्कलुष है। वह निर्मत्सर, निरहंकार और विनय की पराकोटि में स्थित है। वह सदाचार की प्रतिमूर्ति है। चन्द्रापीड को देखते ही बोल पड़ती है--"अतिथि का स्वागत है। महाभाग इस स्थान पर कैसे आ पहुँचे? तो आइए। अतिथि सत्कार स्वीकार कीजिए।" विनम्र और निश्छल व्यवहार से उसके हृदय की उदारता झलकती है। अपरिचित पुरुष-अतिथि से भी वह इस प्रकार निवेदन करती है जैसे वह उससे चिरपरिचित हो। महानुभाव चन्द्रापीड के द्वारा उसके विषय में पूछने पर वह रोने लगती है। उसका सन्ताप उसके कोमल हृदय को पिघला देता है। वह नि:सङ्कोच अपना सारावृत्तान्त चन्द्रापीड से कह डालती है। पुण्डरीक नामक मुनिकुमार के दर्शनमात्र से ही वह उसे अपना हृदय दे देती है। स्तम्भित सी, लिखित सी, उत्कीर्ण सी ऐसी अनिर्वचनीय दशा मे पहुँची हुई वह बहुत देर तक अपलक पुण्डरीक को निहारती रहती है–

'तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भकेन अकथितशिक्षितेनानायेयेन, स्वसंवेद्येन, केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसम्पदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेणैवोपदिश्यमानं, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अहं न जानामि, कथं कथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम्।'

पुण्डरीक भी काम के वशीभूत हो जाता है।

महाश्वेता अपनी माँ के बुलाने पर किसी-किसी तरह अच्छोद सरोवर में स्नान करके उसके साथ वापस घर जाती है। कपिञ्जल, महाश्वेता के घर जाकर पुण्डरीक की विषमावस्था का वर्णन करता है। महाश्वेता पुण्डरीक से मिलने जाती है किन्तु उसके पहुँचने से पूर्व ही पुण्डरीक का प्राणान्त हो जाता है। महाश्वेता विलाप करने लगती है। दिव्य पुरुष के आश्वासन पर विश्वास करके वह पुण्डरीक से पुन:

मिलन की आशा बाँधे तपश्चर्या करने लगती है।

भारतीय नारी के निरवद्य प्रतिमान के रूप में महाश्वेता हमारे समक्ष आती है। उसमें निश्चल और निश्छल प्रेम की पराकाष्ठा दिखायी पड़ती है। एक बार पुण्डरीक को अपने हृदय में बैठा लेने पर फिर उससे मिलन की आशा में निरवधि प्रतीक्षा के कठिन व्रत का पालन करती है। दिव्य पुरुष के वचन और आकाशवाणी पर उसे पूर्ण विश्वास है। चन्द्रापीड के साथ उसका सहज मैत्री भाव उसके हृदय की उदारता है। एकान्त शिवाराधन, ईश्वर के प्रति उसकी असीम श्रद्धा का परिचायक है। कादम्बरी उसकी अत्यन्त प्रिय सखी है। चन्द्रापीड को साथ लेकर वह उसका हाल जानने उसके घर जाती है और चन्द्रापीड-कादम्बरी के मध्य प्रणय-सेतु का कार्य करती है।

पुण्डरीक के प्रति उसकी इतनी दृढ़ प्रीति है कि उसके अतिरिक्त वह किसी का नाम भी इस विषय में लेना पसन्द नहीं करती। वैशम्पायन उसे देखते ही उस पर आसक्त हो जाता है और बार-बार प्रणय याचना करता है। इस पर क्रुद्ध होकर वह उसे शुक योनि में जन्म लेने का शाप दे देती है। बाद में यह जानकर कि यह चन्द्रापीड का मित्र था–पश्चात्ताप भी करती है। ये सारी चारित्रिक विशेषतायें महाश्वेता को अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त कराती हैं। महाश्वेता गम्भीर भाव और सरल वचन वाली है। वह उदारता, शुचिता, त्याग, तपस्या और प्रीति की एकत्र भास्वर राशि है–

कादम्बरी

कादम्बरी हेमकूट पर निवास करने वाले गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री (कन्या) है। यह बाणविरचित 'कादम्बरी' कथा-ग्रन्थ की नायिका है। बाण ने अपनी नायिका के नाम पर ही इस कथाग्रन्थ का यथार्थ नामकरण कादम्बरी किया है–

'कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिंदपि चेतयते जनोऽयम्।' वस्तुतः नायिका कादम्बरी में जो रूपसौन्दर्य की मादकता और प्रीतिमाधुर्य का जो उल्लास है वह हूबहू कादम्बरी कथा में भी है। एक महाकवि की उदात्त कल्पना है और दूसरी उसकी आलङ्कारिक अभिव्यक्ति।

कादम्बरी कन्या मुग्धा, परकीया कोटि की नायिका है।1

कथा में महाश्वेता-वृत्तान्त के पश्चात् कादम्बरी की कथा आती है। वह सहानुभूति और त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। वह महाश्वेता की अतिप्रिय सखी है। उसने प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक महाश्वेता का मिलन 'पुण्डरीक' से नहीं हो जाता, वह अपना विवाह नहीं करेगी। महाश्वेता ने उसे समझाया भी किन्तु वह इस विषय में अविचलित रहती है।

नारी-सौंदर्य का एक दिव्य परिवेश कादम्बरी से निसर्गतः सम्पृक्त है। उसमें प्रीति की अनुपम विच्छित्ति है, भावों की प्रौढ़ि है, जीवन का आदर्श है, लौकिक व्यवहरों के प्रति नैष्ठिक चेतना है, मैत्रीनिर्वाह के लिए असीम धैर्य है, स्नेह की सरल तरलता है, तपश्चर्या की दृढ़ता है। वह मानवीय संवेदनाओं की मनोरम मूर्ति है। कादम्बरी का अनुभव प्रथम दर्शन में ही चन्द्रापीड को प्रभावित कर उस पर अमिट छाप छोड़ देता है।

चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के मन में कामवेदना का सञ्चार हो जाता है। जब वह ताम्बूल देने के लिए चन्द्रापीड की ओर अपना हाथ बढ़ाती है, तो साध्वसभाव के कारण उसके अङ्गों में कम्पन उत्पन्न हो जाता है। उसकी आँखों में आकुलता व्याप्त हो जाती है और सारा शरीर पसीने से नहा उठता है। उसे पता भी नहीं चलता कि उसके हाथ से रत्न वलय गिर गया है।

यद्यपि कादम्बरी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक पुण्डरीक से महाश्वेता का मिलन नहीं हो जाता, वह अपना विवाह कथमपि नहीं करेगी किन्तु चन्द्रापीड को देखते ही वह कामदेव के बाणों से बिंध जाती है। चन्द्रापीड प्रथम दर्शन में ही उसके हृदयराज्य का अधिपति बन जाता है। महाश्वेता के पूछने पर कि चन्द्रापीड कहां ठहरेंगे? कादम्बरी कहती है कि जबसे इनके दर्शन हुए हैं तभी से परिजन और भवन की क्या बात, ये तो मेरे तन-मन के भी स्वामी हो गये हैं। आपको अथवा इनको जहां भी अच्छा लगे, वहीं रहें। कादम्बरी मर्यादा का पालन करना अच्छी तरह जानती है। विनम्रता और लज्जा, उसका सहज गुण है। यद्यपि वह चन्द्रापीड की ओर आकृष्ट है फिर भी अपने इस आचरण से उसे क्षोभ है–

'अगणितसर्वशङ्कया तरलहृदयतां दर्शयन्त्याद्य मया किं कृतमिदं मोहान्धया? तथा हि, अदृष्टपूर्वोऽयमिति साहसिकतया मया न शङ्कितम्। लघुहृदयां मां कलयिष्यतीति निह्रीकया नाकलितम्। कास्य चित्तवृत्तिरिति मया न परीक्षितम्। दर्शनानुकूलाहमस्य नेति वा तरलया न कृतो विचारक्रमः।'

गुरुजन के प्रति आदर एवं श्रद्धा तथा प्रियजन के प्रति स्नेह और सहानुभूति कादम्बरी के चरित्र की विशेषता है। वह अपनी सखी (अथवा सुहृद्) के दु:ख से दु:खी और सुख से सुखी होती है। महाश्वेता के प्रति उसके हृदय में अगाध सम्मान और प्रीति है। बाण ने कादम्बरी को एक आदर्श सखी तथा प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है।

पत्रलेखा

पत्रलेखा 'कादम्बरी' की एक महत्त्वपूर्ण स्त्रीपात्र है। यह चन्द्रापीड की ताम्बूल करङ्कवाहिनी नियुक्त है। यह कुलूतेश्वर की पुत्री है जो महाराज उज्जयिनी नरेश के द्वारा कुलूत की राजधानी जीतकर इसे भी बन्दिनी बनाकर अन्त:पुर में रखा गया था। एक अनाथ राजदुहिता होने के कारण पत्रलेखा के प्रति महारानी विलासवती का अत्यन्त स्नेह हो गया और वे उसे अपनी कन्या के समान मान देने लगीं थीं। जब चन्द्रापीड अध्ययन समाप्त कर राज भवन लौटे और युवराज पद पर अभिषिक्त हुए, उसी बीच महारानी ने अपने प्रिय पुत्र की सेवा में अपनी दुहिता तुल्य पत्रलेखा को कञ्चुकी के साथ भेजा। चूँकि चन्द्रापीड पत्रलेखा के कुलशील से परिचित न था अत: महारानी ने पत्रलेखा के विषय में सविस्तर सन्देश चन्द्रापीड को दिया था।

पत्रलेखा राजकन्या होते हुए भी दुर्भाग्य से दासी बनी। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी और चन्द्रापीड की रात दिन की संगिनी थी। वह चन्द्रापीड की प्रिय विश्वासपात्र थी किन्तु बाण ने कहीं भी इन दोनों के बीच काम विकार का सङ्केत भी नहीं किया है। कुछ समीक्षकों ने महाकवि बाण की अन्धदृष्टि की कटु आलोचना की है किन्तु बाण मर्यादित प्रेम का चित्रण करने वाले कवि हैं। उन्होंने परिचारिका के रूप में पत्रलेखा के उदात्त चरित्र का सुन्दर चित्रण किया है।

इकाई–3

बोधप्रश्न

1. शूद्रक कहाँ का राजा था?
2. तारापीड कौन था?
3. कादम्बरी किसकी पुत्री थी?
4. कादम्बरी-कथा का मूलस्रोत क्या है?
5. वैशम्पायन कौन था ?

प्रश्नोत्तर

1. शूद्रक विदिशा का राजा था।
2. तारापीड उज्जयिनी नरेश और चन्द्रापीड का पिता था।
3. कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री थी।
4. कादम्बरी-कथा का मूलस्रोत गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा है।
5. वैशम्पायन 'पुण्डरीक' का अवतार था और महाश्वेता के शाप से शुक की योनि में उत्पन्न था।

इकाई – 04 कादम्बरी-समीक्षा

(क) कथा और आख्यायिका–

महाकवि बाणभट्ट ने गद्य के दो मुख्य भेद-कथा और आख्यायिका के आदर्शभूत ग्रन्थों के रूप में ही क्रमशः 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' की रचना की है। 'कादम्बरी' एक कथा (आधुनिक दृष्टि से उपन्यास) है तथा 'हर्षचरित' आख्यायिका है। आचार्यों ने यथासम्भव इन दोनों के लक्षण निरूपित किये हैं।

अग्निपुराणकार के अनुसार, कथा के प्रारम्भ में कवि के वंश की श्लोकबद्ध प्रशंसा होनी चाहिए। कविवंशानुकीर्तन के पश्चात् मुख्यकथा की अवतारणा के लिए अवान्तर कथा की योजना होनी चाहिए। कथा परिच्छेदों में विभक्त नहीं होती किन्तु कदाचित् लम्भकों में विभाजन किया जाता है। प्रत्येक गर्भ में चतुष्पदी छन्दों की योजना होनी चाहिए।[1]

आचार्य रुद्रट के अनुसार कथा में अधोलिखित विशेषतायें होनी चाहिए–

कथा के प्रारम्भ में इष्टदेवों और गुरुओं के प्रति श्लोकों में नमस्कार की योजना की जानी चाहिए तत्पश्चात् कवि, अपना और अपने वंश का संक्षेप में निरूपण करे। छोटे-छोटे पदों का प्रयोग करके अनुप्रास की योजना करते हुए कथा का प्रारम्भ किया जाता है। कथा में पुर-वर्णन आदि की योजना करनी चाहिए। मुख्य कथा आरम्भ करने से पूर्व कथान्तर की योजना इस प्रकार करनी चाहिए कि मुख्य कथा उससे असम्बद्ध न लगे और शीघ्र ही अवतीर्ण हो जाय। अङ्गीरस शृङ्गार हो, कन्या लाभ हो। संस्कृत में कथा गद्यात्मक तथा अन्य भाषाओं में पद्यात्मक होनी चाहिए।[2]

आचार्य दण्डी ने कथा और आख्यायिका को समान गद्य काव्य मानते हुए केवल नाम-भेद स्वीकार किया है।[3]

सङ्घटना विवेचन के प्रसङ्ग में आचार्य आनन्दवर्धन ने आख्यायिका और कथा का उल्लेख किया है। उनके अनुसार आख्यायिका में बाहुल्येन मध्यम समासयुक्त अथवा दीर्घ समासयुक्त सङ्घटना

---

१. श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति।
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम्।।
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वा लम्भकैः क्वचित्।
सा कथा नाम तदुगर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्।। (अग्निपुराण, ३३७।१५-१७)

२. श्लोकेर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून् नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलममिदयात् स्वं च कर्तृतया।।
सानुप्रासेन ततो भूयो लध्वक्षरेण गद्येन। रचयेत्कथाशरीरं पुरवर्णकप्रभृतीन्।।
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक्। लघु तावत्सन्धानं प्रक्रान्तकथावताराय।।
कन्यालाभफलां वा सम्यग् विन्यस्तसकलशृङ्गाराम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात्कथामगद्येन चान्येन।। (काव्यालङ्कार, १६।२०-२४)

३. 'तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।' – काव्यादर्श, १, २८१

होती है। क्योंकि गद्य में काव्यसौन्दर्य का हेतु विकटबन्धत्व होता है। कथा में विकटबन्ध की प्रचुरता होने पर भी रसबन्ध में बताये गये औचित्य का अनुसरण करना चाहिए।[1]

अभिनवगुप्तपाद का कथन है कि आख्यायिका उच्छ्वास, वक्त्र, अपरवक्त्र से युक्त होती है और कथा इनसे युक्त नहीं होती।[2]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार कथा में सरस इतिवृत्त होता है। कहीं-कहीं कथा में आर्यादि छन्दों का प्रयोग होता है। कथा गद्यात्मक ही होती है। प्रारम्भ में पद्यों द्वारा मङ्गलाचरण किया जाता है तथा दुर्जन (कुकवि) निन्दा और सज्जन (सुकवि) प्रशंसा भी की जाती है।[3]

आचार्य भामह ने अपने काव्यालङ्कार में आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत किया है। तदनुसार, जिसके शब्द, अर्थ और समास अक्लिष्ट एवं श्रव्य हों, जिसका विषय उदात्त हो और जो उच्छ्वासों में विभक्त हो, ऐसी गद्यमयी संस्कृत रचना 'आख्यायिका' कही जाती है। नायक स्वयम् अपना चरित कहता है तथा वक्त्र, अपवक्त्र छन्द प्रयुक्त होते हैं। उसमें कन्याहरण, संग्राम, वियोग और उदय का भी उपन्यास होता है।[4] भामह ने आख्यायिका के विपरीत लक्षण से युक्त कथा का लक्षण किया है।

अग्निपुराणकार के अनुसार आख्यायिका में कवि के वंश की गद्य में सविस्तर प्रशंसा होनी चाहिए। कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भादि का निरूपण हो। रीतियों, वृत्तियों और प्रवृत्तियों का दीप्तरूप में प्रस्तुतीकरण हो। विभाजन उच्छ्वासों में हो और चूर्णक गद्य का प्रयोग हो। वक्त्र अपरवक्त्र छन्द प्रयुक्त हों।[5]

आचार्य रुद्रट का आख्यायिका का लक्षण विस्तृत है।[5] प्रतीत होता है कि उन्होंने हर्षचरित को ध्यान में रखते हुए आख्यायिका का लक्षण किया है। अन्य सभी आचार्यों ने आख्यायिका के जो लक्षण किये हैं वे सब आपस में मिलते-जुलते हैं, केवल कथन की रीति या शब्दयोजना भिन्न-भिन्न है।

आचार्यों द्वारा प्रदत्त कथा और आख्यायिका के लक्षणों की समीक्षा करने पर दोनों में कुछ मौलिक अन्तर प्राप्त होता है। भामह का विवेचन स्थूल है और दण्डी का यह कथन भी उचित नहीं है कि दोनों वस्तुत: समान जाति की हैं केवल नामकरण पृथक्-पृथक् है। इसी प्रकार कथा केवल संस्कृत में ही निबद्ध नहीं होतीं, प्राकृतादि भाषाओं में भी निर्मित होती है (यथा–बृहत्कथा, वासुदेवहिण्डी आदि)। कथा केवल गद्य में भी निबद्ध नहीं होती, पद्यों में भी निबद्ध होती है (यथा–बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर)। आख्यायिका और कथा का तात्त्विक अन्तर बतलाते हुए अमरकोशकार ने दोनों को

---

1. आख्यायिकायां तु भूम्ना मध्यमसमासदीर्घसमासे एव सङ्घटने। गद्यस्य विकटबन्धाश्रयेण छायातत्त्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्यमाणत्वात्। कथायां तु विकटबन्धप्राचुर्येऽपि गद्यस्य रसबन्धोक्तमौचित्यमनुसर्तव्यम्। – ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत।
2. आख्यायिकोच्छ्वासादिना वक्त्रापरवक्त्रादिना च युक्ता। कथा तद्विरहिता।– वही, लोचन।
3. कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्। क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।।
   आदौ पद्यैर्नमस्कार: खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।।–साहित्यदर्पण, 6.332-33
4. संस्कृतानुकूलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना।
   गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता।। इत्यादि। – भामह: काव्यालङ्कार 1, 25-27
5. कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्। कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तय:।।
   भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तय:। उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा।।
   वक्त्रं चापरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता।।– अग्निपुराण, 337।13-15

अतिसंक्षेप में परिभाषित किया है–'आख्यापिकोपलब्धार्थां' (अमर०, 1.6.5) और 'प्रबन्धकल्पना कथा' (अमर०, 1.6.6)। कहने का अभिप्राय यह है कि आख्यापिका 'प्रख्यात' अर्थ या वस्तु की पृष्ठभूमि पर निर्मित होती है जबकि कथा विशुद्धरूप से कविकल्पित या उत्पाद्य होती है।

कादम्बरी कथा है :

कथा के लक्षणों के आलोक में कादम्बरी के स्वरूप का विश्लेषण करने पर सिद्ध होता है कि कादम्बरी एक कथा (ग्रन्थ) है। कादम्बरी के प्रारम्भ में पद्य में नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण किया गया है। तत्पश्चात् बाणभट्ट श्लोकों द्वारा अपने वंश की प्रशंसा करते हैं। मुख्य कथा जो नायक चन्द्रापीड और नायिका कादम्बरी से सम्बद्ध प्रणय कथा है, वह बाद में आती है और उसके पूर्व आधार के रूप में मुख्य कथा को अवतरित करने के लिए शूद्रक का संक्षिप्त प्रकरण उपन्यस्त किया गया है। चाण्डाल कन्या (लक्ष्मी) द्वारा पिंजरे में लाया गया वैशम्पायन नामक शुक जाबालि द्वारा कही गयी कथा को शूद्रक को सुनाता है। कादम्बरी का कोई विशिष्ट विभाजन भी नहीं किया गया है। अनुप्रासमय गद्य में कादम्बरी की रचना हुई है। समास बहुला ललित पदावली के आश्रय से श्रृङ्गाररस का सुन्दर विनिवेश हुआ है। कादम्बरी का इतिवृत्त अत्यन्त सरस है। इसमे कहीं-कहीं आर्या छन्द का प्रयोग किया गया है। नायक चन्द्रापीड ने कहीं भी अपने चरित का वर्णन स्वयं नहीं किया है। मुख्य कथा की पोषक अन्य अवान्तर कथायें हैं। कादम्बरी की कथा उत्पाद्य अर्थात् कवि-कल्पित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कथा की विशेषतायें समग्रतया कादम्बरी में प्राप्त होती हैं। अत: कादम्बरी एक कथा है।।

गद्य सौष्ठव (आदर्श गद्य) : बाण का साहित्यिक वैभव = गद्य शैली एवं भाषा

आचार्य-कवि दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में संस्कृत गद्य का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहा है–

'ओज:समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्'–(काव्यादर्श, 1.80)

अर्थात् ओजोगुण तथा समास बाहुल्य–यही गद्य का प्राण है। गद्य के इस आदर्श स्वरूप का प्रयोग उन्होंने अपने 'दशकुमारचरित' में किया है। महाकवि बाणभट्ट ने भी गद्य के इस आदर्श को अपनी आख्यायिका 'हर्षचरित' तथा कथा 'कादम्बरी' में सर्वतोभावेन अपनाया है। अपने गद्यसौष्ठव के कारण बाण दण्डी के आगे निकल गये और उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से गद्य काव्य को उत्तमता की उस ऊंचाई तक पहुंचा दिया जहां आज तक किसी भी गद्यकार के लिए पहुंचना सम्भव नहीं हो सका। इस तरह संस्कृत गद्यकार के रूप में बाण का स्थान सर्वोपरि है। ओजोगुण विशिष्ट समास बहुल सरस अलङ्कृत ललित पदावली में गद्य रचना करना और आदि से अन्त तक उसकी सर्वोत्तमता की एकरुपता बनाये रखना, सबके वश की बात नहीं। अपने इसी अप्रतिम गद्य रचना चातुरी के कारण बाण को सरस्वती का अवतार कहा गया–'वाणी बाणो बभूव।'

हर्षचरित में बाण आदर्श गद्यकाव्य सम्बन्धी अपनी मान्यता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि गद्य की यह सर्वाङ्गपूर्णता यद्यपि दुर्लभ है तथापि वाञ्छनीय है–

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रस:।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् (दुष्करम्)।। (हर्ष० 1.8) अर्थात् नवीन अर्थ की योजना (कवि कल्पित वस्तु), अग्राम्य स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, सहृदय जनसंवेद्य रस, विकटाक्षरबन्ध (विकटत्वमुदारता, यत्र शब्दा नरीनृत्यन्ते) ये सब किसी भी रचना में एकसाथ दुर्लभ या दुष्कर होते हैं

(एकत्र इनका प्रयोग अत्यन्त कठिन होता है। उक्त कथन में ध्वनि है कि बाण ने इन सबका एकत्र सन्निवेश अपने गद्यकाव्यों में किया है।

बाणभट्ट ने अपनें समय में प्रचलित गद्य के समस्त गुणों को संकलित करके सर्वाङ्गपूर्ण पाञ्चाली शैली को सर्वथा उपयुक्त मानते हुए अपनाया है। पाञ्चाली रीति में शब्द और अर्थ का समान गुम्फन होता है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर के नाम से प्रशस्ति प्राप्त होती है–

शब्दार्थयो: समो गुम्फ: पाञ्चाली रीतिरिष्यते।

शिलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

बाण के समय में पृथक्-पृथक् काव्य प्रवृत्तियां या शैलियां विभिन्न दिशाओं में प्रचलित थीं–
श्लेष : प्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।

उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्।। (हर्ष०, 1.7)।

बाण ने उत्तर दिशा के कवियों की श्लेष प्रियता, दक्षिण दिशा के कवियों की उत्प्रेक्षा (नवीन कल्पना या उत्प्रेक्षालङ्कारप्रयोग), पश्चिम के कवियों का अर्थ चमत्कार और पूर्व दिशा के कवियों की सघन समास बहुला पदावली का समन्वय कर अपने गद्य में यत्नपूर्वक सन्निवेश किया है। बाण अपने को आदर्श गद्य कवि के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अपने गद्य को अद्वितीय रूप में सजाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। 'शार्ङ्गधर पद्धति' में चन्द्रदेव के नाम से उद्धृत पद्य में इन सारी विशेषताओं को बाण के कर्तृत्व से जोड़कर बाण की साहित्यिक प्रतिभा और रचना कौशल की प्रशस्ति की गयी है–

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ

लङ्कारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।

आ: सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी

सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चानन:।। (पद्य सं० 177)।

बाण की रचनाओं में शब्द और अर्थ का सुन्दर सामञ्जस्य प्राप्त होता है। विकट वस्तुओं के वर्णन में विकट पदों का तथा सुकुमार प्रसङ्गों की अवतारणा में सुकुमार पदावली का प्रयोग किया गया है। निदाघ वर्णन में विकट पदावली की योजना दर्शनीय है–

'...........कठोरीभवति निदाघकाले प्रतिदिशमाटीकमाना इवोषरेषु प्रपावाटकुटीपटलप्रकट लुण्ठका:, प्रपक्वकपिकच्छूगुच्छच्छटच्छोटन चापलैरकाण्डकण्डूला इव कर्षन्त: शर्करिला: शर्करस्थली:।'

–(हर्षचरित, द्वितीय उच्छावस)।

वसन्तवर्णन के प्रसङ्ग में कोमल पदावली की योजना भी दर्शनीय है–

'अशोकतरुताडनरणितरमणीमणिनूपुरझङ्कारसहस्रमुखरेषु विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजाल-मञ्जुसिञ्जितसुभगसहकारेष.........।' (कादम्बरी)।

इसी प्रकार, महाश्वेतावृत्तान्त में–'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्' में कोमलकान्त पदावली प्रयुक्त हुई है।

बाणभट्ट सदैव प्रसङ्गानुकूल पदों की योजना करते हैं। श्रोता या पाठक के हृदय में शब्द और अर्थ परस्पर पार्थक्य छोड़कर घुल मिल जाते हैं। बाण की दृष्टि में शब्द और अर्थ का यह मधुर मिलन

'साहित्य' की अन्वर्थकता स्थापित करके स्पृहणीय बन जाता है। बाण की पदशय्या अद्वितीय है। बाण की भाषा और भाव सर्वत्र एक दूसरे का आलिङ्गन करते हैं

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने गद्य के चार प्रकार बताये हैं–उत्कलिकाप्राय, चूर्णक, मुक्तक और वृत्तगन्धि। उत्कलिकाप्राय में दीर्घसमास और चूर्णक में छोटे-छोटे समास रहते हैं। मुक्तक समासरहित होता है और वृत्तगन्धि में पद्य के अंश रहते हैं।

बाणभट्ट की कृतियों में तीन प्रकार के गद्य प्रयुक्त हुए हैं–उत्कलिकाप्राय, चूर्णक और मुक्तक। इनके संक्षिप्त उदाहरण क्रमशः अधोलिखित हैं–

उत्कलिकाप्राय–'कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तामातङ्गो-
त्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि।'

चूर्णक–'आसीदशेषनरपतिशिरः समभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरु-
दधिमालामेखलाया भुवो भर्ता............हर इव जितमन्मथः.........।'

मुक्तक–'गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमन्त्रो
रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे।'

कहीं-कहीं वर्णनों में बाण की पदयोजना इतनी प्रभावपूर्ण है कि वहां सुन्दर श्रव्यता के साथ ही अपूर्व दृश्यता भी आ जाती है।

बाण की कृतियां भाव और भाषा दोनों से ही समृद्ध हैं। वे भावों को अविकलरूप में प्रस्तुत करने के लिए भाषा को तैयार करते हैं, सजाते हैं। भाषा का श्रृङ्गार, उसका प्रसाधन ही बाण की काव्यसाधना का सर्वस्व है। वे भाषा की शक्ति से सर्वथा परिचित हैं, अतः प्रसङ्गों के अनुकूल पदों की योजना करने में निष्णात हैं। भाषा बाण की रचनाओं का सौन्दर्य है, भावों का सुन्दर परिधान है और रस का सरस सन्धान है। उनकी भाषा का सौष्ठव कथा को अलङ्कृत करता और कथ्य को मण्डित करता है।

बाण की भाषागत वाक्य रचना, समास सङ्घटना, क्रिया, विशेषण, प्रत्यय आदि सुनियोजित हैं। वाक्य, भाषा और भाव को वहन करता है। बाण वाक्य योजना में अत्यन्त निपुण हैं। वाक्य यदि स्खलद्गति अथवा रुद्धगति हो जाता है तो भाव सौन्दर्य आहत हो जाता है। बाण कहीं भी ऐसा नहीं होने देते। उनका वर्णन-नैपुण्य उनकी वाक्य-योजना से पुष्ट होता है।

बाण का शब्द भाण्डार अत्यन्त व्यापक एवं विपुल है। उन्होंने कहीं-कहीं एक ही अर्थ को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। यथा–

'एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम्......सम्भूतम्.........उद्भूतम्.........प्रसूतम्....... उत्थितम् .... जातम् .... निर्गतम् .... निपतितम्............प्रवृत्तम्...........निर्मितम्........।'

इसी प्रकार, अनेकविध ध्वनियों को प्रकट करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है–
'मणिनूपुराणां निनादेन.........झङ्कारेण...........कोलाहलेन.........कूजितेन........निःस्वनेन........ कलकलेन ...... हुंकृतेन .... रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव.........।'

वाक्य रचना में समासों, क्रिया पदों, विशेषणों की योजना बड़ी सूझबूझ के साथ कवि करता है। पदनिर्माण में प्रत्ययों का प्रयोग करने में बाण बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि का आश्रय लेते हैं और उसकी प्रासंगिक सार्थकता का विशेष ध्यान रखते हैं। इस प्रकार भाषा और शैली के आश्रय से उन्होंने अपने गद्य काव्य को अपूर्व मनोरम बनाया है।

पाश्चात्य विद्वान् वेबर ने बाणभट्ट की भाषा की कटु आलोचना की है। उनका आक्षेप है कि बाण ने विशेषणों का अत्यधिक प्रयोग किया है। उन्होंने ऐसे सुदीर्घ वाक्यों की योजना की है जिनमें कई पृष्ठों बाद क्रिया के दर्शन होते हैं। बेवर के अनुसार, बाण का गद्य एक ऐसा भयानक जंगल है जिसमें यात्री तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक वह तमाम झाड़ियों को काटकर अपने लिये मार्ग नहीं बना लेता और उसके बाद भी उसे अज्ञात शब्दों के रूप में भयानक जंगली दुष्ट जानवरों का सामना करना पड़ता है।[1]

बेवर का यह आक्षेप उचित नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि बाणभट्ट ने दीर्घ समास बहुला पदावली वाले बड़े-बड़े वाक्यों का प्रयोग किया है और साभिप्राय विशेषणों की योजना भी की है। यह उनके काव्य का भूषण है, दूषण नहीं। जहाँ किसी विषय का संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करना होता है वहां वे इसी प्रकार की वाक्य योजना करते हैं। बाण की रचनायें पञ्चतन्त्र और हितोपदेश से संतुष्ट हो जाने वाले संस्कृत के सामान्य छात्रों के लिए नहीं है। उसका आनन्द तो विविध विषयों के विशेषज्ञ और संस्कृत भाषा के प्रौढ पण्डित ही उठा सकते हैं। भारतीय विद्वान् बाण के गद्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। बाण ने अज्ञात शब्दों का भी प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने अनेक प्रकार के भावों की अभिव्यञ्जना के लिए तथा ओजोगुण की सुदृढ़ समुपस्थापना के लिए शब्दों का चयन किया है। संस्कृतज्ञ इन शब्दों से परिचित हैं। बेबर जिस गद्य की कामना करते हैं, वह भी बाण की कृतियों में विद्यमान है। बाण पाठकों के मनोविज्ञान को अच्छी तरह समझते हैं। वे जब देखते हैं कि पाठक सुदीर्घ वाक्यों से तनिक अन्यमनस्क हो रहा है तो वे शीघ्र ही छोटे पदों वाली वाक्य-योजना करने लगते हैं। शुकनासोपदेश आदि स्थलों में ऐसे ही गद्य का प्रयोग किया गया है। इस तरह हम कह सकते हैं कि बाण वेबर को अभिप्रेत सरल संस्कृत भी लिखते हैं और कमनीय कल्पनाओं से उसे भी अलङ्कृत करते हैं।

अलङ्कार प्रयोग–बाणभट्ट अलङ्कारों के प्रयोग में अतिनिपुण हैं। अलङ्कारों का रुचिर विन्यास करने में वे महाकवि कालिदास और सुबन्धु के बीच का मार्ग अपनाते हैं। कालिदास के अलङ्कार प्रयोग का मार्ग सहज और स्वाभाविक है। सुबन्धु का अलङ्कार प्रयोग, 'प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्ध' की हठवादिता में उलझकर काव्य के रसास्वाद का विघातक बन गया। बाण ने अलङ्कार प्रयोग अपनी प्रातिभ कल्पनाओं की जीवन्तता और भाषा के श्रृङ्गार के लिए किया है। काव्य अलङ्कार के प्रयोग के सम्बन्ध में बाण की अपनी विशिष्ट अभिरुचि और मान्यता है।[2] अनुप्रास, श्लेष, उपमा, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसंख्या और दीपक अलङ्कारों के प्रति बाण का विशेष लगाव है। यदि कालिदास की उपमायें सर्वोत्तम हैं तो बाण की उत्प्रेक्षायें भी उसी कोटि की हैं। बाण के कुछ अलङ्कार प्रयोग यहां उदाहृत किये जा रहे हैं।

अनुप्रास–शब्दालङ्कार पदावली की छटा का संवर्धन करते हैं। भाषा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने और चमत्कार की सृष्टि करने में अनुप्रास अलङ्कार सर्वाधिक सहायक होता है। बाण ने अपनी रचनाओं में अनुप्रास का चारुतर प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

---

1. ए.बी. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु. मंगला देव शास्त्री) पृ. 386
2. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः। विकटाक्षरसंबन्धश्च.....' (हर्षचरित)।
हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पक कुड्मलैखि॥ (कादम्बरी)।

(क) 'मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु'–कादम्बरी, पूर्वभाग।

(ख) दशरथसुतनिकरनिशितशरनिपातनिहतरजनीचरबलबहलरुधिर.....।'–काद०, पूर्व०

(ग) हिमहारहरहासधवलैः......।। –कादम्बरी, पूर्वभाग।

(घ) उदयगिरिशिखरकटककुहरहरिवरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिर निचयनिचित.......(हर्षचरित, प्रथम)

उपमा–बाण ने उपमालङ्कार का प्रयोग किसी वस्तु की वर्णनात्मक विविधता को प्रकट कर उसे प्रभावशाली रूप में उपस्थापित करने हेतु किया है। बाण की उपमायें प्रायः श्लेष से युक्त होती हैं। उपमालङ्कार प्रयोग के कुछ मनोरम उदाहरण इस प्रकार हैं–

(क) 'सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव।।' (हर्षचरित0।

(ख) 'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।' (कादम्बरी)

(ग) 'क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुलप्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा, क्वचिद् विधवेव उन्मुक्ततालपत्रा क्वचित्समरभूमिरिव शरशतनिचिता.......विन्ध्याटवीनाम'।। (काद०)

इस वाक्य में सत्ताईस उपमायें प्रयुक्त हैं।

(घ) 'पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैवहार्यहृदया, प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी.....।' (कादम्बरी)। यहाँ लक्ष्मीवर्णन में श्लिष्ट उपमा है।

उत्प्रेक्षा–बाणभट्ट की उत्प्रेक्षायें अद्वितीय हैं। उत्प्रेक्षा के प्रयोग से कवि की कल्पना पंख लगाकर अपनी उड़ान भरती है। उत्प्रेक्षा बाण का प्रिय अलङ्कार है। बाण की उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है।

(क) 'मदमपि मदयन्त्य इव, रागमपि रञ्जयन्त्य इव, आनन्दमपि आनन्दयन्त्य इव नृत्यमपि नर्तयमाना इव, उत्सवमपि उत्सुकपन्त्य इव।' (हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ०)

(ख) 'सहसा सम्पादयता मनोरथप्रार्थितानि वस्तूनि।
दैवेनापि क्रियते भव्यानां पूर्वसेवेव।।' (हर्षचरित, अष्टम उच्छ्वास)

(ग) 'प्रलयकालविघट्टिताष्ट दिग्भागसन्धिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम्।' (काद०)।

(घ) 'अत्यन्तमुत्फुल्ललोचना हि कुलवर्धना दृश्यते। देवस्यापीदं प्रियवचन श्रवणकुतूहलादिव।'

(ङ) दर्पशात नामक हाथी के वर्णन में बाण ने सानुप्रास उत्प्रेक्षा का मनोरम सन्निवेश किया है–'चलन्तमिव दर्पेण, श्वसन्तमिव शौर्येण, मूर्च्छन्तमिव मदेन, त्रुट्यन्तमिव तारुण्येन, द्रवन्तमिव दानेन, वल्गन्तमिव बलेन.......।'

बाण ने उत्प्रेक्षा के प्रायः सभी भेदों का अत्यन्त सफल प्रयोग किया है।

परिसंख्या–परिसंख्या अलङ्कार का प्रयोग रचना में चारु चमत्कार उत्पन्न करता है। परिसंख्या भी श्लेषविद्ध होकर अपूर्व आनन्द का सञ्चार करती है।

(क) यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धा, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु.......न प्रजानामासन्।' (काद०)

(ख) यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु........। यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्........। (कादम्बरी)

विरोधाभास–विरोधाभास के सुन्दर प्रयोग बाण की कृतियों में उपलब्ध हैं–

(क) 'यत्र च मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्मरागिण्यश्च, धवलद्विजशुचिवदना मदिरामोदिश्वसनाश्च, चन्द्रकान्त वपुषः शिरीषकोमलाङ्घ्रश्च लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च.........।'–हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास।

(ख) वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः.......सन्निहित नेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनः।' (काद०)

(ग) सङ्गृहीतगारुडेनापि भुजङ्गभीरुणा.........महासत्त्वेनापि परलोकभीरुणा।' (कादम्बरी)

श्लेष–बाण ने उपमा, परिसंख्या और विरोधाभास अलङ्कारों के साथ श्लेष का सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित किया है। उन्होंने स्वतन्त्ररूप से भी श्लेषालङ्कार का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(क) 'वृत्तेऽस्मिन् महाप्रलये धरणीधारणायामधुना त्वं शेषः।'–हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास।

(ख) 'का मे भुजङ्गता।'–हर्षचरित, द्वितीय।

(ग) 'सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि.......।'–हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास।

स्वभावोक्ति–बाण ने अश्वादि की चेष्टाओं के निरूपण में तथा भावस्वभाव का चित्रण करने मे स्वाभोवक्ति का सुन्दर प्रयोग किया है–

(क) 'मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण।'–हर्षचरित, तृतीय०।

(ख) 'कुर्वन्नाभुग्न पृष्ठो......खुरेण।' –वही, तृतीय।

(ग) अशेषजनपूजनीया चेयं जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्ट दृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृष्टभूतलम्.......इत्यादि। –कादम्बरी, महाश्वेता वृत्तान्तः।

उपर्युक्त अलङ्कारों के अतिरिक्त बाणभट्ट ने रूपक, सन्देह, भ्रान्तिकान्, अपह्नुति, समासोक्ति, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुत प्रशंसा, दीपक, दृष्टान्त, व्यतिरेक, विभावना, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, काव्यलिङ्ग आदि अनेक अलङ्कारों के अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किये हैं।

रसाभिव्यक्ति–महाकवि बाणभट्ट रससिद्ध कवि हैं। उनकी भारती निश्चय ही 'नवरसरुचिरा' है। कादम्बरी तो स्वयं में उत्तम कोटि का सरस गद्यकाव्य है ही, हर्षचरित में भी यथावसर सुन्दर रसाभिव्यक्ति हुई है। अनतिविस्तरतया यहां बाणभट्ट की कृतियों में प्रयुक्त रसों का निरूपण किया जा रहा है।

श्रृङ्गार–कादम्बरी तो श्रृङ्गाररस का सागर है। इसमें विशेष रूप से विप्रलम्भ श्रृङ्गार का प्रभावशाली सन्निवेश किया गया है।

कादम्बरी में पूर्वानुराग चित्रित किया गया है। महाश्वेता के साथ चन्द्रापीड भी कादम्बरी के निवासस्थान पर जाता है। चन्द्रापीड जिस समय कादम्बरी को देखता है, कादम्बरी उसके विषय में ही केयूरक से पूछ रही होती है। कादम्बरी के प्रश्नों से ही स्पष्ट है कि उसे चन्द्रापीड के प्रति अनुराग हो रहा है। यहाँ अनुराग श्रवण एवं दर्शन से उत्पन्न हुआ है। पूर्वानुराग में प्रथमतः स्त्री का अनुराग ही काम्य होता है। तत्पश्चात् पुरुष के अनुराग का वर्णन करना उचित है। यहाँ बाण ने ऐसा ही किया है। महाश्वेता भी पुण्डरीक को देखकर पहले अनुरक्त होती है तत्पश्चात् पुण्डरीक महाश्वेता में अनुरक्त होता है।

हर्षचरित में भी सरस्वती, दधीच को देखकर अनुरक्त होती है और कामपीड़ित होती है। दधीच का अनुराग बाद में प्रकट होता है।

कादम्बरी में महाश्वेता-पुण्डरीक और कादम्बरी-चन्द्रापीड के विप्रलम्भ श्रृङ्गार की अत्यन्त मनोरम रीति से अभिव्यञ्जना करायी गयी है।

बाण ने सम्भोग श्रृङ्गार का निर्वाह भी अत्यन्त निपुणता से किया है। हर्ष-चरित में बाण ने सरस्वती और दधीच के सम्भोग का वर्णन एक वाक्य में सङ्केतित कर दिया है–'यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथा अनुरागः शिक्षयति, यथा विदग्धताध्यापयति तथा तामभिरामां रामामरमयत्।' बाण का श्रृङ्गार वर्णन अत्यन्त मर्यादित है।

हास्य–बाण ने कादम्बरी में द्रविड धार्मिक के निरूपण में शिष्ट हास्य का प्रयोग किया है। हर्षचरित में भी हर्षवर्धन के जन्मोत्सव के प्रसङ्ग में हास्यरस की आकर्षक अभिव्यक्ति हुई है।

करुण–हर्षचरित में मृत्यु के प्रसङ्गों (प्रभाकरवर्धन, ग्रहवर्मा, राज्यवर्धन की मृत्यु) में करुणरस का परिपाक अनुभूत होता है। कादम्बरी मे करुणविप्रलम्भ का निबन्धन हुआ है।

रौद्र–हर्षचरित के प्रारम्भ में दुर्वासा के प्रसङ्ग में रौद्ररस का वर्णन हुआ है। ग्रहवर्मा की मृत्यु पर राज्यवर्धन और राज्यवर्धन की मृत्यु पर हर्ष की उक्तियों में रौद्र का संचार दिखाई पड़ता है।

वीर–हर्षचरित में वर्णित युद्ध के प्रसङ्गों में वीररस का सुन्दर सन्निवेश हुआ है। हर्ष की प्रतिज्ञा भी वीररस से ओतप्रोत है। बाण की रचनाओं में धर्मवीर, दयावीर और दानवीर की भी झलक मिलती है।

भयानक–कादम्बरी में वृद्धशबर के मृगया वर्णन में भयानक रस की सहज स्थिति। है। शवरसेना के सञ्चलन में भी भयोत्पादकता है।

बीभत्स–हर्षचरित में दावानल वर्णन बीभत्स का सुन्दर निदर्शन है।

अद्भुत–कादम्बरी आदि से अन्त तक अद्भुत रस से समन्वित है। उसके पात्रों का चरित उनके जन्म जन्मान्तर के चरित हैं क्योंकि अद्भुत अर्थों वाली यह कथा कई जन्मों की कथा है। शूद्रक, शुक, वैशम्पायन, चन्द्रापीड, इन्द्रायुध, पुण्डरीक, कपिञ्जल आदि पात्र परस्पर जन्मान्तर-सम्बद्ध हैं। चाण्डलकन्या भी लक्ष्मी है। इस प्रकार कथा की वस्तु, कथा की योजना सब उद्भुत है।

हर्षचरित में भी अद्भुत रस की योजना की गयी है। दुर्वासा के द्वारा अभिशप्त सरस्वती भूलोक में आती है और पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् पुनः ब्रह्मलोक में चली जाती है। भैरवाचार्य सिद्धि पाकर स्वर्ग चला जाता है। श्रीहर्ष को उपहार में प्राप्त छत्र भी अद्भुत है।

इस प्रकार हर्षचरित और कादम्बरी में कवि ने रसाभिव्यक्ति के सुन्दर प्रसङ्ग उपन्यस्त किये हैं।

प्रकृति-चित्रण

मनुष्य का प्रकृति के साथ सहज सम्बन्ध है। उसे प्रकृति की गोद में जो सुख शान्ति मिलती है, वह अन्यत्र नहीं। वह प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करता है। प्रकृति के प्रति उसका सहज आकर्षण होता है।

प्रकृति की मानव जीवन में इतनी उपयोगिता और महत्ता है कि कवियों ने प्रकृति चित्रण को प्रबन्धकाव्य का अनिवार्य अङ्ग माना है। काव्य सौन्दर्य के संवर्धन मे प्रकृति चित्रण नितान्त सहायक सिद्ध हुआ। संस्कृत के कवियों ने प्रकृति को आलम्बन और उद्दीपन के रूप में चित्रित किया है। उसने प्रकृति का मानवीकरण भी किया है। इसमें प्रकृति के पदार्थों पर मानव भावों का आरोपण किया जाता है।

कालिदास ने प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है जब कि भवभूति ने उसके भयानक रूप का। बाणभट्ट ने प्रकृति के दोनों रूपों को चित्रित किया है। बाण प्रकृति के रहस्य को जानने में बहुत चतुर

हैं। वे उसके विभिन्न रूपों को पहचानते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि किस परिस्थिति मे प्रकृति के किस रूप का उद्घाटन होना चाहिए। कहाँ प्रकृति को आलम्बन बनाना उचित होगा और कहाँ उद्दीपन बनाना ठीक रहेगा। किस रस की अभिव्यक्ति में प्रकृति के किस रूप का अधिकतम सहयोग रहेगा– यह बाण की अन्तर्दृष्टि अच्छी तरह पहचानती है।

घटनाओं की स्थिति अथवा पात्र की मनोदशा के सर्वथा अनुकूल प्रकृति का संयोजन करने में बाण अद्वितीय हैं। कादम्बरी में वियुक्त महाश्वेता की मनोदशा के अनुरूप कवि का प्रकृति-चित्रण दर्शनीय है–

'वनैले भैसे के समान श्याम वर्ण तथा आकाश की विस्तीर्णता को स्थगित करता हुआ रात्रि का अन्धकार, कालिमा का प्रसार करने लगा। वन पंक्ति की नीलिमा घने अन्धकार से तिरोहित हो गयी। हवा, ओस की बूँदों से शीतल होकर लता-विटपों को कंपाती हुई बहने लगी।'

महाश्वेता स्नान करने के लिए अच्छोद सरोवर पर गयी है। कवि उस समय प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में करता है–

'उस समय नवनलिन वन विकसित हो रहे थे। आम्र की कोमल मञ्जरी कामुकों को उत्कण्ठित कर रही थी। मृदु मलयपवन के आगमन से अनङ्ग के ध्वजाञ्चल फहरा रहे थे।.......उत्फुल्ल पल्लवों वाली नवल लताओं में निलीन मत्त कोयलों द्वारा उल्लसित सीकरों से प्रबल दुर्दिन हो रहा था।'

हर्षचरित का अधोलिखित प्रकृति-वर्णन आलम्बन रूप है–'मेघ विरल हो गये। चातक आतङ्कित हुए। राजहंस कलरव करने लगे। शरत्काल दर्दुरों से द्वेष करता है, मयूरों के मद को चुरा लेता है और हंस रूपी यात्रियों का आतिथ्य करता है। उस समय आकाश धौत खड्ग की भाँति निर्मल हो गया, सूर्य दीप्तमान् हो गया और चन्द्रमा स्वच्छ हो गया। तारे तरुण हो गये। इन्द्रधनुष नष्ट होने लगे और विद्युन्मालायें विघटित होने लगीं।'

कादम्बरी में प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है। वनदेवी पुण्डरीक को पारिजातमञ्जरी प्रदान करती है।

प्रकृति के सारे उपादानों का मनोरम चित्रण बाण ने अत्यन्त मनोयोग पूर्वक किया है। तभी तो बाण की काव्य कला के श्रृङ्गार बन गये हैं।

प्रभातवर्णन–हर्षचरित में प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के पश्चात् जो प्रभात वर्णन उपन्यस्त है, वह अत्यन्त मार्मिक है–'ताम्रचूड मानों शोक से मुक्तकण्ठ चिल्लाने लगे। पालतू मोरे क्रीडा पर्वत के वृक्ष शिखरों से स्वयं को गिराने लगे। पक्षी अपने घोसले छोड़ वन की ओर उड़ चले। अन्धकार अपना मुँह छिपाकर भाग गया।........सूर्य की किरणों के वल्कल से अपने को आच्छादित कर आकाश ने मानो संन्यास ले लिया, इत्यादि।

कादम्बरी का अधोलिखित प्रभातवर्णन कितना कमनीय है–

'प्रभात-सन्ध्या की लालिमा से लोहित चन्द्रमा मन्दाकिनी के तट से पश्चिम-समुद्र के किनारे पर उतर रहा था। बूढ़े रङ्कु हरिण के रोम की तरह श्वेत दिङ्मण्डल विशाल होता जा रहा था। सूर्य की किरणें फैल रही थी और हाथी के रक्त से सनी हुई सिंह की सटाके रोयें की तरह लाल और गरम लाक्षातन्तु की श्वेतरक्त थीं।.....वे आकाशरूपी वेदिका पर विद्यमान पुष्पराशि की भाँति नक्षत्रों को हटा रही थीं.......।।'

सन्ध्यावर्णन–हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास का सन्ध्यावर्णन अत्यन्त मनोहर है–

'इसी बीच सूर्य मानों सरस्वती के अवतरण की बात बताने के लिए मध्यम लोक में उतरा। धीरे-धीरे दिन अवसित होने लगा। कमलों के बन्द होने से सरोवर काले विषाद में डूब गये। मदमत्त कामिनियों के कुटिल कटाक्ष से मानो गिराया जाता हुआ, तरुण वानर के मुख के समान लाल, लोकों का एकमात्र नेत्र सूर्य अस्ताचल के शिखर पर शीघ्रता से उतर रहा था।.....?

परिवेश के अनुसार प्रकृति वर्णन का सुन्दर उदाहरण, प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद का सन्ध्या वर्णन है जो दु:खमय वातावरण की सृष्टि कर रहा है–

'इस प्रकार महाराज की मृत्यु से मानो वैराग्य धारण कर कान्तवपु वाला सूर्य पर्वतगुहा के भीतर प्रविष्ट हुआ। आतप मानो महाजनों के गिरते हुए अश्रु बिन्दुओं से गीला होकर शान्त हो गया। जगत् मानो रोते हुए लोगों के नेत्रों की कान्ति से लाल हो गया। दिवस मानो अनेक नृपतियों के उष्ण नि:श्वास से सन्तप्त होकर पीला हो गया।.......॥'

कादम्बरी में जाबालि द्वारा कथा कहने के पूर्व सन्ध्या का वर्णन किया गया है–

..........'दिवसावसान के समय सूर्य की किरणें भूतल तथा कमलिनी वन को छोड़कर पक्षियों की भाँति वृक्षों तथा पर्वतों के शिखर का आश्रय लेने लगीं।......मुनियों ने दिन के अन्त में घूम कर आती हुई लाल पुतलियों वाली तपोवन की कपिल गाय के समान लोहित वर्ण के नक्षत्रों से युक्त पिङ्गलवर्ण की सन्ध्या को देखा........॥'

कादम्बरी के अन्य सन्ध्यावर्णन भी मनोरम हैं। सन्ध्या के पश्चात् हर्षचरित और कादम्बरी में अनेकत्र चन्द्रोदय के कमनीय वर्णन प्राप्त होते हैं।

संस्कृत-काव्यों में ॠतु वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। बाणभट्ट ने भी यथावसर ग्रीष्म, बसन्त, आदि का सुन्दर वर्णन किया है।

हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास में वन का अत्यन्त स्वाभाविक सुन्दर वर्णन हुआ है–

'वन में फलों से लदे हुए वृक्ष थे। कर्णिकार कलियो से युक्त हो रहे थे। चम्पकों की अधिकता थी।.......लाल अशोक के पल्लवों के लावण्य से दसो दिशायें लिप्त हो रही थीं।.......॥'

कादम्बरी में विन्ध्याटवी का विस्तृत वर्णन किया गया है। शाल्मली वृक्ष तथा उस पर रहने वाले शुकों का भी स्वाभाविक वर्णन मनोरम है। कैलास घाटी, ग्रामों, आश्रमों, सिद्धायतन, पम्पा और अच्छोद सरोवरों और शोणनद का भी कमनीय वर्णन हुआ है। अशुभ सूचित करने वाले उत्पातों से युक्त प्रकृति का भी निरूपण हुआ है।

बाणभट्ट विषयक सूक्तियाँ

महाकवि बाणभट्ट के परवर्ती अनेक कवि सहृदयों ने बाणभट्ट के काव्य से प्रभावित होकर उनकी प्रशस्ति की हैं। इनमें से कुछ प्रमुख प्रशस्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं[1]

1. यादृग्गद्यविधौ बाण: पद्यबन्धे नं तादृश:। (रसावर्णवालङ्कार,–3,87)
2. लावन्नवयणसुहया सुवन्न रयणुज्जलाय बाणस्स।

   चन्दावीणस्स वणे जादा कादम्बरी जस्स।। (इन्द्रसूरिकुवलयभरण)।

1. डॉ० अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन, परिशिष्ट-2, पृ. 372-75

(लावण्यवचनसुखदा सुवर्णरचनोज्ज्वला च बाणस्य।
चन्द्रापीडस्य वने जाता कादम्बरी यस्य।।)

3. हालेनोत्तमपूजया कविवृष: श्रीपालितो लालित:
ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीता: शकारातिना।
श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलं
सद्य: सत्क्रिययाऽभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत्।। (अभिनन्दरामचरित, अध्याय 33)

4. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन नि:शेषो रञ्जितो जन:।। (त्रिविक्रमभट्ट, नलचम्पू, प्रथम उच्छवास)

5. केवलोऽपि स्फुरन् बाण: करोति विमदान् कवीन्।
किं पुन: क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधि:।।
कादम्बरी सहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि।
हर्षाख्यायिका ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्।। (धनपाल–तिलकमञ्जरी, 26-27)

6. सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपति:।
श्रीहर्षरिव सङ्घट्टं चक्रे बाणमयूरयो:।। (पद्मगुप्त–नवसाहसाङ्कचरित, 2, 18)

7. श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
श्रीहर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजित: कनककोटिशतेन बाण:।।
(सोड्ढल–अवन्तिसुन्दरीकथा, पृ० 2)

8. बाण: कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वल वर्णशोभा।
एकातपत्रं भुवि पुष्यभूतिवंशाश्रयं हर्षचरित्रमेव।। (वही, पृ० 154)।

9. रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानितोऽस्मि। (वही, पृ० 157)

10. जात: शिखरिणी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव।। (गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तशती, 37)

11. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्। (S. V. Dixit – Bµa¤nabha¤t¤ta : His life and literature, P. 164)

12. बाण: सुबन्धु: कविराजसंज्ञो विद्यामहामाधवपण्डितश्च।
वक्रोक्तिदक्षा कवय: पृथिव्यां चत्वार एते नहि पञ्चमोऽस्ति।। (विद्यामाधव–पार्वतीरुक्मिणीयम्)

13. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रय:।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।। (कविराज सूरि–राघवपाण्डवीयम्)

14. पञ्चबाणस्तु बाण:। (जयदेव–प्रसन्नराघव, 1, 22)

15. रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत्किं तरुणी? नहि नहि, वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य। (धर्मदास–विदग्धमुखमण्डनम्)

16. युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिता:।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यत:।। (सोमेश्वरदेव–कीर्तिकौमुदी, 1, 15)

17. वाणीपाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम्।
भावयन्ति कथं चान्ये बाणभट्टस्य भारतीम्।। (गङ्गादेवी–मधुराविजय, 1.8)

18. बाणादन्ये कवयः काणाः खलु सरसगद्यसरणीषु। (वामनभट्टबाण–वेमभूपालचरित, 1)

19. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णके।
आः सर्वत्र गभीरधीरकवितावन्ध्याटवी चातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भविदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।। (चन्द्रदेव, द्रष्टव्य–शार्ङ्गधरपद्धति 177।

20. दण्डीत्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पतां मनः।
प्रविष्टे स्वन्तरे बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते।। (अज्ञात)।

21. कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते। (अज्ञात)।

22. कादम्बरीरसेनैव सौहित्यं जायते नृणाम्।
बाणभट्टवचोभङ्गीमनादृव्य कुतः सुखम्?।। (डॉ० अमरनाथ पाण्डेय, गुरुकुल पत्रिका फाल्गुन–चैत्र, 2025 वि०)

बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्–

महाकवि बाणभट्ट के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध आभणक अन्वर्थकता के साथ विद्वत्समाज में प्रचलित है। जिस सहृदय और गुणज्ञ काव्यज्ञ विद्वान् ने बाण के विषय में यह कहा होगा, निश्चय ही वह बहुश्रुत रहा होगा। उसने बाण के परवर्ती विपुल संस्कृत वाङ्मय का सम्यगालोडन अवश्य ही किया होगा। इस उक्ति का सीधा अर्थ है–'सारा संसार बाण की जूठन है।' संसार का अभिप्राय यहां काव्य जगत् से है। उक्ति के दो निहितार्थ हैं। पहला यह कि बाण की साहित्य रचना से काव्य के जो उपादान शेष रहे, उन्हीं से परवर्ती कवियों ने अपनी काव्य रचनायें कीं। दूसरा यह कि बाण ने अपनी रचनाओं में समस्त जागतिक उपादानों का समावेश किया है। यह सही है कि बाणभट्ट का पाण्डित्य और उनका व्यापक अनुभव, उनकी रचनाओं में पदे-पदे परिलक्षित होता है। उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि को अपना आदर्श न बनाकर महाभारतकार महर्षि व्यास को बनाया। क्योंकि महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ है जो वेद और लोक-दोनों का सम्यग् रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिए महाभारत के सम्बन्ध में यथार्थतः स्वयं व्यास ने कहा है–यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्'' अर्थात् जो यहां महाभारत में है वही सब जगह है और जो यहां नहीं है, वह कहीं नहीं है। बाण ने व्यास को 'सर्वविद्' और 'कविप्रजापति' कहा है–''नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।'' (हर्ष चरित, 1,3)। बाण की दृष्टि से कवि का वही काव्य प्रशंसनीय है जो महाभारत की कथा के समान सर्ववृत्तान्तगामी होकर तीनों लोकों को व्याप्त कर ले। निश्चय ही महाकवि बाणभट्ट की कृतियां ऐसी ही हैं–

किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्।। (हर्षचरित, 1.9)।

बाण की कृतियों का अनुशीलन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बाण ने किसी भी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है। उनकी रचनाओं में वेद, उपनिषद्, व्याकरण, वेदाङ्ग, पुराण, महाभारत, रामायण सभी आस्तिक और नास्तिक दर्शन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, संगीतादि न जाने कितने विषयों के सन्दर्भ सन्निविष्ट हैं। 'उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती' (हर्षचरित, 1.11) लिखकर वे अपनी

वाङ्मयी सामर्थ्य की स्पष्ट सूचना देते हैं। उनका शब्द भाण्डार अत्यन्त समृद्ध था। यहां इसके लिए मात्र एक निदर्शन पर्याप्त होगा कि 'समूह' के अर्थ में उन्होंने सञ्चय, निचय, निकर, कदम्बक, जाल, निवह, राशि, कुल, यूथ, ग्राम, वृन्द, संहति, पेटक, पटल, सार्थ, प्रकर, पुञ्ज, गण, समवाय, भण्डल, व्रात, दल, कलाप आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है और प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अपने समुचित स्थान या सूक्ष्म अर्थ की व्यञ्जना करता है।

बाणभट्ट के परवर्ती साहित्य पर उनका व्यापक प्रभाव है।[1] बाणभट्ट ने जिन उपलब्ध और उत्पाद्य उपादानों से अपनी काव्य सर्जना की, उनका अलङ्करण किया, प्राय: उन्हीं को आधार बनाकर परवर्ती कवियों ने भी अपनी कृतियों का निर्माण किया, वे सभी परवर्ती कवि-लेखक, भाषा, रीति, वस्तु विन्यास, कल्पना, भावविच्छित्ति, चिन्तनपद्धति तथा काव्यसौष्ठव के क्षेत्र में बाण के अधमर्ण (कर्जदार) हैं। बाण के आत्मज भूषणभट्ट अथवा पुलिनभट्ट और गद्यकवि सुबन्धु से लेकर आधुनिक काल के पं० अम्बिका दत्त व्यास तक, सभी किसी न किसी रूप में बाणभट्ट से प्रभावित हैं। बाणभट्ट के आत्मज पुलिनभट्ट (अथवा, भूषणभट्ट) ने कादम्बरी के उत्तरार्ध की रचना की। उन्होंने अपने पिता द्वारा फैलाये गये कथा के ताने-बाने से ही कादम्बरी को ऐसी पूर्णता प्रदान की कि कहीं भी रचना में गाँठ या जोड़ प्रतीत नहीं होती। उन्होंने बाण द्वारा एकत्र की गयी सामग्री का उपयोग किया।

सुबन्धु पर भी बाण का पर्याप्त प्रभाव दिखायी पड़ता है। 'वासवदत्ता' में 'मनोजव अश्व का वर्णन 'इन्द्रायुध' के वर्णन पर आधारित है। वासवदत्ता और कादम्बरी के बसन्त वर्णनों में भी समानता है और अनेक वाक्यों में भी पर्याप्त समानता है।

'अवन्तिसुन्दरीकथा' के कर्ता दण्डी भी बाण से प्रभावित हैं। उन्होंने बाण का उल्लेख किया है। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के अनेक वर्णनों और वाक्यों पर बाण का प्रभाव है।

अभिनन्द ने 'कादम्बरी कथासार' की रचना करके संक्षिप्त कादम्बरी की प्रस्तुति की है और अनेकत्र बाण की पदावली का उपयोग किया है–

(क) 'योऽसि सोऽसि नमस्तुभ्यमारोहा......।।' (कादम्बरीकथासार, 2,103)

'महात्मन्, योऽसि सोऽसि। नमोऽस्तु ते।' (कादम्बरी, इन्द्रायुधवर्णन)।

(ख) 'को दोष: प्रविशत्विति' (का० कथा०)। 'को दोष: प्रवेश्यताम्'–कादम्बरी, कथामुख त्रिविक्रमभट्ट बाण से बहुत अधिक प्रभावित हैं। वे कादम्बरी की प्रशंसा करते हैं–"कादम्बरी गद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुब्रीहय: केदारा;"–नलचम्पू, प्रथम उच्छ्०, नलचम्पू का शरद्वर्णन हर्षचरित के शरदवर्णन से प्रभावित है। सालङ्कायन का उपदेश शुकनास के उपदेश की अनुकृति है। नल का राज्याभिषेक वर्णन, चन्द्रापीड के राज्याभिषेक के वर्णन से प्रभावित है। त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू में अनेकत्र बाण की वाक्य योजना और कल्पनाओं का अनुकरण किया है। अलङ्कार प्रयोग में भी वे बाण से प्रभावित हैं।

धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' पर बाण का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। धनपाल द्वारा अयोध्या, अदृष्टपार सरोवर और मदिरावती का किया गया वर्णन, बाण के उज्जयिनी, अच्छोदसरोवर और यशोमती के वर्णन का अनुसरण करता है।

---

1. डॉ० अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान।

सोड्ढल कृत 'उदयसुन्दरीकथा' के अनेक प्रसंगों में बाण की रचनाओं की छाप मिलती है। शुक, चण्डिकायतन और कापालिक के वर्णन निश्चय ही बाण के वर्णनों की अनुकृति हैं। इसी प्रकार, यशस्तिलकचम्पूकार सोमदेव, कल्हण, बादीम सिंह, वामनभट्ट बाण, पं० अम्बिका दत्त व्यास आदि बाण से अनुप्राणित और पोषित हैं।

इस प्रकार यहां संक्षेपत: 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' का मर्म उद्घाटित किया गया।

इकाई–4

बोध प्रश्न–

1. बाणभट्ट की कृतियों में कितने प्रकार के गद्य प्रयुक्त हुए हैं और वे कौन-कौन हैं?
2. कथा और आख्यायिका में मौलिक अन्तर क्या है?
3. गद्य का प्राणभूत तत्त्व आचार्य दण्डी के मतानुसार क्या है?
4. पाश्चात्त्य विद्वान् वेबर ने बाणभट्ट के गद्य के सम्बन्ध में क्या टिप्पणी की है?
5. 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' का अभिप्राय क्या है? अतिसंक्षेप में बताइए।

प्रश्नोत्तर–

1. बाणभट्ट की कृतियों में तीन प्रकार के गद्य विशेषत: प्रयुक्त हुए हैं। वे हैं–उत्कलिकाप्राय, चूर्णक और मुक्तक।
2. आचार्य दण्डी के मतानुसार कथा और आख्यायिका गद्य काव्य की एक जैसी रचनायें हैं केवल उनके नाम अलग-अलग हैं–'तत्कथाऽऽख्यायिकेत्येका जाति: संज्ञाद्वपाङ्किता।' किन्तु उनका यह कथन अतिसामान्य है। आचार्यों ने इन दोनों को ही गद्यकाव्य की दो भिन्न विधायें स्वीकार की हैं। ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन और उनके टीकाकार लोचनकार आचार्य अभिनवगुप्त ने इन दोनों में सङ्घटनात्मक अन्तर बताये हैं। (द्रष्टव्य, चतुर्थ इकाई)। सबसे महत्त्वपूर्ण मौलिक अन्तर दोनों में यह है कि कथा का इतिवृत्त नितान्त कविकल्पित होता है, परन्तु आख्यायिका की पृष्ठभूमि प्रख्यात इतिवृत्तयुक्त होती है।
3. आचार्य दण्डी के मतानुसार, गद्य का प्राणभूत तत्त्व है–'ओजोगुणयुक्त समासबाहुल्य।' उन्होंने कहा ही है–"ओज:समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।"–काव्यादर्श, 1.80
4. 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' का शाब्दिक अर्थ है–'सारा संसार बाण की जूठन है।' यह सूक्ति बाणभट्ट की काव्यप्रतिभा, गद्यवैशिष्ट्य और उनके प्रकृष्ट पाण्डित्य का सूचक है। सूक्ति के 'जगत्' पद का अर्थ 'काव्य जगत्' है। भोजन करते समय थाली में अवशिष्ट या थाली के बाहर गिरे हुए अंश को 'उच्छिष्ट' कहते हैं। अत: सूक्ति का अभिप्राय है कि गद्यकाव्य के निर्माण में अपनी रचना को उत्कृष्टतम बनाने में बाणभट्ट ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। उनके इस प्रयत्न के पश्चात् यदि काव्योपादानों में कुछ शेष रह गया तो परवर्ती कवि उसी के आश्रय से रचना कर रहे हैं। बाण अपने पूर्ववर्ती रचनाओं को जूठी कर चुके हैं। उनसे जो आवश्यक था, ले चुके हैं और परवर्ती कवि बाण के जूठन का ही उपभोग कर रहे हैं। आशय यह है कि बाण की रचनाओं में संसार का सब कुछ सन्निहित है, प्राप्य है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGST-103
संस्कृत

खण्ड-दो

कादम्बरी-कथामुखम्

इकाई-05 5

कादम्बरी-कथामुख : वाचन एवं हिन्दी-अनुवाद, संस्कृत-व्याख्या एवं टिप्पणी (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त)

इकाई-06 28

कादम्बरी-कथामुख (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त)

इकाई-07 50

कादम्बरी-कथामुख (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त)

इकाई-08 71

कादम्बरी-कथामुख (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त)

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम - संयोजक
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ-समिति

1- प्रो0श्री नारायण मिश्र	सेवानिवृत्त प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
2- प्रो0 युगल किशोर मिश्र	संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
3- प्रो0 हरे राम त्रिपाठी	म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
4- प्रो0 श्रीकिशोर मिश्र	काशी हिन्दू विश्विद्यालय, वाराणसी

सम्पादक

प्रो0 के0 पी0 सिंह	वरिष्ठ परामर्शदाता (संस्कृत)

लेखक

प्रो0 प्रभुनाथ द्विवेदी	म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पाठ्यक्रम-परिचय

इस पाठ्यक्रम में कुल तीन खण्ड हैं। **प्रथम खण्ड** के अन्तर्गत चार इकाइयाँ हैं, जिनमें क्रमशः संस्कृत गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास; महाकवि बाणभट्ट का जीवन-परिचय, स्थितिकाल एवं कर्तृत्व; कादम्बरी-कथानक एवं पात्र-परिचय (चरित्र-चित्रण) तथा कादम्बरी-समीक्षा की प्रस्तुति प्रमाणिक रूप में की गई हैं। **द्वितीय खण्ड** के अन्तर्गत चार इकाइयां हैं, जिनमें कादम्बरा-कथामुख (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त) का हिन्दी अनुवाद, संस्कृत व्याख्या एवं टिप्पणी सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत है। **तृतीय खण्ड** के अन्तर्गत भी चार इकाइयाँ हैं, जिनमें सिद्धान्तकौमुदी के कारक प्रकरण का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है।

।।श्रीः।।

महाकविबाणभट्टविरचितं

।।कादम्बरी-कथामुखम्।।

(अगस्त्याश्रमवर्णनपर्यन्तम्)

इकाई –05

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे।

अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।।१।।

अन्वय– प्रजानां जन्मनि रजोजुषे, स्थितौ सत्त्ववृत्तये, प्रलये तमःस्पृशे, सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने अजाय नमः।।१।।

हिन्दी-अनुवाद– (जो) प्राणियों के उत्पत्तिकाल में रजोगुणयुक्त (अर्थात् ब्रह्मा-स्वरूप), स्थितिकाल में सत्त्वगुणयुक्त (अर्थात् विष्णु-स्वरूप) और प्रलय (संहार) काल में तमोगुणयुक्त (अर्थात् शङ्कर-स्वरूप) होता है, (इस प्रकार) उत्पत्ति-पालन-विनाश के मूल कारण, त्रिगुणात्मक, वेदत्रयी में व्याप्त (ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक) अजन्मा (उस परमात्मा) को नमस्कार है।।१।।

संस्कृत व्याख्या– 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखमिति मङ्गलाचरणविधिमनुसृत्य महाकविर्बाणभट्ट प्रकृतग्रन्थस्य निर्विघ्नःसम्पूर्त्यर्थं जगत्प्रपञ्चहेतुभूतं परंब्रह्म नमस्करोति 'रजोजुषे ....' इत्यनेन पद्येन।

प्रजानाम् =प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः समस्ताः प्राणिवर्गाः, तासाम्। **जन्मनि** = समुत्पत्तिकाले। **रजोजुषे**=रजोगुणं जुषते सेवते इति रजोजुट् तस्मै रजोगुणयुक्ताय ब्रह्मणे। **स्थितौ** = स्थितिसमये (प्रजापालने)। **सत्त्ववृत्तये** = सत्त्वपरावृत्तिःव्यवहारो यस्य तस्मै, सत्त्वगुणयुक्ताय विष्णवे। **प्रलये** = प्रजानां संहारकाले। **तमःस्पृशे**=तमःस्पृशतीती तमःस्पृक् तस्मै, तमोगुणायुक्ताय शिवाय। **सर्गस्थितिनाश-हेतवे**=सृष्टिपालनसंहारकारणभूताय। **त्रयीमयाय**=ब्रह्मविष्णुशिवरूपाय = ब्रह्मविष्णुशिवरूपाय (ऋग्यजुः-सामरूपाय वा)। **त्रिगुणात्मने** = त्रयाणां गुणानां समाहारः त्रिगुणम्, त्रिगुणं प्रकृतिर्माया आत्मनि स्वास्मिन् यस्य तस्मै त्रिगुणात्मने सत्वरजस्तमोगुणरूपाय। **अजाय** = जन्मरहिताय। **नमः**=नमस्कारः प्रणतिनिवेदनमित्यर्थः।।१।। 'नमः' इत्यस्य योगे।

टिप्पणी– प्रजानाम्–प्र+जन्+ड+टाप् =प्रजा। षष्ठी विभक्ति, बहुवचन-प्रजानाम्। **रजोजुषे**– रजस् +जुष्+क्विप्, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। **अजाय**–न जायते इति अजः, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। त्रयीमयाय–त्रयी+मयट्=त्रयीमयः चतुर्थी वि०, एकवचन। **त्रिगुणात्मने**–त्रिगुणा+आत्मन्, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। सत्त्व, रजस् और तमस्– ये तीन गुण सृष्टि के मूल में कहे गये हैं। सांख्यशास्त्र के अनुसार इन तीनों गुणों का स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है–

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चञ्चलञ्च रजः।
गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति।। (सांख्यकारिका)

पुराणों एवं स्मृतियों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश को क्रमशः उद्भव, पालन और संहार का देवता माना गया है–

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् विष्णुत्वे पालयत्यसौ ।
रुद्रत्वे संहरत्येव तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः।।

कोश– आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च। अमरकोश।

गुण-रीति-छन्द अलङ्कार– इस पद्य में 'प्रसाद गुण है। 'प्रसाद' का लक्षण है–

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।

सः प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥

रीति वैदर्भी है जिसका लक्षण है–

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते॥

छन्द वंशस्थ है– 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। इस छन्द को 'वंशस्थाविल' भी कहते हैं। इसके प्रत्येक पाद में (कुल चार पाद) क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं।

इस पद्य में 'रजोजुषे' सत्त्ववृत्तये' और 'तमःस्पृशे' का सभिप्राय प्रयोग होने से 'परिकर' अलङ्कार, उपर्युक्त पदों का क्रमिक सम्बन्ध 'सर्गस्थितिनाशहेतवे' से होने के कारण 'यथासंख्य' अलङ्कार है।

जयन्ति वाणासुरमौलिलालिता दशास्य चूडामणिचक्रचुम्बिताः।

सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवाच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः॥२॥

अन्वय– वाणासुरमौलिलालिताः दशास्य चूणामणि चक्र चुम्बिताः सुरासुराधीशशिखान्तशयिनः भव च्छिदः त्रयम्बकपादपांसवः जयन्ति॥२॥

हिन्दी अनुवाद– वाणासुर द्वारा (भक्तिभाव से) माथे पर लगायी गयी, दशानन (रावण) के चूणामणि-समूह (शिरस्थ आभूषणों) को चूमने वाली, देवराज और दानवराज शिरःस्थल पर विराजमान रहने वाली, संसार के (आवागमन रूप) बन्धन को काटने वाली त्रिलोचन भगवान शङ्कर की (पवित्र) पग-धूलियाँ विजयिनी हों॥२॥

संस्कृत व्याख्या– **बाणासुरमौलिलालिताः**=बाणासुरस्य बाणाख्यस्य असुरराजस्य मौलिना शिरसा शिरोभूषणेन वा लालिताः सभक्तिभावं धारिताः, **दशास्यचूणामणिचक्रचुम्बिताः**– दशास्यस्य राक्षसराजस्य दशाननस्य रावणस्येत्यर्थः। चूणामणयः किरीटरत्नानि, तेषां चक्रः समूहः तेन समूहेन चुम्बिताः प्रणामावसरे स्पृष्टाः। अथवा तं चुम्बन्ति प्रणामविधौ स्पृशन्ति इत्येवंशीलाः **सुरासुराधीशशिखान्तशायिनः** = सुरा असुराश्चेति सुरासुराः देवदानवाः। तेषामधीशाः स्वामिनः तेषां शिखान्तेषु चूणाग्रभागेषु शयितुं प्रणतिकाले स्थातुं शीलं येषां ते। **भवच्छिदः** =भवं संसारबन्धनं छिन्दतीति संसारदुःखापहारिणः, मोक्षदायिनः इत्यर्थः। **त्रयम्बकपादपांसवः**= त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य स त्रिलोचनः शङ्करः, तस्य पादयोः चरणयोः पांसवः रेणवः। **जयन्ति**=विजयिन्यः, सर्वोत्कर्षेणविद्यन्ते। जयन्तीत्यर्थेन भूयोभूयो नमस्कार आक्षिप्यत इति॥ अत्र कविः शंकरचरणधूलि प्रशंसा व्याजतः शङ्करं शिरसा प्रणमतीति।

कोश– चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलायस्त्रयः-इत्यमरः। 'जन्महरौ भवौ'–इत्यमरः। 'व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणू रुद्र उमापतिः– इत्यमरः। 'रेणुर्द्वयो स्त्रियां धूलि पांशुना न द्वयो रजः इत्यभरः)

टिप्पणी– **भवच्छिदः**= भव+छिद्+क्विप्, प्रथमा विभक्ति बहुवचन। **त्र्यम्बकः** =त्रि+अम्बकः त्रीणि

1. पाठभेद.....चक्रचुम्बिनः।

अम्बकानि (नेत्राणि) यस्य स त्रयम्बकः। **जयन्ति**=जय करती है, विजयिनी हैं। इसका व्यङ्ग्यार्थ (व्यज्जनावृत्ति से अर्थ) 'नमस्कार' है। प्रकारान्तर से यहां शिव की स्तुति की गयी है, जिसकी चरणरज सर्वोत्कर्षशालिनी है उसकी महत्ता का कहना ही क्या? यहां ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान् शिव की स्तुति की गयी है– 'ज्ञानमिच्छेत्तु शङ्करात्।'

प्रस्तुत पद्य में अनुप्रास अलङ्कार है। साथ ही चार हेतुओं को एकत्र प्रस्तुत करने के कारण 'समुच्चय' नामक अलङ्कार भी है–

प्रसादगुण, पाञ्चाली रीति और वंशस्थ छन्द है।।

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो विभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्।।३।।

अन्वय– यः बिभित्सया क्षणलब्धलक्ष्यया कोपारुणया दृशा एव भयात् स्वयं भिन्नम् इव, रिपो उरः दूरतः अस्रपाटलं चकार सः उपेन्द्रः जयति।।३।।

हिन्दी-अनुवाद– जिन्होंने चीर डालने की इच्छा से क्षणभर में अपने लक्ष्य पर पहुँचकर क्रोध से रक्तवर्णदृष्टि द्वारा दूर से ही अपने शत्रु (हिरण्यकशिपु) की छाती इस तरह रुधिर जैसी लाल कर दी जैसे वह डर के मारे स्वतः विदीर्ण हो गयी हो, उन उपेन्द्र (भगवान् विष्णु) की जय हो।3।।

संस्कृत व्याख्या– **यः**= नृसिंहवपुः विष्णु। **विभित्सया**=भेत्तुम् इच्छा बिभित्सा, तया। **क्षणलब्धलक्ष्यया** =क्षणेन क्षणात् ता (अत्यल्प कालं यावत्) लब्धम् अवाप्तम् लक्ष्यं स्वाभिष्टं स्थलं (रिपोःवक्षःस्थलम्) यया तया। **कोपारुणया** = कोपेन अमर्षेण अरुणया रक्तवर्णया। **दृशा एव** =दृष्ट्या एव। **भयात्** = भीतेः। **स्वयम्** = स्वात्मना। **भिन्नम् इव** = विदीर्णम् इव (इवार्थोऽत्र उत्प्रेक्षा) **रिपोः**=वैरिणः दैत्यस्य हिरण्यकशिपोः। **उरः**= वक्षःस्थलम्। **दूरतः**=दूरात्। **अस्रपाटलम्** =अस्रं रुधिरं तद्वत् पाटलम् श्वेतरक्तम्। **चकार**=कृतवान्। **सः उपेन्द्रः**=असौ विष्णुः। **जयति**=सर्वोत्कर्षेण वर्तते।। जयतीत्यर्थेन नमस्कार आक्षिप्यत इति।।३।।

कोशः– 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः। 'उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः' इत्यमरः।

'कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिधा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः।

टिप्पणी– **विभित्सया**– भेत्तुम् इच्छा, तया। भिद्+सन्+अ+टाप्। तृतीया विभक्ति, एक वचन। **अस्रपाटलम्**– अस्रम् इव पाटलम्। **चकार**– कृ (डुकृञ् करणे) + लिट् लकार, प्रथम पुरुष एक वचन। **उपेन्द्रः** – इन्द्रम् उपगतः, विष्णुः।

'अस्रपाटलम्' में लुप्तोपमा और 'भिन्नमिव' में क्रियोत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इन दोनों अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव होने से 'सङ्कर' अलङ्कार है।

नमामि भर्त्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि।।४।।

अन्वय– सशेखरैः मौखरिभिः कृतार्चनम् समस्तसामन्त किरीट वेदिका विटङ्क पीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि भर्त्सोः (भर्वोः वा) चरणाम्बुजद्वयं नमामि।।४।।

1. पाठान्तर-'भर्वोः'।

हिन्दी-अनुवाद– मैं भत्सु (भर्तु) के चरणकमल युग्म को नमन करता हूँ जिनकी पूजा मुकुटधारण करने वाले मौखरि राजवंश के क्षत्रियों ने की तथा समस्त सामन्तों की किरीट रूपी वेदिकाओं की उन्नत मध्यभूमि का स्पर्श होने से जिनकी अंगुलियां लाल हो जाती है।।४।।

संस्कृत व्याख्या– **सशेखरैः**=शेखरैः मुकुटैः सह स्थिताः सशेखराः तैः। **मौखरिभिः**=मौखरिनाम्नि राजवंशे सम्भूतास्तैः। **कृतार्चनम्** = कृतं सम्पादितम् अर्चनम् पूजनम् यस्य तत् (बहुव्रीहि समासः)। **समस्तसामन्त** = समस्ताः अशेषाः सामन्ताः तासां विटङ्कपीठम् उन्नतस्थलम् तेषु उल्लुठिताः वोल्लिताः अतएव अरुणा रक्ताभाः अङ्गुलयः तस्य तत् (बहुव्रीहि)। **भर्त्सोः**=एतन्नाम्नः गुरोः (भर्वोः वा)। **चरणाम्बुजद्वयम्** = पदकमलयुगलम्। **नमामि** = प्रणमामि, वन्दे।।४।।

कोश– शिखास्वापीडशेखरौ'–इत्यमरः। मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकम्– इत्यमरः।

स्याद्वितादैस्तु वेदिका' इत्यमर;। 'कपोतपालिकायां तु विटङ्कं पुंनपुंसकम्' इत्यमरः।

टिप्पणी– **भत्सु या भर्वु** – यह नाम कादम्बरीकर्ता बाणभट्ट के गुरु को कहा जाता है।शास्त्रवचन के अनुसार गुरु के नाम का उच्चारण नहीं करना चाहिए। अतः यहां बाणभट्ट 'भत्सोः' या 'भर्वोः' के स्थल पर 'गुरोः' की योजना कर सकते थे किन्तु वे अपने गुरु के नाम का प्रख्यापन करने के साथ ही छन्दोभङ्ग से भी बचना चाहते थे। मौखरिभिः– सातवीं शताब्दी ई० में उत्तरभारत में मौखरि राजवंश का शासन था और बाण के आश्रयदाता श्रीहर्षवर्धन उसी वंश के सम्राट् थे। हर्ष के आश्रय में आने पर राजगुरु भर्त्सु (या भर्तु) को बाण ने भी अपना गुरु बना लिया होगा। इस श्लोक में रूपक अलङ्कार है।।

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात्कस्य भयं न जायते।
विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुस्सहं सन्निहितं सदा मुखे।।५।।

अन्वय– अकारणाविष्कृतवैरदारुणात् असज्जनात् कस्य भयं न जायते। यस्य मुखे सदा महाहेः (मुखे) विषम् इव सुदुस्सहं दुर्वचः सन्निहितम् (भवति) ।।५।।

हिन्दी अनुवाद– विना किसी कारण शत्रुता ठान लेने से क्रूर दुर्जन से किसे भय नहीं लगता? जिसके मुख में सदैव नाग के (मुख में) विष के समान असहनीय दुर्वचन भरा रहता है।।५।।

संस्कृत व्याख्या– अत्र कविः दुर्जननिन्दा प्रास्तौति।। **अकारण** = अकारणं कारणं विनैव आविष्कृतम् समुत्पादितम् यद् वैरं शत्रुत्वं तेन दारुणः क्रूरः तस्मात् (बहुव्रीहि)। **असज्जनात्**=सत्+जनः– सज्जनः, न सज्जनः असज्जनः (नञ् तत्पुरुष) दुर्जनः तस्मात्। **कस्य**=तद्विरोधिभावस्य जनस्य। **भयम्**=भीतिः। **न जायते**=न आविर्भवति। **यस्य**= दुष्टपुरुषस्य। **मुखे**=वक्त्रे। **सदा**=निरन्तरम्। **महाहेः**=महाँश्चासौ अहिः महाहिः (कर्मधारय) महत्सर्पः नागः, तस्य (मुखे) विषम् इव=गरलम् इव। सुदुस्सहम् अतितीव्रम्, महत्कष्टकरम्। **दुर्वचः** =दुर्वचनम्। **सन्निहितम्** =सन्निविष्टम्। भवतीति शेषः।।५।।

कोश– 'दारुणं भीषणं भीष्मं भीमं घोरं भयानकम्' अमरकोश। 'हेतुर्ना कारणं बीजं निदानं त्वादिकारण' अमर-। 'भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' अमर-क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्-अमर।

टिप्पणी– **वैरम्**–वीरस्य भावः, वीर+अण्। **दारुणम्**–दृ+णिच्+उनन्।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में अधोपत्ति अलङ्कार है और उत्तरार्ध में उपमा अलङ्कार है। दोनों की निरपेक्ष स्थिति के कारण संसृष्टि अलङ्कार है।

इस श्लोक में बाणभट्ट की आत्मवेदना ध्वनित होती है। 'हर्षचरित' से ज्ञात होता है कि बाणभट्ट की निन्दा कुछ लोगों ने सम्राट हर्षवर्धन से की थी। इसी प्रसंग में कृष्ण (हर्ष के चचेरे भाई) द्वारा संदेश भेजने पर अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए बाण स्वयं हर्ष के समक्ष उपस्थित हुए थे। बाण को इस बात का क्लेश था कि उन्होंने किसी का कोई बिगाड़ नहीं किया था, लोग अकारण ही उनके पीछे पड़ गये। वस्तुत: दुर्जनों का स्वभाव इस श्लोक में निरूपित है। सर्प और खल के सम्बन्ध में एक सुक्ति प्रचलित है– 'सर्पःक्रूर खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरःखलः मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते।।'

कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनश्रृंखला इव।

मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव।।६।।

अन्वयः– कटु क्वणन्तः मलदायकाः खलाः बन्धनश्रृंखलाः इव अलं तुदन्ति सन्त तु साधुध्वनिभिः पदे-पदे मणिनूपुरा इव मनः हरन्ति।।६।।

हिन्दी अनुवाद– दुर्वचन बोलते हुए और मिथ्या कलङ्क लगाने वाले दुष्टजन (सज्जनों को) वैसे ही व्यथित करते हैं जैसे बाँधने की लौह जंजीर कर्ण क़टु खनखनाती हुई और बन्धन स्थल को काला बनाती हुई पीड़ा देती है। (इसके विपरीत) सज्जन प्रत्येक उच्चारित शब्द में मधुरवचन के द्वारा मन को मोह लेते हैं जैसे कि हरकदम (पग डालने पर) कर्णप्रिय (मधुर) ध्वनियों से मणिनूपुर मन को आकृष्ट कर लेते हैं।।६।।

संस्कृत व्याख्या– **कटु** =अप्रियम्, कर्कशम्। **क्वणन्तः** =पौनः पुन्येन वदन्तः। **मलदायकाः**= मिथ्यारोपिणः। **खलाः** = दुष्टजनाः। **कटुक्वणन्तः**=कर्कशः खणखणायकानाः। **मलदायकाः** = कालिमाकारिणः। **बन्धनश्रृङ्खलाः**=निगडलौहरशनाः इव। **अलम्**=पर्याप्तम्, भृशम्। **तुदन्ति**=पीडयन्ति। (एतद्विपरीतम्) **सन्तः तु**=साधवः तु। **साधुध्वनिभिः**=सूक्तिभिः। पदे-पदे प्रतिशब्दम्। **मणिनूपुरा इव**=मणिमञ्जरीणि इव। पदे-पदे = प्रतिचरणविन्यासम्। **साधुध्वनिभिः** = मधुरक्वणितैः। मनः चित्तम्। हरन्ति =समावर्जयन्ति।। अत्र कविः दुर्जननिन्दया सहैव सज्जनप्रशंसामपि वितनोति।।६।।

कोश– 'रसे कटुः कट्वकार्ये त्रिषु मत्सरतीक्ष्णयोः' इत्यमरः। 'भूषाणां' च शिञ्जितम्। निक्वाणो निक्वणः क्वाणः क्वणः क्वणनमित्यपि' इत्यमरः।

टिप्पणी– प्रस्तुत श्लोक में दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा की गयी है। इसी व्याज से दोनों का स्वभाव भी निरूपित हुआ है सर्पः क्रूरः खलः, क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः।

क्वणन्तः– क्वण्+शतृ, बहुवचन। **मणिनूपुराः**– मणिखचितनूपुराः, मध्यपदलोपी समास।

श्लोक के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध – दोनों में पूर्णोपमा अलङ्कार है। दोनों परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलङ्कार हैं।

सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम्।

तदैव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम् ।।७।।

अन्वय– हारि सुभाषितम् अमृतम् अर्करिपोः इव दुर्जनस्य गलात् अधः न विशति। सज्जनः तदेव अतिनिर्मलं महारत्नं हरिः इव हृदयेन धत्ते।।७।।

हिन्दी अनुवाद– जिस प्रकार अमृत राहु के गले से नीचे नहीं जा पाता, उसी तरह मनोहर सुभाषित (सुक्तिमय काव्य) दुर्जन के गले नहीं उतरता (किन्तु) सज्जन अत्यन्त विशुद्ध उस मनोहर

सुभाषित को अपने हृदय में उसी तरह धारण करता है जिस प्रकार विष्णु महारत्न (कौस्तुभमणि) को अपने हृदय (वक्षःस्थल) पर धारण करते हैं।।७।।

संस्कृत व्याख्या– **हारि**=चित्ताकर्षकम्। **सुभाषितम्**=सदुक्तिःसत्काव्यम् वा। **अमृतम्**=पीयूषम्। **अर्करिपोः**=अर्कस्य सूर्यस्य रिपुः शत्रुः तस्य राहोः (षष्ठी तत्पुरुषः)। **दुर्जनस्य** =कुपुरुषस्य। **गलात्** =कण्ठात्। **अधः**= अधस्तात्। **न विशति** =न प्रविशति, न अग्रेसरति। **सज्जनः**=साधुपुरुषः। **तदेव**=सुभाषितं, सत्काव्यं, सुदक्तिर्वा। **अतिनिर्मलम्**=सुविशदम्। **महारत्नम्** = रत्नश्रेष्ठकौस्तुभमणिम्। **हरिः इव**=विष्णु इव। **हृदयेन**=वक्षःस्थलेन। **धत्ते**=धारयति।।७।।

कोश– 'पीयूषममृतं सुधा'–अमर०।

टिप्पणी– **हारि**– हृ+णिच्+णिनि। सुभाषितम्–सुभाषित को भी रत्न कहा गया है– 'पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्। मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा निधियते।।' यह पौराणिक कथा सर्वविदित है कि समुद्रमन्थन से निकले अमृत को विष्णु ने बड़ी चतुराई से देवताओं में वितरित किया। राहु नामक एक दानव, विष्णु की चतुराई भांप कर अपना स्वरूप बदलकर देवों की पंक्ति में चुपके से बैठ गया। विष्णु ने उसे भी अमृत दे दिया। तभी सूर्य ने उसे पहचान कर विष्णु को संङ्केत से बता दिया। अमृत अभी गले तक ही पहुँचा था कि विष्णु ने चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। किन्तु अमृतपान के कारण वह शिरोभाग से अमर हो गया। उसी दिन से वह सूर्य का शत्रु हो गया। (अर्करिपु=राहु)। **महारत्नम्**–महत् च तद् रत्नं च महारत्नम्। 'आन्महतः समानाधिकरण जातीययोः' (पा० ६.३.४६) से आत्व अर्थात् 'महत्' का 'महा' रूप हो जाता है। महारत्नों की संख्या नौ गिनायी गयी है– 'मुक्ताफलं हिरण्यं च वैदूर्यं पदम्रागकम्। पुण्परागं च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा। प्रवालयुक्तयुक्तानि महारत्नानि वै नव।।' इस श्लोक में महारत्न का अभिप्राय कौस्तुभमणि से है। समुद्रमन्थन से निकले चौदह रत्नों में 'कौस्तुभ' भी एक है।

इस श्लोक में दो बार निरपेक्ष रूप से पूर्णोपमालङ्कार प्रयुक्त है। अतः संसृष्टि अलङ्कार है।

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव।।८।।

अन्वय– स्फुरत्कलालापविलासकोमला शय्यां स्वयम् अभ्युपागता अभिनवा वधूः इव कथा जनस्य हृदि रसेन कौतुकाधिकं रागं करोति।।८।।

हिन्दी अनुवाद– निरन्तर आकर्षण उत्पन्न करने वाली मीठी बातों और सरस हाव-भाव से भरी सुकुमार अङ्गों वाली तथा स्वतः शय्या पर (प्रियतम के पास) आयी हुई नवेली दुलहन के समान, रुचिर-मधुर संवादमयी, रस विलास से युक्त कोमल कान्त पदावली से निर्मित, स्वयं (अनायास) पदशय्या पर आरुढ़ नूतन कथा, रसिकजन के हृदय में समुचित श्रृङ्गारादि रस सन्निवेश से निरन्तर बढ़ती हुई उत्कण्ठा के कारण अधिकाधिक अनुराग उत्पन्न करती है।।8।।

संस्कृत व्याख्या– **स्फुरत्कलालाप०**–स्फुरन् सुस्पष्टं विभाव्यमानः यः कलः मधुरः आलापः वार्तालापः तथा चान्यत् हावभावप्रकाशनेन युता सुकुमाराङ्गिनी। स्वयमेव **शय्यां**=पर्यङ्कं प्रति (प्रियतमसन्निधौ) **अभ्युपागता**=समागता। **अभिनवा**= नवोढा। वधूः इव=युवती इव।। **स्फुरत्कलालाप**– स्फुरन् सुस्पष्टं प्रतीयमान यः कलः मधुरः आलापः संवादः तस्य विलासः रुचिरविन्यासः तेन कोमला सुकुमारवर्णगुम्फिता। **शय्याम्**– रसानुकूल पदयोजनायाम्। **स्वयम्**=स्वतः

अभ्युपागता=सम्प्राप्ता। **अभिनवा**=नूतनकल्पिता। **कथा**– गद्यपद्यमयी विशिष्टा रचना। **जनस्य**=रसिकजनस्य। **हृदि**=हृदये। **रसेन**=आनन्देन, श्रृङ्गारादि काव्यरसेन। **कौतुकाधिकम्** = अधिकं कौतुकं कुतूहलं यस्मिन् तत् कौतुकाधिकम्। **रागम्** = अनुरागम्, प्रेम। **करोति**– जनयति, उत्पादयति विधत्ते वा॥८॥

कोश– 'ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कल:' इत्यमर:। 'कोमल' मृदुसुन्दरे' इति विश्व:। कौतूहलं कौतुकञ्च कुतुकं कुतूहलम्' इत्यमर:।

टिप्पणी– **विलास:**– वि+लस्+घञ्। **अभ्युपागता**–अभि+उप+गम्+क्त+टाप्। **कौतुकम्**–कुतुक+अण् (स्वार्थे)। **कथा**– कथ्यते इति कथा, कथ् + टाप्। आचार्यो ने कथा का लक्षण किया है (द्रष्टव्य– इसी पुस्तक में सामान्य अध्ययन – इकाई 4 में कथा और आख्यादिका')। प्राचीन संस्कृत कथा आज की कथा (कहानी) से भिन्न स्वरूप वाली है। आधुनिक काव्य सन्दर्भ में उसे 'उपन्यास' कहा जा सकता है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' (नामक आख्यायिका) में भी इसी प्रकार का श्लोक निबद्ध किया है–

दर्शयन्ती मुखे खेदं स्खलन्ती च पदे पदे।

कथञ्चिन्नीयते शय्यां कथा नववधूरिव॥ (हर्षचरित, प्रथम उच्छवास्) 'शय्यां' कथा नववधूरिव, में पूर्णोपमा अलङ्कार है॥

हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।

निरन्तरश्लेषधनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पक कुड्मलैरिव।।९।।

अन्वय– उज्ज्वलदीपकोपमै: चम्पककुड्मलै: उपपादिता: निरन्तरश्लेषधना: सुजातय: महास्रज: इव नवै: पदार्थै: कथा: कं न हरन्ति?॥९॥

हिन्दी अनुवाद– प्रभा धवल दीपक की भाँति चम्पा की कलियों से निर्मित, एक से एक मिलाकर गूँथी गयी सघन मालती पुष्पों से युक्त विशाल माला के समान निरवद्य प्रकाशित दीपक और उपमा अलङ्कारों से संवलित, प्रतिपद प्रयुक्त श्लेष अलङ्कार के बाहुल्य वाली तथा नूतन उत्प्रेक्षाओं से कल्पित वस्तुमय पदावली से विचरित कथायें भला किसके हृदय को नहीं चुरा लेतीं? अर्थात् सभी के लिए हृदयावर्जक होती हैं॥९॥

संस्कृत व्याख्या– **उज्ज्वलदीपकोपमै**– उज्ज्वला: दीप्ति धवला: दीपका: तै: उपमा साम्यं येषां ते, तै: (बहुब्रीहि०) **चम्पककुड्मलै:** =चम्पकमुकुलै:। **उपपादिता:**=ग्रथिता:, विनिर्मिता: वा। **निरन्तरश्लेषधना:**–निरन्तरं निरवकाशं श्लेष: संसक्ति: तेन धना: सधना:। **सुजातय:** – सुन्दराणि जातीपुष्पाणि यासु ता:। **महास्रज:**=विशालमाला:। इव। **उज्ज्वलदीपकोपमै:**– स्फुटोदात्तैदीपकै: उपमाभिश्चालङ्कारै:। **निरन्तरश्लेषधना:**– प्रतिपदप्रयुक्तश्लेषालङ्कारपेशला:। **सुजातय:**– शोभनाजाति: छन्दोविशेष यासु ता:, अथवा, शोभनमार्गबद्धा:। **कथा:**=गद्यपद्यमयरचनाविशेष:। **नवै:**= नूतनोत्प्रोक्षितैरुत्पाद्यै: कविकल्पितैर्वा। **पदार्थै:**= पदस्यूतोतिवृत्तविशेषै:। **कम्** = कस्य पुरुषस्य हृदयम्। **न हरन्ति**= नावर्जयन्ति, न वशीकुर्वन्ति॥ हरन्त्येव सर्वेषां हृदयानीत्यर्थ:॥९॥

अस्मिन्नपि पद्ये कवि: कथाया मनोहरत्वं विशदयति।

कोश– माल्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि इत्यमर:। प्रबन्धकल्पना कथा– इत्यमर:।

टिप्पणी– **उपपादिता:**– उप+पद्+णिच् + क्त, बहुवचन। **महास्रज:**=सृज् + क्विन् =स्रक्। महती

चासौ स्रक् महास्रक् (कर्मधारय); **महास्रक्** + जस् =महास्रजः। दीपवर्तिका (दीये की लौ) चम्पा की पीली-पीली कली जैसी लगती है। इस श्लोक में पूर्णोपमा तथा अर्थापत्ति अलङ्कार है।

बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणी सताम्।
अनेकगुप्ताचर्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः ।।१०।।

अन्वय– वात्स्यायनवंशसम्भवः जगद्गीतगुणः सताम् अग्रणीः अनेक गुप्तार्चितपादपङ्कजः स्वयम्भुवः अंश इव कुबेरनामा द्विजः बभूव।।१०।।

हिन्दी अनुवाद– वात्स्यायन वंश में जन्म लेने वाले, राजाओं द्वारा पूजित चरण कमल वाले और ब्रह्म के अंशावतार तुल्य कुबेर नामक एक ब्राह्मण हुए।।१०।।

संस्कृत व्याख्या– **वात्स्यायनवंशसम्भवः**=वत्सस्य अयनम् वात्स्यायनम्, तदेव वंशः वात्स्याननवंशः तस्मिन् सम्भवः उत्पत्तिर्यस्य सः। वत्सगोत्रोत्पन्नः। (बहुव्रीहि) **जगद्गीतगुणः**=जगति संसारे (जगता संसारेण वा) गीताः निरन्तरं प्रशंसिताः गुणा यस्य सः (बहुव्रीहि), सर्वलोकप्रियः इत्यर्थः। **सताम्**=सज्जनानाम्। **अग्रणी**=श्रेष्ठः सर्वाग्रगामी। **अनेक गुप्ताचर्चितपादपङ्कजः**= न एके अनेके गणनातीताः ये गुप्ताः गुप्तवंशीयाः राजानः (अथवा, केवलं भूपालाः, गुप्=रक्षणे) तैः अर्चितं समाराधितम् पादपङ्कजम् चरणकमलम् यस्य सः। **स्वयम्भुवः**=स्वयं भवतीति स्वयम्भूः ब्रह्मा, परमात्मा वा, तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः वा। **अंश इव** =भाग इव, अंशावतार इत्यर्थः। **कुबेरनामा**=कुबेराभिधः। द्विजः विप्रः, ब्राह्मणः। बभूव=अजायत, आसीत्वा।।10..

कोश– 'गीतं गानमिभे समे' – इत्यमरः। पङ्कजं तामरसं सरसीरुहम्– इत्यमरः। हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः– इत्यमरः। 'दन्तविप्राण्डजाः द्विजाः–इत्यमरः।

टिप्पणी– प्रस्तुत पद्य से महाकवि बाणभट्ट अपने वंश का वर्णन प्रारम्भ कर रहे हैं। बाण वत्स गोत्रीय हैं (द्रष्टव्य– हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास तथा इस पुस्तक का प्रारम्भिक भाग इकाई 2)। कुबेर, बाण से पाँच पीढ़ी पूर्व उपत्पन्न हुए थे। कुबेर को यदि बाण से 250 वर्ष पूर्व (एक पीढ़ी=50 वर्ष औसत मानकर) माना जाय तो उनका स्थिति काल गुप्तवंशीय राजाओं का शासनकाल होगा। अथवा, गुप्त का अर्थ 'गुप् रक्षणे' धातु के आधार पर भूमि, धन आदि का रक्षक अर्थात् 'राजा' या 'वैश्य' लिखा जा सकता है। ध्यातव्य है कि हर्ष को वैश्य वंश में उत्पन्न माना गया है। **द्विजः**=द्वाभ्यां (जन्मसंस्काराभ्यां) जायते इति द्विजः। 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारैर्द्विज उच्यते।'

उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे।
सरस्वती सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे।।११।।

अन्वय– यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे पुरोडाशपवित्रिताधरे सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्र स्मृतिबन्धुरे मुखे सरस्वती सदा उवास।।११।।

हिन्दी अनुवाद– जिस (कुबेर) के वेदज्ञान से उपशमित पाप वाले, यज्ञशेष हवि (खाने) से पवित्र होठ वाले, सोमरस (का पान करने) से कसैले अन्तर्भाग वाले, सम्पूर्ण शास्त्र और स्मृतियों (के ज्ञान) से प्रसन्न मुख में सदा सरस्वती (वाग्देवता) निवास करती थी।।११।।

संस्कृत व्याख्या– **यस्य**=कुबेरस्य। **श्रुतिशान्तकल्मषे**=श्रुतीनां वेदान्ता ज्ञानेन अध्ययेन वा शान्तम् उपशमितम् कल्मषम् पापम् यस्य तस्मिन् (बहुव्रीहि)। **पुरोडाशपवित्रिताधरे**=पुरोडाशः हविःतेन

(भक्षितेन) पवित्रितौ पावनीभूतौ अधरौ ओष्ठौ यस्य तस्मिन् (बहुब्रीहि) **सोमकषायितोदरे**=सोमेन (सोमरसपानेन) कषायितम् उदरम् अभ्यन्तरं यस्य तस्मिन् (बहुब्रीहि)। **समस्तशास्त्रस्मृति बन्धुरे**=समस्तानि सकलानि यानि शास्त्राणि स्मृतयश्च तेषाम् उपस्थित्या बन्धुरं प्रसत्रं, तस्मिन्। **मुखे**=वक्त्रे। सरस्वती= वाग्देवता। **सदा**=निरन्तरम्। **उवास**=निवसति स्म।।११।।

कोश– 'श्रुतिस्तु वेद आम्नायस्त्रयी' अमर०। 'अस्त्री पङ्कं-पुमान्। पाप्मा पापं किल्विषकल्मषम्' अमर। निदेशग्रन्थयोः शास्त्रम् अमर०। स्मृतिस्तुधर्मसंहिता–अमर०।

टिप्पणी– **श्रुति**=श्रु+क्तिन्। **शान्तम्**=शम् +क्त। **पवित्रितः**= पू+इत्र+इतच्। **अधरः** = नञ् +धृ+अच्। **सोम**– एक पौधा। यज्ञ के अवसर पर पत्थर से कूटकर इस पौधे से रस निकाला जाता था और ऋत्विक गण सोमरस का पान करते थे। सोमरस से आहुतियां भी दी जाती थीं। इसका रस मादक होता है और इसे नाना प्रकार से परिष्कृत किया जाता था– 'इमे सोमाः अरंकृताः।' इसमें दूध, दही और जौ का सत्तू मिलाने पर क्रमशः इसे गवाशिरः, दध्याशिरः और यवाशिरः कहते हैं। इन्द्र को देवताओं में सर्वाधिक सोमरस पीने वाला कहा गया है। सम्प्रति सोमलता की पहचान सन्दिग्ध हो गयी है और उसके स्थान पर अन्य मिलते जुलते पौधे का उपयोग किया जाता है। प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा गायें देकर पणियों (व्यापारियों) से सोमक्रय करने का आख्यान मिलता है। स्मृति– स्मृ+क्तिन्। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार स्मृतियों की संख्या बीस है। जिनमें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, सङ्खस्मृति, हारीतस्मृति, पराशरस्मृति आदि प्रसिद्ध हैं। धर्म, आचार, व्यवहार आदि का विवेचन करने वाले ग्रन्थ 'स्मृति संज्ञक है। **शास्त्रम्**– शासनात् शास्त्रम्। शास्+ष्ट्रन्। शास्त्रों की संख्या छः कही गयी है।

प्रायः छहों आस्तिक दर्शन शास्त्र कहे जाते हैं मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग। जितने भी नियामक और सिद्धान्त निर्देशक ग्रन्थ हैं, उन सबकी शास्त्र संज्ञा मानी गयी है। यथा ज्योतिषशास्त्र, काव्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, भौतिकशास्त्र इत्यादि।

इन श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।।

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।

निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः।।१२।।

अन्वय– यस्य गृहे अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः पदे पदे निगृह्यमाणाः शङ्किताः बटवः यजूंषि सामानि च जगुः।।१२।।

हिन्दी अनुवाद– जिस (कुबेर) के घर में, समस्त वाङ्मय का अभ्यास किये हुए सारिकाओं के साथ पिंजरे में स्थित तोतों के द्वारा पद-पद पर टोके जाते हुए (अतएव) सहमें हुए ब्रह्मचारी बालक यजुष् और साम (के मन्त्रों) का गान करते थे।।१२।।

संस्कृत व्याख्या– **यस्य**= कुबेरस्य। **गृहे**=भवने। **अभ्यस्त समस्तवाङ्मयैः**= अभ्यस्तं भूयोभूयः सावबोधं स्मृतिपथं नीतं समस्तम् अशेषं वाङ्मयं वेदादिशास्त्रमयं यैः तैः (बहुब्रीहि०)। **ससारिकैः**=सारिकाभिः सहितैः। **पञ्जरवर्तिभिः**=शलाकामय लघुकोष्ठस्थितैः। **शुकैः**=कीरैः। **पदे-पदे** =प्रति पदं, स्थाने-स्थाने वा। **निगृह्यमाणाः**=नियम्यमानाः। (अतएव) **शङ्किताः**=शङ्काकुलाः। **बटवः**= ब्रह्मचारिणः बालकाः। **यजूंषि**=यजुर्मन्त्रान्। **सामानि**=साममन्त्रान्। **जगुः**=सस्वरम् उच्चारयन्ति स्म।।१२।।

कोश– गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम् इत्यमरः। कीरशुकौसमौ – इत्यमरः 'पञ्जरो (पिञ्जरो) ऽश्वान्तरे क्लीवं स्वर्णे पीते च वाच्यवत् इति मेदिनी पक्ष्यादिबन्धनगृहम्।

टिप्पणी– **अभ्यस्त**=अभि+अस्+क्त। **पञ्जरवर्तिभिः**– पञ्जर+वृत्त+णिनि, तृतीया विभक्ति बहुवचन।

निगृह्यमाणः– नि+ग्रह+यक्+शानच्। **बटवः** – वटति अल्पवस्त्रमिति बटुः। **जगुः**=गै, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

इस श्लोक में कुबेर के उत्कृष्ट वैदुष्य की व्यञ्जना कराते हुए उनके यहां वाङ्मयी समृद्धि तथा ब्रह्मचारियों द्वारा निरन्तर वेदाभ्यास कराये जाने की सूचना दी गयी है। यहां वाच्य की अपेक्षा व्यङ्ग्य अधिक चमत्कारपूर्ण होने से उत्तम या ध्वनि काव्य है। श्लोक में अनुप्रास और अतिशयोक्ति **अलङ्कार** है।

हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव।

अभूत्सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः।।१३।।

अन्वय– भुवनाण्डकात् हिरण्यगर्भः इव, क्षीरमहार्णवात् क्षपाकरः इव, विनतोदरात् सुपर्णः इव, ततः द्विजन्मनां पतिः अर्थपतिः अभूत् ।।१३।।

संस्कृत व्याख्या– भुवनाण्डकात् = भुवनस्य लोकस्य अण्डकः भुवनाण्डकः ब्रह्माण्डः तस्मात् (तत्पुरुषः। **हिरण्यगर्भः** इव= ब्रह्म इव। **क्षीरमहार्णवात्**=दुग्धमहासागरात् (तत्पुरुष)। **क्षपाकरः इव**= निशाकरः चन्द्रमा वा इव। **विनतोदरात्** =विनतायाः उदरात् कुक्षेः (तत्पुरुष)। **सुपर्णः इव**= गरुडः विष्णुवाहनः इव। **ततः**=तस्मात् (कुबेरात्)। **द्विजन्मनाम्**=ब्राह्मणानाम्। **पतिः** स्वामी। ब्राह्मणाग्रणीः। **अर्थपतिः**=एतन्नामा पुरुषः शिशुः। अभूत् = समाजायत।।१३।।

कोश– 'त्रिण्वथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्– इत्यमरः। 'दुग्धं क्षीरं पयः समम्' इत्यमरः। 'उदन्वानुदधिः सरस्वान् सागरोऽर्णवः'। नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः इति चामरः

टिप्पणी– भुवनम्– भु+क्युन्। **अण्डः**– अम्+डः, अण्ड एव अण्डकः, स्वार्थे कन्। (अण्ड+कन्)। 'ब्रह्माण्ड' से यहाँ अभिप्राय गृहीत है। 'भुवन' में सात लोक ऊर्ध्व के और सात अधः के कुल 14 लोक होते हैं। ऊर्ध्व लोक हैं– भूः, भुवः स्वः, महः जनः, तपः और सत्य। अधोलोक हैं– अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। हिरण्यगर्भः– हिरण्यं (तेजः) गर्भे यस्य सः हिरण्यगर्भः (बहुब्रीहि०)। 'हिरण्यगर्भ' ब्रह्मा की वैदिकी संज्ञा है– 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः परितेक आसीत्।' (ऋग्वेद, १०, १२१) मनुस्मृति (1.9) में ब्रह्मा की उत्पत्ति इस प्रकार कही गयी है– 'तदण्डमभवद्हैमं सहस्रांशुसमप्रभम्। तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।। **क्षीरमहार्णवः**– अर्णांसि जलानि सन्ति अस्मिन् इति अर्णवः (अर्णस्+व, सकारलोप)। महांश्चासौ अर्णवश्च महार्णवः (कर्मधारय)। क्षीरस्य महार्णवः क्षीरमहार्णवः (षष्ठी तत्पुरुष)। **क्षपाकरः**– क्षपयति जीवानां श्रमम् अपनयति अथवा, सूर्यस्य तेजोऽपनयति इति क्षपा, क्षप्+अण्+टाप्। करोति इति करः, कृ+आप क्षपायाः करः क्षपाकरः (षष्ठी तत्पुरुष)। **विनता**– काश्यप की पत्नी। कद्रू और विनता दो बहनें थीं। कद्रू सर्पों की जननी हुई और विनता अरुण और गरुण की। विनता ने अपना एक अण्डा जल्दी फोड़ दिया उससे जो शिशु निकला वह अविकसित था। उसके हाथ पैर नहीं विकसित हुए थे। विनता की प्रार्थना पर सूर्य ने उसे अपने रथ के अग्रभाग पर बैठा कर सारथी बना लिया। दूसरा अण्डा परिपक्व होने पर फूटा तो उसे पक्षिराज गरुड निकले और भगवान् विष्णु के वाहन बने। कद्रू और विनता के परस्पर ईर्ष्या द्वेष के कारण गरुड सर्पों के बैरी बने।

इस श्लोक में कुबेर से अर्थपति की उत्पत्ति में विसङ्गत उपमा का प्रयोग किया गया है। कुबेर (पिता) के स्थान पर अर्थपति की माता का उल्लेख होना चाहिए था। यहाँ 'भुवः प्रभवः' सूत्र से

आपदानार्थक पञ्चमी विभक्ति प्रयुक्त है। एक उपमेय (अर्थपति) के अनेक उपमान (ब्रह्मा, चन्द्रमा और गरुड) होने से मालोपमा अलङ्कार है। कवि की उपमा का आशय है कि अर्थपति ब्रह्मा के समान वेदवेदाङ्ग पारङ्गत, चन्द्रमा के समान सुन्दर कान्तिमान् और गरुड के समान परम विष्णुभक्त एवं सामर्थ्यशाली, अप्रतिहतगतिशाली, क्षिप्रकारी थे।

विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः।

उषःसु लग्नाः श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव।।१४।।

अन्वय– दिने दिने उषःसु विसारे वाङ्मयं विवृण्वतः यस्य नवाः नवाः शिष्यगणाः चन्दनपल्लवाः इव श्रवणे लग्नाः अधिकां श्रियं प्रचक्रिरे।।१४।।

हिन्दी अनुवाद– प्रतिदिन ब्राह्ममुहुर्त में विपुल वाङ्मय की व्याख्या (पूर्वक शिक्षा देने वाले) करने वाले जिस अर्थपति का व्याख्यान सुनने में लगे हुए (अर्थात् दत्तचित्त) नये-नये शिष्यगण उसी प्रकार उनकी अतिशय शोभा बढ़ाते थे जैसे उषःकाल में कानों पर धारण किये गये चन्दनपल्लव उनकी शोभा बढ़ाते हैं।।१४।।

संस्कृत व्याख्या– दिने-दिने=प्रतिदिनम्, अनुदिवसम् वा। **उषःसु**=उषःकालेषु, ब्राम्हमुहूर्तेषु वा। **विसारि**=विसरणशीलम्, विस्तृतम्। **वाङ्मयम्**=सर्वविद्यात्मकं शास्त्रम्। **विवृण्वतः**=व्याख्याभिः विशदीकुर्वतः अथवा, ग्रन्थिसमाधानपूर्वकम् अध्यापयतः। **यस्य**=कुबेरात्मजस्य अर्थपतेः। **नवाः नवाः** = यथाकारणम् आगताः नवीनाः। **शिष्यगणाः**=अन्तेवासिनः। **चन्दनपल्लवाः इव**=चन्दनकिसलयानि इव। **श्रवणे**=आकर्णने, कर्णे वा। **लग्नाः**– दत्तचित्ता, संश्लिष्टाः वा। **अधिकां श्रियम्**=अतिशयशोभाम्। **प्रचक्रिरे**=वितेनिरे।।१४।।

कोश–'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्पमुषः प्रत्युषसी अपि'। 'छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये'। कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं श्रुतिःस्त्री श्रवणं श्रवः'। पल्लवोऽस्त्री किसलयम्। इत्येते अमरकोशात्।

टिप्पणी– वाङ्मयम्=वाक्+मयट्। **विवृण्वतः**= वि+वृणु+शतृ, षष्ठी विभक्ति, एक वचन, 'यस्य' का विश्लेषण। **नवाः नवाः**-नये नये। कवि के इस प्रयोग का अभिप्राय यह है कि अर्थपति के वैदुष्य और व्याख्यान शैली की प्रशंसा सुनकर उनके यश से आकृष्ट होकर नित्य नये नये विद्यार्थी उनसे विद्या ग्रहण करने के लिए आते थे। **प्रचक्रिरे** – प्र+कृ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

इस श्लोक में उपमा और श्लेष अलङ्कार हैं।

विधानसम्पादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः।

मखैरसंख्यैरजयत्सुरालयं सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव।।१५।।

अन्वय– यः विधानसम्पादित दानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः असंख्यैः मखैः यूपकरैः गजैः इव सुखेन सुरालयम् अजयत्।।१५।।

हिन्दी अनुवाद– जिस (अर्थपति) ने यथोचित विधि के प्रभाव से समुत्पन्न मदजल से सुशोभित फड़कते हुए (पराक्रमी) योद्धाओं से अधिष्ठित शरीर वाले और यज्ञीय स्तम्भ के समान सूड़ वाले असख्य हाथियों के समान विधिपूर्वक दानकर्म से सुशोभित, समुज्ज्वल, 'महावीर' नामक श्रौताग्नियों से सनाथ यज्ञीय पशु का आलम्भन करने हेतु गड़े स्तम्भों से युक्त असंख्य यज्ञों के द्वारा अनायास ही स्वर्ग लोक या सुमेरु पर्वत पर विजय प्राप्त की।१५।।

संस्कृत व्याख्या– यः=अर्थपतिः। **विधानसम्पादितदानशोभितैः**=विधानेन गजशास्त्रे वर्णितेन भक्ष्याद्युपायेन

सम्पादितं निष्पन्न दानं मदजलं तेन शोभितैः अलङ्कृतैः। यद्वा, विधानेन वेदोक्तविधिना सम्पादितं विहितं यद्दानं द्रव्यादिवितरणं तेन शोभितैः विभूषितैः। **स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः**=स्फुरन्तः युद्धोत्साहेन समुल्लसन्तः ये महान्तश्चामी वीराः (कर्मधारय०) महावीराः प्रबलयोद्धारः तैः सनाथाः युक्ताः मूर्तयः कलेवराणि येषां तैः। यद्वा, स्फुरन्तः ज्वालाभिः देदीप्यमानाः ये महावीराः एतत्संज्ञकाः यज्ञाग्नयः तैः सनाथाः संयुक्ताः सहिताः वा मूर्तयः स्वरूपाणि येषा तैः। **यूपकरैः**=यूपा इव कराः शुण्डादण्डा येषां तैः (उपमित समासः)। यद्वा, यूपाः एव कराः हस्ता येषां तैः। **इव**=यथा। **असंख्यैः**=गणनातीतैः। **मखैः**=यज्ञैः। **सुखेन**= अनायासम्। **सुरालयम्**=सुराणां देवानाम् आलयो वासस्थानाम् स्वर्गः, तादृशं वाऽन्यराज्ञः देशम् सुमेरुगिरिम्वा। **अजयत्**=स्वाधीनम् अकरोत्॥१५॥

कोश– 'होमाग्निस्तु महाज्वाजो महावीरः प्रवर्गवत्' इति क्वचित्कोशे। 'मखो यज्ञः प्रकीर्तितः'। 'मेरुः सुमेरुर्हेमाद्री रत्नसानुः सुरालयः' – इत्यमरः।

टिप्पणी– महावीर– दुर्धर्ष योद्धा (गजपक्ष में), एक प्रकार की यज्ञीय अग्नि (यज्ञपक्ष में)। **यूप**– बड़े यज्ञों में, जिनमें पशुबलि दी जाती है, पशु को बाँधने के लिए यज्ञशाला के समीप मजबूत स्तम्भ गाड़े जाते हैं, जिन्हें यूप कहा जाता है। पशु को बाँधने के पूर्व इसे भी अभिमन्त्रित करते हैं। यहाँ हाथी के सूड़ की उपमा यूपस्तम्भ से दी गयी है।

इस श्लोक में पूर्णोपमा, श्लेष, रूपक और समासोक्ति अलङ्कार हैं।

स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम्।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलोपमं क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृतां ।।१६।।

अन्वय– स क्रमेण क्षमाभृतां मध्ये स्फटिकोपलोपमं कैलासमिव क्षमाभृतां महात्मनां श्रुतिशास्त्रशालिनां सुतोत्तमानां मध्ये चित्रभानुं तनयम् अवाप॥१६॥

हिन्दी अनुवाद– उन (अर्थपति) ने पर्वतों के बीच स्फटिकमणि के समान (धवण निर्मल) कैलास (पर्वत) की भाँति, क्षमाशील महात्मा वेदशास्त्रज्ञ उत्तम पुत्रों के मध्य वंशानुक्रम से स्फटिकमणि सदृश निरवद्य 'चित्रभानु' नामक पुत्र प्राप्त किया॥१६॥

संस्कृत व्याख्या– यः =अर्थपतिः। **क्रमेण**=वंशानुक्रमेण। **क्षमाभृताम्**=क्षमां पृथिवीं बिभ्रति धारयान्ति ते क्षमाभृतं तेषां क्षमाभृताम् पर्वतानाम्। **मध्ये**=अभ्यन्तरम्। **स्फटिकोपलोपमम्**= स्फटिकमणिनिभम् अति निर्मलम् इत्याशयः। **कैलासम् इव**= कैलासः पर्वतविशेषः, तम् इव। **क्षमाभृताम्** =क्षमां क्षान्तिं विभ्रति ते क्षमाभृतः तेषां क्षमाभृताम् ब्राह्मणानाम्। **महात्मनाम्**=महान् आत्मा येषां तेषाम् सर्वतः उदारसाधुजनानाम्। **श्रुतिशास्त्रशालिनाम्**=वेदशास्त्रज्ञानानुरूपचरितानाम्। **सुतोत्तमानाम्**=सुतानां सुतेषु वा उत्तमा तेषाम्, जातप्रवरणाम्। **मध्ये**= अभ्यन्तरे। **चित्रभानुम्**=चित्रभानु इत्येतन्नामकम्। **तनयम्**=पुत्रम्, आत्मजम्। **अवाप**=प्राप्तवान्॥१६॥

कोश– 'क्षितिक्षान्त्योः क्षमा' अमर०। 'आत्मजस्तनयः सूनुः– अमर०।

टिप्पणी– स्फटिकोपलोपमम्– स्फटिक मणि(पत्थर) मूल्यवान् और विशुद्ध होता है। यह अत्यन्त निर्मल और पारदर्शी होता है। इसकी मणियों की माला पवित्र मानकर श्रद्धालु पूजन-अर्चन में इसका प्रयोग करते हैं, गले में धारण करते हैं। **चित्रभानुः–** यह सूर्य का पर्याय है, चित्राः भानवः यस्य सः। यहाँ, अर्थपति के ग्यारह पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। **क्षमाभृताम्–** इस

1. पाठभेद–'स्फटिकोपलामकलम्।'

पद में श्लेष है। क्षमा=पृथिवी और क्षान्ति। इस श्लोक में श्लेष और उपमा अलंकार है।

महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः।

द्विषन्मनः प्राविविशुः कृतान्तरा गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा[1] इव।।१७।।

अन्वय– यस्य महात्मनः सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दु कलामलत्विषः गुणाः नृसिंहस्य नखाङ्कुराः (नखाङ्कुराः) इव कृतान्तराः द्विषन्मनः प्राविविशुः।।१७।।

हिन्दी अनुवाद– जिस महात्मा (चित्रभानु) के दूर-दूर तक निकल कर व्याप्त निष्कलङ्क चन्द्रमा की कला के समान विशद दीप्तिमय गुणगण स्थान बनाकर वैसे ही शत्रुओं के (भी) मन में प्रविष्ट हो गये जैसे विराट् स्वरूप वाले भगवान् नृसिंह के निर्मल चन्द्रकला के समान विमल चमकते हुए प्रवृद्ध नाखून जगह बनाकर शत्रु (हिरण्यकशिपु) के वक्षस्थल मे प्रविष्ट हो गये।।१७।।

संस्कृत व्याख्या– यस्य महात्मनः=यस्य महानुभावस्य उदारहृदयस्य वा (चित्रभानोः) सुदूरनिर्गताः =दिगन्तव्यापिनः। **कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः**=कलङ्केन कालिम्न मुक्तः वियुक्तः यः इन्दुः चन्द्रः तस्य कलावत् अमलाः विमला त्विट् कान्तिः येषां ते (गुणाः नखाङ्कुराश्च)। **नृसिंहस्य**=नरसिंहावतारस्य भगवतः विष्णोः। **नखाङ्कुशाः**=प्रवर्धमानाः नखराग्रभागाः। **नखाङ्कुशाः** =नखा एवं अङ्कुशाः कुशिलतीक्ष्णास्त्राणि। **कृतान्तराः**=विहितावकाशाः प्रवेशमार्गाः वा। कृतम् अन्तरं यैः ते। **द्विषन्मनः**= (द्विषतः मनः, षष्ठी तत्पुरुष – द्विषद्+मनः) शत्रुमानसम् हिरण्यकशिपोः वक्षस्थलम् वा। **प्राविविशुः**=प्रवेशं कृतवन्तः।।१७।।

कोश– 'स्युः प्रभारुग्रचित्विडभाभःश्छविद्युतिदीप्तयः' – 'रिपौ वैरिसपत्नारि द्विषद् द्वेषणदुहृदः' इत्यमरः।

टिप्पणी– महात्मनः– महान् आत्मा (महत् शरीरं वा) यस्य सः। चित्रभानु के पक्ष में अर्थ है महानुभाव अथवा उदारहृदय और हिरण्यकशिपु के पक्ष में विराट् स्वरूप वाले, विशाल शरीर वाले। आत्मा का अर्थ शरीर भी होता है। **सुदूर निर्गताः**– जो अपने आश्रय से निकल कर बहुत दूर तक जा चुके हैं अर्थात् दिग्दिगन्तव्यापी (गुण पक्ष में) जो खूब बढ़े हुए हैं (नख पक्ष में)। **त्विषः**=त्विट्+प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। प्राविविशुः–प्र+आङ्+विश्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन। पूर्णोपमा तथा श्लेषलङ्कार।

इस श्लोक में हिरण्यकशिपु और नृसिंहावतार की पौराणिक कथा संकेतित है।

दिशामलीकालकभङ्गतां गतस्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः।

चकार यस्याध्वरधूमसञ्चयो मलीमसः शुक्लतरं निजं यशः।।१८।।

अन्वयः– दिशामलीकालकभङ्गतां गतः त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः यस्य मलीमसः अध्वरधूमसञ्चयः निजं यशः: शुक्लतरं चकार।।१८।।

हिन्दी अनुवाद– दशो दिशाओं (रुपी वधुओं के ललाट पर) के घुंघराले बालों की भङ्गिमा को उत्पन्न करने वाली, वेदत्रयीरूपी वधू के कानों में (श्यामल) तमाल पल्लव (जैसी शोभा वाली) जिसकी असित यज्ञ धूम राशि से उनके अपने यश को और अधिक समुज्ज्वल बना दिया।।१८।।

संस्कृत व्याख्या– दिशाम्=पूर्वपश्चिमादिदशदिग्भागानाम्। **अलीकालकभङ्गताम्–** अलीकेषु मस्तमण्डलेषु

1. पाठभेद–'नखाङ्कुशा'।

ये अलका: चूर्णकुन्तला: तेषां भङ्गताम् भङ्गिमाम्। **गत:**=सम्प्राप्त:। **त्रयीबधूकर्णतमालपल्लव:**= ऋग्यजु:सामरूपा या वेदत्रयी सा एव वधू: तस्या: कर्णे श्रोत्रे तमालस्य तापिच्छद्रुमस्य पल्लव: किसलय:। **यस्य** = चित्रभानोः मलीमस: निसर्गमलिन: **अध्वरधूमसञ्चय:**=न ध्वर: (हिंसनम्) यस्मिन् स: अध्वर: तेषाम् अध्वराणाम् यज्ञानाम् यो धूम: तस्य सञ्चय: राशि:। **निजं**=स्वकीयम्, वैयक्तिकम्। **यश:**=कीर्तिम्। **शुक्लतरम्**=शुक्लात् अधिकम्, अतिशयेन उज्ज्वलम् इत्यर्थ:। **चकार** =विदधे॥१८॥

कोश– अलकाश्चूर्णकुन्तला:– अमर। तापिच्छोऽपि तमाल: स्यात् अमर।– अमर०

टिप्पणी– **भङ्गताम्** = भङ्ग + तल् + टाप्, द्वितीया विभक्ति, एक वचन। **अध्वर:**। इस शब्द की कई व्युत्पत्तियां है। यह ऐसे यज्ञ के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें पशु बलि नहीं दी जाती अर्थात् प्राणिहिंसा रहित यज्ञ। न ध्वर: (हिंसनम्) यस्मिन् स:। अथवा, न ध्वरति न कुटिलो भवति इति **अध्वर:**– नञ् + ध्व + अच्। अथवा अध्वानं सत्पथं राति ददाति इति अध्वर: अध्वन् +र+क।

इस श्लोक में दिशा और वेदत्रयी में 'वधू' का तथा यज्ञधूम में कानों के तमाल पल्लव का समारोप होने से रूपक अलङ्कार है। मलिन यज्ञधूम से यश का और अधिक धवल होना विषम अलङ्कार है। इन दोनों अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर अलङ्कार है।

सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भस:।

यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्तत: सुतो बाणइति व्यजायत।।१९।।

अन्वय– सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भस: यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात् तत:'बाण' इति सुतो व्यजायत॥१९॥

हिन्दी अनुवाद– सरस्वती के करकमलों से जिसका यज्ञानुष्ठान के श्रम से उत्पन्न स्वेदजल (पसीना) पोछा जाता था, जिसके यश की किरणों से सातों भुवन धवल बना दिये गये थे, ऐसे उन (चित्रभानु) से 'बाण' नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ॥१९॥

संस्कृत व्याख्या– **सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भस:**=सरस्वत्या: वाग्देव्या: पाणिसरोजसम्पुटेन पाणी करौ एव सरोजे कमले तयो: सम्पुटेन मुकुलितयुग्मेन **प्रमृष्टम्** प्रोञ्छितं होमश्रमस्य हवनकर्मजन्यश्रान्ते: शीकराम्भसानि स्वेदजलबिन्दव: यस्य तस्मात् (तत्पुरुष गर्भ बहुव्रीहि समास)। **यशोंशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्**=यशस: कीर्ते: अंशुभि; रश्मिभि: शुक्लीकृतानि अशुक्लं शुक्लं यथा स्यात्तथा कृतानि धवलीकृतावनि सप्तविष्टपानि सप्तभुवनानि येन (तस्मात्) (बहुव्रीहि समास) तत: तस्मात् चित्रभानो:। **बाण: इति**=बाणनामधेय:। **सुत:**=तनय:। **व्यजायत**=जन्म लेभे॥19॥

कोश– **शीकरोऽम्बुकणा: स्मृता, विष्टप भुवनं जगत् इत्येतौ अमरकोषात्।**

टिप्पणी– **सरस्वती**– सरस् + मतुप् ङीप्। मतुप् को वतुप् आदेश। **प्रमृष्ट**=प्र+मृज्+क्त। **शुक्लीकृत**– 'अभूततद्भावे च्वि' से च्वि प्रत्यय। **व्यजायत**– वि+अजायत=वि+जन्, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन। श्लोक की प्रथम तथा द्वितीय पंक्ति में अतिशयोक्ति अलङ्कार। दोनों की निरपेक्ष स्थिति के कारण संसृष्टि अलङ्कार है।

इस श्लोक में ध्वनि है कि चित्रभानु को सरस्वती पुत्रवत् मानती थी। जैसे माँ अपने पुत्र का लालन करती है, वैसे ही सरस्वती भी चित्रभानु का पसीना पोछती है। अर्थात् चित्रभानु ने सरस्वती को प्रसन्न करने अपने वश में बना लिया था। आशय यह है कि चित्रभानु परम याज्ञिक और धार्मिक होने के

साथ ही उच्च कोटि के विद्वान थे।

द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया।
अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्ध्या धिया निबद्धयेमतिद्वयी कथा।।२०।।

अन्वय– तेन द्विजेन अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्ध्या धिया इयम् अतिद्वयी कथा निबद्धा।।२०।।

हिन्दी अनुवाद– जिसके कण्ठ की कुण्ठा (जड़ता) नष्ट नहीं हुई थी (अर्थात् वाणी प्रौढ़ और परिष्कृत नहीं हुई थी), उस ब्राह्मण (बाणभट्ट) ने मन के महामोहान्धकार से अन्धी (अर्थात् विवेकशून्य) तथा वैदुष्य कौशल से वंचित रहने के कारण अप्रगल्भ बुद्धि से ही यह अतिद्वयी (सर्वश्रेष्ठ) कथा निर्मित की।।२०।।

संस्कृत व्याख्या– तेन द्विजेन= तथोक्तेन ब्राह्मणेन (बाणभट्टेन इत्यर्थः) महापण्डितस्य चित्रभानोः पुत्रेण इति 'तेन' पदप्रयोगस्य अभिप्रायः। **अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया**=न क्षतम् अक्षतम् असमाप्तम् अविनष्टम् वा कण्ठस्य गलस्य कौण्ठ्यम् जडत्वम् यस्याः सा तया (बहुव्रीहि समासः), अपरिष्कृत- वाण्या इत्यर्थः। **महामनोमोहमलीमसान्धया**= मनसः मोहः मनोमोहः, महान् यः मनोमोहः चित्तविकारः तेन मलीमसा मलिना अतएव अन्धा विवेकशून्या उचितानुचित प्रतिपादनासमर्था। **अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया**= न लब्धः अलब्धः अप्राप्तः य वैदग्ध्यस्य वैदुष्यस्य विलासः लीलाचातुर्यम् तेन मुग्धामूढ़ा तदा (बहुव्रीहि)। **धिया**-बुद्ध्या। **इदम्**=एषा। **अतिद्वयी** = अतिक्रान्तं द्वयं यथा सा अतिद्वयी प्रतिस्पर्धाशून्या, सर्वश्रेष्ठा वा। **कथा**= परिभाषितः विशिष्ट गद्यबन्धः। **निबन्धा**=निर्मिता, शब्दार्थैः गुम्फिता।।२०।।

कोश– हृदयं हृन्मानसं मनः, मुग्ध सुन्दरमूढयोः प्रबन्ध कल्पना कथा– इत्येते अमरकोशतः।

टिप्पणी– तेन= उससे। यह इस सर्वनाम का प्रयोग करके कवि सूचित करता है कि वह उस महापण्डित और उत्तम ब्राह्मण चित्रभानु का पुत्र है। **द्विजेन** = सामान्यतः द्विज का अर्थ यहां ब्राह्मण है। (द्विज के चन्द्रमा' और 'दाँत' अर्थ भी होते हैं।) किन्तु संस्कारैर्द्विज उच्यते के अनुसार संकेतित है कि बाण के उपनयनादि सभी संस्कार यथाबिधि सम्पन्न हो गये थे। **अतिद्वयी-** भानुचन्द्र ने अपनी कादम्बरी टीका में इसकी व्याख्या की है– द्वयी बृहत्कथा वासवदत्ता चातिक्रान्तेत्यर्थः। अर्थात् गुणाढ्यकृतबृहत्कथा और सुबन्धुकृत वासवदत्ता इन दोनों कथा ग्रन्थों को सर्वतोभावेन पछाड़ देने वाली। कुछ लोग सुबन्धु को बाण का पश्चातवर्ती मानते हैं। ऐसी स्थिति में उक्त व्याख्या संगत न होगी। गुणाढ्य बाण से पूर्ववर्ती है फिर एक और पूर्ववर्ती कथा ग्रन्थ होना चाहिए और इस क्रम में कादम्बरी तीसरा संस्कृत कथा ग्रन्थ होना चाहिए।

इस श्लोक से बाणभट्ट अपनी निर्भिमानता सूचित करते हैं।

आसीदशेषनरपतिशिरः समभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमाला-मेखलाया भुवो भर्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्ष्मणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः गुह्य इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डल, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तरविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः मेरुरिव सकलोपजीव्यमानपादच्छायः दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः, कर्ता महाश्चर्याणाम्, अहर्ता क्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनम्, गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य,

उत्पातकेतुरहितजनस्य प्रवर्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्, आश्रयो रसिकानाम्, प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, वैनतेय इव विनतानन्दजननः वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितारातिकुलाचलो राजा शूद्रको नाम।

हिन्दी अनुवाद–

(प्राचीन काल में पृथिवी पर) दूसरे इन्द्र के समान (प्रतापी) 'शूद्रक' नामक एक राजा था जिसकी आज्ञा को समस्त राजा गण सिर झुकाकर स्वीकार करते थे। वह चारों समुद्रों की मेखला वाली (अर्थात् चारों समुद्रों से घिरी हुई) पृथ्वी का स्वामी था। उसके प्रताप और प्रेम के कारण सभी सामन्त उसके समक्ष नतमुख रहते थे। चक्रवर्ती सम्राट् के समस्त शुभ लक्षणों से युक्त उस शूद्रक के करकमलों में चक्रधर भगवान् विष्णु के समान शङ्ख-चक्र के चिह्न स्पष्ट दिखायी देते थे। भगवान् शिव की तरह उसने काम को जीत लिया था। कार्तिकेय के समान अबाध शक्ति से सम्पन्न था। जैसे ब्रह्मा ने राजहंसो को अपना विमान (सवारी=यान) बनाया है, वैसे उसने भी समस्त श्रेष्ठ राजाओं को मानरहित अर्थात् निरभिमान कर दिया था। वह समुद्र के समान लक्ष्मी (धन सम्पत्ति) का उद्गम था। भगीरथ के मार्ग का अनुसरण करने वाले गङ्गा-प्रवाह की भाँति वह भी भगीरथ द्वारा प्रदर्शित कठोर साधनों के मार्ग पर चलने वाला था। सूर्य के समान प्रतिदिन उदय (अभ्युन्नति, उत्थान) प्रदान करने वाला था। सभी देवों को अपनी छाया में रखने वाले सुमेरु पर्वत की तरह अपने आश्रितों को अपने चरणों की छाया में रखने वाला था। सदैव मदजल से गीली रहने वाली सूँड़ धारण करने वाले दिग्गजों के समान जिस शूद्रक का (दाहिना) हाथ सदैव दान देने के (संकल्प) जल से गीला रहता था। बड़े-बड़े शास्त्रों का आदर्शभूत था। सभी कलाओं का उद्गम स्थान था। सभी गुणों का परम्परागत आश्रयस्थान था। अमृत सदृश रस की वर्षा करने वाले काव्य का स्रोत-प्रवाह था। जैसे उदयागिरि पर सूर्यमण्डल का उदय होता है वैसे ही अपने मित्रों के लिए वह उत्कर्ष का उदयाचल था। अपने शत्रुओं के लिए वह धूमकेतु (के समान भयङ्कर) था। विद्वद् गोष्ठियों की श्रृङ्खला का प्रवर्तक था। वह रसिक-जनों का आश्रयदाता था। वह धनुर्धरों को मात देने वाला था। साहसी वीरों का वह अग्रणी था। वैदुष्यमण्डित पण्डितजन का वह मुखिया था। जैसे गरुण अपनी माता विनता को आनन्दित करते थे, वैसे ही राजा शूद्रक विनत (विनम्र) जनों का आनन्ददाता था। जैसे वेन पुत्र पृथु ने अपने धनुष के अग्रभाग से कुछ पर्वतों को हटा दिया था वैसे ही राजा शूद्रक ने भी अपने धनुषाग्र से पहाड़ जैसे अडिग शत्रुओं को सफाया कर दिया।

संस्कृत व्याख्या– अथ महाकविर्बाणभट्टः कादम्बरीकथायां प्रास्ताविकरूपेण भूमिकां निर्व्यूढमाणः शूद्रकनरपतेः वर्णनं प्रस्तौति– आसीदिति। दूरस्थस्यानुच्छेदान्तपदस्य 'राजा शूद्रको नाम' इत्यस्य अन्वयः आसीत् इति पदेन। कविः राजानं शूद्रकं नानाप्रकारैर्विशेषयति तस्य महिमानं प्रख्यापयितुम्। **अशेषनरपति०** = न शेषाः अशेषाः अखिलाः ये नराणां मनुष्याणां पतयः स्वामिनः नरपतयः राजानः तेषां शिरोभिरुत्तमाङ्गैसमभ्यर्चितं (सम् +अभि+ अर्चितम्) सादरं स्वीकृतं शासनम् आदेशवचनम् यस्य सः तथोक्तः। **अपरः पाकशासनः इव** =(भूगतः) द्वितीयः इन्द्रः इव। **चतुरुदधि०**=चत्वारश्च ते उदधयश्चेति चतुरुदधयः चतुःसागराः तेषाम् माला पङ्क्तिः सैव मेखला कटिसूत्रम् सीमा, मर्यादा वा यस्याः तथोक्तायाः भुवः पृथ्वीमण्डलस्य भर्ता स्वामी, सार्वभौमः इति। **प्रतापानुराग**=प्रताप तेजः अनुरागः प्रेम, ताभ्याम् अवनतम् भयस्नेहवशात् अभिभूतम् समस्तं सामन्तचक्रम् अधीनस्थः राजसमुदायः यस्य सः तथोक्तः। चक्रवर्तिलक्षणोपेतचक्रवर्तिनां सार्वभौम राज्ञां यानि लक्षणानि ज्योतिष्शास्त्रे प्रथितानि तैः उपेतः

समन्वितः। **चक्रधर इव कर**-=चक्रधरः विष्णुः इव करौ हस्तौ कमले इव तत्रोपलक्ष्यमाणं चक्षुविषयीक्रियमाणं शङ्खचक्रलाञ्छनं शङ्खचक्रचिह्नं यस्य सः तथाभूतः। **हर इव जितमन्मथः** = हरः त्रिलोचनः इव जितः मन्मथः कामदेवः येन सः तथाभूतः। **गुह इव अप्रतिहतशक्तिः** = गुहः कार्तिकेयः इव अप्रतिहता प्रतिरोधहीनाशक्ति आयुधविशेषः सामर्थ्यविशेषः वा यस्य सः तथोक्तः। **कमलयोनिरिव विमानी** = कमलयोनिः ब्रह्मा इव विमानं व्योमयानं तद्रूपीकृतं राजहंसमण्डलम् पक्षिविशेषसमूह येन सः तथोक्तः अथवा, विगतः मानः अभिमानः यस्य तत् विमानं तथा विहितं राजहंसानां नृपति श्रेष्ठानां मण्डलं गणः येन सः तथोक्तः। **जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूति**= जलधिः पयोधिः इव लक्ष्म्याः श्रियः धनसम्पदः प्रसूति जनस्थलम्। **गङ्गाप्रवाह इव भगीरथ**= गङ्गायाः भगीरथ्याः जलस्य प्रवाहः धारा इव भगीरथस्य तन्नाम्नः इक्ष्वाकुवंशोत्पन्ननृपस्य पन्थाः निजपितृगणानुद्धर्तुं कृता कठोरसाधना, तत्र प्रवृत्तः। यथा भगीरथः तथायमपि 'आफलोदयकर्मणाम्' इति न्यायेन कृतसङ्कल्पवृत्तिः। **रविः इव प्रतिदिवस**=रविः सूर्य इव प्रतिदिवसम् अनुदिनम् अपजायमानः सम्पद्यमानः उदयः आविर्भावः अभ्युन्नतिः वा यस्य सः तथोक्तः। **मेरुरिव सकलो०**=मेरुः स्वर्णगिरिः इव सकलैः समस्तलोकैः उपजीव्यमाना सेव्यकान्ता पादच्छाया चरणप्रभा यस्य सःतथोक्तः। **दिग्गज इव अनवरत**= दिग्गजः दिक्कुञ्जरः इव अनवरतम् निरन्तरम् प्रवृत्तेन विनिर्गतेन दानेन मदजलेन आर्द्रीकृतः क्लिन्नकृतः करः शुण्डः यस्य सः तथोक्तः। पक्षे तु, निरन्तरं प्रवृत्तेन विहितेन दानेन दानार्थं गृहीतेन जलेन सिक्तः करः हस्तः यस्य सः तथोक्तः। **कर्ता महा०** = कर्ता निष्पादकः महाश्चर्याणाम् महाविस्मयकारिकर्मणाम्। **आहर्ता क्रतूनाम्** = आहर्ता प्रायोजकः क्रतूनाम् यज्ञानाम्। **आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्** = आदर्शः दर्पणः प्रतिमानो वा सर्वशास्त्राणाम् सर्वनियामकवाङ्मयानाम्। **उत्पत्तिः कलानाम्**= उत्पत्तिः प्रभवः कलानाम् नृत्यगीतादि चतुःषष्टिकलानाम्। **कुलभवनं गुणानाम्**= कुलभवनम् कुलपरम्परागतप्रासादः गुणानाम् दयादाक्षिण्यशौर्यादीनाम्। **आगमः काव्यामृतरसानाम्** = आगमः उद्भवस्थानम् काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणं कविकर्म तेषां येऽमृतरसाः अमृतास्वादश्रृङ्गारादिरसाः तेषाम्। **उदयशैले मित्रमण्डलस्य** = उदयशैलः उदायचलः मित्रमण्डलस्य रविबिम्बस्य; पक्षे अभ्युदयाश्रयः सुहृद्गणस्य। **उत्पातकेतुरहितजनस्य**= उत्पातकेतुः धूमकेतुः महदनिष्टकरः अहितजनस्य शत्रोः। **प्रवर्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्** = प्रवर्तयिता प्रवर्तकः सञ्चालको वा विद्वद्गोष्ठीसत्राणाम्। **आश्रयो रसिकानाम्**= आश्रय अवलम्बः रसिकानाम् सहृदयरसज्ञानाम्। **प्रत्यादेशो धनुष्मताम्**= प्रत्यादेशः निवारकः धनुष्मताम् धनुर्धारिणाम्। **धौरेयः साहसिकानाम्**=धौरेयः अग्रणीर्धुरन्धरो वा साहसिकानाम् दुष्कर कर्मकुर्वताम्। **अग्रणीर्विदग्धानाम्**= अग्रणीः प्रमुखः विदग्धानाम् शास्त्रकाव्यकलाकोविदानाम्। **वैनतेय इव विनताः**= वैनतेयः गरुड इव विनतानन्दजननः निजमातृप्रीतिकर्ता। पक्षे विनतेभ्यःविनयशीलेभ्यः आनन्दस्य सुखोल्लासस्य जननः उत्पादकः। **वैन्य इव चाप०** = वैन्यः वेनात्मजः पृथुः इव चापस्य धनुषः कोट्या अग्रभागेन समुत्सारिताः समपाकृताः स्थानान्तरं प्रापिता वा आरातयः भूवेष्टकाः कुलाचलाः सप्तसंख्याकाः कुलपर्वताः येन स तथोक्तः। पक्षे, धनुषः कोणाग्रेन समुन्मूलिता अरातयः शत्रवः (एव कुलाचला बद्धमूलाः दृढस्थिताः) येन स तथोक्तः (शूद्रको नाम राजा)।

टिप्पणी– अनुच्छेद के प्रारम्भ में 'आसीत्' इस भूतकालिक क्रियापद का प्रयोग करके बाण ने 'शूद्रक' के प्रख्यात होने की सूचना दी है। इस प्रकार प्रयुक्त क्रिया पद सूचित करता है कि यह इतिहास प्रसिद्ध है, ऐतिह्य नहीं। इस अनुच्छेद में मुख्य वाक्य है– 'आसीत् राजा शूद्रको नाम। शेष

प्रयुक्त पद शूद्रक के विशेषण हैं। पद्यात्मक मङ्गलाचरण और कविवंश परिचयादि के पश्चात् इस गद्यात्मक अनुच्छेद से 'कादम्बरीकथा' प्रारम्भ होती है। इस आरम्भिक अंश को 'कादम्बरीकथामुख' कहा जाता है। समभ्यर्चित– सम्+अभि+अर्च+क्त। पाकशासनः– इन्द्र का पर्याय 'पाक' नामक असुर का वध करने के कारण इन्द्र को 'पाकशासन' कहा जाता है– पाकं सादितवान् इति। 'विडौजाः पाकशासनः' अमरकोश वाक्य में 'शासनः पाकशासनः' प्रयोग में 'शासन' पद की आवृत्ति होने से यमक अलङ्कार है। चक्रवर्तिलक्षणोपेतः– चक्रवर्ती सम्राट के लक्षण से युक्त। ज्योतिष्शास्त्र में 'चक्रवर्ती' के लक्षण बताये गये हैं–

अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मुहुः।

चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम्।।

कमलयोनिः– कमलं योनिः उत्पत्तिस्थानम् यस्य सः ब्रह्मा। ब्रह्मा की उत्पत्ति भगवान् विष्णु की नाभि में स्थित कमल में मानी जाती है। **राजहंसः**– एक उत्तम प्रजाति के हंस जो मानसरोवर में निवास करते हैं। इनकी चोंच और पैर लाल रंग के होते हैं और शेष शरीर श्वेत होता है– 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैः लोहिताः सिताः'– अमर। **गङ्गा०**– पौराणिक कथा के अनुसार, इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न महाराज सगर ने जब सौवां अश्वमेध यज्ञ किया तो इन्द्र ने भय और ईर्ष्या से उनके दिग्विजय सूचक अश्व को चुरा लिया और पाताल में ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। सगर के साठ हजार पुत्रों ने पृथ्वी खोद डाली और उन्हें वह अश्व कपिल मुनि के पास बँधा मिला। सगर-पुत्रों ने समाधिस्थ कपिल को ही अश्व चुराने वाला ढोंगी मुनि समझा और उत्पात मचाने लगे। कपिल ने आँखें खोलकर देखा तो वे साठ हजार क्षत्रिय कुमार जल मरे। उन्हीं के वंश में हुए महाराज भगीरथ ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा, विष्णु और शिव को प्रसन्न किया और स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर उतार कर अपने उन दग्ध पुरखों का उद्धार किया। गङ्गा को इसी लिए 'भागीरथी' भी कहते हैं। **मेरु–** यह एक पौराणिक पर्वत है जो पृथ्वी के मध्य में है और ऊँचा इतना है कि सूर्यमण्डल से कुछ ही नीचे हैं। यह स्वर्ण निर्मित है और इस पर देवता विचरण करते हैं। इसी कारण इसे 'सुमेरु' भी कहते हैं। इसके शिखराग्र पर इक्कीस स्वर्ग हैं– 'एकविंशत्यमी स्वर्गा निर्मिता मेरुमूर्धनि।' **दिग्गज०**– आठों दिशाओं की रक्षा करने वाले दिव्य हाथियों को दिग्गज कहा जाता है। दिग्गजों के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं–

'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।

पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।।

आदर्शः– दर्पण। 'दर्पणे मुकुरादर्शौ' अमर०। **उत्पातकेतुः–** पुच्छलतारा। कहा जाता है कि पुच्छलतारा का दिखाई पड़ना महान् अनिष्ट का सूचक होता है। **धौरेयः**– धुरं वहति इति धौरेयः। सबसे आगे रहने वाला। धुर् +ढक्= एय। **वैनतेय–** विनताया अपत्यं पुमान्। विनता+ढक्=एय। गरुड़ पक्षी। **वैन्य कुलाचलः**– वेन के पुत्र पृथु ने पृथ्वी को समतल और कृषि योग्य बनाने के लिए अपने धनुष के अग्रभाग (कोटि) से पर्वतों को उखाड़ कर एक जगह किया था। कुलाचल सात कहे गये हैं–

'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिभानृक्षपर्वतः।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।।'

इस अनुच्छेद में 'चक्रधर' से लेकर 'दिग्गज इव' तथा 'वैनतेय' से 'कुलाचल' तक पूर्णोपमाऽलंकार है। 'कर्ता' से प्रारम्भ अंश में एक ही राजा शूद्रक का अनेक रूप से उल्लेख होने के कारण 'उल्लेख' अलङ्कार है। 'उत्पातकेतु' वाले अंश में राजा पर उत्पातकेतु का आरोप होने से 'रूपक' अलङ्कार है। 'मित्रमण्डलस्य' में श्लेष अलङ्कार है।

नाम्नैव यो निर्भिन्नारतिहृदयो विरचितनारसिंह रूपाडम्बरम्, एकविक्रमाकान्त सकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितं भुवनत्रयं च हसति स्मेव वासुदेवम्।

अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसंपर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य कृपाणधाराजले चिरमुवास लक्ष्मीः। यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य। यस्य च मदकलकरिकुम्भपीठपाटनं विदधतो लग्नस्थूलमुक्ताफलेन दृढमुष्टिनिपीडनान्निष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेणेव कृपाणेनाकृष्यमाणा, सुभटोरःकपाट- विघटितकवचसहस्रान्धकारमध्यवर्तिनी करिकरटगलितमदजलासारदुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपं सकृदगाद्राजलक्ष्मीः। यस्य च हृदिस्थितानपि भर्तृन्दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपिरिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।

हिन्दी अनुवाद– जिस (महाराज शूद्रक) ने नृसिंहावतार लीला शरीर धारण करके (मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा का स्वरूप प्राप्त करके) अपने नाम से ही शत्रुओं का हृदय विदीर्ण करके और अपने एकमात्र पराक्रम से समस्त पृथिवीमण्डल को आक्रान्त करके (वामन रूप धारण कर) तीन विक्रम (पग) से तीनों भुवनों को व्याप्त करके मानो श्रीविष्णु भगवान् का उपहास कर रहा था। अति चिरकाल से हजारों अधम राजाओं के सम्पर्क से प्राप्त कलङ्क को धोती हुई लक्ष्मी मानो आत्मशुद्धि के लिए जिस (राजा शूद्रक) के कृपाण के धाररूपी जल में बहुत समय से निवास कर रही थी। और, जो मन में धर्म, क्रोध में यम, प्रसन्नता (कृपा या उदारता) में कुबेर, प्रताप में अग्नि, भुजाओं में पृथ्वी, दृष्टि में लक्ष्मी, वाणी में सरस्वती, मुख में चन्द्रमा, बल में मरुत (वायु) प्रतिभा में देवगुरुबृहस्पति, रूप में कामदेव और तेज में सूर्य के द्वारा निवास करने से विश्वरूपता को प्रकट करने वाले, सर्वदेवमय भगवान् नारायण (विष्णु) का अनुकरण करता है। मतवाले हाथियों के मस्तक को विदीर्ण करते हुए अतः तलवार में लगे हुए बड़े-बड़े मोतियों के दानों से, मानो मुट्ठी से मजबूत पकड़ के कारण निकलते हुए पसीने की बूदों से और अधिक तीक्ष्ण (पानीदार) कृपाण के द्वारा आकृष्ट की जाती हुई, वीर योद्धाओं के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने से हजारों कवचों के अन्धकार के बीच स्थित राजलक्ष्मी जिसके पास मतवाले हाथियों के गण्डस्थान से झरते हुए मदजल के बूँदों के कारण दुर्दिन जैसी युद्ध रात्रियों में अभिसारिका की तरह (स्वयं) बार-बार जाती थी। शत्रुसुन्दरियों के हृदय में बैठे हुए उनके पतियों को मानो जलाकर भस्म करने के लिए जिस (शूद्रक) की प्रतापाग्नि उन पतियों से वियुक्त शत्रु सुन्दरियों के हृदय में सन्ताप उत्पन्न करने के लिए रात-दिन जला करती है।

संस्कृत व्याख्या–नाम्नैव=नाम्ना **एव**=गृहीतनाममात्रेण। **यः** =शूद्रकः। **निर्भिन्नारातिहृदयः**= निर्भिन्नानि विपाटितानि आरातीनां शत्रूणां हृदयानि मर्माणि येन सः। **विरचित नरसिंहरुपाडम्बरम्**=विरचितं प्रकल्पितं नारसिंहरूपस्य नृसिंहावतारस्य आडम्बरम् वेषभूषादिकम्। **एक विक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलः**= एकेन अद्वितीयेन विक्रमेण पराक्रमेण आक्रान्तम् अधिगृहीतं स्ववशीकृतं वा सकलँ सम्पूर्णं भुवनतलं पृथ्वीलोकं येन सः तथोक्तः। **विक्रमत्रयायासितम्**= विक्रमम्ः पदन्यासः तस्य त्रयं त्रितयं तेन आयासितं खेदयुक्तं कृतं येन तं तथोक्तम्। **भुवनत्रयम्**=त्रैलोक्यम्। **वासुदेवम्** = श्रीविष्णुं कृष्णं वा। **हसति स्म इव**= उपहसितं स्म इव।

प्रथमं वामनवपुः पश्चाच्च विराड्रूपो भूत्वाऽपि विष्णुः त्रैलोक्यं पादत्रयेण विममे किन्त्वयं राजा शूद्रकः एकेनैव विक्रमेण सकलं भुवनम् अधिगृहीवान् अतः विष्णुमुपहसति स्म। **अतिचिरकाल०** = यस्य राज्ञः (शूद्रकस्य) कृपाणधाराजले खड्गधारारुपे जले पानीये अतिचिरकालेन अत्यन्तप्रभूतसमयेन लग्नं स्ववपुषि चरित्रे वा सङ्क्रान्तम्, कुनृपतीनां यत् सहस्रं कुत्सितराज्ञां यः समूहः तस्य सम्पर्केण सन्निधानेन यः कलङ्को दूषितलाञ्छनं तं क्षालयन्ती इव प्रमार्जयन्ती इव राजलक्ष्मीः राजश्रीः चिरम् बहुकालपर्यन्तम् उवास निवासं चकार। **यः च**=यः शूद्रकः। **मनसि**=अन्तःकरणे। **धर्मेण**=पुण्यफलेन। **कोपे**=क्रोधे। **यमेन**=यमराजेन। **प्रसादे** = अनुग्रहे। **धनदेन** = कुबेरेण। **प्रतापे** = बलोर्जसि। **वह्निना**=अग्निना। **भुजे**=बाहौ। **भुवा**=पृथिव्या। **दृशि**=दृष्टौ। **श्रिया**=लक्ष्म्या। **वाचि**=वचने, कथने वा। **सरस्वत्या**=वाग्देव्या। मुखे=वक्त्रे। **शशिना**=चन्द्रमसा। **बले**=शक्तिचये। **मरुता**=वायुना। **प्रज्ञायाम्**=प्रतिभायाम्। **सुरगुरुणा**=बृहस्पतिना। **रूपे**=शोभातिशये। **मनसिजेन**=कामदेवेन। **तेजसि**=दीप्तौ, बलोर्जसि वा। **सवित्रा**=सूर्येण। **वसता**=निवसता। **सर्वदेवमयस्य**=सर्वे च ते देवाश्च सर्वदेवाः तेषां स्वरूपः सर्वदेवभयः तस्य। **प्रकटित विश्वरूपाकृतेः** = प्रकटिता प्रकाशिता विश्वरूपाकृतिः निखिलब्रह्माण्डव्याप्तस्वरूपं येन स तथोक्तः तस्य। **अनुकरोति**= तथा तथा चरति। **भगवतो नारायणस्य** = अनन्तैश्वर्यादिगुणसम्पन्नस्य विष्णोः। **यस्य च** = शूद्रकस्य। मदकरणाकरिकुम्भ **पाटनम्**=मत्तकुञ्जरमस्तकविदारणम्। **विदधतः** = सम्पादयतः। **लग्नस्थूलमुक्ताफलेन** = संश्लिष्टानि पीवराणि मौक्तिकानि यस्मिन् स तथोक्तः तेन। **दृढमुष्टि०**=दृढेन सशक्तेन मुष्टिना यन्निपीडनं तस्माद्हेतोर्निष्ठ्यूतं निर्गतं यत् धाराजलं धारा रूपं पानीयम् तस्य ये बिन्दवः स्थूलशीकराःतैः दन्तुरेण इव विषमेण इव उच्चावचेन इव। **कृपाणेव** = असिना। **आकृष्यमाण**=सर्वतोभावेन गृह्यमाणा। **सुभटोरःकपाट** = सुभटाः प्रतिपक्षिणो योद्धारः तेषाम् उरांसि वक्षःस्थलानि एव कपाटानि तथाभूतानि लौहमयानि कवचानि वर्माणि तेषां यत्सहस्रं तदेव अन्धकारः (कृष्णलौहवर्णसाम्यात्) अन्धन्तमः तस्य मध्यवर्तिनी अन्तःस्थिता। करिकरटगलित करिणां गजानां करटानि गण्डस्थलानि तेभ्यो गलितं अवस्रुतम् यद् मदजलं दानवारि तस्य आसारः प्रवर्ष : तेन दुर्दिनम् मेघाच्छन्नो दिवसः यासु तांस्तथोक्तास्तासु। **समरनिशासु**=युद्धरात्रिषु। **अभिसारिका इव**= प्रियतमं प्रति स्वयमागता नायिका इव। **समीपम्** =पार्श्वम्। **सकृत्** = एकवारम्। **राजलक्ष्मीः अगात्** =राजश्रीः अगमत्। **यस्य च** = शूद्रकस्य च। **प्रतापानलः**=प्रतापः तिग्मानुभावः तेजः एव अनलः अग्निः। **हृदि**=मानसे। **स्थितानपि**=वर्तमानान् अपि। **भर्तॄन्** =प्रियतमान् स्वामिनः। **दिधक्षुः इव**=वियोगिनीनाम् **अपि**=पतिवियुक्तानाम् अपि। रिपु-सुन्दरीणाम्=शत्रुरमणीनाम्) **अन्तर्दाहः** =अन्तःसन्तापः। **दिवानिशम्** = अहोरात्रम्। **जज्वाल** =प्रदीप्तो बभूव।

टिप्पणी– **निर्भिन्न**– निर्+भिद्+क्त। **आक्रान्त**– आङ्+क्रमु+क्त। **नाम्नैव** ....**वासुदेवम्**– इस वाक्यांश में उपमानभूत वासुदेव से उपमेयभूत राजा शूद्रक का उत्कर्ष वर्णित होने से व्यतिरेक अलङ्कार है। उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेक स एव सः। **'हसति स्म इव'** में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। अतः यहाँ दोनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से 'सङ्कर' अलङ्कार है। **क्षालयन्ती इव**– क्षल् + णिच् + शतृ+ ङीप् = क्षालयन्ती। यह क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है। **कृपाणधाराजले** में रूपक अलङ्कार है। दोनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर अलङ्कार है। **कोपे**– कुप् + घञ्, सप्तमी विभक्ति एक वचन। **प्रसादे**– प्र+सद्+घञ्, सप्तमी वि० ए०व०। धनदेन धनं ददाति इति

धनदः तेन (तृतीया वि०, एकवचन)। **प्रतापे** – प्र+तप्+घञ्, सप्तमी वि० ए०व०। **सरस्वती**– 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाणवाणी सरस्वती अमरकोश। **प्रज्ञा**– प्रकृष्टं ज्ञायतेऽनया इति प्रज्ञा। धीःप्रज्ञाशेमुषी मतिः अमरकोश। **मनसिजेन**–मनसि जायते इति मनसिजः तेन। मनसि+जन्+ड (जनेर्ड) **सवित्रा**–सूयते चाराचरं जगदनेनेति सविता। सवितृ, तृतीया वि० एक वचन। 'तपनः सविता रविः' – **अमरकोश। नारायणः**–नृणां समूहो नारं तत् अयनं यस्य स नारायणः। अथवा नारे जले अयनं स्थितिः यस्य स नारायणः। नारायण केशवो हरिः। **पाटनम्**–पट्+णिच्+ल्युट्। निष्पीडनम्–निस्+पीड्+ल्युट्। दोनों में ल्युट् को अन् हुआ है। दन्तुरः दन्त+ उरच्। **निष्ठ्यूतः** – नि+ष्ठिव् +क्त। **आकृष्यमाणा**– आङ्+कृष+यक्+शानच। **अभिसारिका**– काम के वशीभूत दत्तसंकेत जो नायिका नायक से एकान्त में मिलने के लिए छिप कर स्वयं जाती है अथवा नायक को बुलाती है, उसे नाट्यशास्त्र में 'अभिसारिका' कहा जाता है–

'कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाऽभिसारिका।'' (दशरूपक, 2.27)।

गद्य के इस अंश में क्रियोत्प्रेक्षा, रूपक और उपमालङ्कार प्रयुक्त हुए हैं। **दिधक्षुः**= दह् + सन् + उ। दाहः– दह्+घञ्। **जज्वाल**–ज्वल्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्का, रतिकलहेषु दूतप्रेषणानि, सार्यक्षेषु शून्यगृहा न प्रजानामासान्। यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करग्रहणम्, अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरंगेषु कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत।

हिन्दी अनुवाद–समस्त संसार को जीत लेने वाला राजा (शूद्रक) जिस समय पृथिवी का पालन कर रहा था (शासन कर रहा था); उस समय, चित्रनिर्माण में ही वर्णसङ्कर (रंगों का मिश्रण) होते थे, प्रजाजनों में कोई वर्णसङ्कर न था। सम्भोग (क्रीडा) में ही स्त्रियों के केश खींचे जाते थे, न कि प्रजा में (कलह में)। काव्यों में ही (समासादि द्वारा) दृढ़बन्धों (सुस्थिर पदों) की योजना की जाती थी, प्रजाजनों में कोई प्रगाढ बन्धन में नहीं पड़ता था। शास्त्रों में ही तत्त्वचिन्तन होता था, प्रजाजनों में किसी बात की चिन्ता न थी। स्वप्न में ही वियोग होते थे, वस्तुतः प्रजाजनों में किसी कारणवश प्रियजनों का वियोग नहीं होता था। छत्रों (राजकीय छातों) में ही स्वर्णनिर्मित दण्ड (पकड़ने की डण्डी) लगाते थे। प्रजाजनों में किसी को स्वर्ण का अर्थदण्ड नहीं लगाया जाता था। पताकाओं में ही कम्पन होता था, प्रजाजनों में भय के अभाव में कोई नहीं काँपता था। गीतों में ही नाना प्रकार के रागों का प्रयोग था, प्रजाजनों में परस्पर राग-द्वेष न था। हाथियों में मदजल का निकलना दिखायी पड़ता था, प्रजाजनों में अहंकार जैसा विकार (अथवा मदिरासेवन से उत्पन्न विकृतियाँ) नहीं था। धनुषों में ही प्रत्यञ्चा (डोरी) टूटता था, प्रजाजनो में सद्गुणों का अभाव न था। खिड़कियों में ही जालियां लगायी जाती थीं, प्रजाजनों में छलकपट का मार्ग नहीं था। चन्द्रमा, तलवार और कवचों में ही कलङ्क (विशेष चिन्ह) थे। प्रजाजनों में किसी पर कोई कलङ्क (दुर्लाञ्छन) न था। प्रणय-कलहों में ही सन्देशवाहकों का प्रयोग होता था, युद्धादि के विवाद में नहीं। चौपड़ या शतरंज के फलकों (बिसातों) में स्थान सूना रहता था, प्रजाजनों में किसी का घर (धन या स्त्री-बच्चों से) सूना न था। और, जिस राजा के राज्य में, लोगों को केवल परलोक

(बिगड़ने) का भय था (न कि किसी अन्य प्रकार का।)। अन्तःपुर में रहने वाली नारियों (रानी आदि) के केशों में ही कुटिलता (बालों को तुड़वाकर घुंघराला बनाना) थी (न कि प्रजानों में) नुपुरों में ही मुखरता (तनिक भी हिलने पर बज उठना) थी (अन्य कोई बकवासी नहीं था)। विवाहों में ही पाणिग्रहण होता था (प्रजा से कर नहीं लिया जाता था। निरन्तर हो रहे यज्ञों का धुआँ लगने से ही आँखों से आँसू गिरते थे। किसी विपत्ति या कष्ट के कारण कोई नहीं रोता था)। सवार अपने घोड़ों पर ही द्रुतगति के लिए कोड़े बरसाते थे (प्रजाओं पर दण्डस्वरूप कोड़े नहीं मारे जाते थे)। केवल कामदेव के ही धनुष की टंकार होती थी। (विवाद या कलह न होने से युद्ध में धनुष की टंकार नहीं होती थी)।

संस्कृत व्याख्या– यस्मिन् च राजनि=यस्मिन् च भूपाले। **जितजगति**=स्वायत्तीकृतसंसारे। **महीम्**=पृथिवी धरामण्डलम् वा। **पालयति**=पोषयति सति, शासति सति वा। यदा राजा शुद्रकोऽवनीं विजित्य पृथ्वीं शासति स्म इत्यर्थः। तदानीमत्रवक्ष्यमाणं वस्तुजातं घटनाचक्रं वा तत्तत्स्थलेष्वेव बभूव न तु प्रजाजनेषु इति अन्वयो बोधव्यः। तथा हि– **चित्रकर्मसु**=आलेखनेषु। **वर्णसङ्कराः**=वर्णः रक्तपीतादयः तेषां सङ्कराः परस्परमिश्रणानि। अपरपक्षे, वर्णाः ब्राह्मणादयः तेषां सङ्कराः अन्यतोऽन्योत्पत्तिः। **रतेषु**=सम्भोगेषु। केशग्रहाः कचाकर्षणानि। अपरपक्षे, नान्यत्र कलहाभावात्। काव्येषु=लोकोत्तरकविकर्मसु। **दृढ़बन्धाः** =ओजःसमासाक्लिष्टपदसंघटनाः। अपरपक्षे, अपराधाभावात् नान्यत्र कठिनबन्धनानि। **शास्त्रेषु**=विविधविद्यासिद्धान्तेषु। **चिन्ता**=चिन्तनं मननं वा। अपरपक्षे, नान्यत्र सर्वोपभोगसुलभत्वात्। **स्वप्नेषु**=स्वप्नदशासु। विप्रलम्भाः विप्रयोगाः, प्रियजनविरहा इत्यर्थः। अपरपक्षे, नान्यत्र कारणाभावात्। **छत्रेषु**=आतपत्रेषु। **कनकदण्डाः** = स्वर्णयष्टयः। अपरपक्षे, नान्यत्र। कर्मनिष्ठापरेषु दण्डविधानाभावात् न तत्कृते सुवर्णग्रहणम्। **ध्वजेषु** = पताकासु। **प्रकम्पाः**=वेपनानि। अपरपक्षे, नान्यत्र भीतेरभावात्। **गीतेषु** = गानेषु। **रागविलसितानि**= भैरवी प्रभृतयः तेषां विलासितानि सुन्दरप्रयोगाः। अपरपक्षे, नान्यत्र, आसक्तेरभावात्। **करिषु**=गजेषु। **मदविकाराः**=दानजलविच्छित्तयः। अपरपक्षे, नान्यत्र गर्वशून्यत्वात्। **चापेषु**=धनुःषु। गुणच्छेदाः= ज्याखण्डनानि। अपरपक्षे, नान्यत्र दयादगक्षण्यादेरभावः। **गवाक्षेषु**=वातायनेषु। **जलमार्गाः**=जलिकाः। अपरपक्षे, नान्यत्र छलछद्मपन्थानः। **शशिकृपाणकवचेषु**= चन्द्रखड्डवर्मसु। **कलङ्का**=लक्ष्मविशेषा। अपरपक्षे, नान्यत्र मिथ्यादोषारोपाः। **रतिकलहेषु**= कामकेलिविवादेषु। **दूतप्रेषणानि**=सन्देहवाहक प्रेषणानि। अपरपक्षे, विरोधाभावे शुद्धादीनामभावात्। **सार्यक्षेषु**=द्यूतफलकेषु। **शून्यगृहाः**=रिक्त प्रकोष्ठाः। अपरपक्षे, नान्यत्र यथाकारणं सम्पन्नेषु विवाहेषु गार्हस्थ्यभावात्। गृहिणी गृहमुच्यते इति न्यायात्। अथवा, अन्नपानादिवस्तूनां सम्भृतत्वात्। **यस्य च** = राज्ञः शूद्रकस्य च। **परलोकात्** = जन्मान्तरात्। **भयम्**=भीतिः। **अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु**=रात्रोऽन्तःपुरेषु भवाः अन्तःपुरिकाः तासां कुन्तलेषु अलकेषु। **भङ्गः**=वक्रता। अपरपक्षे, न्यान्यत्र मानभङ्गः, विध्वंसं पराजयो वा। **नूपुरेषु** =मञ्जीरेषु हंसकेषु वा। **मुखरता**=क्वणनध्वनि। अपरपक्षे, नान्यत्र वाचाणता, वाचालता वा। **विवाहेषु**= उद्वाहेषु संस्कारविशेषेषु। **करग्रहणम्**=पाणिग्रहणम्। अपरपक्षे, नान्यत्र राजदेयद्रव्यग्रहणम्। **अनवरतमखाग्निधूमेन**=निरन्तरयज्ञाग्निधूमेन। अश्रुपातः नयनजलप्रवाहः। अपपक्षे, णान्यत्र अश्रुपातः कष्टाभावात्। **तुरगेषु**=अश्वेषु। **कशाभिघातः**=चर्मयष्टिताडनम्। अपरपक्षे, न्यान्यत्र अनुचित कार्याभावात्। **मकरध्वजे**=कामदेवे। **चापध्वनिः**=कोदण्डटङ्कारः। अपरपक्षे, नान्यत्र युद्ध प्रसङ्गाभावात्। **अभूत्** =अभवत्।।

टिप्पणी– वर्णसंङ्कराः– वर्णानां वर्णेषु वा सङ्कराः। **सङ्करः**– सम् +कृ+अप्। विभिन्न रंगो का मेल,

मिश्रण। ब्राह्मणादि वर्णों में यदि किसी वर्ण की कन्या अन्य वर्ण के पुरुष से शिशु को जन्म देती है तो वह शिशु वर्णसङ्कर कहा जाता है।

शून्यगृहा– शतरंज या चौपड़ के खेल में जो फलक या विसात होती है उसमें खानों में गोट नहीं होती वे रिक्त होते हैं उन्हें 'शून्यगृह' कहा जाता है। प्रजापक्ष में इसका अर्थ है गृहस्थ का सूना घर। प्रथमत: तो 'गृहिणी गृहमुच्यते' और 'गृहं हि गृहिणीहीनमरण्यसदृशं भूतम्' न्याय से अविवाहित शून्य गृह कहा जायेगा। और भी, जिस घर में बच्चों की किलकारी न हो, धन-धान्य पश्वादि न हो, वह 'शून्य गृह' कहा जाता है।

प्रस्तुत गद्यखण्ड में 'वर्णसङ्करा:' से लेकर 'शून्यगृहा:' तक श्लेषानुप्राणित परिसंख्या अलङ्कार का लक्षण है–

किञ्चित्पृष्टम् पृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते।

तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता।। (काव्यप्रकाश, 10, 119)।

'परलोकाद् भयम्' – यहाँ 'भीत्रार्थानां भयहेतु:' सूत्र से परलोक में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

'मकरध्वजे चापध्वनि:' – यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार है। 'ध्वनि' शब्द संस्कृत में पुंल्लिङ्ग है।

बोध प्रश्न

1. कादम्बरी का मङ्गलाचरण किस प्रकार का है? इसमें कवि ने क्या किया है?
2. कादम्बरी-कथा के प्रारम्भ में प्रास्ताविक पद्यों की संख्या कितनी है?
3. कादम्बरी-कथा का प्रारम्भ किसके परिचय से होता है? वह कहाँ का राजा था?
4. 'सरस्वती पाणिसरोज .... इति व्यजायत।।' श्लोक की संस्कृत व्याख्या लिखकर उसकी विशेषता बताइए।
5. बाणभट्ट ने कादम्बरी को 'अतिद्वयी' कथा कहा है। वे दो कथाग्रन्थ कौन हैं जिनसे बढ़कर यह कादम्बरी कथा है?
6. महाराज शूद्रक भगवान् नारायण का अनुकरण कैसे करते थे?
7. 'विक्रमत्रयायासितं भुवनत्रयं च हसति स्मेव वासुदेवम्– में कौन अलङ्कार है।

इकाई 5

प्रश्नोत्तर /व्याख्या–

1. कादम्बरी का मङ्गलाचरण नमस्कारात्मक है। इसें कवि ने त्रिगुणात्मक ब्रह्म को नमस्कार किया है।
2. कादम्बरी-कथा के प्रारम्भ में प्रास्ताविक पद्यों की संख्या 20 बीस है।
3. कादम्बरी-कथा का प्रारम्भ महाराज शूद्रक के परिचय से होता है। वह विदिशा का शासक था।
4. इस इकाई में प्रदत्त श्लोक सं० 19 की व्याख्या और टिप्पणी देखिए।
5. वे दो कथा ग्रन्थ हैं– गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' और सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता'।
6. वे मन में धर्म, क्रोध में यम, कृपा में कुबेर, प्रताप में अग्नि, भुजाओं में पृथ्वी, दृष्टि में लक्ष्मी, वाणी में सरस्वती, मुख में चन्द्रमा, बल में वायु, बुद्धि में बृहस्पति रूप में कामदेव और तेज में सूर्य के विराजमान रहने से सर्वदेवमय होकर विश्वरूपता धारण करने से भगवान् नारायण का अनुकरण करते थे।
7. प्रदत्त वाक्यांश में उत्प्रेक्षालङ्कार है।

इकाई – ०६

तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी, त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा, मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया जलावगाहनागतजयकुञ्जरकुम्भसिन्दूर-संध्यायमानसलिलयोरन्मदकलहंसकुलकोलाहलमुखरीकृतकूलया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधानानगरी राजाधान्यासीत्।

हिन्दी अनुवाद – और उस राजा (शूद्रक) की कलियुग के भय से एकत्र अवस्थित सत्ययुग के समान, तीनों भुवनों की उत्पत्तिभूमि के समान सुविस्तृत विदिशा नामक पुरी राजधानी थी (जो) स्नान करने वाली मालवदेश की सुन्दरियों के (सुकठिन) स्तनों के आघात से छितरायी हुई तरङ्गों के समूह वाली, जल में डूबकर स्नान करने के लिए उतरे हुए जयशील गजराजों के मस्तक पर लगे सिन्दूर (के घुल कर धुल जाने) से सान्ध्यबेला के समान हो गये लाल रंग के जलवाली, मतवाले कलहंसों के कलरव से शब्दायमान तटवाली वेत्रवती (बेतवा) नदी से घिरी हुई थी।

संस्कृत व्याख्या – **तस्य च राज्ञः** = तथोक्तस्य च नृपस्य (शूद्रकस्य)। **कलिकालभय** = कलिकालात् कलियुगात् भयं भीतिः तस्मात्करणात् पुञ्जीभूतं एकत्रकृतावस्थानं यत् कृतयुगं सत्ययुगं तदनुकरोति इति एवं शीला या सा तादृशी। **त्रिभुवन०** = त्रयाणां भुवनानां लोकोनां समाहारः त्रिभुवनम्, तस्य प्रसवभूमिः इव उत्पत्तिस्थानम् इव। **विस्तीर्णा** = सुविस्तृता। **मज्जनमालवविलासिनी०** = मज्जन्त्यः स्नानं कुर्वत्यः मालवविलासिन्यः मालवदेशवर्तिसुन्दर्यः तासां कुचतरानि स्तनप्रान्ताः तेषाम् आस्फालनेन आघातेन जर्जरिताः चूर्णीकृता उर्मिमालाः तरङ्गपरम्पराः यस्याः सा तया। **जलावगाहनागत०** = जलं वारि तत्र अवगाहनाय आलोडनाय आगताः आयाताः जयकुञ्जराः पराभवकारिणो गजाः तेषां कुम्भेषु कपालेषु (शोभार्थम् आरचितं यत्) सिन्दूरं रक्तचूर्णं तेन सन्ध्यायमानं सायंकालवदाचरत् लोहितं भूयमानं सलिलं जलं यस्याः सा, तया। **उन्मदकलहंसकुला०** = उन्मदाः प्रमत्ताः कलहंसाः तेषां कुलानां समूहानां कोलाहलेन कलरवेण मुखरिते शब्दायमाने कूले तटे यस्याः सा तया। **वेत्रवत्या** = वेत्रवती नाम्नी नदी, तया। **परिगता** = परिवेष्टिता। **विदिशाभिधाना** = 'विदिशा' इत्याख्या। **नगरी** = पुरी। **राजधानी** = राज्ञो निवासपुरी, राज्यशासनकेन्द्रञ्च। **आसीत्** = अभूत्।।

टिप्पणी – प्रस्तुत गद्यांश के प्रारम्भ के दो समस्त पद 'राजधानी' के और शेष सभी तृतीयान्त समस्त पद 'वेत्रवत्या' के विशेषण हैं। सभी पदों में बहुव्रीहि समास है। 'पुञ्जीभूत' और 'जर्जरीकृत' में 'च्वि' प्रत्यय है। **अवगाहन** – अव + गाह् + ल्युट्। **अभिधान** – अभि + धा + ल्युट्। 'कालिकालमयपुञ्जीभूत' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'कुचतट.' में अतिश्योक्ति अलङ्कार है। 'सन्ध्यायमान' में क्यङ्-गता उपमा है।

स तस्यामवजिताशेषभुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः, द्वीपान्तरागतानेकभूमिपाल-मौलिमालालालितचरणयुगलो वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्, अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेक-कुलक्रमागतैरसकृदालोचितनीतिशास्त्रनिर्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः समानवयोविद्यालंकारैरनेकमूर्धाभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतैरखिलकला-कलापालोचनकठोरमतिभिरतिप्रगल्भैः कालविद्भिः प्रभावानुरक्त हृदयैरग्राम्योपहासकुशलैरिङ्गिता-कारवेदिभिः काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैरतिकठिन-पीवरस्कन्धोरुबाहुभिरसकृदवदलित समदरिपुगजघटापीठबन्धैः केसरिकिशोरकैरिव विक्रमैकरसैरपि

विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिरचिरमुवास।

हिन्दी अनुवाद – वह (राजा शूद्रक) अपनी उस (राजधानी) में, समस्त पृथिवीमण्डल को जीत लेने से राज्यभार की चिन्ता से मुक्त (अतः) सुखी, देश-देशान्तर से आए हुए राजाओं के मस्तक (मुकुटों) से वन्दित दोनों चरणों वाला, एक कङ्गन की तरह भूमण्डल का भार अनायास ही अपनी भुजा पर धारण किया हुआ, अपनी प्रखर प्रतिभा से देवगुरु बृहस्पति का भी उपहास करने वाले, कुलपरम्परा से आये हुए, निरन्तरनीतिशास्त्र का अनुशीलन करने से विशुद्ध अन्तःकरण वाले, निर्लोभ, स्नेही और प्रबुद्ध मन्त्रियों से घिरे हुए (अर्थात् सतत सेवित), समान आयु, विद्या और अलङ्कारों से भूषित, मूर्धाभिषिक्त राजाओं के वंश में उत्पन्न, समस्त कलाओं में पारङ्गत होने से परिपक्व बुद्धि वाले, अत्यन्त प्रौढ़ व्यवहार वाले, समय की अच्छी पहचान रखने वाले (शूद्रक के) प्रभाव से उनके प्रति हार्दिक अनुराग रखने वाले, शिष्टजनोचित हास-परिहास में कुशल, सङ्केत मात्र से मनोभावों को समझ लेने वाले, काव्य-नाटक-आख्यान-आख्यायिका-चित्रकला-व्याख्यान आदि में निपुण, सुदृढ़ कन्धों, जंघाओं और भुजाओं से अनेक बार शत्रुओं के मतवाले हाथियों के हौदों को मर्दित करने वाले, सिंहशावकों की तरह एकमात्र पराक्रम (प्रदर्शन से) आनन्दित होने वाले होते हुए भी विनम्र आचरण वाले, अपनी ही परछाई के समान राजपुत्रों (क्षत्रिय कुमारों) के साथ विहार करता हुआ, युवावस्था में वर्तमान सुखपूर्वक बहुत दिनों तक रहा।

संस्कृत व्याख्या – **सः** = तथोक्तः शूद्रकः। **तस्याम्** = राजधान्याम्, विदिशापुर्याम्। **अवजिताशेष-भुवनमण्डलतया** – अवजितानि निर्जितानि अशेषाणि समस्तानि भुवनमण्डलानि चतुर्दशभुवनानि येन तस्य भावः तया। **विगतराज्यचिन्ताभारनिवृत्तः** – विगतः दूरीभूतः राज्यस्य चिन्ता राज्यचिन्ता तस्याः भारः दायित्वम् तेन निवृत्तः सुनिश्चिन्तः। **द्वीपान्तरागताः** – अन्ये द्वीपाः द्वीपान्तराणि तेभ्यः आगताः समायताः ये अनेके बहवः भूमिपालाः भूपतयः तेषां मौलयः शिरांसि मुकुटानि वा तेषां मालाः श्रेण्यः ताभिःलालितं सादरं सेवितं चरणयुगलं पादयुग्मं यस्य सः। **वलयम् इव** = कङ्कणम् इव। **लीलया** = हेलया, अनायासेन। **भुजेन** = बाहुना। भुवनभारम् = भुवनस्य लोकस्य भारं भरम्। **उद्वहन** = धारयन्। **अमरगुरुम् अपि** = देवगुरुं बृहस्पतिम् अपि। **प्रज्ञया** = मेधया। **उपहसद्भिः** = उपहासं कुर्वद्भिः। **अनेककुलक्रमागतैः** = अनेकैः बहुभिः कुलक्रमागतैः वंशपरम्परया आगतैः सम्प्रातैः। **असकृदालोचित०** = असकृत् बारं बारं आलोचितैः समीक्षितैः नीतिशास्त्रैः नयशास्त्रग्रन्थैः निर्मलानि विशदानि मनांसि अन्तःकरणानि येषां तैः। **अलुब्धैः** = अलोलुपैः। **स्निग्धैः** = स्नेहभरितैः। **प्रबुद्धैः** = लोकशास्त्रज्ञातृभिः विद्वद्भिः। **अमात्यैः** = परामर्शदातृभिः मन्त्रिभिः। **परिवृतः** = परिवेष्टित सुसेवितः। **समानवयोविद्यालङ्कारैः** = समानानि सदृशानि, वयः आयुः, विद्याः चतुर्दशविद्याः अलङ्काराः आभूषणानि च येषां तैः। **अनेकमूर्धा०** = अनेके बहव मूर्धाभिषिक्ताः विहितराज्याभिषेकाः पार्थिवाः राजानः तेषां कुलेभ्यः वंशेभ्यः उद्गताः समुत्पन्नाः तैः। **अखिलकलाकलाया०** = अखिलानां समग्राणां कलानां नृत्यगीतादिचतुष्पष्टिकलानां कलापस्य समूहस्य आलोचनेन विमर्शेन कठोराः सुदृढ़ाः मतयः धियः येषां तैः। **अतिप्रगल्भैः** = सुपुष्टमतिभिः। **कालविद्भिः** = अवसराभिज्ञैः। **प्रभावानुरक्तहृदयैः** = प्रभावेण विशिष्टानुभावैः अनुरक्तानि प्रीतिलग्नानि हृदयानि येषां ते, तैः। **अग्राम्योपहासकुशलैः** = अग्राम्यः शिष्टः यः परिहासः नर्मवचोविलासः तस्मिन् कुशलैः प्रवीणैः। **इङ्गिताकारवेदिभिः** = इङ्गितं सङ्केतितं तेन आकारं गुह्यं भावं विदन्ति इति तैः। **काव्यनाटका०**=

काव्यरूपककथाऽऽख्यायिका (गद्य विशेष:) चित्रकर्मवक्तृत्वादिप्रयोगदक्षैः। **अतिकठिनपीवर०** =अतिकठिना: अत्यन्त दृढ़ा: पीवरा: स्थूला: पुष्टाश्च स्कन्धा: अंसप्रदेशा: उरव: जङ्घा: बाहव: भुजा: येषां तै:। **असकृदवदलित.** = असकृत् बहुवारं अवदलिता: मर्दिता: समदा: प्रमत्ता: या: रिपुगजघटा: शत्रुकुञ्जरसमूहा: ता: एव पीठबन्धा पृष्ठगतानि आसनानि यैः तै:। **केसरिकिशोरकैः इव** = सिंहशावकै: इव। विक्रमैकरसैः अपि = विक्रम: पराक्रम: एव एक: अद्वितीय: रस: आनन्द: येषां तै:। **अपि। विनयव्यवहारिभिः** = विनयेन विनम्रतया व्यवहारा: वृत्तय: येषां तै:। **आत्मनः** = स्वकीयस्य। **प्रतिबिम्बैः इव** = देहच्छायाभि: इव। **राजपुत्रैः** = क्षत्रियकुमारै:। **सह** = साकम्। **रममाणः** = सानन्दं विहरन्। **प्रथमे वयसि** = कौमार्ये यौवनारम्भे वा। **सुखम्** = सानन्दं यथा स्यात् तथा। **अतिचिरम्** =बहुकालपर्यन्तम्। **उवास** = निवासं चकार।

टिप्पणी – **द्वीपान्तरात्** – जल से घिरे हुए ऊँचे भूभाग को 'द्वीप' कहते हैं। द्विर्गता आपो यत्र – द्वि + अप्, अप – ईय = द्वीप:, द्वीपम् वा। द्वीपों की संख्या चार से लेकर अठारह तक पायी जाती है। नैषधीयचरित 1.5 में द्वीपों की संख्या अट्ठारह बतायी गयी है किन्तु सर्वसामान्य संख्या सात है। ये सात द्वीप हैं – जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शक और पुष्कर। ये द्वीप क्रमश: सात समुद्रों से घिरे हैं – लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध और जल। **वलय** – 'कटकं वलयोऽस्त्रियाम्' अमरकोश। **उद्वहन्** – उत् +वह् + शतृ। प्रज्ञा – 'धी: प्रज्ञा शेमुषी मति:' अमरकोश। **स्निग्ध** – स्निह् + क्त। **अमात्य** – राजकार्य में राजा को उचित परामर्श देने वाला विद्वान् ब्राह्मण अमात्य हुआ करता है। प्राचीन काल में जैसे राजा कुलक्रमागत होता था, वैसे ही अमात्य भी कुलक्रमागत होते थे। यहाँ बाणभट्ट ने अमात्य के सभी आवश्यक गुण गिनाये हैं। **प्रगल्भ** – 'प्रगल्भ: प्रतिभान्विते' अमरकोश। **काव्य नाटक०** – इस वाक्यांश में बाणभट्ट ने संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध विधाओं की गणना करने के साथ ही चित्र निर्माण और व्याख्यान देना – इनमें भी राजपुत्रों की निपुणता प्रदर्शित की है। इसमें आये हुए सभी शब्द पारिभाषिक हैं। **यथा** – काव्य के अनेकविध लक्षण आचार्यों ने दिये हैं। इसी प्रकार अन्य शब्द भी पारिभाषिक हैं। **आलेख्य** – अ + लिख् + व्यत्। **रममाणः** – रम + शानच्।

प्रस्तुत गद्यांश के प्राय: सभी समस्तपदों में बहुव्रीहि समास है और वे विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। 'अमरगुरुम्' 'केसरिकिशोरकै:' 'राजपुत्रै:' में षष्ठी तत्पुरुष है। 'भूपालमौलिमालालालित:' में अनुप्रास, 'वलयमिव' और 'अमरगुरु हसद्भि: में उपमा, 'रिपुगज - - पीठबन्धै:' में रूपक अलङ्कार स्पष्टत: विद्यमान हैं।

तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि रूपवतोऽपि संतानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत्सत्यपि रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे लावण्यवति विनयवत्यन्वयवति हृदयहारिणी चावरोधजने। स कदाचिदनवरतदोलायमानरत्नवलयो घर्घरिकास्फालन-प्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः संगीतकप्रसंगेन, कदाचिदविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननो मृगयाव्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्ध-मण्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन, कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहास-पुराणाकर्णनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागतमुनिजनचरण-शुश्रूषया, कदाचिदक्षरच्युतकमात्राच्युतकबिन्दुमतीगूढचतुर्थपादप्रहेलिका-प्रदानादिभिर्वनितासंभोगसुखपराङ्मुखः सुहृत्परिवृतो दिवसमनैषीत्। यथैव च

दिवमेवमारब्धविविधक्रीडापरिहासचतुरैः सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत्।

हिन्दी अनुवाद – विजय की अतिप्रबल आकांक्षा एवम् असाधारण पराक्रमशाली होने के कारण, यौवन की प्रारम्भिक अवस्था में होने पर भी स्त्री को तृण के समान तुच्छ समझने वाले उसके रूपवान होने पर भी, सन्तान चाहने वाले मंत्रियों द्वारा इससे अपेक्षा रखने पर भी स्त्रीसहवास से मानो इसका द्वेष था जबकि इसके अन्तःपुर में ऐसी सुन्दरियाँ थीं जो रूप-सौन्दर्य में रति की शोभा का भी उपहास करती थीं, लावण्यकारी, विनयशीला, उच्चकुलोत्पन्ना और मनोहारिणी थीं। (किन्तु उनके होने पर भी) वह (शूद्रक) कभी निरन्तर हिलते हुए रत्नकङ्कणवाला, घुंघरू बजाते हुए झूमने से झनझनाते हुए मणिमय कर्णपूरों वाला, स्वयं मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ करके सङ्गीत के आयोजन से, कभी धुआंधार वाणों की वर्षा द्वारा वन को (हिंस्र पशुओं से) सूना करता हुआ आखेट क्रिया से, कभी विद्वानों की गोष्ठी करके काव्य के उत्तम बन्धों की रचना से, कभी शास्त्रविषयक चर्चा से, कभी कथा-आख्यायिका-इतिहास पुराणादि के श्रवण से, कभी चित्रनिर्माण के मनोरञ्जन से, कभी वीणा बजाने से, कभी दर्शन देने के लिए आये हुए मुनियों के चरणों की सपर्या (सेवा) से, कभी अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढ़चतुर्थपाद पहेलियों को बूझने-बुझाने आदि से, स्त्रीसम्भोग सुख से उदासीन रहते हुए, अपने मित्रों के बीच दिन व्यतीत करता था। ठीक इसी प्रकार, दिन की भांति अनेक प्रकार की क्रीडायें करने वाले और हास-परिहास में अत्यन्त चतुर मित्रों को साथ लेकर रात भी बिता लेता था।

संस्कृत व्याकरण – तस्य च = तथोक्तस्य शूद्रकस्य च। **अतिविजिगीषुतया** = अतिशयेन विजेतुम् इच्छुः विजिगीषुः तस्य भावः तत्ता तया। **महासत्त्वतया** – महत् सत्त्वम् अतिशयं प्राणसारः यस्य स तस्य भावः तत्ता तया। **तृणाम् इव** = शष्पाग्र इव। **लघुवृत्ति** = लघुः उपेक्षणीया वृत्तिः व्यवहारः यस्य तत्। **स्त्रैणम्** = स्त्रीणां समूहः तम्। **आकलयतः** = मन्यमानः, गणयतः। **प्रथमे वयसि** = यौवनारम्भे। **वर्तमानस्य अपि** = स्थितस्य अपि। **रूपवतः अपि** =शोभासम्पनस्य अपि। **सन्तानार्थिभिः** = सन्तानं सन्ततिः एव अर्थःप्रयोजनं येषां तैः। **अमात्यैः** = मन्त्रिभिः। **अपेक्षितस्य अपि** = आकाङ्क्षितस्य अपि। **सुरतसुखोपरि** = सम्भोग-सुखं प्रति। द्वेष इव = शत्रुत्वं, मत्सरः इव। आसीत्। **रूपविलासोपहसितविभ्रमे** = रूपं सौन्दर्यं विलासः स्त्रियोचितं चेष्टितं ताभ्याम् उपहसितः सोपहासं तिरस्कृतः रते कामदेवभार्यायाः विभ्रमः प्रसाधनोपचारः येन तस्मिन्। **लावण्यवति** = सौन्दर्यशालिनि। **विनयवति** = विनययुक्ते। **अन्वयवति** = कुलीने। **हृदयहारिणि** = मनोहारिणि च। **अवरोधजने** = अन्तःपुररमणीजने। **सः** = राजा शूद्रकः। **कदाचित्** = कदाचन। **अनवरतदोलायमानरत्नवलयः** = अनवरतं निरन्तरं दोलायमाने वेपमाने रत्नवलये मणिनिर्मित (जटित वा) कङ्कणे यस्य सः। **घर्घरिकास्फालनप्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः** = घर्घरिकायाः भाषायां 'घुंघरू' इति वाद्यविशेषस्य आस्फालनेन हस्ताभ्यां प्रचालनपूर्वकं वादनेन यः प्रकम्पः शरीरवर्तनं तेन झणझणायमानौ झणझणेति ध्वनिं कुर्वाणौ मणिकर्णपूरौ मणिखचितकर्णाभूषणे यस्य सः। **स्वयम्** = स्वतः। **आरब्धमृदङ्गवाद्यः** = आरब्धं मृदङ्गवादनं येन सः। **सङ्गीतकप्रसङ्गेन** = सङ्गीतस्य अनुष्ठानेन। कदाचित्। **अविरलविमुक्तशरासारशून्यीकृतकाननः** = अविरलं बहुलतया सततं विमुक्ताः प्रक्षिप्ताः शराः बाणाः तेषाम् आसारेण सघनवर्षणेन शून्यीकृतं व्याघ्रादिविहीनीकृतं काननं वनं येन सः। **मृगयाव्यापारेण** = मृगयाया आखेटस्य व्यापारेण सम्यक् क्रियया। कदाचित्। आबद्धविदग्धमण्डलः – आबद्धं आरचितं विदग्धानां सहृदयानां विदुषां मण्डलं गोष्ठी येन सः। **काव्यप्रबन्धरचनेन**

= कवेरलौकिकं सारस्वतं कर्मकाव्यम्, काव्यस्य प्रबन्धः (प्रकृष्टो बन्धः) तेषां रचनेन निर्माणेन। कदाचित्। **शास्त्रालापेन** = शास्त्रचर्चया। कदाचित्। **आख्यानकाख्यामिकेतिहासपुराणाकर्णनेन** = कथाख्यायिकेतिहासपुराणश्रवणेन। तेषु तेषु प्रगल्भा वाचकाः पठन्ति स्म, राजा श्रृणोति स्मेति।। **कदाचित् आलेख्यविनोदेन** = आलेख्यं चित्रविरचनं तेन विनोदेन मनोरञ्जनेन कदाचित्। **वीणया** = वीणावल्लकी तस्याः वादनेन श्रवणेन वा। कदाचित्। **दर्शनागतमुनिजनचरणशुश्रूषया** = तस्मै दर्शनं दातुम् आगता आयाताः ये मुनिजना अरण्यवासिनः तपस्विनः तेषां चरणानां पादानां शुश्रूषया सपर्यया। **कदाचित् अक्षरच्युतक० - - प्रदानादिभिः** = तत्तप्रकारकाणां प्रहेलिकाबन्धानां प्रदानादिभिः उत्तरप्राप्तये समर्पणेन स्वयञ्च निर्माणेन। (विशेषः टिप्पण्यां दृष्टव्यः) **वनितासम्भोगसुखपराङ्मुखः** = वनितानां युवतीनां यः सम्भोगः कामोपभोगः तज्जन्यं यत्सुखं तस्मात् पराङ्मुखः विमुखः उदासीनः। **सुहृत्परिवृतः** = सुहृद्भिः मित्रैः परिवृतः परिवेष्टितः सुसङ्गतो वा। **दिवसम्** = दिनम्। **अनैषीत्** = यापयामास। यथा एव = येन प्रकारेण एव। **दिवसम्** = दिनम्। **एवम्** = तेनैव प्रकारेण। **आरब्धविविधक्रीडापरिहासचतुरैः** = आरब्धाः प्रवर्तिताः विविधाः नानाप्रकारकाः क्रीड़ाः केलयः तासु, परिहासाः विनोदवार्ताः तासु च चतुरैः कुशलैः। **सुहृद्भिः** = मित्रैः। **उपेतः** = सङ्गतः। **निशाम्** = रात्रिम्। **अनैषीत्** = यापयामास।

टिप्पणी – **विजिगीषुता** – विजेतुम् इच्छा। सबको जीत लेने की अभिलाषा। **विलास** – कामिनियों का हावभाव अथवा कामचेष्टा। **अन्वयवति** – 'अन्वय' (वशं या कुल) से 'मतुप्' प्रत्यय ('तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्')। अभिप्राय है कि राजा शूद्रक के अन्तःपुर में जो भी रानियाँ थीं वे उच्चकुलोत्पन्न थी। **अवरोध** – अव + रुध् + धञ्। अन्तःपुर के लिए 'अवरोध' शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। अन्तःपुर की रक्षा-व्यवस्था बहुत ही कड़े नियंत्रण में रहती थी और वहाँ कोई भी बेरोकटोक नहीं जा सकता था। **दोलायकान** – दुल् + णिच् + शानच्। घर्घरिका = काठ के हत्थे वाला एक वाद्य जिसमें घुंघरुओं का गुच्छा चारों ओर लगा रहता है और उसे हाथ से हिलाकर या थपकी देकर झूम-झूमकर बजाया जाता है। **सङ्गीतक** – सङ्गीत + कन् (स्वार्थे कन्)। नृत्य, गीत और वाद्य-तीनों के सम्मिलित प्रयोग को सङ्गीत कहते हैं – 'गीतं नृत्यं च वाद्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते।' **विदग्ध** – वि + दह् + क्त। सहृदय या रसिक विद्वान् को विदग्ध कहा जाता है, जो काव्य, संगीत, कलाओं का प्रेमी हो, शुष्क हृदय केवल शास्त्रज्ञ न हो। **आलाप** – आ + लप् + घञ्। बातचीत। **आख्यानक** - आख्यायिका – आख्यानक कहते हैं नीति आदि की शिक्षा देने वाली मनोरञ्जक कथायें। 'आख्यायिका' एक विशेष प्रकार का गद्य काव्य होता है। इसकी पृष्ठभूमि प्रख्यात या ऐतिहासिक वस्तु वाली होती है। अतः पात्र (नायक आदि मुख्य पात्र) प्रसिद्ध होते हैं। विभाजन इसका उच्छ्वासों में होता है। प्रारम्भ में कवि अपने वंश का वर्णन करता है तथा अन्य भी कुछ विशेषताये होती हैं जो इसे 'कथा' से अलग करती हैं। बाणभट्ट द्वारा विरचित 'हर्षचरित' एक 'आख्यायिका' है। 'इतिहास' के रूप में रामायण-महाभारत प्रसिद्ध हैं। सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश (ऋषियों के वंश) मन्वन्तर (काल गणना) और वंशानुचरित (राजवंशों का वर्णन) – इन प्रमुख पांच विषयों से युक्त ग्रन्थों को 'पुराण' कहा गया। ये संख्या में 18 हैं। उपपुराण भी 18 कहे गये हैं। आलिख्यविनोद – चित्र-निर्माण भी विनोद-मनोरंजन का एक साधन है। यह एक उच्च कोटि की कला है जिसमें व्यक्ति किसी भी विषय को लेकर चित्र के माध्यम से अपने भावों को

अभिव्यक्ति प्रदान करता है। प्राचीन काल में किसी अभीष्ट प्रियजन, प्राकृतिक दृश्य, पशु-पक्षी आदि के चित्र रुचिपूर्वक बनाये जाते थे। फलकचित्रों के अतिरिक्त भित्तिचित्रों और गुहाचित्रों का खूब प्रचलन था। भाण्डों (पात्रों) पर भी चित्रकारी की जाती थी।

शुश्रूषा – श्रोतुम् इच्छा शुश्रूषा। बड़ों की सेवा करते हुए जन को उनके मुख से प्रसन्नतापूर्वक अच्छी-अच्छी, अनुभव की जीवनोपयोगी बातें सुनने को मिलती थीं। यह सब सुनने की इच्छा से जो सेवा की जाती है उसे 'शुश्रूषा' कहते हैं। हाथ, पैर, सिर दबाना, नहलाना, भोजन कराना आदि सेवायें शुश्रूषा के अंतर्गत आती हैं। **अक्षरच्युतक** – जिस वार्णिक छन्द में से एक अक्षर निकाल देने पर पद्यार्थ बदल जाता है। **मात्राच्युतक** – जिस मात्रिक छन्द में से एक मात्रा निकाल देने पर अर्थ बदल जाता है। **बिन्दुमती** – छन्द में मात्रायें (स्वरों के चिह्न) तो रहती हैं किन्तु व्यञ्जनों के स्थान पर बिन्दु लगाकर खाली छोड़ दिया जाता है और सार्थक पद्य की रचना कराई जाती है। **गूढ़चतुर्थपाद** – छन्द का चतुर्थ चरण पूर्व के तीनों चरणों में से निकालना पड़ता है। **प्रहेलिका** – 'पहेली'। चमत्कारिक प्रश्न-योजना, जिसका उत्तर देने में पर्याप्त व्युत्पत्ति (व्युत्पन्न मति) की आवश्यकता होती है। अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक और बिन्दुमती भी साहित्यिक पहेलियाँ ही हैं। 'न तेन लिखितो लेखः पितुराज्ञा न लोपिता' इत्यादि पहेली हैं। **परिवृतः** – परि + वृ + क्त। **अनैषीत्** – 'नी' धातु, लुङ्लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसंपुटभिदि किंचिन्मुक्तपाटलिम्निभगवति-सहस्रमरीचिमालिनि राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वावलम्बिना कौक्षेयकेण संनिहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरलमलयजानुलेपनधवलित-स्तनतटोन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी, चूड़ामणिप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृत-सकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी समुपसृत्य क्षितितलनिहितजानुकरकमलाप्रतीहारी सविनयमब्रवीत्–

'देव, द्वारस्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुंकारनिपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणापथादागता चाण्डालकन्यका पञ्जरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति– 'सकलभुवनतलरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः। विहंगमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमादायागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्' इति। एतदाकर्ण्य 'देवः प्रमाणम्' इत्युक्त्वा विरराम। उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्तिनां राज्ञामालोक्य मुखानि 'को दोषः प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश।

हिन्दी अनुवाद– एक दिन, जब कमलों की नयी कलियों को विकसित करने वाले भगवान् सूर्य उदित होकर आकाश में कुछ ही ऊपर चढ़े थे और उनकी लालिमा तनिक कम हुई थी, और जब राजा शूद्रक अपने सभामण्डल में विराजमान हुए तब स्त्रीमात्र के लिए अनुचित कृपाण को बायीं ओर लटकाये रहने के कारण काले भुजंग से लिपटी हुई चन्दनलता के समान भयानक और मनोहर आकृतिवाली, चन्दन के सघन लेप से श्वेत हो गये स्तनों के कारण जल से ऊपर निकलते हुए ऐरावत के मस्तक से युक्त मन्दाकिनी के समान, चूड़ामणियों में प्रतिबिम्बित होने के कारण मानो राजाओं के द्वारा शिरोधार्य होती हुई मूर्तिमती राजाज्ञा के समान, शरद्ऋतु में

कलहंसो से धवलित आकाश के समान श्वेत वस्त्र धारण की हुई, परशुराम के परशु-धार की तरह समस्त राजाओं को अपने अधीन कर लेने वाली, विन्ध्याचल की वनभूमि के समान बेल की लता (छड़ी) धारण करने वाली, शरीर धारिणी राजकुलदेवी की तरह लगने वाली प्रतीहारी, उन महाराज के पास पहुँच कर फर्श पर घुटने टेककर (अपने) कर कमल (कोमल हाथ) जोड़कर विनय पूर्वक बोली– 'स्वर्गारोहण करते हुए त्रिशंकु की तरह इन्द्र की हुंकार से गिराई गयी राजलक्ष्मी की तरह, दक्षिण देश से आयी हुई और (सभाभवन के) द्वार पर उपस्थित, पिंजरे में तोता लिये हुए एक चाण्डालकन्या महाराज से निवेदन कर रही है– 'महाराज समुद्र के समान समस्त लोकों के रत्नों को धारण करने के एकमात्र पात्र (अधिकारी) है। और, यह पक्षी (तोता) परम विस्मयकारी समस्त भुवनतल का एक रत्न ही है– ऐसा समझ कर, इसे लेकर महाराज के चरणों में उपस्थित हुई (मैं) महाराज के दर्शन-सुख का लाभ पाना चाहती हूँ'– यह सुनकर स्वयं महाराज ही प्रमाण है– ऐसा कहकर चुप हो गयी। राजा को भी कौतूहल हुआ और उसने समीपवर्ती राजाओं के मुख पर दृष्टिपात करके, 'क्या हर्ज है, (उसे) ले आओ) – ऐसा आदेश दिया।

संस्कृत व्याख्या– एकदा=एकस्मिन् दिवसे। 'तु' इति अवधारणे। **नातिदूरोदिते** = आकाशे स्वल्पमेव उपरि गते। **नवनलिनदलसम्पुटभिदि**= नवकमलमुकुलविकासिनि। किञ्चित् ईषत् **मुक्तपाटलिम्नि**= क्षीणरक्तवर्णे। भगवति+ देवे। **सहस्रमरीचिमालिनी**=सहस्राणाम् असंख्यानां मरीचिणां रश्मीनां माला समूहः यस्मिन् सः तस्मिन् सूर्ये इत्यर्थः। **राजानम्**= भूपालम्, शूद्रकम् इत्यर्थः। **अस्थानमण्डपगतम्** = अस्थानस्य सभायाः मण्डपे कक्षे गतं प्राप्तम्, समाभवनस्थितम्। **अङ्गनाजनविरुद्धेन**=अङ्गनाजनः वनिताजनः तस्य विरुद्धेन अनुचितेन। **वामपार्श्वावलम्बिना** = वामपार्श्वे सव्यभागे (दक्षिणस्कन्धमारोप्य तिर्यग् विधिना सत्यकटिदेशे) अवलम्बते अवतिष्ठते इत्येवं शीलेन। **कौक्षेयकेण**=असिना। **सन्निहितविषधरा**=विषं धारयतीति विषधरः। सन्निहितः संश्लिष्टः विषधरः सर्पःयस्या सा। चन्दलता= मलयजवल्लरी इव। **भीषणरमणीयाकृतिः**=भीषणभीतिकरा रमणीया रम्या च आकृतिः रूपं यस्याः सा। **अविरलमलयज**= अविरलं सान्द्रं यत् मलयजस्य चन्दनस्य अनुलेपनम् उद्वर्तनं तेन धवलितं श्वेतीकृतं स्तनतटे उरोजप्रान्तौ यस्याः सा। **उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डला**=उन्मज्जत् जलादुपरि आविर्भवत् ऐरावतस्य इन्द्रगजस्य कुम्भमण्डलम् शिरःस्थानं यस्या सा। **मन्दाकिनी** =गङ्गा। इव। चूडामणि प्रतिबिम्बच्छलेन=चूडामणिषु राज्ञां शिरोमुकुटरत्नेषु यत् प्रतिबिम्बं प्रतीहारजनस्य प्रतिच्छाया तस्य छलेन व्याजेन। **राजाज्ञा इव** = राज्ञः नृपतेः आज्ञा आदेशः। **इव। मूर्तिमति**=विग्रहवती। **राजभिः**=नृपैः। **शिरोभिः**=मूर्धाभिः। **उह्यमाना**=धार्यमाणा। **शरद् इव** = शरदाख्य ऋतुः इव। **कलहंसधवलाम्बरा**=कलहंसः कादम्बः इव धवलं श्वेतम् अम्बरं वस्त्रं यस्याः सा। अथवा, कलहंसैःधवलं शुभ्रम् अम्बरं नभोमण्डलं यस्या सा। **जामदग्न्यपरशुधारा इव**= जमदग्नेः गोत्रापत्य पुमान् जामदग्न्यः परशुरामः तस्य परशुः कुठारः तस्य धारा तीक्ष्णतरम् इव– **वशीकृतसकलराजमण्डला**=वशीकृतं स्वायत्तीकृतं सकलं च तद्राजमण्डलं भूपालसमुदायः यया सा। **विन्ध्यवनभूमिः इव**=विन्ध्यस्य विन्ध्यगिरेः वनभूमिः अरण्यक्षेत्रम् इव। **वेत्रलतावती** =वेत्रयष्टिहस्ता। **राज्याधिदेवता इव**= राज्याधिष्ठात्री देवी इव। विग्रहिणी=शरीरधारिणी। **समुपसृत्य**=निकटं गत्वा। **क्षितितलनिहितजानुकरकमला**=क्षितितले धरापृष्ठे निहितौ स्थापितौ जानू करकमले करौ हस्तौ एव कमले पङ्कजे यया सा। **प्रतीहारी**=

द्वारपालिका। **सविनयम्**=विनम्रतया। **अब्रवीत्** = अवोचत्। **देव** = **महाराज**। **द्वारस्थिता**=द्वारे वर्तमाना। **सुरलोकम्** = स्वर्गम्। **आरोहतः** = आरोहणं कुर्वतः। त्रिशङ्कोः इव =त्रिशङ्कु इति नाम्नः इक्ष्वाकुवंशस्य राज्ञः इव। **कुपितशतमखहुंकारनिपातिता**= कुपितः रुष्ट यः शतमखः देवेन्द्रः तस्य हुंकारेण हुंकृत्या निपातिता अधोगतिं प्रापिता। **राजलक्ष्मी** = राज्यश्रीः। **दक्षिणापथात्**=विन्ध्यगिरेः दक्षिणदेशात्। **आगता**=समायाता। **चाण्डालकन्यका**=मातङ्गकिशोरी। **पञ्जरस्थम्** = पक्षिकारागतम्। **शुकम्**=कीरम्। **आदाय**=गृहीत्वा। **देवम्**=भवन्तं महाराजम्। **विज्ञापयति**=सप्रश्रयं सूचयति। **सकलभुवनतलरत्नानाम्**=सकलं च तद्भुवनतलं सकलभुवनतलं समग्रलोकमण्डलम्, तस्मिन् यानि रत्नानि सर्वोत्कृष्टवस्तूनि तेषाम्। **उदधिः इव**= सागर इव। **एकभाजनम्**=एकम् एव पात्रम्, अनन्योधिकारी इत्यभिप्रायः। देवः महाराजः शूद्रकः। **विहङ्गमः च** = पक्षी च। **अयम्** = एषः। **आश्चर्यभूतः**=विस्मयकारी। **निखिलभुवनतलरत्नम्**= समस्तलोकमण्डले सर्वोत्कृष्टं वस्तुजातम्। **इति**=एवम्। **कृत्वा**=मत्वा, विचिन्त्य वा। **देवपादमूलम्**=महाराजचरणाश्रयम्। **आदाय**=गृहीत्वा। **आगता**=समायाता। **अहम्** = एष जनः। **इच्छामि**=अभिलषामि। **देवदर्शनसुखम्**=देवस्य महाराजस्य दर्शनं प्रत्यक्षमवलोकनं तज्जन्यं सुखम् आनन्दम्। **अनुभवितुम्**= साक्षात्कर्तुम्, हृदयङ्गमं विधातुं वा। इति। **एतद्**=इदम्। **आकर्ण्य** = श्रुत्वा। **देवःप्रमाणम्**=महाराज एव करणीयम् आदिशतु। **इति उक्त्वा**=विनिवेद्य। **विरराम**=तूर्णीं तस्थौ। **उपजातकुतूहलः** = उपजातं उत्पन्नं कुतूहलम् उत्कण्ठा यस्य सः। तु। **राजा**=महाराजः शूद्रकः। **समीपवर्तिनाम्**=निकटोपविष्टानाम्। **राज्ञाम्**=भूपालानाम्। **आलोक्य**=दृष्ट्वा। **मुखानि**=आननानि। **कः दोषः** =का हानिः। **प्रवेश्यताम्** = सभाभवनम् आनीयताम्। इति एवम्। **आदिदेश**=आज्ञापयामास।

टिप्पणी– **नातिदूरोदिते**– सूर्य उग कर अभी आकाश में ऊँचा नहीं उठा था। **नवनलिनदलसम्पुटभिदि**– यह सहस्रमरीचिमालिनि का विशेषण है। सूर्य को कमलों को विकसित करने वाला कहा गया है। प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं और सायंकाल अस्त होने पर बन्द हो जाते हैं। 'नव' की योजना ताजेपन को सूचित करने के लिए है। 'दल' का अर्थ है– पंखुड़ी। 'पत्रं पलाशं छदनं दलः पर्णं छदः पुमान् अमरकोशे। **सहस्रमरीचिमालिनि**= सूर्य को मरीचिमाली भी कहते हैं। यहाँ सहस्र असख्य का वाचक है। **पाटलिमा**– पाटल+इमनिच्। 'श्वेतरक्तस्तुपाटलः' अमरकोश। **कौक्षेयक**-कुक्षि+ढकञ्। **कलहंस**–हंसों की एक विशेष जाति **जामदग्न्य**– जमदग्नि+यञ्। परशुराम, महर्षि जमदग्नि और रेणुका के पुत्र थे। इन्होंने अपने परशु से इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया ऐसा प्रसिद्ध है। परशुराम ने अपने परशु की धार से समस्त राजाओं को अपने अधीन कर लिया था और यहाँ प्रतीहारी के सौन्दर्य से आकृष्ट सभी राजा उसके अधीन हो गये थे। **वेत्रलतावती**-प्रतीहारी ने अपने हाथ में बेंत की छड़ी ले रखी थी और विन्ध्य के जंगलों में बेत (पतले बाँस) खूब होते हैं। आज भी वहाँ की लाठियाँ प्रसिद्ध है। **त्रिशङ्कु** – इक्ष्वाकु वंश के एक राजा का नाम। किसी का नाम यद्यपि अव्युत्पन्न प्रातिपदिक होता है (व्युत्पत्तिरहित संज्ञा) तथा इस शब्द की व्युत्पत्ति है– **त्रय शङ्कवः** यस्य सः त्रिशङ्कुः। राजा त्रिशङ्कु ने महर्षि वशिष्ठ से सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया। तब उसने वशिष्ठ के पुत्रों से प्रार्थना की। उन्होंने भी मना कर दिया। अन्ततः वह विश्वामित्र की शरण में गया। विश्वामित्र और वशिष्ठ में परस्पर वैमनस्य था। अतः उन्होंने त्रिशङ्कु की इच्छा पूरी करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने

त्रिशङ्कु से यज्ञ कराया। फिर अपने तपोवल से त्रिशङ्कु को सदेह स्वर्ग भेजा। अभी त्रिशङ्कु मार्ग में ही था कि इन्द्र को पता चल गया। उसने अपनी हुंकार से त्रिशङ्कु को बीच में ही रोक दिया। इधर विश्वामित्र का तपोबल और उधर इन्द्र की हुंकार, बेचारा त्रिशङ्कु स्वर्ग और पृथ्वी के बीच आकाश में उलटा लटक गया। औंधे मुँह होने से उसके मुँह से गिरने वाली लार से 'कर्मनाशा' नदी बह चली। यह कर्मनाशा आज भी विद्यमान है और उत्तर प्रदेश तथा विहार की सीमा पर स्थित है। यह विन्ध्य पर्वत से निकलकर गङ्गा में मिलती है। त्रिशङ्कु के पौराणिक आख्यान की वैज्ञानिक व्याख्या भी अन्य प्रकार से की जाती है। **शतमख**– सौ यज्ञ करने वाला। 'स्वर्गकामो यजेत्' अर्थात् स्वर्ग चाहने वाला यज्ञ करे। इस विधिवाक्य के अनुसार, स्वर्ग की प्राप्ति करने वाले यज्ञों को जो समर्थ व्यक्ति निरन्तर और निर्विघ्न रूप से सौ की संख्या में करे, वह स्वर्ग का स्वामी अधिपति– बन जाता है। 'शतमख' शब्द इन्द्र के अर्थ में रूढ़ है। ऐसे यज्ञ कर्ताओं से इन्द्र डरता रहता है और यज्ञों में विघ्न भी डालता रहता है क्योंकि सौ यज्ञ पूरा करने वाला इन्द्र पद का अधिकारी हो जाता है। **उदधि**– उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्। उदक+धि, उदक को उदन् आदेश और न का लेप = उदधि। **विहङ्गम**– विहायसा आकाशेन गच्छति इति 'विहायस' का 'विह' आदेश होता है। **विहायस्** + गम्+ खच्–मुम्। **रत्नम्**– श्रेष्ठ वस्तु अथवा हीरा, पन्ना, नीलम आदि। 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद् रत्नमभिधीयते।' अर्थात् प्रत्येक जाति में जो सर्वोत्कृष्ट होता है उसे 'रत्न' कहते हैं। **यथा**- नररत्न, ग्रन्थरत्न आदि। 'रत्न' के सम्बन्ध में एक सुभाषित ध्यातव्य है– पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्। मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।।' **आकर्ण्य** – आङ्+कर्ण+ णिच्+क्त्वा–ल्यप्। **विरराम**–वि+रम्–लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन। **अवलोक्य**– अव+लोक्+क्त्वा–ल्यप्। **आदिदेश**–आङ्+दिश–लिट्लकार, प्र०पु० ए० वचन। **प्रावेशयत्**– प्र+विश्+णिच्, लङ्लकार, प्र०पु०, एकवचन।

प्रस्तुत गद्यखण्ड के 'सन्निहित...........आकृतिः', कुम्भमण्डलेव, शरदिव ....वेत्रलतावती त्रिशङ्कोरिव, उदधिरिव में उपमा अलङ्कार, राजाज्ञेव और राज्याधिदेवतेव में उत्प्रेक्षालङ्कार तथा 'धवलाम्बरा' के अम्बर' में श्लेष अलङ्कार है। 'भीषणरमणीयाकृति में विरोध अलङ्कार है जो भीषण है वह रमणीय कैसे हो सकता है? जैसे चन्दनलता रमणीय है किन्तु लिपटने से भीषण है उसी तरह प्रतिहारी शारीरिक सौन्दर्य से रमणीय किन्तु खड्ग लटकाने से भीषण है।

अथ प्रतीहारी नरपतिकथनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्। प्रविश्य च सा नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवमिन्द्रायुधसहस्रसंछादिताष्टदिग्भागमिव जलधरदिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकश्रृंखलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगन-सिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तपर्यङ्किकानिषण्णम्, उद्धूयमानसुवर्णदण्डचामरकलापम्, उन्मयूखमुखकान्तिविजयपराभवप्रणते शशिनेव स्फटिकपादपीठे विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासंपर्कश्यामायमानैः प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैरिव चरणनखमयूखजालैरुपशोभमानम्, आसनोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेनाचिरमृदितमधु-कैटभरुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहंसमिथुन-सनाथपर्यन्ते चारुचामरवायुप्रनर्तितान्तर्दशे दुकूले वसानम्, अतिसुरभिचन्दनालेपनधवलितोरःस्थलम्, उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकमन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्,

अपरशशिशङ्कया नक्षत्रमालेव हारलतया कृतमुखपरिवेषम्, अतिचपलराज्यलक्ष्मीबन्धनिगड-कटकशंकामुपजयनतेन्द्रमणिकेयूरयुग्मेन मलयजरसगन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्, ईषदालम्बिकर्णोत्पलम्, उन्नतघोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीकनेत्रम्, अमलकलधौतपट्टायामष्टमीचन्द्रश-कलाकारत शेषभुवनराज्याभिषेकपूतमूर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदिमाल-तीकुसुमशेखरमुषसि शिखरपर्यन्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरणप्रभापिशङ्गिताङ्गतया लग्नहरहुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्तिनीभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिपरिवृतम्, अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिविम्बतया पतिप्रेम्णा वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाऽप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितदेहम्, अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादितद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अविरतवृत्तदानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णाचरितम्, अकरमपि हस्तस्थितभुवनतलं राजानमद्राक्षीत्।

हिन्दी अनुवाद– तत्पश्चात् महाराज शूद्रक के कहते ही (आदेश देते ही) प्रतीहारी ने उठकर उस चाण्डाल कन्या को (सभाभवन में) प्रवेश कराया और प्रवेश करके उस कन्या ने हजारों राजाओं के बीच बैठे हुए महाराज शूद्रक को देखा। वे ऐसे लग रहे थे जैसे (इन्द्र के) वज्र के भय से इकट्ठे हुए कुल पर्वतों के बीच स्वर्णश्रृङ्ग सुमेरु पर्वत हो, अनेक रत्नजटित आभूषणों के किरण समूह द्वारा अङ्गों के आच्छादित होने के कारण हजारों इन्द्रधनुषों से ढंकी हुई आठों दिशाओं वाले वर्षा ऋतु के मेघाच्छन्न दिवस के समान, चारों ओर लटकने वाले बड़ी-बड़ी मोतियों के झालर वाले, सोने की जंजीरों से बँधे हुए मणिनिर्मित चार डण्डों के आधार वाले, आकाश गङ्गा के फेन समूह के समान श्वेत, मध्यम आकार के महीन (रेशमी) वस्त्र से बने चँदोबे के नीचे, चन्द्रकान्तमणि के पलङ्ग (सुखासन) पर बैठे हुए; जिसे सोने की मूठ (हत्था) वाला चँवर डुलाया जा रहा था; उपर की ओर फैलने वाली किरणों वाली मुख की कान्ति से पराजित अत: विनम्र चन्द्रमा के समान स्फटिक के पादपीठ (पीढ़ा) पर अपने बायें पैर को रखे हुए, इन्द्रनीलमणियों से निर्मित फर्श की चमक के प्रभाव से श्यामल लगने वाले, (चरणों में) झुके हुए निर्जित शत्रु राजाओं के उच्छ्वास से मानों मलिन बनाये गये, पैरों के नाखूनों की किरण समूह से सुशोभित, आसन (पलंग) से छिटकने वाली पद्मरागमणियों की किरणों से लाल बनाये गये और मानो कुछ ही देर पहले मारे गये मधुकैटभ के रक्त से लाल विष्णु की दोनों जंघाओं के समान जंघाओं से शोभायमान; अमृतफेन के समान सफेद, किनारों पर गोरोचन से चित्रित हंसो के जोड़ों वाले और सुन्दर चँवर डुलाने से लगने वाली हवा से उड़ते हुए छोरों वाले, दो रेशमी वस्त्र (दुकूल) धारण किये हुए, अतिसुगन्धित चन्दन के लेप से धवल (गौर) हुए वक्षःस्थल वाले; ऊपर बनाये गये कुंकुम (केसरपङ्क) के हस्तचिह्न के कारण बीच-बीच में कहीं पड़ती हुई प्रात:काल की धूप से युक्त कैलास पर्वत के समान, दूसरे चन्द्रमा की शङ्का से मानो उतरकर हुई नक्षत्र माला के समान मोतियों की माला से बनाये गये आभा मण्डल से परिवोष्टित मुख वाला, अतिशय चञ्चल राज्य लक्ष्मी को बाँधने के लिए श्रृंखला वलय (जंजीर के चुल्ले) की शङ्का उत्पन्न करते हुए, चन्दन रस की सुगन्ध से लुब्ध (ललचाये हुए) दो काले नागों के समान इन्द्रनील मणि के दो बाजूबन्दों से घिरी हुई दोनों भुजाओं वाले, तनिक लटके

हुए कर्णोत्पल वाले, ऊँची नासिका वाले, खिले हुए श्वेतकमल की तरह आँखों वाले, स्वच्छ और चौड़े सोने के पत्तर जैसा, अष्टमी के चन्द्रमा की आकृति वाला और सभी लोकों के राज्याभिषेक से पवित्र बालों के गुच्छों से युक्त मस्तक को धारण करते हुए, सुगन्धित मालती के फूलों का मुकुट धारण किये हुए अत: भोर में शिखर पर्यन्त नक्षत्र समूह से युक्त पश्चिमपर्वत (अस्ताचल) जैसा धारण किये गये आभूषणों की आभा से पीले लगने वाले अंगों के कारण, भगवान् शिव (के तृतीय नेत्र से निकली हुई) की अग्नि की लपटों से जलते हुए कामदेव के समान चारों ओर से घेरकर पास में खड़ी हुई, मानो सेवा के लिए आयी हुई दिशारूपी वधुओं के समान गणिकाओं से घिरे हुए, स्वच्छमणियों से बने फर्श में समाये हुए पूरे शरीर के प्रतिबिम्ब (परछाई) के कारण, मानो पति के प्रति प्रेम से पृथिवी द्वारा छाती से चिपकाये गये; अनेक लोगों (राजाओं) द्वारा योग्यता को प्राप्त हुई भी असाधारण राज्यलक्ष्मी द्वारा समालिङ्गित शरीर वाले, अपरिमित परिवार के होते हुए भी वह अद्वितीय (बिना परिवार का अथवा अनुपम) असंख्य हाथी घोड़े रूप साधन होने पर भी एकमात्र तलवार रूप सहायक वाले; एक स्थान पर रहने पर भी समस्त लोक में व्याप्त, सिंहासन पर बैठे होने पर भी धनुष में ही लीन (अर्थात् विजय हो धनुर्विद्या में स्थित); शत्रु रूपी इन्धन जला डालने पर प्रज्वलित प्रतापाग्नि वाले; विशालनेत्रों वाले; होने पर भी सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले बड़े दोष वाले होने पर भीं सभी गुणों के भण्डार (विशाल बाहुवाले और सभी गुणों के भण्डार) कुत्सित पति (अथवा, पृथ्वी का स्वामी) होने पर भी अपनी पत्नियों के प्रिय, निरन्तर दान (मदजल अथवा त्याग) युक्त होने पर भी मदरहित, अत्यन्त शुद्ध स्वभाव वाले होते हुए भी कृष्णचरित (काली करतूत वाले अथवा भगवान् श्रीकृष्ण की दुष्टदलनलीलायें करने वाले); कर (हाथ अथवा राज्य का अधिभार) रहित होते हुए भी समस्त लोक को अपने हाथ में रखने वाले महाराज शूद्रक को उसने देखा)।

संस्कृत व्याख्या– अथ–तत:। **प्रतीहारी**=सा द्वारपालिका। **नरपति कथनानन्तरम्**=नरपते: राज्ञ: कथनम् वचनम्, तस्य अनन्तरम्, पश्चात्। **उत्थाय**=उत्थानं विधाय। **ताम्**=पूर्वोक्ताम्। **मातङ्गकुमारीम्**=चाण्डालकन्यकाम्। **प्रावेशयत्** = प्रवेशम् अकारयत्। **प्रविश्य च** = प्रवेशं कृत्वा च। **सा** = चाण्डालकन्यका। **नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनम्**=नराणां पति: नरपति तेषां यत् सहस्रं तन्मध्यवर्तिनं मध्ये स्थितम्। **अशनिभय०**= अशने: इन्द्रवज्रात् यद् भयं भीति: तेन पुञ्जिता: एकत्रावस्थिता: ये कुलशैला: कुलपर्वता: तेषां मध्यगतं अन्त:स्थितं **कनकशिखरिणम् इव**–सुर्वर्णमयं सुमेरु इव। **अनेकरत्नाभरण**०=अनेकानि यानि रत्नानि तै: निर्मितानि आभूषणानि तेषां किरण जालकै: रश्मिसमूहै: अन्तरिता: आच्छादिता: अवयवा:अङ्गानि यस्य स: तम्। **इन्द्रायुधसहस्र०** = इन्द्रायुधां इन्द्रधनुषां यत् सहस्रं तेन संछादिता: परिव्याप्ता: अष्टौ दिशां भागा: प्रदेशा: यस्मिन् तम्। **जलधरदिवसम् इव** =मेघाच्छत्रं दिनम् इव। **अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य** = परित: सूत्रनद्धाऽलम्बिता, स्थूलानां स्थविष्ठानां मुक्तानां मौक्तिकानां कलापा: पङ्क्तिबद्धरचना: यस्मिन् तस्य। **कनकश्रृङ्खला**= कनकस्य स्वर्णस्य श्रृङ्खला बन्धनरज्जु: ताभि: नियमिता: परस्परमाबद्धा: मणिदण्डिका: रत्नयष्टय: तासां चतुष्टयं यस्मिन् तस्य। **गगनसिन्धु०**-गगनसिन्धु आकाशगङ्गा तस्या: फेनपटलम् फेनपिण्डम् तद्वत् पाण्डुरं शुभ्रवर्णं तस्य। **नातिमहत:**= नातिदीर्घायामस्य। **दुकूलवितानस्य**=कौशेयवस्त्रोल्लोचस्य। अधस्तात्=अधोभागे। **इन्दुकान्त पर्यङ्किकानिषण्णम्**=इन्दुकान्तानां चन्द्रकान्तमणीनां या पर्यङ्किका

लघुपर्यङ्क सुखासनं वा तस्याम् निषण्णम् आसीनम्। **उद्धूयमानसुवर्ण-दण्डचामरकलापम्**=उद्धूयमान: उपवीज्यमान: सुवर्णदण्ड: स्वर्णमुष्टिका येषु तथाविधानां चामराणां श्वेतपुच्छगुच्छकानां कलाप: समूह: यस्मै तम्। **उन्मयूखमुख०**=उत् उर्ध्वं गता: मयूखा: रश्मय: यस्य तस्य मुखस्य या कान्ति: दीप्ति: तया य: विजय तेन य: पराभव: पराजय: तस्मात् प्रणते चरणलग्ने। शशिनि इव विधौ इव। **स्फटिकपादपीठे**= स्फटिकमणिनिर्मितं यत् पादपीठं तस्मिन्। **विन्यस्तवामपादम्**=विन्यस्त: स्थापित: वाम: सव्य: पाद: चरण: येन तम्। **इन्द्रनीलमणि०**= इन्द्रनीलमणिभि: निर्मितस्य कुट्टिमस्य या प्रभा दीप्ति: तस्या: सम्पर्केण सन्निधानेन श्यामायमानै: श्यामवदाचरद्भि:। **प्रणतरिपुनि:श्वासमलिनीकृतै**:=प्रणता: विनता: ये रिपव: शत्रव: तेषा तिरस्कृति: जन्यै: नि:श्वासै: उछ्वासै: मलिनीकृतै: अमालिकं मलिनं यथा स्यात् तथा कृतै: कलुषीकृतै: इव। **चरणनखमयूखजालै:** = चरणयो: पादयो: ये नखा: तेषां ये मयूखा: रश्मय: तेषां जालै: समूहै:। **उपशोभभानम्**=विराजमानम्। **आसनोल्लसित०**=आसनात् पर्यङ्किकाया: उल्लसिता: प्रस्फुटिता: पद्मपरागस्य ये किरणा: तै: पाटलीकृतेन ईषदारक्तीकृतेन। **अचिरमृदित**=अचिरमृदितयो: सद्योमर्दितयो: मधुकैटभयो: तदाख्यदानवयो: रुधिरेण रक्तेन अरुणं रक्तवर्णं तथाविधेन। हरिमिवोरुयुगलेन **विराजकानम्**=उरुयुगलेन जङ्घाद्वयेन विराजमानं शोभमानं हरिम् विष्णुम् इव। **अमृतफेन धवले**=अमृतस्य सुधाया: य: फेन: तद्वत् धवले शुभ्रोज्ज्वले। **गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते**=गोरोचनेति रागद्रव्यविशेषेण लिखितानि पंक्तिबद्धचित्रितानि यानि हंसमिथुनानि हंसयुगलानि तै: सनाथा: सहिता: पर्यन्ता: प्रान्तदेशा: ययो: ते। **चारुचामरवायु०** = चारुचामराणां सुन्दर-बालव्यजनानां वायुना पवनेन प्रनर्तितौ आन्दोलितौ अन्तर्देशौ प्रान्तभागौ ययो: ते। **दुकूले**= पट्टवसने। **वसानम्**=धारयन्तम्। **अतिसुरभिचन्दनालेपनधवलितोर:स्थानम्**=अतिसुगन्धितमलयजालेपेन धवलितं श्वेततां नीतं उर:स्थलम् वक्ष:स्थलम् यस्य तम्। **उपरिविन्यस्त०** =उपरि चन्दनलेपस्योपरि विन्यस्ता विहिता: कुङ्कुमस्य केसरस्य स्थासका: हस्तचिह्नानि यस्य तम्। **अन्तरान्तरानिपतित०** = अन्तरा अन्तरा मध्ये-मध्ये निपतिता: प्रसृता: बालातपस्य: प्रभातघर्मस्य छेदा: खण्डा यस्मिन् तम्। **कैलास-शिखररिणम् इव**= कैलासपर्वतम् इव। **अपरशशिशङ्कया**= अन्यचन्द्रभ्रान्त्या। **नक्षत्रमाला इव**=तारावली इव। **हारलतया**= एकावल्या। **कृतमुखपरिवेषम्**= कृत: निर्मित: मुखस्य परिवेष: परिमण्डलम् यस्य तम्। **अतिचपलराज्यलक्ष्मी०** = अतिचपला भृंश चञ्चला या राज्यलक्ष्मी: राज्यश्री: तस्या: बन्धाय निगडनाय य:निगड कटक: श्रृंखलावलय: तस्य शङ्काँ सन्देहम् उपजनयता उत्पादयता इन्द्रमणिना नीलकान्तमणिना निर्मितं यत् केयूरयुग्मं भुजबन्धयुगलं तेन। **मलयजरसगन्धलुब्धेन** = मलयजरस: चन्द्रनद्रव: तस्य गन्धेन सुरभिना लुब्ध: आसक्त: तेन। **भुजङ्गद्वयेन इव** = विषधरयुग्मेन इव। **वेष्टितबाहुयुगलम्** = वेष्टितं परिगतं बाहुयुगलम् भुजद्वयं यस्य तम्। **ईषदालम्बिकर्णोत्पलम्** = ईषत् मनाक् आलम्बिनौ लम्बमाने कर्णोत्पले उत्पलाकार कर्णाभूषणे यस्य तम्। **उन्नतघोणम्** = उन्नता उच्चा घोणा नासिकादण्ड: यस्य तम्। **उत्फुल्लपुण्डरीकनेत्रम्** = उत्फुल्लं विकसितं य पुण्डरीकं श्वेतकमलं तद्वत् नेत्रे नयने यस्य तम्। **अमलकलधौतपट्टायतम्** = अमलं विशदं यत् कलधौतं स्वर्णं तस्य य: पट्ट: फलकं तद्वत् आयतं विततम्। **अष्टमी चन्द्रशकलाकारम्** = अष्टमीचन्द्रस्य अष्टम्यां तिथौ य चन्द्र: विधु: तस्य य: शकल: खण्ड: तस्य आकार इव आकार: यस्य तम्। **अशेषभुवनराज्याभिषेकपूतम्** = अशेषाणि निखिलानि यानि भुवनानि लोकमण्डलानि तेषां

राज्यं तस्मिन् अभिषेकः मङ्गलस्नानंतेन पूतं पवित्रम्। **उर्णासनाथम्** = उर्णा भ्रूयुग्ममध्यवर्ती सोमावर्तः तया सनाथं युक्तम्। **ललाटदेशम्** = मस्तकम्। **उद्वहन्तम्** = धारयन्तम्। **आमोदिमालतीकुसुमशेखरम्** = आमोदितानि सुगन्धीनि यानि मालतीकुसुमानि जातीपुष्पाणि तानि एवं शेखरः शिरोभूषणम् यस्य तम्। **उषसि** = प्रत्यूषे। **शिखरपर्यन्ततारकापुञ्जम्** = शिखरपर्यन्तम् आशेखरम् तारा पुञ्जाः नक्षत्रगुच्छकाः यास्मिन् तम्। पश्चिमाचलम् इव = अस्ताचलम् इव। **आभरणप्रभा०** = आभरणानाम् आभूषणानां प्रभया दीप्त्याः पिशङ्गतानि पीतवर्णकृतानि अङ्गानि अवयवाः यस्य तस्य भावः तत्ता तया। **लग्नहरहुताशम्** = लग्नः संश्लिष्टः हरस्य शिवस्य हुताशः तृतीयनेत्राग्निः यस्मिन् तम्। **मकरध्वजम् इव** = कामदेवम् इव। **आसन्नवर्तिनीभिः** = समीपवर्तिनीभिः। **सर्वतः** = समन्तात्। **सेवार्थम्** = सपर्यार्थम्। आगताभिः = सम्प्राप्ताभिः। **दिग्वधूभिः** = दिशः एव वध्वः वनिताः ताभिः। **इव। वारविलासिनीभिः** = गणिकाभिः। **परिवृत्** = परिवेष्टितम्। **अमलमणिकुट्टिम०** = अमलं स्वच्छं यत् मणिकुट्टिमं मणिनिर्मिता अधोभूमिः तत्र सङ्क्रान्तं व्याप्तं यत् सकलदेहस्य सम्पूर्णकायायाः प्रतिबिम्बं प्रतिच्छाया तस्य भावः तत्ता तया। **पतिप्रेम्णा** = पत्युः भर्तुः प्रेम्णा प्रीत्या। **वसुन्धरया** = धरित्र्या। **इव। हृदयेन** = अन्तःकरणेन, मानसेन वा। **ऊह्यमानम्** = धार्यमाणम्। **अशेषजनभोग्यताम्** = अशेषजनानां समग्रलोकानां भोग्यतां भोगयोग्यताम्। **उपनीतया** = प्राप्तया। **अपि** = किन्तु। **असाधारणतया** =असामान्या (विरोधः) विशिष्टया। **राजलक्ष्म्या** = राजश्रिया। **समालिङ्गितदेहम्** = समालिङ्गितः समाश्लिष्टः देहः शरीरम् यस्य तम्। **अपरिमितपरिवारजनम्** = अपरिमिताः असीमिताः परिवारजनाः कुटुम्बिनः दासदासीलोकाश्चयस्य तम्। **अपि** = किन्तु। **अद्वितीयम्** = द्वितीयजनरहितम् (विरोधः), सर्वोत्तकृष्टम् अनुपमम् वा। **अनन्तगजतुरग साधनम्** = अनन्तानि असंख्यानि गजाः हस्तिनः तुरगाः अश्वाः तेषां साधनानि सैन्यबलानि यस्य सः तम्। **अपि** = किन्तु। **खड्गमात्रसहायम्** = खड्गमात्रं केवलं खड्गं सहायः उपकारकः यस्य तम् (विरोधः), विजयप्राप्तिस्तु तत्खड्गाधीना इत्यर्थः। **एकदेशस्थितम्** = एकत्रावस्थितम्। **अपि** = किन्तु। **व्याप्तभुवनमण्डलम्** = व्याप्तं भुवनमण्डलं सकललोकचक्रम् येन तम् (विरोधः), स्वतेजसाधिकारेण पराक्रमेण व्याप्तं जगतीतलम् इत्यर्थः। **आसने** = सिंहासने। **स्थितम् अपि** = आसीनम् अपि। **धनुषि निष्णातम्** = चापे स्थितम् (विरोधः), तस्य विजयस्तु चापाश्रित एव इत्यभिप्रायः। **उत्सादिद्विषदिन्धनमपि** = उत्सादितानि समुच्छिन्नानि द्विषन्तः शत्रवः एव इन्धनानि येन तम् अपि। **ज्वलप्रतापानलम्** = ज्वलत् देदीप्यमान प्रताप एव अनलः अग्निः यस्य तम्। अत्र इन्धनाभावेऽपि ज्वलनम् इति विरोधः। प्रतापः पराक्रमः तेजस्तु वर्तत एव इति परिहारः। **आयतलोचनम्** = आयते विशाले लोचने नयने यस्य तम् सूक्ष्मं निपुणं दर्शनं दृष्टिः यस्य तम्। अत्र विशाललोचने सति **सूक्ष्मदर्शनम्** = आतिसीमितं दर्शनम् इति विरोधः। अध्यात्मविषयिका सुनिपुणा दृष्टिरिति परिहारः। **महादोषम् अपि** = महान् प्रभूतः दोषः अवगुणः यस्मिन् तम्। **सकलगुणाधिष्ठानम्** = सकलानां समस्तानां गुणानाम् अधिष्ठानम् आश्रयः यस्मिन् तम्। दोषान्वितः कथं गुणाश्रय इति विरोधः। महान्तौ दोषौ बाहू यस्य तम् इति परिहारः। **कुपतिम्** = कुत्सितः पतिः, तम्। (विरोधः)। कुः पृथ्वी तस्याःपतिः इति परिहारः। **कलत्रवल्लमम्** = पत्नीप्रियः, तम्। **अविरतवृत्तदानम्** = अविरतं निरन्तरं प्रवृत्तं दानं मदजलं यस्य तम्। तथापि। **अमदम्** = मदजलरहितम्। (विरोधः) निरन्तरं धनादीनां **दानं त्यागः निःस्वार्थवितरणं त्यापि अलङ्कारहितम्**

इति परिहार। अत्यन्तशुद्धस्वभावम् अपि = अत्यन्तम् अतिशयं शुद्धः विमलः स्वभावः प्रकृति यस्य तम्। **अपि** = किन्तु। **कृष्णचरितम्** = कृष्णं कलुषितं चरितं वृत्तं यस्य तम् (विरोधः)। कृष्णस्य भगवतो वासुदेवस्य चरितम् इव चरितम् आचरणं यस्य तम् (परिहारः)। **अकरम् अपि** = हस्तहीनम् अपि। **हस्तस्थितभुवनतलम्** = हस्ते करे स्थितं भुवनतलं लोकमण्डलं यस्य तम्। (विरोधः)। न विद्यते करः राज्यांशद्रव्यदिकर्षणं यस्य तम् (परिहारः)। राजानम् अद्राक्षीत् महाराजं शूद्रकम् अपश्यत्।।

टिप्पणी – **प्रावेशयत्** – प्र + विश् + णिच्, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। **प्रविश्य** – प्र + विश् + **क्त्वा** = ल्यप्। इस दीर्घ गद्यांश में सभी पद द्वितीया विभक्ति एवचनान्त हैं और अन्त में आये हुए 'राजानम्' के विशेषण बन रहे हैं। अतः इन सभी समस्त पदों में बहुव्रीहि समास प्रयुक्त हुआ है। **अशनिभयपुञ्जितकुलशैल०** – कुल पर्वतों के सम्बन्ध में पूर्व के पृष्ठों में लिखा जा चुका है। वे कुल पर्वत मानो इन्द्र के वज्र के भय से एकत्र हुए हैं। पौराणिक कथा है कि पहले पर्वतों के पंख हुआ करते थे और ये मनमानी उड़कर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर उतर जाते थे जिससे जन-धन की बड़ी हानि होती थी। इन्द्र ने इन पर्वतों के पंख काटकर एक स्थल पर स्थापित कर दिया। तब से पर्वत 'अचल' कहलाने लगे। हिमालय का पुत्र 'मैनाक' भाग कर समुद्र में छिप गया, अतः इन्द्र पंख नहीं काट सके फिर भी भय के मारे वह आज भी समुद्र में छिपा हुआ है। **निषण्णम्** – नि + सद् + क्त। **उद्धूयमान** – उत् + धू + णिच् + शानच्। **श्यामायमानैः** – श्याम + क्यङ् + शानच्, तृतीया ब. ब. । **मालिनीकृतैः** – अमालिनं यथा स्यात्तथा। अभूततद्भाव से 'च्वि' प्रत्यय का प्रयोग है। **मधुकैटभ०** – मार्कण्डेयपुराण में इनकी कथा का संक्षिप्त सङ्केत प्राप्त होता है। भगवान् विष्णु ने इन दोनों से पाँच-पाँच हजार वर्ष तक युद्ध किया और इनका वध किया। इन दोनों दानवों को भगवान् ने उनकी इच्छा के अनुसार अपनी जाँघों पर रखकर मारा। **गोरोचना** – यह एक पीतवर्ण का सुगन्धित द्रव्य है। कहते हैं कि गोरोचना की उत्पत्ति गाय के पित्त से हुई है। महाराज शूद्रक ने जिस दुकूल को शरीर पर धारण कर रखा था उसमें गोरोचना से किनारे-किनारे हंसयुगल के पंक्तिबद्ध चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार के दुपट्टे (दुकुल) और गमच्छे आज भी मिलते हैं जिन पर इस प्रकार की छपाई की गयी रहती है। **धवलित** – धवल + इतच्। **स्थासक** – 'स्थासकं हस्तबिम्बम्'। हथेली की छाप। विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर हल्दी के लेप से वस्त्रों पर हथेली की छाप देने की परम्परा आज भी प्रचलित है। शूद्रक के वक्षःस्थल पर चन्दन का लेप है और उस पर कुङ्कुम (केसर द्रव) से **स्थासक** = हथेली की छाप दे दी गयी है। लगता है जैसे धवल कैलास पर्वत पर कहीं-कहीं प्रातः काल की धूप पड़ रही है। **शिखरिन्** – शिखर + इनि। **घोणा** – 'घोणा नासा तु नासिका' - **अमरकोश। उर्णा** – दोनों भौहों के मध्य मस्तक पर बनी हुई रोयें की भंतरी (रोम आवर्त) को 'ऊर्णा' कहा जाता है। सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार यह बड़े भाग्यवान् महापुरुषों में ही होता है। पालिसाहित्य के अनुसार भगवान् बुद्ध के मस्तक पर 'ऊर्णा' (रोम आवर्त) था – 'उणणापपुण्ण ससिमंडलतो गलित्वा' (ऊर्णाप्रपूर्णशशिमण्डलतः गलित्वा अर्थात् भगवान् बुद्ध का ललाट ऊर्णा से युक्त था और मानो चन्द्रमा का एक खण्ड था)। सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार, 'भ्रूद्वयमध्ये मृणालतन्तुसूक्ष्मं शुभ्रायतमेकं प्रशस्तावर्तं महापुरुषलक्षणम्।' अमरकोश के अनुसार, 'ऊर्णा मेधाविलोम्नि स्यादावर्तस्त्वन्तरा भ्रुवोः।' **उह्यमान** – वह् + यक् + शानच्।

प्रस्तुत दीर्घवाक्यमय गद्यखण्ड में अनेक अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है –

उपमा अलङ्कार – '...... कुलशैलमध्यगतमिव', '..........दिग्भागमिव', 'शशिनीव', 'हरिमिवोरु. ...... बालातपच्छेदमिव', 'नक्षत्रमालेव', 'भुजङ्गद्वयेनेव', 'तारकापुञ्जमिव', 'आगताभिरिव'।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार – 'मालिनीकृतैरिव', 'लग्नहरहुताशनमिव', 'हृदयेनेवोह्यमानमिव'।

विरोधाभास अलङ्कार – 'अशेषजनयोग्यता .... हस्तस्थितभुवनतलम्' तक।

श्लेष अलंकार – 'अद्वितीयम्', 'सूक्ष्मदर्शनम्', 'कुपतिः' 'दानम्' 'कृष्णचरितम्'। श्लेष की योजना विरोध परिहार के लिए की गयी है।

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्तकुवलयदलकोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रतिबोधनार्थसकृत्सभाकुट्टिममाजघान, येन सकलमेव तद्राजकमेकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत्।

हिन्दी अनुवाद – और, देखकर, दूरस्थित ही उसने (चाण्डाल कन्या ने) हिलते हुए रत्नजटित कंगन वाले, लाल एवं नीलकमल की पंखुड़ियों जैसे कोमल हाथ से, फटे हुए अगले हिस्से वाले बेंत के डण्डे को, राजा का ध्यान आकृष्ट करने के लिए सभा-मण्डप की फर्श पर एक बार पटका, जिससे (जिसे सुनने से) जैसे ताली बजाने की आवाज से हाथी, वैसे ही वहाँ स्थित सारा राजसमाज सहसा एक साथ मुँह घुमाकर, राजा के मुख पर से दृष्टि हटाकर उसकी ओर देखने लगा।

संस्कृत व्याख्या – **आलोक्य च** = दृष्ट्वा च। **सा** = चाण्डालकन्यका। **दूरस्थिता एव** = आरात् एव, दूरस्था एव। प्रचलितरत्नवलयेन प्रचलितं ईषदान्दोलितं रत्नवलयम् मणिजटितकङ्कणम् यस्य तेन। **रक्तकुवलयदलकोमलेन** = रक्तं च यत् कुवलयम् उत्पलं तद्वत् कोमलेन मृदुना। **पाणिना** = हस्तेन। **जर्जरितमुखभागाम्** = जर्जरितः जीर्णः विदीर्णः मुखभागः अग्रभागः यस्याः सा, ताम्। **वेणुलताम्** = वंशयष्टिकाम्। **आदाय** = विधृत्य। **नरपतिप्रतिबोधनार्थम्** = नरपतेः राज्ञः शूद्रकस्य **प्रतिबोधनार्थम्** = स्वां प्रति अभिमुखीकरणार्थम्। **सकृत्** = एकवारम्। **सभाकुट्टिमम्** = आस्थानमण्डपस्य निबद्धभूमिम्। **आजघान** = ताडितवती। **येन** = ताडनशब्देन। **सकलम् एव** = तत्रोपस्थितम् एव। **तद् राजकम्** = तद् तथाभूतः राजकम् राज्ञां समूहः। **एकपदे** = सहसैव। **वनकरियूथम् इव** = अरण्यगजसमूह इव। **तालशब्देन** = करतलपुटवादनध्वनिना। **युगपत्** = समकालम्। **आवलितवदनम्** = आवलितं परावर्तितं वदनम् आननं येन, एवम्भूतम्। **अवनिपालमुखात्** = अवनिं पालयतीति अवनिपालः राजा तस्य राज्ञः मुखं तस्मात्। **आकृष्य** = समाहृत्य। **चक्षुः** = नेत्रम्। **तदभिमुखम्** = तस्याः चाण्डालकन्यकायाः अभिमुखं सम्मुखम्। **आसीत्** = अभवत्। **सर्वे राजानः** वलितग्रीवाः तामेव पश्यन्ति स्मेति।।

टिप्पणी – **आलोक्य** – आ + लोक् + त्वा –> ल्यप्। **रक्तकुवलयदल०** – 'कुवलय' प्रायः नीलकमल को कहते हैं। बाणभट्ट ने कुवलय के पूर्व 'रक्त' पद का प्रयोग किया है। समस्तपद 'पाणिना' का विशेषण है। मुख्यतः कवि चाण्डालकन्या के हाथ की कोमलता की प्रतीति कराना चाहता है किन्तु साथ ही उसे वर्ण (रंग) का भी बोध करा रहा है 'रक्तकुवलय' का प्रयोग करके। उसका हाथ तो श्यामवर्ण का है किन्तु हथेली रक्तवर्ण की अर्थात् लाल

है। अतः कवि का 'रक्तकुवलय' प्रयोग सर्वथा स्वाभाविक और समीचीन है। **जर्जरितमुखभागाम् वेणुलताम् आदाय** – 'जर्जरितमुखभाग' का आशय है कि जिसका अगला हिस्सा फटा हुआ था। बाँस का डण्डा बार-बार फटकारने से फट ही जाता है। 'आदाय' का अर्थ यह नहीं है कि चाण्डालकन्या ने वहीं कहीं से ले लिया अपितु वह बाँस की पतली छोटी छड़ी उसके हाथ में पहले से ही थी। राजा के सभाभवन में पहुँचकर फर्श पर डण्डा फटकार कर ध्यान आकर्षित करना कुछ विचित्र सा लगता है किन्तु पण्डित बाण ने इस तरह का प्रयोग किया है तो संगति लगानी पड़ेगी। वस्तुतः यह चाण्डालमात्र की जातिगत स्वाभाविक क्रिया रही होगी। आज भी 'नट' जाति के लोग अपनी भुजा या जाँघ ठोंककर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

राजकम् – राजन् + वुञ्। **एकपदे** – 'तक्षणैकपदे तुल्ये' – हलायुधकोश। **आकृष्य** – आ + कृष् + कत्वा + क्त्वा – ल्यप्।

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां वयःपरिणामशुभ्रशिरसा रक्तराजीवनेत्रापाङ्गेनानवरतकृतव्यायामतया यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीरसंधिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिनाऽनुगृहीतार्यवेषेण शुभ्रवाससा पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्, आकुलाकुलकाकपक्षधारिणा कनकशलाकानिर्मितमप्यन्तर्गतशुकप्रभाश्यामायमानं मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम्, असुरगृहीतामृतापहरणकृतकपटपटुविलासिनीवेषस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, संचारिणीमिवेन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्, गुल्फावलम्बिनीलकञ्चुकेनावच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्तांशुकरचितावगुण्ठनाम्, नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसंध्यातपाम्, एककर्णावसक्तदन्तपत्रप्रभाधवलितकपोलमण्डलाम्, उद्यदिन्दुकिरणच्छुरितमुखीमिवविभावरीम्, आकपिलगोरोचनारचिततिलकतृतीयलोचनामीशनर-चितानुरचितकिरातवेषामिव भवानीम्, उरःस्थलनिवाससंक्रान्तनारायणदेहप्रभाश्यामलितामिव श्रियम्, कुपितहरहुताशनदह्यमानमदनधूममलिनीकृतामिव रतिम्, उन्मदहलिहलाकर्षणभयपलायितामिव कालिन्दीम्, अतिबहलपिण्डालक्तकरसररागपल्लवितपंक-जामचिरमृदितमहिषासुररुधिररक्तचरणामिव कात्यायनीम्, आलोहितांगुलिप्रभापाटलितनखमयूखाम्, अतिकठिनमणिकुट्टिमस्पर्शसहमानाम्, क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय संचरन्तीम्, आपिञ्जरेणोत्सर्पिणा नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रञ्जितशरीरतया पावकेनेव भगवता रूप एव पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थमालिंगितदेहाम्, अनंगवारणशिरोनक्षत्र-मालायमानेन रोमराजिलतालबालकेन रसनादाम्ना परिगतजघनाम्, अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन शुचिना हारेण गंगास्त्रोतसेव कालिन्दीशंकया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसितपुण्डरीकालोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम् नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थितकमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्, अरण्यभूमिमिव अक्षतरूपसंपन्नाम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातंगकुलदूषिताम्, अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधुमासकुसुमसमृद्धिमिवाजातिम्, अनङ्गकुसुमचापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपलक्ष्मीमिवालकोद्भासिनीन्, अचिरोपारूढयौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिमनिमिषलोचनो ददर्श।

हिन्दी अनुवाद– "दूर से ही दर्शन करो"– ऐसा कहकर प्रतीहारी के द्वारा निर्दिष्ट की जाती हुई उसको महाराज शूद्रक ने अपलक नेत्रों से निहारा। अवस्था ढलने से सिर के सफेद बालों वाला, लाल कमल के समान नेत्र वाला, नियमितरूप से व्यायाम करने के कारण वृद्धावस्था में भी (जवानी बीत जाने पर भी) कसे हुए शरीर के जोड़ों वाला, चाण्डाल जाति का होने पर भी क्रूरता रहित आकृति वाला, श्वेतवस्त्रधारण करने से सभ्य वेषभूषा से अनुगृहीत एक पुरुष उसके आगे था और रूखे-उलझे बालों वाला, सोने की तीलियों से बने होने पर भी भीतर बैठे हुए तोते की रंग की दीप्ति से श्यामल होते हुए (अत:) पन्नामणि से निर्मित जैसे पिंजड़े को हाथ में लटकाया हुआ एक चाण्डाल बालक उसका अनुसरण कर रहा था।

(महाराज शूद्रक ने) शरीर के सांवलेपन के द्वारा, असुरों से गृहीत अमृत कलश को अधिकृत करने के लिए माया से चतुर मोहिनी वेश धारण करने वाले भगवान् विष्णु का अनुकरण करती हुई, इन्द्रनील मणि की बनी हुई गतिशील पुतली जैसी, घुटने तक लटकने वाले नीले ढीले ढाले कुर्ते से ढँके हुए शरीर वाली सिर पर लाल रेशमी कपड़े की ओढ़नी ओढ़ी हुई (अत:) सायंकाल की धूप जिस पर पड़ रही है– ऐसी नील कमल से आच्छादित जगह जैसी, एक कान में लगे हुए दन्तपत्र (हाथी दाँत का बना नुकीला आभूषण) की दीप्ति से धवलित गाल वाली, उगते हुए चन्द्रमा की किरणों से स्पर्श किये जा रहे मुख (आरम्भ) वाली रात्रि जैसी, हल्के पीले रंग वाले गोरोचन से (दोनों भौंहो के बीच) बनाये गये तीसरे नेत्र के समान तिलक के कारण शिववेष के समान भीलनी का वेश बनाने वाली पार्वती जैसी, हृदय में निवास करने के कारण संक्रान्त भगवान् विष्णु की देहकान्ति से साँवली हुई लक्ष्मी जैसी, क्रुद्ध शङ्कर की नेत्राग्नि से जले हुए कामदेव के धुँये से काली पड़ गयी रति जैसी, उन्मत्त बलराम द्वारा हल से खींचे जाने के डर से भागी हुई यमुना जैसी, खूब गाढ़े महावर के रंग से बेलबूटेदार रचना से रंगे हुए सुन्दर लाल चरण कमल वाली (अत:) तत्काल मारे गये महिषासुर के रक्त से लाल पैरों वाली कात्यायनी जैसी, अतिशय लाल अँगुलियों की दीप्ति से नखों की लाल किरणों वाली, अत्यन्त कठोर मणियों से बनी हुई फर्श का स्पर्श न सह सकने के कारण मानो भूमि पर (लाल) किसलय-खण्डों को रख कर चलती हुई, पायलों की मणियों से ऊपर की ओर निकल कर जाती हुई पीली-पीली किरणों से पीतरञ्जित शरीर के कारण मानो उसके रूप पर रीझने वाले अग्निदेव के द्वारा, विधाता के नियम का उल्लङ्घन करते हुए उसकी (चाण्डाल) जाति का संशोधन (परिमार्जन या पवित्रीकरण) करने के लिए अलिङ्गित शरीर वाली, कामदेवरूपी हाथी के मस्तक पर नक्षत्रमाला (तारकावली) जैसी लगती हुई, रोमपंक्तिरूपी लता के घेरे के समान करधनी से परिवेष्ठित जघन (कटि =कमर) वाली, बड़ी-बड़ी मोतियों के दानों से गुँथी हुई उज्ज्वल लड़ी से, मानो यमुना समझकर गंगा के द्वारा किये गये कण्ठालिङ्गन वाली, शरद् ऋतु के समान खिले हुए श्वेतकमला रूपी नेत्रों वाली, वर्षा ऋतु के समान बादल रूपी घने केशपाश वाली, चन्दन पल्लवों से सजी हुई मलयगिरि के मध्यभाग जैसी चन्दनपल्लवों के कर्णाभूषण वाली, चित्रा, श्रवण और भरणी से अलङ्कृत नक्षत्रमाला के समान विचित्र कर्णाभूषणों से अलङ्कृत; हाथ में पकड़े गये कमल की शोभा से युक्त लक्ष्मी जैसी, चेतना लुप्त कर देने वाली मूर्च्छा के समान अत्यन्त आकर्षक, रूप सम्पन्न वनभूमि जैसी; पृथ्वी पर न रहने वाली दिव्य ललनाओं की तरह निम्न कुलोत्पन्ना, नेत्रों

पर अधिकार कर लेने वाली निद्रा के समान आँखों को वश में कर लेने वाली, गजयूथों से रौंदी गयी वन्य कमलिनी की तरह चाण्डालकुल में जन्म लेने से अपवित्र, अमूर्तभाव जैसी स्पर्शवर्जित, दर्शनमात्र से सार्थक होने वाले चित्र लिखित जैसी, चमेली के फूल से रहित चैत्रमास के फूलों की समृद्धि के समान हीन जाति वाली, मुट्ठी से पकड़ने योग्य मध्यभाग वाले कामदेव के पुष्प धनुष की यष्टि के समान मुट्ठी से पकड़े जाने योग्य कमरवाली, अलकापुरी में उद्भासित होने वाली कुबेर की लक्ष्मी के समान सिर के काले लम्बे बालों से सुशोभित, अभी चढ़ते हुए नवयौवन वाली अत्यन्त सौन्दर्यमयी शरीररचना वाली (उस चाण्डालकन्या को अपलक निहारा)।

संस्कृत व्याख्या– 'अवनिपतिस्तु ....अनिमिषलोचनो ददर्श' इति दूरान्वितं दीर्घवाक्यम्।

अवनिपतिः तु= महाराजः शूद्रकः तु। **दूराद्** = नातिनिकटात्। **आलोकय** = दर्शय जयशब्दम् उच्चारय। इति = एवम्। **अभिधाय**=उक्त्वा। **प्रतीहार्या**=द्वारपालिकया। **निर्दिश्यमानाम्**=ज्ञाप्यमानाम्। **ताम्** = तथोक्तां चाण्डालकन्यकाम्। वयः परिणाम **शुभ्रशिरसा**= वयसः आयुषः परिणामेन परिपाकेन शुभ्रं धवलं शिरः कपालः यस्य सः तेन। **रक्तराजीव नेत्रापाङ्गेन**=रक्तं लोहितं यत् राजीवं कमलं तद्वत् नेत्रस्य लोचनस्य अपाङ्गौ कोणौ यस्य सः तेन। **अनवरतकृतव्यायामतया**= अनवरतं निरन्तरं कृतः विहितः व्यायामः श्रमाभ्यासः येन तस्य भावः तत्ता तया। **यौवनापगमे अपि**=यौवनस्य युवास्थायाः अपगमे अवसाने अपि। **अशिथिल शरीरसन्धिना**= अशिथिलाः दृढ़ा शरीरस्य देहस्य सन्धयः धातूनाम् अस्थ्यादीनाञ्च स्नायुबन्धाः यस्य सः तेन। **सत्यपि**=वर्तमानेऽपि। **मातङ्गत्वे**= चाण्डालत्वे। **नातिनृशंसाकृतिना**=नातिनृशंसा नातिक्रूरा आकृतिः आकारः यस्य तेन। **अनुगृहीतार्यवेषेण**=अनुगृहीतः स्वीकृतः आर्यवेषः सभ्यनेपथ्यं येन तेन। **शुभ्रवाससा**= धवलवस्त्रेण। **पुरुषेण**=मनुष्येण, नरेण, जनेन वा। **अधिष्ठितपुरोभागाम्**=आस्थितः पुरोभागः अग्रदेशः यस्याः सा ताम्। **आकुलाकुल काकपक्ष धारिणा**= आकुलाकुलः असंस्कृतः रुक्षः यः काकपक्षः मूर्धजशिखा तं धारयितुं शीलं यस्य तेन। **कनकशलाकानिर्मितम् अपि** =स्वर्णतनुयष्टिकाभिः निर्मितं विरचितम् अपि। **अन्तर्गतशुकप्रभाश्या मायमानम्**= अन्तर्गतः पञ्जरेस्थापितः यः शुकः कीरः तस्य प्रभया वर्णदीप्त्या श्यामायमानं श्यामतां गतमिव लक्ष्यमाणम्। **मरकतमयम् इव**= मकरतमणिनिर्मितम् इव। **पञ्जरम्**=पक्षिरक्षणपिटकम्। **उद्वहता**=करेण धारयता। **चाण्डालदारकेण**=मातङ्ग बालकेन। **अनुगम्यमानाम्**=अनुव्रज्यमानाम्। **असुरगृहीतामृत०**=असुरैः दानवैः गृहीतम् अधिकृतं यत् अमृतं पीयूषं तस्य अपहरणे पुनः प्राप्तौ कृतः आरचितः यः कपटेन छद्मना पटुः चतुरः विलासिन्याः मोहिन्याः युवत्याः वेषः स्वरूपं येन तस्य। **स्यामतया**=नीलवर्णतया। **भगवतः**=ऐश्वर्यादिषड्गुणसम्पन्नस्य। **हरेः** =विष्णोः। **अनुकुर्वतीम्**=अनुकरणं विदधतीम्। **सञ्चारिणीम् इव**=गमनागमन व्यापारशीलाम् इव। **इन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्**=नील कान्तमणिमयीं पुत्तलिकाम्। **गुल्फावलम्बिनील०**=गुल्फावलम्बि-जानुपर्यन्तपाति नीलकञ्चुकेन नीलं च तत् कञ्चुकं तेन श्यामकूर्पासकेन आच्छन्नं समावृतं शरीरं देहयष्टिः यस्याः ताम्। **उपरिरक्तांशुकरचितावगुण्ठनाम्**=उपरि ऊर्ध्वभागे शिरसि इत्यर्थः, रक्तांशुकेन लोहितवर्णसूक्ष्मपटेन रचितं निर्मितं अवगुण्ठनं मुखावरण यस्या सा ताम्। **नीलोत्पलस्थलीम् इव**= नीलकुवलायानाम् उत्पत्तिस्थलीम् इव। **निपतितसन्ध्यातपाम्**=निपतितः अवतरितः सन्ध्यायाः सूर्यास्तवेलायाः आतपः धर्मः यस्यां सा ताम्। **एककर्णावसक्त०**=एककर्णे एकस्मिन् श्रोत्रे अवसक्तम् अवलम्बितं यत् दन्तपत्रं करिदन्तरचितकर्णाभूषणम्, तस्य प्रभया

कान्त्या धवलितं गौरवर्णीकृतं कपोलमण्डलं गण्डस्थलं यस्याः सा ताम्। **उद्यदिन्दु०**=उद्यन् आविर्भवन् यः इन्दु चन्द्रः तस्य किरणैः मयूखैः धुरितं रञ्जितं मुखम् आननं आरम्भः वा यस्याः ताम्। **विभावरीम्**=रात्रिम्। **आकपिलगोरोचना०**= आ ईषत् कपिला रक्तपीतवर्णा या गोरोचना रञ्जकद्रव्यविशेषः तया रचितं लिखितं तिलकम् एव तृतीयं लोचनं नयनं यस्याः सा ताम्। (अतः) **ईशानरचितानुरचितकिरातवेषाम्** = ईशानेन हरेण रचितः निर्मितः तम् अनुरचितः पश्चाद् विरचितः गृहीतः किरातवेषः भिल्लप्रसाधनं यया ताम्। **भवानीम्**=पार्वतीम्।।इव।। **उरस्थलनिवास०**=उरःस्थले वक्षःस्थले निवासेन स्थित्या संक्रान्ता उपारूढ़ा नारायणदेहप्रभा विष्णोः शरीरकान्तिः तया श्यामलिताम् नीलवर्णत्वमाप्ताम्। **श्रियम् इव**=लक्ष्मीम् इव। कुपितहरहुताशन० कुपितः क्रुद्ध यः हरः शम्भुः तस्य हुताशनेन तृतीयनेत्राग्निना दह्यमानः ज्वाल्यमानः यः मदनः कामदेवः तस्य धूमेन मालिनीकृता कलुषीकृतां रतिं कामदेवभार्याम् इव। **उन्मदहलिहलाकर्षण०**=उन्मदः उन्मत्तः यः हली बलरामः तस्य हलाकर्षणभयेन हलेन लाङ्गलेन आकर्षणं तस्माद् भयेन भीत्या पलायितां दृष्टेः दूरं गतां कालिन्दीं यमुनाम् इव। **अतिबहलपिण्डालक्तक०**=अति बहलः अतिघुसृणः यः पिण्डालक्तकरसः चरणरञ्जकद्रवविशेषः तस्य रागिण लौहित्येन पल्लविते नवकिसलयवत् शोभिते पादपङ्कजे चरणकमले यस्याः ताम्। **अचिरमृदितमहिषासुर०**=अचिरं सद्यः मृदितः वधं नीतः यः महिषासुरः तस्य रुधिरेण रक्तेन रक्तौ लोहितवर्णौ चरणौ पादौ यस्याः ताम्। **कात्यायनीम् इव**=दुर्गाम् इव। **आलोहिताङ्गुलि०**=आलोहिताः अतिशय रक्तवर्णा याः अङ्गुलयः तासां प्रभाभिः कान्तिभिः पाटलिताः श्वेतरक्तीकृताः नखमयूखाः पुनर्भवरश्मयः यस्याः ताम्। **अतिकठिनमणिकुट्टिम०**=अतिकठिनस्य अतिशयकठोरस्य मणिकुट्टिमस्य मणिभिः निर्मितायाः बद्धभूमेः स्पर्शं संश्लेषम् असहमानां अक्षममाणाम् (अतः) क्षितितले धरातले पल्लवानां किसलयानां भङ्गान् खण्डान् इव। निधाय=स्थापयित्वा। **सञ्चरन्तीम्**=गच्छन्तीम्। **आपिञ्जरेणो०**= आ ईषत् पिञ्जरेण पीतेन उत्सर्पिणा ऊर्ध्वगामिना। **नूपुरमणीनाम्**=चरणाभूषणरत्नानाम्। **प्रभाजालेन**=दीप्तिपुञ्जेन। **रञ्जितशरीरतया**=रागलिप्तदेहतया। **पावकेन इव**=अनलेन इव। **भगवता**= देवेन। रूपे एव=सौन्दर्ये एव। **पक्षपातिना**=बद्धादरेण। **प्रजापतिम्**=विधातारम्। **अप्रमाणीकुर्वता**=प्रामाण्येन अस्वीकुर्वता। **जातिसंशोधनार्थम्**=चाण्डालजातेः शुद्धीकरणार्थम्। **आलीङ्गितदेहाम्**= परिवेष्टितशरीराम्। **अनङ्गवारण०**= अनङ्ग एव वारणः अथवा, अनङ्गस्य वारणः कामदेवकरिः, तस्य शिरसि कपाले या नक्षत्रमाला नक्षत्रपंक्तिः नक्षत्रहारः वा तद्वदाचरणा रोमराजिः लोमपंक्तिः एव लता वल्लरी तस्याः आलवारणम् मूले जलाधारः तत्स्वरूपेण। **रशनादाम्ना**=मेखलारज्वा। **परिगतजघनाम्**= परिगतं परितः व्याप्तं जघनाम् कटेः अधः प्रदेशम् यस्याः ताम्। **अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन**=अतिस्थूलानि बृहदाकारमयानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैः घटितेन निर्मितेन। **शुचिना** = समुज्ज्वलेन। **हारेण**=मालया। **गङ्गास्त्रोतसा**=भागीरथीप्रवाहेण। **इव कालिन्दीशङ्कया**=यमुनाभ्रान्त्या। **कृतकण्ठग्रहाम्**=कृतः विहितः कण्ठग्रहः कण्ठालिङ्गनं यस्याः तां तादृशीम्। **शरदम् इव** =घनात्ययम् इव। **विकसित पुण्डरीकलोचनाम्**= विकसिते प्रफुल्लिते पुण्डरीके श्वेतकमले इव लोचने नेत्रे यस्यां ताम्। शरत्पक्षे तु विकसितानि प्रस्फुटितानि पुण्डरीकाणि श्वेतकमलानि लोचनानि नयनानि इव यस्याः तां तादृशीम्। **प्रावृषम् इव**= वर्षाकाल इव। **घनकेशजालाम्**=घनाः अविरलाः ये केशाः मूर्धजाः तेषां जालानि कलापाः यस्याः ताम्। प्रावृट्पक्षे तु घनाः मेघाः एव केशजालानि

यस्याः सा ताम्। **मलयमेखलाम् इव**= मलयस्य मलयगिरेः मेखलां मध्यभागम् इव। **चन्दनपल्लवावतंसाम्**= चन्दनस्य पल्लवाः किसलयानि तेषाम् अवतंसाः भूषणानि यस्याः ताम्। मलयपक्षे, चन्दनपल्लवा एव अवतंसः शेखरः यस्याः ताम्। **नक्षत्रमालाम् इव**= तारकावलीम् इव। **चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्**=चित्रैः विचित्रैः श्रवणाभरणैः कर्णाभूषणैः भूषिताम् अलङ्कृताम्। नक्षत्रमालापक्षे तु, चित्रा-श्रवण-भरणी-संज्ञकैः नक्षत्रविशेषैः शोभिताम्। **श्रियम् इव**=लक्ष्मीम् इव। **हस्तस्थितकमलशोभाम्**=हस्ते करतले स्थिता वर्तमाना कमलस्य शोभा विच्छित्तिः यस्याः सा ताम्। श्रीपक्षे तु, हस्ते करे स्थितं गृहीतं यत् कमलं तेन शोभा यस्याः सा ताम्। **मूर्च्छाम् इव**= मूर्च्छा मोहः इव। **मनोहारिणीम्**= चित्ताकर्षिणीम्। मूर्च्छापक्षे तु, चेतनालोपकारिणीम्। **अरण्यभूमिम् इव**=वनस्थलीम् इव। **अक्षतरूपसम्पन्नाम्** = अक्षतम् अभुक्तं यद्रूपं लावण्यं तेन सम्पन्नाम् संयुताम्। अरण्यभूमिपक्षे तु, (अक्ष +तरु+उपसम्पन्नाम्) अक्षतरुभिः रुद्राक्षवृक्षैः उपसम्पन्नाम् समृद्धाम्। **दिव्ययोषितम् इव**=दिव्याम् अलौकिकीम् योषितं रमणीं देवाङ्गनाम् इत्यर्थः इव। **अकुलीनाम्** = नीचकुलोद्भवाम्। दिव्य योषित्पक्षे, कुः पृथ्वी तस्यां लीना स्थिता न भवति या सा अकुलीना, ताम्। **निद्राम् इव**= सुषुप्तिम् इव। **लोचनग्राहिणीम्**= सौन्दर्यातिशयेन (जनानां) दृष्टिहारिणीम्। निद्रापक्षे तु , नेत्रनिमीलनकारिणीम्। **अरण्यकमलिनीम् इव**= वन्य पद्मिनीम् इव। **मातङ्गकुलदूषिताम्**= चाण्डालवंशोद्भावात् अपवित्राम्। अरण्यकमलिनीपक्षे तु मातङ्गकुलेन गजयूथेन मर्दिताम्। **अमूर्ताम् इव**= अनभिव्यक्ताम् अदेहाम् वा, **इव। स्पर्शवर्जिताम्** = अस्पृश्याम्। अमूर्तपक्षे, आकृतिराहित्येन स्पर्शाभावात्। **आलेख्यगताम् इव**=चित्रलिखिताम् इव। **दर्शनमात्रफलाम्**=दर्शनमात्रम् अवलोकनम् एव फलं प्रयोजनं यस्याः ताम्। चाण्डालत्वेन सम्भोगाभावात्। चित्रपक्षे अपि, दर्शनमात्रफलं चित्रमिति। **मधुमासकुसुमसमृद्धिमिव**=मधुमासस्य चैत्रमासस्य (वसन्तसमयस्य) कुसुमसमृद्धिम् पुष्पसम्पत्तिम् इव। **अजातिम्** = न विद्यते (कापि) जातिः यस्याः ताम्। मधुमासपक्षे तु, मालतीकुसुमरहिताम्। **अनङ्गकुसुमचापलेखाम् इव**= अनङ्गस्य कामदेवस्य कुसुमचापस्य पुष्पकोदण्डस्य या लेखा यष्टिः तत्ता ताम् इव। **मुष्टिग्राह्यमध्याम्**=मुष्टिः सम्मील्याकुञ्चितकराङ्गुल्यःतया ग्राह्यः ग्रहीतुं शक्यः मध्यः करिदेशः यस्याः ताम्। चापपक्षे, मुष्टिना गृहीतः चापस्य मध्यभागः। **यक्षाधिपलक्ष्मीम् इव**= यक्षानाम् अधिपः कुबेरः तस्य लक्ष्मीः सम्पत् श्रीः ताम् इव। **अलकोद्भासिनीम्** = अलकैः चूर्णकुन्तलैः उद्भासते विराजते संशोभते वा या सा ताम्। कुबेरपक्षे, अलकायां कुबेरराजधान्याम् उद्भासते या ताम्। **अचिरोपारूढयौवनाम्** = न चिरम् अचिरं सद्यः उपारूढम् अङ्गेषु सन्नद्धम् यौवनं तारुण्यं यस्याः सा ताम्। **अतिशयरुपाकृतिम्**=अतिशयं सर्वाधिकं यत् रूपं सौन्दर्यं तेन संयुक्ता आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा, ताम्। **अनिमिषलोचनः**= अनिमिषे निमेषोन्मेषरहिते लोचने नेत्रे **यस्य सः राजा शूद्रकः ददर्श**=विलोकयामास, तस्यां बद्धदृष्टिः बभूव इत्यर्थः।

टिप्पणी– आलोकय – आलोक शब्द अनेकार्थक है और सुबन्त पद है। प्रयोग की दृष्टि से 'आलोक्य' पद तिङन्त (क्रिया) पद है और यह लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप है। आ+लुक्, लोट् लकार, म०पु० ए०व०। सामान्यतः इसका अर्थ यहाँ 'तुम राजा को देखो' अथवा, (तुम शुक को) दिखाओ– प्रतीत होता है। किन्तु यदि प्रसङ्ग सापेक्ष 'आलोक' का अर्थ 'जयजयकार' (आलोको जयशब्दः **स्यात्** – हलायुधकोश) किया जाय तो 'आलोकय' का अर्थ यहां' (महाराज का) जयजयकार करो' होगा। **अभिधाय**–अभि+धा+क्त्वा–ल्यप्। **शुभ्रशिरसा**– यहाँ

लक्षणा है। वस्तुतः वृद्धावस्था में सिर के बाल सफेद हो जाते हैं। चाण्डालकन्या के आगे चल रहे वृद्ध के सिर के सारे बाल सफेद हो गये हैं, अतः सिर को ही सफेद कहा गया। **आकुलाकुलकाकपक्षः**– बालकों के सँवारे गये सिर के बालों को 'काकपक्ष' कहा जाता है– 'बालानां तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डकः।' यायावर अथवा जनजाति (भील, चाण्डाल, किरात आदि) के बालकों के सिर के बीचो बीच जूडा या चोटी गूँथ कर शेष बालों को चारों ओर लटका देते हैं। चाण्डालकन्या के पीछे, हाथ में तोता सहित पिंजड़ा लिये हुए बालक के सिर के बाल संस्कारित न थे, उलझे उलझे और रुखे थे। **उद्वहता**=उत्+वह्+शतृ, तृतीया विभक्ति, एकवचन। बालक अपने हाथ में तोते वाला पिंजड़ा लिये हुए था। **अनुगम्यमानाम्**– अनु+गम्+यक्+शानच्+टाप्, द्वितीया एक वचन। **असुरगृहीतामृत०**– समुद्रमन्थन देवों और दानवों ने मिलकर किया। मन्थन के फलस्वरूप जो चौदह रत्न निकले, उनमें एक रत्न 'अमृत' भी था। दानव यदि अमृत-पान कर लेंगे तो अमर हो जायेंगे– यह सोचकर भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर बड़ी चतुराई से देवताओं को अमृत बाँट दिया। यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। **अवसक्त** – अव+ सञ्ज्+क्त। **ईशानरचितानुरचितकिरातवेषामिव भवानीम्**– महाभारत की कथा के अनुसार, एक वन्य वराह के आखेट में 'प्रथमतया बाण किसका लगा' – इस बात पर अर्जुन और किरातवेषधारी शङ्कर में विवाद हो गया। दोनों धनुर्धर परस्पर युद्धरत हो गये। युद्ध में ही धनुर्बाण छोड़कर मल्लयुद्ध होने लगा। जब अर्जुन ने किरात का पैर पकड़कर गिराना चाहा तो पैर पकड़ने से भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर अपने वास्तविक रूप में आ गये। अर्जुन तो शिव को प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिए तपस्या कर ही रहे थे। शिव द्वारा किरातवेष धारण किये जाने पर पार्वती ने भी उसके अनुरूप किराती का वेष धारण किया था। **कुपित हरहुताशन०**– कामदहन की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है जिसमें देवताओं के अनुरोध से कामदेव ने समाधिस्थ शिव की समाधि भङ्ग करने के लिए उन पर पुष्पबाण से प्रहार किया था और शिव ने तृतीय नेत्र की अग्नि से उसे भस्म कर दिया था। **उन्मदहलिहलाकर्षण०**– बलराम का मदिरापान प्रसिद्ध है। एक बार मदोन्मत्त बलराम ने जलक्रीडा करने के लिए यमुना को अपने पास बुलाया किन्तु यमुना नहीं आई। तब अपने हल से उन्होंने यमुना को खींचना प्रारम्भ किया। दूसरी कथा है कि गर्मी के दिनों में यशोदा आदि रानियाँ यमुना में स्नान के लिए जा रही थीं किन्तु सूर्यातप से कष्ट में थी। बलराम ने हल से खींच कर यमुना को राजमहल के पास ला दिया। **मृदितमहिषासुर..........कात्यायनीम्**-मार्कण्डेयपुराण की एक कथा के अनुसार ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर महिषासुर सकल भुवन में उत्पात मचाने लगा। तब दुर्गाजी ने उसका वध किया। नवदुर्गाओं के अन्तर्गत 'कात्यायनी' का भी नाम आता है। **निधाय**– नि+धा+क्त्वा-ल्यप्। **असहमाना**– नञ् + सह +शानच् + टाप। **आपिञ्जरेण**– ईषत् पिञ्जरेण। 'पीतरक्तस्तु पिञ्जरः। अपवित्र वस्तु अग्नि के स्पर्श से पवित्र हो जाती है। **सर्वमग्नौ प्रतप्तं शुध्यते।** **नक्षत्रमालायमानेन**– नक्षत्रमाला+क्यङ् +शानच्। 'सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्त- विंशतिमौक्तिकैः' अमरकोश। ज्योतिषशास्त्र में नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस कही गयी है। **श्रियम्** – श्री = लक्ष्मी, विष्णुपत्नी। **हस्तस्थितकमलशोभाम्**– हाथ में कमल की शोभा का दो अभिप्राय है। प्रथम तो यह कि लक्ष्मी भी कमल धारण करती है और चाण्डालकन्या ने भी लीला कमल हाथ में

लिया हो, अथवा दोनों की हथेलियाँ स्वयं में कमल की तरह लाल हों और कमलकुड्मलाकार हों। द्वितीय, यह कि दोनों की हथेलियाँ में कमल (पद्म) का शुभ चिन्ह अवस्थित हो। चाण्डाल-कन्या भी वस्तुतः लक्ष्मी की ही स्वरूप है। **मातङ्ग**– 'मातङ्गः श्वपचे गजे' मेदिनी कोश। **अजातिम्**-जिसकी कोई ज़ाति न हो। चाण्डालों की गणना किसी जाति में नहीं की जाती है। यहाँ 'जाति' का अभिप्राय 'वर्ण' से है। 'जाति' का अर्थ मालती पुष्प भी होता है। यह वर्षा ऋतु का पुष्प है। वसन्त ऋतु में इसका अभाव होता है– न स्याज्जाती वसन्ते।

बोध प्रश्न

1. 'तस्य च राज्ञः .... राजधान्यासीत्' का हिन्दी अनुवाद कीजिए।
2. शूद्रक किस प्रकार के राजपुत्रों के साथ किस आयु में स्थित होकर अपनी राजधानी में सुखपूर्वक निवास करता था?
3. वह राजा शूद्रक अपनी रात कैसे व्यतीत करता था?
4. 'रत्न' के सम्बन्ध में लघु टिप्पणी लिखिए।
5. शूद्रक की सभा में वैशम्पायन तोता लाने वाली चाण्डालकन्या किनके साथ आयी थी?

प्रश्नोत्तर–

1. इस इकाई के प्रारम्भ में द्रष्टव्य है।
2. शूद्रक अपने ही समान विनय और व्यवहारयुक्त राजपुत्रों के साथ सुखपूर्वक निवास करता था और वह युवावस्था वाला था।
3. दिन की ही तरह, नाना प्रकार की क्रीडाओं और हँसी मजाक करने में चतुर अपने मित्रों के साथ रात व्यतीत करता था।
4. जैसे समुद्र रत्नों को धारण करता है वैसे ही समस्त लोकों में प्राप्त रत्न को धारण करने के एकमात्र योग्य पात्र शूद्रक ही थे– शूद्रक के लिए यह उक्ति चाण्डालकन्या की है। यहाँ 'रत्न' का अर्थ है 'सर्वोत्तम वस्तु।' कहा भी गया है– "जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद् रत्नमभिधीयते।" अर्थात् प्रत्येक जाति (वस्तु प्रकार) में जो उत्कृष्टतम होता है उसे 'रत्न' कहते हैं। पद में सकारात्मक प्रयोग होने पर यह 'सर्वश्रेष्ठ' अर्थ देता है। यथा–पुरुषरत्न, पुत्ररत्न, कन्यारत्न इत्यादि।
5. चाण्डालकन्या जब शूद्रक की सभा में आयी तब उसके आगे-आगे चाण्डालजाति का एक प्रौढ़ पुरुष था और पीछे-पीछे एक उसी की जाति का बालक था, जो वैशम्पायन के स्वर्णपिञ्जर को हाथ में लिये हुए था।

इकाई–07

जातविस्मयस्याभून्मनसि महीपतेः– 'अहो! विधातुरस्थाने सौंदर्यनिष्पादनप्रयत्नः। तथा हि। यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसंपदुत्पादिता, किमर्थपगतस्पर्शसंभोगसुखे कृतं कुले जन्म। मन्ये च मातंगजातिस्पर्शदोषभयादस्पृश्यतेमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहिं करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः। सर्वथा धिग्धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम् मनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सततनिन्दितसुरता रमणीयाऽप्युद्वेजयति इति।

हिन्दी अनुवाद– आश्चर्य से भरे हुए महाराज (शूद्रक) के मन में हुआ (महाराज ने विचार किया)– ओह! अनुचित स्थान में सौन्दर्य रचना का ब्रह्मा का (ऐसा) प्रयत्न? जैसे कि यदि यह अपनी रूपशोभा से समस्त सौन्दर्य सम्पत्ति का उपहास करने वाली बनायी गयी तो इसे संभोग सुख के स्पर्श से भी रहित कुल में पैदा क्यों किया? मैं समझता हूँ कि चाण्डालजाति के स्पर्श दोष के भय से ब्रह्मा ने इसे बिना स्पर्श किये ही बनाया है अन्यथा, इसमे लावण्य की यह सुकुमारता कैसे आती? हथेलियों के स्पर्श से दुखाये गये अङ्गों में इस प्रकार की कान्ति (कमनीयता) नहीं होती। इस प्रकार के (अनुचित) असमान भावों के संयोग कराने वाले विधाता को हर प्रकार से धिक्कार है कि जिस (विषम सम्बन्ध) के कारण यह असुरलक्ष्मी की तरह मनोहर स्वरूप धारिणी और अत्यन्त सुन्दरी होने पर क्रूर जाति (चाण्डाल जाति) के कारण सदैव गर्हित सम्भोग वाली होकर उद्विग्न कर रही है।

संस्कृत व्याख्या– जातविस्मयस्य= (तां चाण्डालकन्यकां तथाभूतां दृष्ट्वा) जातः उत्पन्नः विस्मयः आश्चर्यं यस्य सः तस्य। **महीपतेः**=पृथ्वीपतेः (राज्ञः शूद्रकस्य)। **मनसि** = चित्ते। **अभूत्** =अभवत्। अहो! किन्नु (वितर्के)। **विधातुः** = ब्रह्मणः। **अस्थाने**=अनुचितस्थले (अनुपयुक्ते पात्रे)। **सौन्दर्यनिष्पादनप्रयत्नः** = सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम् रूपं तस्य निष्पादने निर्मितौ प्रयत्नः प्रकृष्टः यत्नः प्रयत्नः समुद्योगः। **तथा हि** = यथा च (स्पष्टीकरणार्थम्)। **यदि नाम** = चेन्नाम। **इयम्** = एषा। **आत्मरूपोपहसितशेषरूपसम्पदुत्पादिता**= आत्मनः स्वकीयः रूपं सौन्दर्यं तेन उपहसिता अवधीरिता अशेषा निखिला रूपसम्पद् सौन्दर्यसम्पत्तिः यया सा। **किमर्थम्**=केन हेतुना। **अपगतस्पर्शसम्भोगसुखे**= स्पर्शः संश्लेषः सम्भोगसुखं रत्यानन्दः, (द्वे अपि) ते अपगते दूरीभूते यस्मिन् एवम्भूते। कुले=वंशे। **जन्म**=उत्पत्तिः। **कृतम्**=विहितम्। **मन्ये च**= वितर्कयामि च। **मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयात्**=मातङ्गजातेः चाण्डालजातेः स्पर्शेन संश्लेषेण यः दोषः अपवित्रता तस्मात् यद् भयं भीतिः तस्मात्। स्पर्शं न कुर्वता। **इयम्**=एषा चाण्डालकन्या। **उत्पादिता**=विनिर्मिता। **प्रजापतिना**=ब्रह्मणा। **अन्यथा**=नो चेत्। **कथम् इयम्** =केन प्रकारेण एषा। **अक्लिष्टता**=सुकुमारता। **लावण्यस्य**=सौन्दर्यस्य। **न हि**=कथमपि नैव। करतलस्पर्शक्लेशितानाम्=करतलस्पर्शः पाणितलसंश्लेषः तेन क्लेशितानाम् पीडितानाम्। **अवयवानाम्**=अङ्गानाम्। **ईदृशी**=एतादृशी। **कान्तिः** = कमनीया प्रभा। **भवति** =जायते। **सर्वथा**=सर्वतोभावेन। धिक् धिक् निन्दार्थे प्रयुक्तं धिक् इति पदम्। वीप्सायां द्विरुक्तम्। **विधातारम्** = प्रजापतिम्। **असदृशसंयोगकारिणम्**= असमानसम्मेलनकर्तारम्। **मनोहराकृति अपि**= कमनीयदेहधारिणी अपि। **क्रूरजातितया**=नृशंसकारिजातितया। **येन** = विधात्रा। **इयम्**= एषा कन्यका। **असुरश्रीः इव**=दानवलक्ष्मीः इव। **सततनिन्दितसुरता**= निरन्तरगर्हितसम्भोगा।

रमणीया = मनोज्ञा। अपि। **उद्वेजयति** = चित्ते उद्वेगं जनयति।

टिप्पणी– **जातविस्मयस्य**– महाराज शूद्रक, जिनके अन्त:पुर में एक से बढ़कर एक सुन्दरियां रही होंगी, वे भी चाण्डालजाति की एक लड़की के अनुपम सौन्दर्य को देखकर विस्मित हो गये। अहो– वितर्क में प्रयुक्त अव्यय पद। **अहो उताहो किमुत**– अमरकोश। **अस्पृशता**– नञ् + स्पृश + शतृ, तृतीया एक वचन। **धिग्धिग्विधातारम्**– 'धिक्' के योग में 'विधाता' पद में द्विताया विभक्ति। 'असुरश्री: इव' में पूर्णोपमा अलङ्कार है। **सततनिन्दितसुरता** – श्लेष अलङ्कार। सुरत का अर्थ सम्भोग और देवसमूह है। जनता के समान सुरता पद भी व्युत्पन्न होगा। दानव लक्ष्मी जैसे देवसमूह के द्वारा निन्दित है उसी तरह इस कन्या के भी साथ सम्भोग निन्दित है।

एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदबगलितकर्णपल्लवावतंसा प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम। कृतप्रणामायां च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायां स पुरुषस्तं विहङ्गमं शुकमादाय पञ्जरगतमेव किंचिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयत्। अब्रबीच्च– 'देव, विदितसकलशास्त्रार्थः राजनीतिप्रयोगकुशलः, पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनां काव्यनाटकाख्यायिकाख्यानकप्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता स्वयं च कर्ता परिहासालापपेशलः, वीणावेणुमुरजादीनामसमः श्रोता, नृत्तप्रयोगदर्शननिपुणः, चित्रकर्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलहकुपितकामिनी-प्रसादनोपायचतुरः, गजतुरगपुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः, सकलभूतलरत्नभूतोऽयं वैशंपायनो नाम शुकः सर्वरत्नानामुदधिरिव देवो भाजनमितिकृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता। तदयमात्मीयः क्रियताम्। इत्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार। अपसृते च तस्मिन्स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वोन्नमय्य दक्षिणं चरणमतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ–

स्तनयुगमश्रुस्तानं समीपतरवर्तिहृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्।।21।।

हिन्दी अनुवाद– इस प्रकार तरह-तरह की बातें सोचते हुए महाराज शूद्रक को, तनिक नीचे की ओर लटके हुए पत्राकार कर्णाभूषण धारण करने वाली (चाण्डाल) कन्या ने प्रगल्भ (ढीठ) नायिका (स्त्री) की तरह प्रणाम किया। प्रणाम करके उस लड़की के मणिनिर्मित फर्श पर बैठ जाने के पश्चात् वह (साथ में आया चाण्डाल) पुरुष ने पिंजरे में बैठे उस पक्षी तोते को (लेकर) कुछ आगे बढ़कर राजा को दिखाया और कहने लगा– "महाराज, अर्थ सहित सम्पूर्ण शास्त्रों को जानने वाला, राजनीति के प्रयोग में कुशल, पुराण और इतिहास की कथायें सुनाने में निपुण, सामवेद के मन्त्रों का ज्ञाता अथवा सङ्गीत (गायन) की बाईस श्रुतियों का ज्ञाता, काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यान आदि की असंख्य सूक्तियों का अध्ययन कर्ता और स्वयं भी सूक्तियों का निर्माता, हास-परिहास से भरी हुई बातचीत में अत्यन्त पटु, वीणा, बाँसुरी और मृदङ्गादि वाद्यों का बेजोड़ श्रोता, नृत्त कला का पारखी दर्शक, चित्र बनाने में दक्ष, जुआ खेलने में माहिर, प्रणय कलह में क्रुद्ध रमणी को मनाने के उपायों में चतुर, हाथी, घोड़ा, पुरुष और स्त्री के लक्षणों का जानकार, सम्पूर्ण धरातल का रत्न (सर्वोत्कृष्ट शुक) यह 'वैशम्पायन' नाम का तोता, सभी प्रकार से रत्नाकर के समान महाराज ही इसे रखने के (अधिकारी) पात्र हैं– ऐसा समझकर, हमारे स्वामी की पुत्री (इसे लेकर) महाराज के चरणों में उपस्थित हुई है। तो इसे

अपनाइए (अङ्गीकार कीजिए)– ऐसा कहकर राजा के समक्ष वह (शुक सहित) पिंजरा रखकर पीछे हट गया। उस (पुरुष) के पीछे हट जाने पर वह श्रेष्ठ पक्षी राजा के सम्मुख होकर, अपने दाहिने पैर को उठाकर, अत्यन्त स्पष्ट रूप से व्यञ्जन और स्वर से युक्त विशुद्ध वाणी में महाराज की जय हो– ऐसा कहकर, राजा को लक्ष्य कर (उनकी प्रशंसा में) इस आर्या का उच्चारण किया– "आपके शत्रुपत्नियों के दोनों स्तन, आसुओं से नहाये हुए, हृदयस्थित शोकाग्नि के समीप बैठकर, आहार का त्याग कर (पक्ष में रत्नादि की माला से रहित) मानो व्रत का अनुष्ठान कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या– एवम् आदि= इत्थं पूर्वोक्तविधिना। **चिन्तयन्तम्**=विचारयन्तम्। **एव। राजानम्**=नृपतिम्। ईषद्=किञ्चिद् इव। **अवगलितकर्णपल्लवावतंसा**=अवगलितौ अधः प्रसृतौ कर्णयोः श्रोत्रयोः पल्लवावतंसौ किसलयनिर्मिते भूषणे यस्याःसा। **प्रगल्भवनिता इव** = धृष्ट स्त्रीः इव, अथवा, प्रगल्भकोटिका नायिका इव। **कन्यका** – सा चाण्डालपुत्री। **प्रणनाम**= अभिवादनं राजोचितविधिना चकार। **कृतप्रणामायाम्**=कृत; विहितः प्रणामः प्रणतिः यया सा, तस्याम्। च तस्याम् = तस्यां कन्यकायाम्। **मणिकुट्टिमोपविष्टायाम्**= मणिकुट्टिमः रत्ननिबद्धभूमिः तत्र उपविष्टा निषण्णा या सा, तस्याम्। **सः पुरुषः**= सः चाण्डालजनः। **तम्**= तथोक्तम्। **पञ्जरगतम् एव**= पक्षिमञ्जूषास्थिम् एव। **विहङ्गमम्**=पक्षिणम्। **शुकम्** = कीरम्। **आदाय** = बालकस्य हस्तादगृहीत्वा। **किञ्चित्** = कियन्मात्रम्। **उपसृत्य**= राजानं प्रति अग्रेसरो भूत्वा। **राज्ञे**=नृपतये। **न्यवेदयत्** = प्रादर्शयत्। **अब्रवीत् च**= उवाच च। देव=महाराज। **विदितसकलशास्त्रार्थः**=शास्त्राणाम् अर्थः शास्त्रार्थः, विदितः उपस्थित सकलाशास्त्रार्थः यस्य सः। **राजनीतिप्रयोगकुशलः**=राजनीतेः प्रयोगे व्यवहारे कुशलःचतुरः यः सः। **पुराणेतिहासकथालापनिपुणः**=पुराणं पञ्चलक्षणात्मकः ग्रन्थः, इतिहासः पुरावृत्तम् तयोः याः कथाः आख्यानानि तासाम् आलापः संख्याख्यं कथनम्, तत्र निपुणः प्रवीणः। **वेदिता**=ज्ञाता। **गीतश्रुतीनाम्**=गीतमयीश्रुतिः गीतश्रुतिः सामवेदः तस्याः मन्त्राणाम् अथवा गीतं गानं तस्य श्रुतयः द्वाविंशतिप्रकाराः, तासम्। **काव्यनाटक०** = काव्यनाटकाख्यायिकाख्यादीनाम्। **अपरिमितानाम्** = असंख्यानाम्। सुभाषितानाम्=सूक्तीनाम्। **अध्येता** = पाठकः। **स्वयञ्च** = आत्मना एव। **कर्ता च** = निर्माता च। **परिहासालापपेशलाः**=परिहासः व्यङ्ग्यार्थविच्छित्तिः तेन युक्तः आलापः अन्योन्यवचनम् तस्मिन् पेशलः रसनिर्भरदक्षः। **वीणावेणुमुरजादीनाम्**=वीणा वल्लकी, वेणुः सुषिरं मुरजम् मृदङ्गम्, आदीनांम् प्रभृतीनाम् वल्लकीसुषिरमृदङ्गादिवाद्यविशेषाणाम्। असमः अद्वितीय। **श्रोता**=आकर्णेन रुचिजनः। नृत्तप्रयोगदर्शननिपुणः = नृत्तं तालयाश्रितः अङ्गविक्षेपः, तस्य प्रयोगः मञ्चप्रदर्शनं, तस्य दर्शने प्रेक्षणे निपुणः कुशलः। **चित्रकर्मणि**=वर्णालेखनकलायाम्। प्रवीणः निपुणः। द्यूतव्यापारे=अक्षक्रीडायाम्। प्रगल्भः= प्रतिभाप्रौढ़। **प्रणयकलह०**= प्रणये सुरतक्रीडायां यः कलहः विवादः तेन कुपितानां रुष्टानां कामिनीनां रमणीनां प्रसादनः प्रसन्नतायै अनुनयः तस्य उपायेषु विधिषु चतुरः। **गजतुरगपुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः**=गजाः करिणः तुरगाः अश्वाः पुरुषाः पुंजनाः स्त्रियः स्त्रीजनाः समेषामेतेषां लक्षणेषु शुभाशुभलक्ष्मसु अभिज्ञः ज्ञानदक्षः। **सकलभूतलरत्नभूतः** = भुवस्तलं भूतलं सकलं च तत् भूतलं सकलभूतलम्, तस्मिन् रत्नभूतः सर्वोत्कृष्टमणिरूपः। **अयम्** = एषः। **वैशम्पायनः नाम शुकः**= कीरः यस्य अभिधेयः वैशम्पायन इति। **सर्वरत्नानाम्**=

सर्वोत्कृष्टवस्तुजातानाम्। **उदधिः इव**=सागरः इव। **देवः** = महाराजः । **भाजनम्**= अधिकारिपात्रम्। **इति** = एवम्। **कृत्वा** = मत्वा। **एनम्**= शुकम्। **आदाय**=गृहीत्वा। **अस्मत्स्वामिदुहिता**=अस्मत् मम। (कथयितुः पुरुषस्य) स्वामिनः नायकस्य दुहिता पुत्री इयं कन्यका। **देवपादमूलम्**= देवस्य महाराजस्य पादयोः चरणयोः मूलम् समीपम्, सेवायाम् इत्यर्थः। **आयाता**=समागता। **तत्**=तर्हि अथवा तादृशः पूर्वोक्तः। **अयम्**= एषः शुकः। **आत्मीयः** = स्वकीयः। **क्रियताम्**=विधीयताम्। अङ्गीक्रियताम् इत्यर्थः। **इति उक्त्वा**= एवं व्याहृत्य। **नरपतेः** = राज्ञः। पुरः समक्षम्। **निधाय** = स्थापयित्वा। **पञ्जरम्** = तां शकुनिमञ्जूषाम्। **असौ** = सः पुरुषः अपससार= निवर्त्य स्वस्थानं जगाम। **अपसृते**=अपगते। **तस्मिन्**=तथोक्ते पुरुषे। सः = तथा विशेषीकृतः **विहङ्गराजः**=शकुनिश्रेष्ठः। राजाभिमुखः राजासम्मुखः। **भूत्वा** = स्थिति विधाय। **उन्नमय्य** = उत्थापयित्वा दक्षिणम् = वामेतरम्। **चरणम्**=पादम्। **अतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया** = स्पष्टाक्षरोच्चारणपूतया। **गिरा**= वाण्या। **कृतजयशब्दः** = कृतः उच्चारितः 'जय' इति शब्दः। **राजानम्**= नृपतिम्। **उद्दिश्य**= अभिलक्ष्य। **इमाम्**= एताम्। **आर्याम्**= 'आर्या' इति मात्रिकं छन्दोबद्धं पद्यम्। **पपाठ**=कथयामास।

अन्वयः– भवतः रिपुस्त्रीणां स्तनयुगम् अश्रुस्नातं हृदयशोकाग्नेः समीतरवर्ति विमुक्ताहारं व्रतं चरति इव।।२१।।

संस्कृत व्याख्या– **भवतः**=देवस्य शूद्रस्य। **रिपुस्त्रीणाम्**=रिपोः शत्रोः स्त्रीः पत्नी तासां। **स्तनयुगम्**=कुचयुगलम्। **अश्रुस्नातम्**= नयनजलसिक्तम्। **हृदयशोकाग्नेः**= शोक एव अग्निः सन्तापः शोकाग्निः हृदये यः शोकाग्निः तस्य। **समीपतरवर्ति**= सन्निकटस्थितम्। **विमुक्ताहारम्**=विमुक्ताहारः विगता मौक्तिगादिमणिमाला येन तत्। अथवा, विमुक्तः त्यक्तः आहारः भोजनादिकम् येन तत्। **व्रतम्**=उपवासादिकम् अनुष्ठानम्। **चरति इव**= आचरति इव। 'इव' इत्यत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः। यथा कोऽपि व्रती स्नात्वा होमाग्निमुपसंस्थितः हवनादिकर्म कुर्वन् गृहीतोपवासः सन् व्रतमनुतिष्ठति तथैवेदं स्तनयुगलमपि शत्रुस्त्रीणां पतिमरणवशात् अश्रुभिः स्नाति, वियोगसन्तापभरं हृदयमुपतिष्ठति आहारमपि विमुञ्चति।।२१।।

टिप्पणी– **चिन्तयन्तम्**=चिन्त्+शतृ, द्वितीया एकवचन। **ईषदवगलित०**– झुककर प्रणाम करने से कानों मे पहने गये पत्राभूषण तनिक झुक गये। **प्रगल्भवनिता**– इसका सामान्य अर्थ 'ढीठ स्त्री' है। तथा विशेष अर्थ 'प्रगल्भा नायिका' है जिसका लक्षण इस प्रकार है–

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्के।
विलीयमानेवानन्दाद्रताराम्भेऽप्यचेतना।।(दशरूपक २।१८)

कृतप्रणामायाम्– बहुब्रीहिसमास। **विहङ्गमम्**– विहायसा गच्छति इति विहङ्गमः। विहायस् + गम् + खच्) **देव**– राजा के लिए सम्बोधन। 'राजा भट्टारको देवः' अमरकोश। **गीतश्रुतीनाम्**– संगीत से युक्त **श्रुति**= वेद अर्थात् सामवेद। गीत की 22 श्रुतियाँ संगीत शास्त्र में) प्रसिद्ध है–

'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छाश्चैकोनविंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाशद् द्वयधिका विंशतिः श्रुतिः।।'

ये 22 श्रुतियाँ इस प्रकार हैं–

'नान्दी चालनिका रसा च सुमुखी चित्रा विचित्रा घना।
मातङ्गी सरसामृता मधुकरी मैत्री शिवा माधवी।।

बाणा शार्ङ्गरवी कला कलरवा माला विशाला जया।

मात्रेति श्रुतयः पुराणकविभिर्द्वाविंशतिः कीर्तिताः।।

सुभाषितानाम्– सु+भाष+क्त, षष्ठी बहुवचन। सुन्दर वचन। काव्य के उन पद्यों अथवा पद्यांशों को सूक्ति या सुभाषित कहते हैं जिनमें लोकोपकारक, आदर्श निदर्शक व्यवहार, नीति आदि की शिक्षा होती है; जो मनोहर होती हैं और जीवन में उपयोगी होती हैं। **नृत्त** – 'नृत्तं ताललयाश्रयम्।' ताल और लय के आधार पर अङ्ग सञ्चालन को नृत्त कहते हैं। इसका भी प्रयोज़न 'नृत्य' के ही समान मनोरञ्जन होता है। इसे 'देशी' भी कहते हैं। अनेक जातियों, जनजातियों में 'नृत्त' के प्रयोग किये जाते हैं। 'ताण्डव' को 'नृत्त' कहा गया है। मोर का नाचना 'नृत्त' होता है। द्यूत– दिव्+क्त। जुआ खेलना हमारे समाज में वैदिक काल से ही प्रचलित है। ऋग्वेद का अक्ष या कितव सूक्त इसका प्रमाण है। जुआ खेलना 'क्रीडा' कम 'दुर्व्यसन' अधिक है। **अप ससार**– अप+सृ+लिट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **अपसृते**– अप+सृ+क्त, सप्तमी विभक्ति, एक वचन। यहाँ सप्तमी विभक्ति, 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र के अनुसार हुई है। विहङ्गराजः– विहङ्ग+राजा+टच्। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' सूत्र से यह प्रयोग बना है। पपाठ–पठ्+लिट्लकार प्रथम पुरुष एक वचन। **आर्या**– एक मात्रिक छन्द है। इसके चारों पादों में से प्रथम और तृतीय पाद में बारह मात्रायें (लघु– एक मात्रा, गुरु – दो मात्रा), द्वितीय पाद में अठारह तथा चतुर्थ पाद में पन्द्रह मात्रायें होती हैं–

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

शुक ने जो आर्या पढ़ी उसमें यह लक्षण घटित है।

प्रथम पाद– स्तने युगे अश्रुस्तात। 12 मात्रायें ।

द्वितीय पाद– समीपतरवर्तिहृदयशोकाग्नेः। 18 मात्रायें।

तृतीयपाद– चरति विमुक्ताहारं। 12 मात्रायें।

चतुर्थपाद– व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्। 15 मात्रायें।

इस आर्या में प्रयुक्त इव उत्प्रेक्षावाचक है। 'विमुक्ताहारम्' में सभङ्ग श्लेष और 'हृदयशोकाग्निः में रुपक अलङ्कार है।

जैसे कोई व्रती स्नान करके, आहार का त्याग करके अग्नि के समीप बैठकर होम क्रिया का अनुष्ठान करता है वैसे ही शूद्रक के शत्रुओं की स्त्रियों के दोनों स्तन निरन्तर अश्रुपात होने से भींगे हैं। वे हृदय के समीप हैं जहाँ निरन्तर व्यापादित पति के वियोग से शोक रूपी अग्नि (सन्ताप) धधक रही है और विधवा हो जाने से उन्होंने आभूषणों का त्याग कर दिया है अतः स्तनयुगल मोतियों के हार से रहित हो गये हैं।

राजा तु तामार्यां श्रुत्वा संजातविस्मयः सहर्षमासन्नवर्तिनम्, अतिमहर्घहेमासनोपविष्टम्, अमरगुरुमिवाशेषनीतिशास्त्रपारगम्, अतिवयसम्, अग्रजन्मानम्, अखिले मन्त्रिमण्डले प्रधानममात्यं कुमारपालितनामानमब्रवीत्– 'श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता। प्रथमं तावदिदमेव महदाश्चर्यम्, यदयमसंकीर्णवर्णप्रविभागामभिव्यक्तमात्रानुस्वार-संस्कारयोगां विशेषसंयुक्तां गिरमुदीरयति। तत्र पुनरपरमभिमतविषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव

संस्कारवतो बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः। तथा हि। अनेन समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेनोच्चार्य जयशब्दमियमार्या मामुद्दिश्य परिस्फुटाक्षरं गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहारमैथुननिद्रासंज्ञामात्रवेदिनो भवन्ति। इदं तु महच्चित्रम्' इत्युक्तवति भूभुजि कुमारपालितः किंचित्स्मितवदनोऽवादीत्– 'किमत्र चित्रम्। एते हि शुकसारिकाप्रभृतयो विहङ्गविशेषा यथाश्रुतां वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव देवेन। तत्राप्यन्यजन्मोपात्त संस्कारानुबन्धेन वा पुरुषप्रयत्नेन वा संस्कारातिशय उपजायत इति नाति चित्रम्। अन्यदेतेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिपरिस्फुटाभिधाना वागासीत्। अग्निशापात्त्व-स्फुटालापता शुकानामुपजाता, करिणां च जिह्वापरिवृत्तिः' इति। एवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमध्यारूढमावेदयन्नाडिकाच्छेदप्रहतपटुपटहनादानुसारी मध्याह्न शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जितराजलोकः क्षितिपतिरा-स्थानमण्डपादुत्तस्थौ।

हिन्दी अनुवाद– राजा तो (शुक से मुख से) उस आर्या को सुनकर आश्चर्य से भर गये और हर्षपूर्वक, अपने पास अत्यन्त बहुमूल्य स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठे हुए, देवगुरु बृहस्पति के समान समस्त नीतिशास्त्र में पारङ्गत, सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल में प्रधानमंत्री कुमारपालित नामक वृद्ध ब्राह्मण से बोले– "इस पक्षी के वर्णोच्चारण की स्पष्टता और स्वर की मधुरता आप सब ने सुनी। पहले तो यही बड़ा भारी आश्चर्य है कि यह मिले हुए वर्णों को अलग-अलग करके स्पष्ट रूप से मात्रा, अनुस्वार की शुद्धि से युक्त, विशिष्ट अलङ्कारमयी वाणी बोलता है। और फिर बोलने में पक्षी होते हुए भी अभीष्ट विषय का प्रतिपादन करने में सुसंस्कृत मनुष्य की तरह सही सोच समझ के साथ प्रवृत्त हो रहा है। जैसे कि इसके द्वारा अपना दाहिना पैर उठाकर, जय शब्द का उच्चारण करके यह आर्या मेरे विषय में सर्वदा स्पष्ट अक्षरों में गायी है। प्राय: पशु-पक्षी भय, आहार, मैथुन, निद्रा और संकेत मात्र का ज्ञान रखते हैं। (किन्तु) इसका यह वृत्त तो महान् आश्चर्यकारी है।" महाराज शूद्रक के ऐसा कह लेने पर (प्रधानमंत्री) कुमारपालित कुछ मुस्कराते हुए बोले– "इस में क्या आश्चर्य है? ये शुक-सारिका (तोता-मैना) आदि विशेष पक्षी जैसा सुनते हैं ज्यों का त्यों उच्चारण करते हैं– यह महाराज को ज्ञात ही है। पूर्वजन्म से प्राप्त संस्कारवशात् अथवा (उनके पालक) पुरुष के शिक्षित करने के प्रयत्न से (इस प्रकार बोलने का) संस्कार की अधिकता उत्पन्न हो जाती है। अत: इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि प्राचीन काल में पुरुषों (मनुष्यों) की तरह इन (पशु-पक्षियों) में भी अत्यन्त स्पष्ट उच्चारण वाली वाणी थी। अग्नि के शाप से तोतों की वाणी में अस्पष्टता पैदा हो गयी और हाथियों की जीभ उलट गयी। इस प्रकार जब वे कह रहे थे तभी, 'सूर्य आकाश के बीचोबीच पहुँच गये' यह सूचित करते हुए घड़ी की परिसमाप्ति पर प्रहार किये गये नगाड़े के महान् शब्द का अनुसरण करने वाली दोपहर की शंखध्वनि गूँज उठी। उसे सुनकर, 'अब स्नान का समय हो गया' अत: सभी राजाओं को विदा करके पृथ्वीपालक राजा शूद्रक सभा-मण्डप से उठ खड़े हुए।

संस्कृत व्याख्या– राजा तु= पृथ्वीपति: तु। **ताम् आर्याम्** = तथोक्ताम् आर्याम्। **श्रुत्वा** = आकर्ण्य। **संजातविस्मयः** =संजात: समुत्पन्न: विस्मय: आश्चर्यभाव: यस्मिन् स:। **सहर्षम्** = सानन्दम्- **आसन्नवर्तिनम्**= निकटस्थम्। **अतिमहर्घहेमासनोपविष्टम्**=अतिबहुमूल्ये हेमासने स्वर्णपीठे उपविष्टम् समासीनम्। **अमरगुरुम् इव**= अमराणां देवानां गुरु: पुरोहित उपदेष्टा च। बृहस्पतिरित्यर्थ:।

तम् इव। **अतिवयसम्**=वयोवृद्धम्। **अग्रजन्मानम्** = ब्राह्मणम्। **अखिले** = अशेषे। मंत्रिमण्डले = अमात्यवर्गे। **प्रधानम्**=सर्वप्रमुखम्। **अमात्यम्**=मन्त्रिणम्। **कुमारपालितनामानम्**=कुमारपालित इति अभिधेयम्। **अब्रवीत्**=उवाच। **श्रुता** =आकर्णिता। भवद्भिः युष्माभिः। अस्य=एतस्य। **विहङ्गमस्य**=पक्षिणःशुकस्य। **स्पष्टता**=विशदता। **वर्णोच्चारणे**=वर्णानाम् अक्षराणाम् उच्चारणं कथनं तस्मिन्। **स्वरे च** = कण्ठध्वनौ च। **मधुरता**= माधुर्यम्। **प्रथमं तावत्**=पूर्वं तु। **इदम् एव**= एतद् एव। **महद् आश्चर्यम्**= महान् विस्मयः। **यत् अयम्** = यद् एषः शुकः। **असङ्कीर्णवर्णप्रविभागाम्**=असङ्कीर्णः परस्परवैलक्ष्येण प्रतीयमानः, वर्णानाम् अक्षराणां प्रविभागः पार्थक्यं यस्यां सा, ताम् (बहुब्रीहि)। अभिव्यक्तमात्रानुस्वारसंस्कारयोगाम् अभिव्यक्तः स्फुटप्रतीयमानः मात्राणां ह्रस्वदीर्घप्लुतानाम् अनुस्वाराणाम् अनुनासिकानां संस्काराणां व्याकरणशुद्धीनां च योगः सम्बन्धः यस्यां सा, ताम् (बहुब्रीहि)। **विशेषसंयुक्ताम्** = विशेषैः श्लेषोपमादिभिरलङ्कारैः संयुक्तां सम्बद्धाम्। **गिरम्**=वाणीम्। **उदीरयति**=व्यवहरति, उच्चरति, वदति वा। **तत्र** = वाग्व्यवहारे। **पुनः** = अपरम्। **अभिमतविषये** = अभीष्टार्थे। **तिरश्चः अपि** = तिर्यग्गतिकः अपि। **मनुजस्य इव** = मानवस्य इव। **संस्कारवतः** =संस्कृतस्य शिष्टस्य वा। **बुद्धिपूर्वा**=सविवेकं प्रतिभायुता। **प्रवृत्तिः**=प्रवर्तनम्। **तथा हि** = निदर्शनार्थम्। **अनेन** = एतेन शुकेन। **समुत्क्षिप्त दक्षिणचरणेन**=समुत्थितवामेतरपादेन। **उच्चार्य** = **उदीर्य**। जयशब्दम् = जयतु जयतु महाराज इति पदम्। इयम् आर्या= एतद् आर्या छन्दः। **माम् उद्दिश्य** = माम् अभिलक्ष्य। **गीता**=सस्वरं पठिता। **प्रायेण हि**= प्रायशः हि। **पक्षिणः**= खगाः। **पशवः च**=मृगादयः च। **भयाहार०**=भयं भीतिः आहारः भोजनं मैथुनं स्त्रीसम्भोगः निद्रा स्वापः संज्ञा सङ्केतः एतेषां केवलं वेदिनः वेत्तारः। **भवन्ति**=सन्ति। इदं तु= एतत् तु। **महत् चित्रम्**= अत्यन्तम् आश्चर्यप्रदम्। **इति** = एवम्। **उक्तवति**= कथिते। **भूभुजि**=राजनि। **कुमारपालितः**=एतन्नामकः प्रधानामात्यः। **किञ्चित्**= ईषत्। **स्मितवदनः** = स्मेराननः। **अवादीत्**=अवोचत्। **किम्**= किं नाम। अत्र= अस्मिन् विषये। **चित्रम्**=आश्चर्यम्। **एते हि** = इमे हि। **शुकसारिकाप्रभृतयः** = कीरसारिकादयः। **विहङ्गविशेषाः** = पक्षिविशिष्टाः। **यथाश्रुताम्**= यथाकर्णिताम्, बोधरहिताम्। **वाचम्** = वाणीम्। **उच्चारयन्ति**= उदीरयन्ति। इति अधिगतम् एव = एवं ज्ञातम् एव। **देवेन** = भवता महाराजेन। तत्र अपि= तस्मिन् विषये अपि। **अन्यजन्मोपात्तसंस्कारानुबन्धेन**=अन्यत् जन्म अन्य जन्म, पूर्वजन्म जन्मान्तरं वा, तस्मिन् जन्मान्तरे उपात्तः उपार्जितः संगृहीतः वा यः संस्कारः वासना तस्य अनुबन्धः संवित्तिः तेन (बहुब्रीहि०) वा= अथवा। **पुरुषप्रयत्नेन** = पुरुषाणां तत्पालकानां जनानां प्रयत्नेन उद्यमेन शिक्षया वा। (षष्ठी तत्पुरुष)। **संस्कारातिशयः** = वासनाधिक्यम्) **उपाजायते**= उत्पद्यते, सम्भवति। **इति**=हेतोः। नातिचित्रम्= नातीवाश्चर्यम्। **अन्यत्** = अपरम्। **एतेषाम् अपि** = पशुपक्षिणाम् अपि। **पुरा**=पूर्वकाले। **पुरुषाणाम् इव**=नृणाम् इव। **अतिपरिस्फुटाभिधाना**=अत्यन्तस्पष्टोच्चारणवती। **वाग् आसीत्** = वाणी आसीत्। **अग्निशापात्**= अग्निदेवस्य शापात्। **अस्फुटालपता**= अस्फुटः अस्पष्टः आलापः वार्ता यत्र तस्य भावः तत्ता। **शुकानाम्**=कीराणाम्। **उपजाता**=समुत्पन्नाकरिणां च=हस्तीनां च। **जिह्वापरिवृत्तिः**= जिह्वायाः रसनायाः परिवृत्तिः परिवृत्य अवस्थितिः (उपजाता)। **एवम्** = इत्थम्। **उच्चारयत्येव**= कथयति एव। **तस्मिन्**=कुमारपालिते। **अशिशिरकिरणम्**= अशिशिराः उष्णाः किरणः रश्मयः यस्य सः, तं सूर्यम्। **अम्बरतलस्य**= अम्बरस्य नभसः तलम् मण्डलं तस्य। **मध्यम्**=मध्यभागम्। **आरूढम्**=प्राप्तम्। **आवेदयन्**= ज्ञापयन्, सूचयन् वा। **नाडिकाच्छेदप्रहतपटुपटहनादानुसारी**=

नाडिकाया: घटिकाया: छेदे सम्पूर्तौ प्रहत: ताडित: य: पटु: विशाल: पटह: दुन्दुभि: तस्य नाद: शब्द तम् अनुसर्तुम् अनुयातुं शीलं यस्य स:। **मध्याह्नशङ्खध्वनिः** = शङ्खस्य ध्वनि: शब्द:। मध्याह्ने शङ्खध्वनि: मध्याह्नशङ्खध्वनि:। **उदतिष्ठत्** = समुत्पन्न: अभवत्। **तम्**= शङ्खध्वनिम्। **आकर्ण्य** =श्रुत्वा। समासन्नस्नानसमय: = समासन्न: सम्प्राप्त: स्नानस्य समय: वेला यस्य स:। **विसर्जितराजलोकः** = विसर्जित: गन्तुमनुज्ञप्त: राजलोक: राज्ञां समूह: येन स:। **क्षितिपतिः** = राजा शूद्रक:। आस्थानमण्डपात् = समाभवनात्। **उत्तस्थौ**= समुत्थित: बभूव।।

टिप्पणी– अतिमहार्घ०– प्रधानमंत्री होने के कारण कुमारपालित को बेशकीमती सोने के आसन पर राजा ने बैठाया था। **अग्रजन्मानम्–** चारों वर्णों में सर्वप्रथम ब्राह्मण की उत्पत्ति होने के कारण उसे 'अग्रजन्मा' कहा गया है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' (पुरुषसूक्त, ऋग्वेद और शुक्लयजुर्वेद)। 'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन;' (मनुस्मृति)। **मधुरता**– मधुर+तल्+टाप्। **संयुक्ताम्**– सम्+युज्+क्त+टाप्, द्वितीया एकवचन। **संस्कारवतः**– सम्+कृ+घञ् + मतुप, षष्ठी विभक्ति, एकवचन। मनुष्य के गर्भाधान से लेकर अन्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कार बनाये गये हैं भारतीय परम्परा में व्यक्ति के संस्कार का अत्यन्त महत्त्व है। संस्कार से ही मनुष्य शिष्ट और विशिष्ट बनता है। संस्कार हीन मनुष्य पशुतुल्य होता है। भयाहारमैथुन निद्रा संज्ञा– ये पाँचों जीवमात्र की जन्मजात स्वाभावसिद्ध प्रवृत्तियां है। मनुष्य-पशु-पक्षी सबमें समान रूप से डरने, खाने, सम्भोग क्रिया करने, सोने और सङ्केत ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है। धर्म और विवेक ही मनुष्य को पशु से विशिष्ट बनाता है। **भूभुजि**– भुवं भुनक्ति इति भूभुक्, तस्मिन्। **अग्निशापात्०**– पौराणिक आख्यान है कि तारकासुर से संत्रस्त देवों को ब्रह्मा ने बताया कि अग्नि का पुत्र ही इस असुर का बध करेगा। तब देवताओं ने अग्नि की खोज शुरु की। एक हाथी से पूछा तो उसने बताया कि अग्नि अश्वत्थ में छिपा है। सुनते ही अग्नि निकले और हाथी की जीभ उलट दी और जाकर शमी वृक्ष में छिप गये। देवों को शमी की डाल पर बैठा हुऐ एक तोता दिखाई पड़ा। पूछने पर तोते ने बताया कि अग्नि इसी शमी वृक्ष में है। अग्नि ने तोते की वाणी की स्पष्टता समाप्त होने का शाप दिया। देवों ने शमी की अरणि बनाकर मन्थन किया और अग्नि को प्रकट किया। उन्होंने अग्निदेव को स्तुति करके प्रसन्न किया। **उत्तस्थौ**– उत्+स्था+लिट्लकार, प्र० पु०, ए०व०।

इस गद्यांश के अन्तर्गत, अमरगुरुम् इव में उपमालङ्कार, मनुजस्य इव में भी उपमालङ्कार है।

अथ चलति महीपतावन्योन्यमतिरभससंचलन- चालिताङ्गदपत्रभङ्गमकरकोटिपाटितांशुक-पटानाम्, आक्षेपदोलायमानकण्ठदाम्नाम्, अंसस्थलोल्लासितकुङ्कमपटवासधूलिपटल-पिञ्जरीकृतदिशाम्, आलोलमालतीपुष्पशेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्, अर्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गमनप्रणामलालसानामहमहमिकया वक्षः स्थलप्रेङ्खोलित-हारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीत्संभ्रमो महीपतीनाम्। इतश्चेतश्च निष्पतन्तीनां स्कन्धावसक्तचामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधुपानमत्तजरत्कलहंसनादजर्जरितेन पदे पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविलासिनीजनस्य संचरतो जघनस्थलास्फालनरसितरत्नमालिकानां मणिमेखलानां मनोहारिणा झङ्कारेण, नूपुररवाकृष्टानां च धवलितास्थानमण्डपसोपानफलकानां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां कोलाहलेन, रसनारसितोत्सुकितानां च तारतरविराविणा-मुल्लिख्यमानकांस्यक्रेङ्कारदीर्घेण गृहसारसानां कूजितेन, सरभसप्रचलितसामन्तशतचरण

तलाभिहतस्य चास्थानमण्डपस्य निर्घोषगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमतीम्, प्रतीहारिणां च पुरः ससंभ्रमसमुत्सारितजनानां दण्डिनां समारब्धहेलमुच्चैरुच्चरतामालोकयन्त्विति तारतरदीर्घेण, भवनप्रासादकुञ्जेषूच्चरितप्रतिच्छन्दतया दीर्घतामुपगतेनालोकशब्देन, राज्ञां च ससंभ्रमावर्जित-मौलिलोलचूडामणीनां प्रणमताममलमणिशलाकादन्तुराभिः, किरीटकोटिभिरुल्लि-ख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निःस्वनेन, प्रणामपर्यस्तानामतिकठिनमणिकुट्टिमनि पतितरणरणायितानां च मणिकर्णपूराणां निनादेन, मङ्गलपाठकानां पुरोयायिनां च जयजीवेति मधुरवचनानुयातेन पठतां दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलित जनचरणशतसंक्षोभाद्विहाय कुसुमप्रकरमुत्पततां च मधुलिहां हुंकृतेन, संक्षोभातित्वरित पदप्रवृत्तैरवनिपतिभिः केयूरकोटिताडितानां क्वणितमुखररत्नदाम्नां च मणिस्तम्भानां रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत्।

हिन्दी अनुवाद– महाराज शूद्रक के चलने के लिए उद्यत होते ही, चलने की शीघ्रता में हिले हुए हाथ के बाजूबन्द में जड़ी बेलबूटेवाली मकराकृति की नोक लगने से एक दूसरे के फटे हुए रेशमी वस्त्रों वाले, परस्पर टकराने से हिलती हुई गले की मालाओं वाले, कन्धों से उड़ती हुई कुङ्कुम और वस्त्रों पर लगे हुए सुगन्धित चूर्ण से दिशाओं को पीली कर देने वाले, हिलते हुए मालती पुष्पों के मुकुटों से उड़ते हुए भौरों के समूह वाले, आधे लटके हुए कर्णोत्पलों से स्पर्श किये जाते हुए कपोलों वाले, जाते हुए महाराज को प्रणाम करने की लालच वाले, बढ़कर आगे निकलने की होड़ से वक्षःस्थल पर झूलते हुए हारों की लड़ियों वाले, सभामण्डप में उठ खड़े होने वाले राजाओं में इस प्रकार की आकुलता (हड़बड़ी) थी। कन्धे पर चँवर रखे, इधर-उधर घूमने वाली चँवर झलने वाली स्त्रियों के, कमल का मकरन्द रस पान कर मतवाले प्रौढ़ कलहंसों के कोलाहल से क्षीण पड़ते हुए, पग-पग पर बजती हुई मणियों वाले मणि-निर्मित पायलों की रुनझुन ध्वनि से, चलती-फिरती हुई गणिकाओं की जाँघों से लगकर उछलती हुई शब्दायमान रत्नमालाओं वाली मणिनिर्मित करधनी की मनोहर झङ्कार से, पायलो के घुँघरुओं की क्वणन ध्वनि से आकृष्ट और आकर बैठने के कारण सभामण्डप की सीढ़ियों को सफेद बना देने वाले, राजमहल की बावड़ी के कलहंसों के कोलाहल से, करधनी की ध्वनि सुन-सुनकर उत्कण्ठित और जोर-जोर से बोलने वाले पालतू सारसों की, फैलती हुई फूटे काँसे के पात्र जैसी कड़कड़ और तेज कूजन से, शीघ्रतापूर्वक चल पड़े सामन्तों के सैकड़ों पैरों से कुचली जाती हुई सभाभवन की भूमि को कँपाने वाले भारी कोलाहल से, प्रतीहारियों के आगे-आगे हड़बड़ी मे मार्ग से लोगों को हटाने वाले दण्डधारी रक्षकों के, पैतरे बदल-बदल कर देखो-देखो ऐसा कहते हुए जोर-जोर के शब्दों से, राजभवन और कुञ्जों से टकराकर निकलती हुई प्रतिध्वनि से बढ़े हुए जयजयकारों से, प्रणाम करने की हडबड़ी में झुकाये गये सिर से खिसके चूड़ामणियों की निर्मल मणिशलाकाओं से सुशोभित, मुकुटों के अग्रभाग से मानो चित्रित की जाती हुई मणि-निर्मित फर्श की झनझनाहट से (फर्श पर मुकुटों के गिरने से उत्पन्न आवाज से), प्रणाम करने में कानों से खिसककर अत्यन्त कठोर मणिनिर्मित फर्श पर गिरने वाले मणिनिर्मित कनफूलों की खनखनाहट के शब्द से, आगे-आगे चलने वाले मङ्गलस्तुतियों का पाठ करने वालों के 'महाराज की जय हो' इस प्रकार मधुर ध्वनि से अनुगत और दिशाओं में भर जाने वाली कलकल ध्वनि से, (सभाभवनसे) चल पड़े लोगों के सैकड़ों पैरों से कुचले जाने के उद्वेग से पुष्पराशि को छोड़कर उड़ जाने वाले भौरों की झंकार से, उतावली में

अतिशीघ्रतापूर्वक अपने पैर आगे बढ़ाने वाले सामन्तों के द्वारा बाजूबन्दों की नोकों से टक्कर मारे गये, क्वणन करने वाली रत्नमालाओं से सजे हुए मणिनिर्मित खम्भों की मुखरता से मानो हर ओर से वह सभाभवन क्षुब्ध हो उठा था।

संस्कृत व्याख्या- अथ=तत्पश्चात्। **चलति**=प्रचलिते, गमनाम उद्यते सति। **महीपतौ**= महाराजे शूद्रके। **अन्योन्यम्**=परस्परम्। **अतिरभससञ्चलन**=अतिरभसेन अतिवेगेन सञ्चलनं गमनं तेन चालितानाम् अङ्गदानां केयूराणां पत्रभङ्गानां पत्ररचनानां ये मकरा: उत्कीर्णजलजन्तुविशेषा: तेषां कोटिभि: अग्रभागै: पाटिता: छिन्ना: अंशुकपटा: कौशेयवस्त्राणि येषां ते, तेषाम् (बहुब्रीहि०)। **आक्षेप दोलायमानकण्ठदाम्नाम्**=आक्षेपै: मिथ:शरीरसङ्घट्टै: दोलायमानानि आन्दोलितानि कण्ठदामानि कण्ठहारावल्य: येषां तेषाम् (बहुब्रीहि०)। **अंसस्थलोल्लासित०**=अंसस्थलेभ्य: स्कन्धदेशेभ्य: उल्लासितानि प्रोच्छलितानि यानि कुङ्कुमानि केसरराणि, पटवास: सुगन्धचूर्णविशेष: तयो: धूलिपटलै: पिष्टचूर्णसमूहै: पिञ्जरीकृता: पीतरक्तवर्णीकृता: दिश: ककुभ: यै: तेषाम् (बहुब्रीहि)। **आलोलमालतीपुष्प०** = आलोला:समन्तात् चञ्चला: ये मालतीकुसुमशेखरा: जातीपुष्पाणां शेखरा: अवतंसा: तेषाम् उपरि पतन्त: अलिकदम्बका: भ्रमरराजय: येषां तेषाम् (बहुब्रीहि) **अर्धावलम्बिभि**:=अर्धभागलग्नै: **कर्णोत्पलै:** = उत्पलाकारै: कर्णावतंसै:। **चुम्बयमानगण्डस्थलानाम्**=चुम्ब्यमानानि स्पृश्यमानानि गण्डस्थलानि कपोलस्थलानि येषां तेषाम् (ब्रीहि०)। **गमनप्रणामलालसानाम्**=गमने (शूद्रकस्य) प्रस्थाने प्रणामाय अभिवादनाय लालसा लोभ: येषां तेषाम् (बहु०)। **अहमहमिकया**= अहं पूर्वम् अहं पूर्वमिति यो भाव: सैव अहममिका, तया। **वक्ष:स्थलप्रेङ्खोलितहारलतानाम्**=वक्षस्थले उरसि प्रेङ्खोलिता: आन्दोलिता: इतस्तत: लूठिता:वा हारलता: मुक्तावल्य: येषां तेषाम् (बहु०) **उत्तिष्ठताम्** = उत्थानपराम्। **महीपतीनाम्**=राज्ञाम्। **सम्भ्रम: आसीत्** = सम्मर्दाकुलता आसीत्। **इतश्चेतश्च** = इत: च इत: च, यत्र तत्र सर्वत्र। **निष्पतन्तीनाम्**=सरभसं चलन्तीनाम्। **स्कन्धावसक्तचामराणाम्** = स्कन्धेषु अंसभागेषु अवसक्तानि स्थापितानि चामराणि बालव्यजनानि यासां तासाम् (बहु०)। **चामरग्राहिणीनाम्**=चामरस्य ग्रहणे धारणें नियुक्ता: स्त्रिय: तासाम्। **कमलमधुपानमत्त०**=कमलस्य पद्मस्य यत् मधु मकरन्दरस: तस्य पानम् आस्वाद: तेन मत्ता: क्षीबा: ये जरन्त: वय:प्राप्ता: कलहंसा: कादम्बा: तेषां नादेन शब्देन जर्जरितेन सम्भिन्नेन स्वल्पीकृतेन वा। **पदे-पदे**=प्रतिपदम्। **रणितमणीनाम्**=रणिता:शब्दायमाना: मणय: रत्नानि येषु तेषाम् (बहु०)। **मणिनूपुराणाम्**=मणिभि: निर्मितानां नूपुराणां चरणालङ्कारविशेषाणाम्। **निनादेन**= शब्देन। **वारविलासिनीजनस्य**= गणिकाजनस्य। सञ्चरत: भ्रमत:। **जघनस्थलास्फालनरसितरत्नमालिकानाम्**=जघनस्थलस्य कटिपुरोभागस्य आस्फालनेन परामर्शेन रसिता: शब्दिता: रत्नमालिका: रत्नावल्य: यासां तासाम् (बहु०)। **मणिमेखलानाम्**=मणिमयरसनानाम्। **मनोहारिणा**=चित्ताकर्षिणा। **झङ्कारेण**=झणझणेति ध्वनिना। **नूपुररवाकृष्टाणाम्**=नूपुरशब्दै: आकृष्टानां समाहूतानाम्। **धवलितास्थानमण्डप०**= धवलितानि श्वेततां नीतानि अवस्थानमण्डपस्य सभाभवनस्य सोपानफलकानि आरोहणपरम्पराचत्वराणि यै: तेषाम् (बहु०)। **भवनदीर्घिकाकलहंसकानाम्**= प्रासादकृत्रिमवापीकादम्बानाम्। **कोलाहलेन**=कलकलशब्देन। **रसनारसितोत्सुकितानाम्**=रसनानां काञ्चीगुणानां रसितै: क्वणितै: उत्सुकितानाम् उत्कण्ठितानाम्। **तारतरविरावितानाम्**=अत्युच्चैस्तर: विराव: ध्वनिविशेष: अस्ति येषां तेषाम्। **उल्लिख्यमानकांस्य- क्रेङ्कारदीर्घेण**=उल्लिख्यमानस्य घुष्यमाणस्य कांस्य धातुपात्रविशेषस्य य: क्रेङ्कार: क्रें क्रें इति अव्यक्तध्वनि: तद्वद्दीर्घेण तीव्रेण। **गृहसारसानाम्**

= भवने पालितानां पक्षिविशेषाणाम्। **कूजितेन**=शब्दितेन। **सरभसप्रचलित**=सरभसं सत्वरं प्रचलिता: गच्छन्त: ये सामन्ता: अधीनस्थराजान: तेषां शतं तस्य चरणतलै: पादतलै: अभिहतस्य प्रपीडितस्य। **आस्थानमण्डपस्य**= सभाभवनस्य। **निर्घोषगम्भीरेण**=निर्घोष: तीव्रध्वनि: तद्वत् गम्भीरेण गहनेन। **वसुमतीम्**=पृथिवीम्। **कम्पयता इव**=वेपयता इव = **प्रतीहारिणाम्**= द्वारपालिकानाम्। **पुर:** = अग्रे। **ससम्भ्रमम्** = सोद्वेगम्। **समुत्सारितजनानाम्**=समुत्सारिता: निवारिता: जना: लोका: यै: तेषाम् (बहु०)। **दण्डिनाम्**=दण्डधारिणाम्। **समारब्धहेलम्**=समारब्धा प्रारब्धा हेला क्रीडा यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा। **उच्चै:** = तारस्वरेण। **उच्चरताम्**= कथयताम्। **आलोकयन्तु इति**= पश्यन्तु इति। **तारतरदीर्घेण**=उच्चतरायतेन। **भवनप्रासादकुञ्जेषु**=भवनस्य सपामण्डपस्य प्रासादस्य राजनिवासस्य हर्म्यस्य कुञ्जेषु लतामण्डपेषु। **उच्चरितप्रतिच्छन्दतया**= उच्चरित: प्रोक्त: यत् प्रतिच्छन्द: प्रतिध्वनि: तस्य भाव: तत्ता तया। **दीर्घताम्**=अतिविस्तृतिम्। **उपगतेन**=सम्प्राप्तेन। **आलोकशब्देन**=राज्ञ: जयजयकारेण। राज्ञां च नृपतीनां च। **ससम्भ्रमम्**=सोद्वेगम्। **आवर्जित मौलिलीलचूडामणीनाम्**=आवर्जितेषु आनमितेषु मौलिषु मस्तकेषु लोला: चञ्चला: चूडामणय: शिरोमुकुटरत्नानि येषां तेषाम् (बहु०)। **प्रणमताम्**=अभिवादयताम्। **अमलमणि- शलाकादन्तुराभि:**=अमला: विमला: या मणिशलाका रत्नमयेषीका: ताभि: दन्तुराभि: सुन्दराभि:। **किरीटकोटिभि:**=मुकुटाग्रभागै:। **उल्लिख्यमानस्य**=घृष्यमाणस्य। **मणिकुट्टिमस्य**=मणिबद्धभूमे:। **नि:स्वनेन**=शब्देन। **प्रणामपर्यस्तानाम्**=प्रणामे अभिवादने पर्यस्तानाम् स्वस्थालच्युतानाम्। **अतिकठिनमणि०**= अतिकठिने सुदृढे मणिकुट्टिमे मणिबद्धभूमौ निपतनेन भ्रंशपातेन रणरणायितानां सञ्जातरणनशब्दानाम् मणिकर्णपूराणाम्=रत्नकर्णावतंसानाम्। **निनादेन**=ध्वननेन। **मङ्गलपाठकानाम्**=बन्दिजनानाम्। **पुरोयायिनाम्**=अग्रयायिनाम् अग्रेसराणाम् वा। **जयजीवेति**=महाराजमुद्दिश्य कृतमङ्गलवचनमिति। **मधुरवचनानुयातेन**=मधुरवाक्यानुगतेन। **पठताम्**=उच्चरताम्। **दिगन्तव्यापिना**=सर्वत्र प्रसारिणा। **कलकलेन**=कोलाहलेन। **प्रचलितजनचरणशतसंक्षोभात्**=प्रचालिता: संचरिता: ये जना: तेषा चरणानां पादानां शतं तस्मात् य: संक्षोभ: उद्वेग: तस्मात् (बहु०) **विहाय**=विमुच्य। **कुसुमप्रकरम्**=पुष्पराशिम्। **उत्पतताम्**=उत्प्लवनं कुर्वताम्। **मधुलिहाम्**=भ्रमराणाम्। **हुङ्कृतेन**=झंकारेण। **संक्षोभात्**=सोद्वेगात्। **अतित्वरितपदप्रवृत्तै:** = सत्वरं चरणन्यासै:। **अवनिपतिभि:** = सामन्तभूपालै:। **केयूरकोटि ताडितानाम्**=केयूराणाम् अङ्गदानां कोटिभि: अग्रभागै: ताडितानाम् आहतानाम्। **क्वणितमुखररत्नदाम्नाम्**=क्वाणतेन क्वणनध्वनिना मुखराणि शब्दमयानि रत्नदामानि मणिमयवेष्टनरज्जव: येषु तेषाम्। **मणिस्तम्भानाम्**=रत्ननिर्मिताधारस्थूणानाम्। **रणितेन**=निनादेन। **सर्वत:** = समन्तत: **क्षुभितम् इव** = क्षुब्धम् इव। **तत्** = तथोक्तम्। **आस्थानभवनम्**= सभाभवनम्। **अभवत्**= अभूत, जातम् वा।

टिप्पणी–प्रस्तुत गद्यांश के प्रारम्भ में प्रयुक्त सभी षष्ठ्यन्त पद 'महीपतीनाम्' के विशेषण हैं। **अहमहमिका**– 'मैं आगे हो जाऊँ' इस सोच से परस्पर प्रतिस्पर्धा। **पिञ्जरित**– लाल-पीला हुआ। 'रक्तपीतस्तु पिञ्जर:' अमरकोश। **चामर**– चमरी गाय (YOLK) हिमालय जैसे ठण्डे प्रदेश में पायी जाती है। इसके श्वेत बालों की गुच्छेदार रचना, जो लकड़ी या धातु की मूँठ से युक्त होती है और इससे राजा-महाराजा, श्रेष्ठी अथवा सन्त महात्मा अथवा देव मूर्तियों और पवित्र ग्रन्थों को हवा डुलाते हैं। **कूजितेन**= अस्पष्ट बोली। चिड़ियों की बोलीको कूजना

कहते हैं– कूंजितं स्याद् **विहङ्गानाम्'**–अमरकोश। क्रेङ्कार-क्रें क्रें तीखी तेज आवाज। **हेला–** सामान्यत: यह शब्द खेल या क्रीडा के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु यहाँ दण्डधारी (लाठी लिये हुए) रक्षकों के साथ प्रयुक्त हुआ है। अत: इसका अर्थ है 'पैतरेबाजी'। लाठी भाँजने वाले अत्यन्त कलापूर्वक शौर्य का प्रदर्शन करते हुए प्रहार करते हैं। यहाँ रक्षक लाठी भाँज कर बिना किसी को चोट पहुँचाये महाराज के लिए रास्ता साफ कर रहे हैं। पुरोयायिनाम्– पुर: यान्ति, तेषाम्। आगे-आगे चलने वालों के। पुर:+या+ णिनि, षष्ठी बहुवचन। प्राचीन काल में राजा-महाराजा जब कहीं जाने के लिए प्रस्थान करते थे, तो उनके आगे-आगे पुरोहित, बन्दी, चारण आदि वेदपाठ, मङ्गल स्तोत्रपाठ, स्तुतिपाठ, वंश-यश: प्रशंसा आदि करते हुए चलते थे तथा मङ्गलवाद्य भी बजता था।

इस गद्य खण्ड में प्राय: सर्वत्र बहुब्रीहि समास वाले समस्त पद प्रयुक्त हुए हैं। 'क्रेंकारदीर्घेण' में लुप्तोपमा, 'कम्पयता इव' में उत्प्रेक्षा और क्षुभितम् इव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

यद्यपि बाणभट्ट ने महाराज शूद्रक के सभाभवन का चित्रण (उनके उठ कर चलने के समय) अत्यन्त स्वाभाविक रूप से किया है किन्तु इस वर्णन से वहाँ की अफरा-तफरी देखकर अनुशासन का अभाव प्रतीत होता है।

अथ विसर्जितराजलोको 'विश्रम्यताम्' इति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डालकन्यकां, 'वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्' इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमादिश्य, कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतो नरपतिरभ्यन्तरं प्राविशत। अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः चन्द्रतारकासमूहशून्य इव गगनाभोगः समुपाहृतसमुचितव्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत्। स तस्यां च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषदवदलितसिन्दुवारकुसुममञ्जरीविभ्रमाभिरुरसि निर्दयश्रमच्छिन्नहारविगलितमुक्ताफल प्रकरानुकारिणीभिर्ललाटपट्टकेऽष्टमीचन्द्रशकलतलोल्लसदमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः स्वेदजलकणिका संततिभिरलंक्रियमाणमूर्तिः, इतस्ततः स्नानोपकरणसंपादनसत्वरेण पुरः प्रधावता परिजनेन तत्कालं विरलजनेऽपि राजकुले समुत्सारणाधिकारमुचितं समाचरद्भिर्दण्डिभिरुपदिश्यमानमार्गः, विततसितवितानाम्, अनेकचारणगणनिबध्यमानमण्डलाम्, गन्धोदकपूर्णकनकमयजलद्रोणीसनाथ-मध्याम्, उपस्थापितस्फाटिकस्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैः अतिसुरभिगन्धसलिलपूर्णैः, परिमलावकृष्टमधुकर-कुलान्धकारितमुखैः, आतपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलशैरुपशोभितां स्नानभूमिमगच्छत्।

हिन्दी अनुवाद– तदनन्तर, (सभाभवन में उपस्थित) सभी सामन्तों को विदा करके, 'विश्राम करो' ऐसा स्वयम् उस चाण्डाल कन्या से कहकर, 'वैशम्पायन को अन्दर ले आओ'– ऐसा पनडब्बा ढोने वाली दासी को आदेश देकर महाराज शूद्रक, गिने-चुने विश्वस्त राजपुत्रों से घिरे हुए (राजमहल के) अन्दर प्रविष्ट हुए। (शरीर से) आभूषणों को उतार देने से, किरणसमूह से विहीन सूर्य के समान, चन्द्र तारागणों से रहित गगनमण्डल के समान लगने वाले (वे महाराज) व्यायाम के योग्य उपकरणों से भरी हुई व्यायामशाला में जा पहुँचे। उस व्यायामशाला में समवयस्क राजपुत्रों के साथ हल्का सा व्यायाम करके, व्यायाम के श्रम के कारण निकलती हुई, गालों पर तनिक मसली हुई सिन्दुवार (निर्गुण्डी) के फूलों के गुच्छों की शोभा वाली, वक्ष:स्थल पर कठिन परिश्रम से टूटे हुए हार से गिरती हुई मोतियों के समूह के समान लगने वाली, मस्तक

पर अष्टमी के चन्द्रखण्ड पर उभरे हुए अमृतबिन्दुओं जैसी पसीने की बूँदों के जाल से सुशोभित शरीर वाले, स्नान-सामग्री को सुव्यवस्थित करने की जल्दी में इधर उधर से आगे दौड़ते हुए सेवक-वर्ग मात्र वाला अतएव अत्यल्प भीड़ वाले उस समय राजभवन में, लोगों को हटाने के अधिकार के अनुरूप कर्तव्य का निर्वाह करने वाले दण्डधारियों द्वारा मार्ग दिखाये जाते हुए (वे महाराज) टँगी हुई सफेद चाँदनी (या चँदोवा) वाले, मण्डलाकार रूप में बैठे हुए चरणों वाले, सुगन्धित जल से भरी हुई स्वर्णमयी द्रोणी से युक्त मध्यभाग वाले, पास में रखे हुए स्फटिक निर्मित स्नान करने हेतु बैठने योग्य पीढा वाले, एक ओर रखे हुए अत्यन्त सुगन्धित जल से भरे हुए, सुगन्धि से आकृष्ट भौरों के समूह द्वारा काले किये गये मुखों वाले (अतएव) धूप की गर्मी से बचाने के लिए मानो नीले कपड़ों से बँधे हुए मुखों वाले स्नानकलशों से सुशोभित स्नानागार में गये।

संस्कृत व्याख्या– अथ=तदनन्तरम्। **विसर्जितराजलोक**:=विसर्जित: समुत्सारित: राज्ञां लोक: समूह: येन स:। विश्रम्यताम् इति=**श्रमखेद:** अपनीयताम् इति। **स्वयम् एव**= निजमुखात् एव। अभिधाय=उक्त्वा। **ताम्**=तथोक्ताम्। **चाण्डालकन्यकाम्**=मातङ्गकन्याम्। **वैशम्पायन**:= एतन्नामक: शुक:। प्रवेश्यताम् = आनीयताम्। **अभ्यन्तरम्**=राजभवनमध्यम्। **इति**=एवम्। **ताम्बूलकरङ्कवाहिनीम्**=नागवल्लीपर्णवीटिकामञ्जूषाधारिणीं सेविकाम्। **आदिश्य**=आज्ञाप्य। **कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृत**:=कतिपयै: अंगुलिगण्यै: कियद्भि:। **आप्तै;**=विश्वसनीयै;। राजपुत्रै:=राजकुमारै:। **परिवृत:**=परिवेष्टित:। **नरपति:**=महाराज: **शूद्रक:।** **अभ्यन्तरम्**=स्वकीयहर्म्यमध्यम्। **प्राविशत्**= प्रवेशं चकार। **अपनीताभरण: च**= अपनीतानि देहात् पृथक्कृतानि आभरणानि आभूषणानि येन स: (बहु)। दिवसकर: इव=रवि:इव। **विगलित किरणजाल**:= विगलितानि स्त्रस्तानि किरणानां रश्मीनां जालानि बद्धनिकरा: यस्य स:। **चन्द्रतारकासमूहशून्य इव**= शशिनक्षत्रनिकरात् शून्य: हीन: इव। **गगनाभोग:**=गगनस्य व्योम्न: आभोग: विस्तार:। **समुपाहृतसमुचित०**=समुपाहृतानि आनीय व्यवस्थापितानि समुचितानि यथोपयोगयोग्यानि व्यायामोपकरणानि व्यायामे पुष्टिकरे श्रमे साधनानि यस्यां सा तान् (बहु)। **व्यायामभूमिम्** = व्यायामशालाम्। **अयासीत्** = अगच्छत्। स: = शूद्रक:। **तस्याम् च**= तथोक्तायाम् च। **समानवयोभि:**=समवयस्कै:। **सह**=साकम्। **राजपुत्रै:**=क्षत्रियकुमारै:। **कृतमधुरव्यायाम**:=कृत: विहित: मधुर: नातिकठिन: व्यायाम: श्रमाभ्यास: येन स:। **श्रमवशाद्** = व्यायामकारणात्। **उन्मिषन्तीभि**:=उद्गताभि:। **कपोलयो:**=मुखपार्श्वयो:। **ईषत्**=मनाक्। **अवदलितसिन्दुवार०**= अवदलितं मर्दितं सिन्दुवारस्य निर्गुण्डीनाम्न; कुसुमस्य पुष्पस्य या मञ्जरी स्तबकं तस्या: विभ्रम: विलास: इव विलास: यासां ताभि:। **उरसि**=वक्षस्थले। **निर्दयश्रमच्छिन्न:** निर्दय: कठोर य: श्रम: आयास: तेन छिन्न त्रुटित: य: हार: मौक्तिकमाला तस्मात् विगलित: पतित: य: मुक्ताफलानां प्रकर: निचय: तम् अनुकर्तुं शीला यासां ताभि:। **ललाटपट्टके**=भालफलके। **अष्टमीचन्द्र०**=अष्टमीतिथौ समुदित: चन्द्र:शीतरश्मि: एव शकलं खण्ड तस्य तले फलके उल्लसन्त: विराजमाना: ये अमृतबिन्दव: सुधासीकरा: तां विडम्बयन्ति तिरस्कुर्वन्ति इत्येवंशीला: ता: ताभि: (तत्पुरुष०)। **स्वेदजलकणिका०**=घर्मजलबिन्दूनां या सन्तति: श्रेणी ताभि:। **अलङ्क्रियमाणमूर्ति**:=अलङ्क्रियमाणा मण्डमाना मूर्ति:काया यस्य स: (बहु०) **इतस्तत:**=सर्वत्र। **स्नानोपकरण०**=स्नानं जलेन गात्रसम्मार्जनं तस्य उपकरणानां

साधनानां सम्पादने एकत्रीकरणे सत्वरेण त्वरया शीघ्रतया सह वर्तते सत्वरः (बहु०) **तेन।** **पुरः**=अग्रे। **प्रधावता**=त्वरितं गच्छता। **परिजनेन**=सेवकवर्गेण। **तत्कालम्**=तत्क्षणम्। **विरल जने अपि** = जनसम्मर्दराहिते अपि। **राजकुले**=राजसमूहे, राजगृहे वा। **समुत्सारणाधिकारम्**=समुत्सारणस्य जनसम्मर्दनिवारणस्य अधिकारः कर्तव्यं, तम्। **उचितम्**=योग्यम्। **समाचरद्भिः**=सम्पादयद्भिः। **दण्डिभिः**=वेत्रधारिभिः। **उपदिश्यमानमार्गः**= प्रदर्श्यमानः मार्गः सरणिः यस्य सः तादृशः (बहु०)। **विततसितवितानाम्**= विततम् उपर्याच्छादितम् सितं श्वेतं वितानम् उल्लोचः यस्यां ताम् (बहु०)। **अनेकचारणगणनिबद्ध्यमानमण्डलाम्** = अनेके बहुसंख्याकाः ये चारणगणा; स्तुतिपाठकाः जनाः तैः निबध्यमानं विरच्यमानं मण्डलं परिवृत्तिः यस्यां ताम् (बहु०) **गन्धोदकपूर्ण०** = गन्धोदकानि सुरभितजलानि तैः पूर्णा सम्भृता या कनकमयी हेमरचिता जलद्रोणी लघुतरण्याकारा जलकुण्डिका तया सनाथः सहितः मध्यःमध्यभागः यस्याः ताम् (बहु०)। **उपस्थापित- स्फाटिकस्नानपीठाम्** = उपस्थापितं तत्र न्यस्तं स्फाटिकं स्फटिकमणिमयं स्नानपीठम् आलम्बनचतुष्पदिका यस्यां ताम् (बहु०)। **एकान्तनिहितैः** = एकान्ते एकस्मिन् भागे निहिताः संस्थापिताः, तैः। **अतिसुरभिगन्धसलिलपूर्णै** := अतिशयसुवासितजलसम्भृतैः। **परिमलावकृष्ट०** = परिमलै० गन्धैः अवकृष्टाः आकृष्टाः मधुकराणां भ्रमराणां कुलानि समूहाः तैः अन्धकारितानि श्यामायकानानि मुखानि आननानि (अग्रभागाः) येषां तैः (बहु०) **आतपभयात्** = सूर्यरश्मिपुञ्जभीतेः। **नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैः** = नीलं श्यामं च तत् कर्पटं वस्त्र तेन अवगुण्ठितं परिवेष्टितम् आच्छादितं वा मुखं येषां तैः (बहु०)। इव। **स्नानकलशैः** = तथाभूतैः स्नानघटैः। **उपशोभिताम्** = विराजमानाम्। **स्नानभूमिम्** = स्नानागारम्। **अगच्छत्** = गतवान्।।

टिप्पणी– अभिधाय– अभि+धा+क्त्वा–ल्यप्। **आदिश्य**– आ+दिश्+क्त्वा–ल्यप्। **आप्त**– आप्+क्त। **गगनाभोगः**-गगनस्य आभोगः। आङ्+भुज्+घञ् =आभोगः। **व्यायामोपकरण**=व्यायाम का अर्थ है कसरत। शरीर को पुष्ट और सुडौल बनाने के लिए सदा से व्यायाम किया जाता रहा है। प्राचीन काल के उपकरणों में मुख्य रूप से गदा, जोड़ी, डम्बल, मुद्गर, नाल आदि आते हैं। आधुनिक काल में यान्त्रिक उपकरणों का भी प्रयोग हो रहा है। किन्तु '**व्यायाम**' यह प्रातःकालिक और सायंकालिक क्रिया है। बाणभट्ट यहाँ मध्याह्न काल में स्नान के एकदम पहले इसका वर्णन कर रहे हैं। औचित्य विचारणीय है। व्यायाम के पूर्व प्रयुक्त मधुर शब्द हल्का-फुल्का व्यायाम का संकेत देता है। किन्तु आगे आये हुए 'श्रम' और 'निदेशश्रम' पदों का प्रयोग चिन्त्य है। **राजपुत्रैः सह**– 'सह' के योग में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' सूत्र से 'राजपुत्रैः' में तृतीया विभक्ति हुई है। **उल्लसन्ती** – उत्+लस+शतृ+ङीप्। **सन्तति**– सम्+तन्+क्तिन्। **प्रधावता**– प्र+धाव्+शतृ; तृतीया एकवचन। **आचरद्भिः**– आ+चर+शतृ, तृतीया बहुवचन। **उपदिश्यमान**– उप+दिश्+यक्+शानच्। बड़े लोगों के आगे-आगे रास्ता दिखाते हुए चलाने का शिष्टाचार आज भी है। **श्यामायकानाः**– श्याम+क्यङ्+शानच्।

'दिवसकर इव' 'गगनाभोग इव' में उपमालङ्कार है। 'मुक्ताफल........नुकारिणीभिः और 'अमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः' में आर्थी उपमा है। कपोलयोः........विभ्रमाभिः में लुप्तोपमा है। नीलकर्पट...........मुखैरिव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'विततसितावितानाम्' में अनुप्रास अलङ्कार है।

अवतीर्णस्य जलद्रोणीं वारविलासिनीकरमृदितसुगन्धामलकलिप्तशिरसो राज्ञः परितः

समुपतस्थुरंशुकनिबिडनिबद्धस्तनपरिकराः, दूरसमुत्सारितवलयबाहुलताः, समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः, कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः, गृहीतजलकलशाः, स्नानार्थमभिषेकदेवता इव वारयोषितः। ताभिश्च समुन्नतकुचकुम्भमण्डलाभिर्वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृत्तस्तत्क्षणं रराज राजा। द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिकधवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह। ततस्ताः काश्चिन्मरकतकलशप्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलशहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डल विनिर्गतेन ज्योत्सनाप्रवाहेण, काश्चित्कलशोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलशैस्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयसरित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्तकलशपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः प्रत्यंगुलिविव-रावनिर्गतजलधाराः सलिलयन्त्रदेवता इव, काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्तबालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलशहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गना यथायथं राजनमभिषिषिचुः। अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेकप्रहतपटुपटहझल्लरीमृदङ्गवेणुवीणागीत निनादानुगम्यमानो बन्दिवृन्दकोलाहलाकुलो भुवनविवरव्यापी स्नानशङ्खानामापूर्यमाणाना मतिमुखरो ध्वनिः।

हिन्दी अनुवाद– लघु नौकाकार जलकुण्ड में उतरे हुए और सुन्दरी गणिकाओं के हाथों सुगन्धित आँवले (के अवलेह) से लिप्त सिर वाले महाराज शूद्रक के चारो ओर, रेशमी वस्त्र से स्तनों और कमर को कसकर बाँधी हुईं, अपने कंगनों या चूड़ियों को हाथों में ऊपर दूर तक चढ़ाई हुईं, कानों के गहनों को निकाल कर रख देने वालीं, सिर के बालों को कानों के पीछे ले जाकर संयमित करने वालीं वारवनितायें स्नान देवताओं की तरह (राजा को) हाथ में जल से भरे हुए घड़े लेकर स्नान कराने के लिए खड़ी हो गयीं। उस समय वह महाराज शूद्रक, उठे हुए कुचकलशों वालीं उन वारवनिताओं से घिरे हुए ऐसे लग रहे थे जैसे हथिनियों से घिरा हुआ जल में पैठा हुआ कोई वन गज हो। कुण्डिका के जल से उठकर महाराज शूद्रक जाकर निर्मल स्फटिक के श्वेत स्नान के पीठे पर ऐसे बैठ गये जैसे राजहंस पर वरुणदेव सवार हो गये हों। तदनन्तर पन्ने के घड़ों की प्रभा से साँवली सी हो गयी उनमें से कुछ सुन्दरियाँ मानों मूर्तिमान् नील कमलियाँ अपने पत्तों के दोनों से हाथ में चाँदी के घड़े ली हुई कुछ सुन्दरियाँ मानों रात्रि जैसी पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल से निकले हुए चाँदनी के प्रवाह से, जल में भरे हुए घड़े उठाने के कारण पसीने से भींगी हुईं देहवालीं कुछ सुन्दरियाँ मानो जलदेवता की तरह स्फटिक के घड़ों में भरे हुए तीर्थ जल से, कुछ सुन्दरिया मलयगिरि से निकलने वालीं नदियों के समान चन्दनरस से मिश्रित जल से, उठाये गये घड़ों के बगल में अपना करकिसलय लगाई हुई कुछ सुन्दरियाँ, नखों के रश्मिसमूह को विखेरती हुईं, अंगुलियों के मूलस्थ विवरों से मानो जलधारा प्रवाहित करती हुई जलयन्त्रदेवता की तरह, हाथ में स्वर्ण का जलकलश उठाई हुईं कुछ सुन्दरियाँ मानों दिवस लक्ष्मी के समान निद्राजन्य जड़ता को दूर करने हेतु लायी गयी धूप के समान कुंकुम जल से क्रमशः विधिपूर्वक राजा को स्नान कराने लगीं। तत्पश्चात् (स्नानसम्पन्नता को सूचित करने वाली) कान के परदे को फाड़ती हुई सी, बजते हुए अनेक विशाल नगाड़ों, झालों, मृदङ्गों, बाँसुरियों, वीणाओं और गीतों से संयुक्त होती हुई, चारणों के कोलाहल से बढ़ी हुई, समस्त लोकों में व्याप्त होने वाली स्नानोपलक्षक शंखों की भरती हुई तीव्र गम्भीर ध्वनि होने लगी।

संस्कृत व्याख्या– अवतीर्णस्य = अधः प्रविष्टस्य। **जलद्रोणीम्**=जलकुण्डिकाम्। **वारविलासिनीकर०** = वारविलासिनीभिः वारवनिताभिः सुन्दरीभिः करैः हस्तैः मृदितानि मृष्टानि सुगन्धामलकानि

सुरभिधात्रीफलानि तैः लिप्तम् अवलेपितं शिरः मूर्धा यस्य सः, तस्य (बहुब्रीहि)। **राज्ञ** := भूपतेः। परितः समन्तात्। **समुपतस्थुः**=समुपस्थिताः आसन्। **अंशुकनिबिड**=अंशुकैः कौशेयवस्त्रैः निबिडं प्रगाढं यथा स्यात् तथा निबद्धा; सुबद्धाः स्तनपरिकराः कुचकटिभागाः याभिः ताः तथोक्ताः (बहु०)। **दूरसमुत्सारित०**= दूरे ऊर्ध्वभागे समुत्सारितानि प्रापितानि वलयानि कङ्कणानि यासु ताः बाहुलताः भुजवल्लर्यः यासां ताः (बहु०) समुत्क्षिप्तानि विमुच्य स्थापितानि कर्णाभरणानि कर्णावतंसाः याभिः ताः (बहु०)। **कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः**=कर्णोत्सङ्गात् श्रवणसमीपात् उत्सारिताः दूरीकृताः अलकाः कुन्तलाः याभिः ताः। **गृहीतजलकलशाः**– गृहीताः विधृताः जलकलशाः वारिपूर्णघटाः याभिः ताः (बहु०)। **स्नानार्थम्**=राज्ञः शूद्रकस्य स्नानहेतवे। **अभिषेकदेवताः इव**= स्नानाधिष्ठातृ देवताः इव। **वारयोषितः** =वाराङ्गनाः गणिकाः वा। **ताभिः च**=वाराङ्गनाभिः च। **समुन्नतकुचकुम्भ०**=समुन्नतम् अत्युच्चं कुचकुम्भमण्डलम् कुचा एव कुम्भाः तेषां मण्डलम् वलयाकारःसमूहः। यासां ताभिः (बहु०) **वारिमध्यप्रविष्टः**= जलमध्येऽवतीर्णः। **राजा**=भूपतिः शूद्रकः। **करिणीभिः इव** = करेणुभिः हस्तिनीभिः वा इव। **वनकरी**=अरण्यगजः। **परिवृतः**=परिवेष्टितः। **तत्क्षणम्**=तत्कालम्। **रराज**=शुशुभे। **द्रोणीसलिलात्** = कुण्डिकाजलात्। **उत्थाय** = बहिरागत्य। **स्नानपीठम्** = स्नानार्थं फलकम्। **अमलस्फटिकधवलम्** = अमलः निर्मलः (अतः पारदर्शी) यः स्फटिकः मणिविशेषः तद्वत् धवलम् श्वेतम्। **वरुणः** = प्रचेताः। इव। **राजहंसम्**=कलहंसम्। **आरुरोह** = आरूढवान्। **ततः**= तदनन्तरम्। ताः= वारवनिताः। **काश्चित्** = काश्चन। **मरकतकलश०** = मरकतमणिनिर्मितघटस्य प्रभया कान्त्या श्यामायमानाः नीलवर्णवत् आचरन्त्यः। **नलिन्यः इव** = नीलकमलिन्यः इव। **मूर्तिमत्यः** = साक्षात्विग्रहाः। **पत्रपुटैः** = पर्णसम्पुटैः। **रजतकलशहस्ताः** =रूप्यघटः हस्ते पाणौ यासां ताः (बहु०)। **रजन्यः इव** = रात्रयः इव। **पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन** = पूर्णं च तत् चन्द्रमण्डलं अशेषशशिबिम्बम् तस्मात् विनिर्गतेन बहिरागतेन। **ज्योत्सनाप्रवाहेण** = कौमुदीधारया। **कलशोत्क्षेप०**=कलशस्य घटस्य उत्क्षेपात् उत्थापनात् ये श्रमस्वेदाः घर्मजलानि तैः आर्द्राणि क्लिन्नानि शरीराणि देहाः यासां ताः (बहु०) **जलदेवता इव** = जलाधिष्ठात्री देवता इव। **स्फाटिकैः**= स्फटिकमणिनिर्मितैः। कलशैः = घटैः। **तीर्थजलेन** = पवित्रनदीजलाशयसमुद्रादि तीर्थानीतेन जलेन। **मलयसरितः इव** = मलयगिरिनद्यः इव। **चन्दनरसमिश्रेण** = मलयजद्रवसहितेन। **सलिलेन** = पयसा। **उत्क्षिप्तकलशपार्श्व०** = उत्क्षिप्ताः उत्थापिताः ये कलशाः घटाः तेषां पार्श्वेषु वामदक्षिणभागेषु विन्यस्ता स्थापिताः हस्तपल्लवाः करकिसलयानि याभिः ताः (बहु०)। **प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः** = प्रकीर्यमाणानि विकीर्यमाणानि नखानां कररुहाणां मयूखजालकानि रश्मिसमूहाः यासां ताः (बहु०)। **प्रत्यङ्गुलिविवरावनिर्गतजलधाराः** = प्रत्यङ्गुलि यानि विवराणि मूलस्थानान्तर्भागाः तेभ्यः अवनिर्गताः विनिःसृताः जलधाराः सलिलप्रवाहाः यासां ताः (बहु०)। **सलिलयन्त्रदेवता इव** = जलयन्त्राधिष्ठातृदेवता इव। **जाड्यमपनेतुम्** = जाड्यं सुषुप्तिजन्यजडताम् अपनेतुम् अपाकर्तुं। **आंक्षिप्तबालातपेन इव** = आक्षिप्तः समाहृतः बालातपः प्रातः सूर्यरश्मिनिकरः यस्मिन् तेन इव। **दिवसश्रियः इव**= दिन लक्ष्म्यः इव। **कनककलशहस्ताः** = कनककलशाः हेमघटाः हस्तेषु करेषु यासां ताः (बहु०)। **कुङ्कुमजलेन** = केसररञ्जितसलिलेन। **वाराङ्गनाः** = वारवनिताः। **यथायथम्** = यथा योग्यं स्यात्तथा, क्रमशः इत्यर्थः। राजानम्=नरपतिं शूद्रकम्। **अभिषिषिचुः**=स्नानं कारयामासुः तैस्तैः घटजलैः अभिषेकं कारयामासुरित्यर्थः। **अनन्तरम्** = तत्पश्चात्। **उदपादि च** = सम्भूतः च। **स्फोटयन्**

इव = विदारयन् इव। **श्रुतिपथम्**=कर्णकुहरम्। **अनेकप्रहत........गम्यमानः**=अनेकेन नैकविधेन प्रहता: ताडिता: पटव: घातसहनक्षमा: ये पटहा: दुन्दुभय: झञ्जरय: झल्लय: मृदङ्गा: मुरज.: वेणव: वंश्य: वीणा: वल्लक्य: तासां गीतानां सङ्गीतानां निनादै: गम्भीररवै: अनुगम्यमान: अनुपूर्यमाण:। **बन्दिवृन्दकोलाहलाकुलः** = बन्दिवृन्दस्य चारणगणस्य कोलाहलेन गीतानुबद्धकलकलेन आकुल: व्याप्त:। **भुवनविवरव्यापी** = भुवनानां लोकानां विवराणि गह्वराणि तानि व्यापी व्याप्नोतीत्येवंशील:। **स्नानशङ्खानाम्** = स्नानसम्पन्नतासूचकानां कम्बूनाम्। **आपूर्यमाणानानाम्** = मुखवायुना वाद्यमानाम्। **अतिमुखरः** = अतितारतर:। **ध्वनिः** = नाद:।।

टिप्पणी– जलद्रोणी– जलपूर्ण द्रोणी जलद्रोणी। द्रोणी का आशय लम्बे गहरे जलपात्र है जिसमें बैठकर, लेटकर कोई स्नान कर सके। सुसज्जित स्नानगृहों में इस प्रकार की सुविधा होती है। इसे आधुनिक Bath Tub' का प्राचीन रूप कहा जाना उचित होगा। **राज्ञःपरितः**–'परित:' के योग में द्वितीया होनी चाहिए। अत: 'राजानम्' पद का प्रयोग होना चाहिए था। 'राज्ञ:' पदप्रयोग चिन्त्य है।

समुन्नत– सम्+उत्+नम्+क्त। **प्रविष्ट**– प्र+विश्+क्त। **परिवृत**– परि+वृ+क्त। **ज्योत्स्ना**– ज्योति अस्ति अस्याम् इति। चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना– अमरकोश। **उत्क्षेप**– उत्+क्षिप्+घञ्। **जाड्यम्**– जड+ष्यञ्। यह शब्द जिस रूप में प्रयुक्त हुआ है उसका अभिप्राय है रात्रिकालीन **सुषुप्ति**-जन्य जड़ता। प्रात: काल अपनी किरणों से सूर्य प्राणियों को जगाकर उनमें नवचेतना और स्फूर्ति का सञ्चार करता है। **अपनेतुम्** – अप+नी+तुमुन्। **आक्षिप्त** -- आ+क्षिप्+क्त। **वाराङ्गना**– वारस्त्री, वारवनिता, वारविलासिनी आदि शब्द वेश्या या गणिका के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं– वारस्त्री: गणिका वेश्या'– अमरकोश। **स्फोटयन्** – स्फुट+णिच्+शतृ। इस शब्द का प्रयोग कान के परदे फाड़ने के अर्थ में हुआ है। **प्रहत** = प्र+ हन्+क्त। **अनुगम्यमान**– अनु+गम्+यक्+शानच्। **आपूर्यमाण** – आ+पूर्+यक्+शानच्।

प्रस्तुत गद्यांश में उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है। नलिन्य इव, जलदेवता इव, रजन्य: इव, सलिलयन्त्रदेवता इव, दिवसश्रिय इव सरित् इव इन सबमें उत्प्रेक्षा है। अन्यत्र 'इव' उपमावाची है। 'रराज राजा' में अनुप्रास है।

एवं च क्रमेण निर्वर्तिताभिषेको विषधरनिर्मोकपरिलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालननिर्मलतनुः, अतिधवलजलधरच्छेदशुचिना दुकूलपटपल्लवेन तुहिनगिरिरिव गगनसरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः, सम्पादितपितृजलक्रियो मन्त्रपूतेन तोयाञ्जलिना दिवसकरमभिप्रणम्य देवगृहमगमत्। उपरचितपशुपतिपूजश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निर्वर्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमदकर्पूरकुंकुमवाससुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गो विरचितामोदिमालतीकुसुमशेखरः कृतवस्त्रपरिवर्तो रत्नकर्णपूरमात्राभरणः समुचितभोजनैः सह भूपतिभिराहारमभिमतरसास्वादजातप्रीतिरवनिपो निर्वर्तयामास।

हिन्दी अनुवाद– इस प्रकार (महाराज शूद्रक) क्रमश: स्नान सम्पन्न करके, सर्प की केचुल के समान बारीक और शुभ्र धुले हुए वस्त्र का जोड़ा धारण करके, शरत्कालिक आकाश के एक भाग जैसा स्नान से निर्मल शरीर वाले, अत्यन्त श्वेत मेघखण्ड की कान्ति वाले रेशमी दुपट्टे से, आकाशगङ्गा के जलप्रवाह से हिमालय पर्वत के समान, अपने सिर पर पगड़ी बाँधने वाले,

पितरों का जल से तर्पण करके मन्त्र से पवित्र जलाञ्जलि द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदानपूर्वक नमस्कार करके, देव मन्दिर में गये। (उन्होंने) भगवान् शिव की पूजा करके, मन्दिर से निकल कर, हवन करके, विलेपन स्थल पर झंकार करते हुए भ्रमरसमूह के द्वारा सेवन की जाती हुई सुगन्धि वाले कस्तूरी-कपूर-केसर की वास से सुरभित चन्दन से सम्पूर्ण शरीर में लेप किये हुए, सुगन्धित मालती पुष्प का मुकुट धारण करके, कपड़े बदल कर, (शरीर पर) एकमात्र रत्न का कर्णावतंस धारण करके, भोजन में साथ बैठने के योग्य राजाओं के साथ आनन्दपूर्वक अभीष्ट खाद्य-लेह्य-पेय-चोष्य पदार्थों का आस्वादन करते हुए भोजन-क्रिया सम्पन्न की।।

संस्कृत व्याख्या– एवं च क्रमेण = इत्थं च क्रमशः (सः राजा शूद्रकः)। **निर्वर्तिताभिषेकः**= सम्पन्नस्नानः। निर्वर्तितः सम्पादितः अभिषेकः स्नानं येन सः: (बहु०)। विषधरनिर्मोकपरिलघुनी=विषधरस्य सर्पस्य निर्मोकः कञ्चुकः तत्सदृशे परिलघुनी अतिसूक्ष्मे। **धवले**=उज्ज्वले। **परिधाय**=धारयित्वा। **धौतवाससी**=प्रक्षालितवस्त्रे। **शरदम्बरैकदेश इव** = शरदि वर्षापगमे अम्बरस्य गगनतलस्य एकदेशः एकभागः इव। **जलक्षालननिर्मलतनुः** = जलक्षालनेन स्नानेन निर्मला स्वच्छा तनुः काया यस्य सः (बहु०)। **अतिधवलजलधरच्छेदशुचिना** = अधिधवलः अतिशयश्वेतः जलधरच्छेदः मेघखण्ड तदिव शुचिना कान्त्या। **दुकूलपटयल्लवेन** = कौशेयवसनाञ्चलेन। तुहिनगिरिः इव = हिमालयपर्वतः इव। **गगनसरित्स्रोतसा** = आकाशगङ्गाप्रवाहेण। **कृतशिरोवेष्टनः** = कृतं निर्मितं शिरोवेष्टनं शिरसः उत्तमाङ्गस्य वेष्टनं परिवेष्टनं येन सः (बहु०) **मन्त्रपूतेन** = वेदमन्त्रैः पवित्रेण। **तोयाञ्जलिना** = जलाञ्जलिना। **दिवसकरम्** = सूर्यम्। अभिप्रणाम्य = अर्घ्यदानपूर्वकं नमस्कृत्वा। **देवगृहम्** = देवमन्दिरम् (शिवालयम्)। **अगमत्** = अगच्छत्। **उपरचितपशुपतिपूजश्च** = उपरचिता सम्पादिता पशूनां जीवानां पतिः स्वामी तस्य पशुपतेः शिवस्य पूजा सपर्या येन सः (बहु०)। **निष्क्रम्य** = निर्गत्य। **देवगृहात्** = शिवालयात्। **निर्वर्तिताग्निकार्य;** = निर्वर्तितं निष्पादितं अग्निकार्यं होमः येन सः (बहु०)। **विलेपनभूमौ** = विलेपनस्य अंगरागलेपनस्य भूमौ स्थाने। **झङ्कारिभिः** = झङ्कृतिं क्रियमाणैः। **अलिकदम्बकैः** := भ्रमरसमूहैः। **अनुबध्यमानपरिमलेन** = अनुबध्यमानः सेव्यमानः परिमलः सौरभं यस्य तेन। (बहु०) **मृगमद........सुरभिणा** = मृगमदस्य कस्तूरिकायाः कर्पूरस्य हिमबालुकायाः कुङ्कुमस्य केसरस्य वासेन भावनया सुरभिणा सुगन्धिना। **चन्दनेन** = मलयजद्रवेण। **अनुलिप्त सर्वाङ्गः**:= अनुलिप्तं विलेपितं सर्वाङ्गम् समस्तशरीरम् येन सः। **विरचिता मोदिमालतीकुसुमशेखरः** = विरचितः निर्मितः आमोदिभिः सुगन्धिभिः मालतीकुसुमैः मालतीपुष्पैः शेखरः मुकुटम् येन सः (बहु०)। **कृतवस्त्रपरिवर्तो** = कृतः विहितः वस्त्रयोः वस्त्राणां वा परिवर्तः परिवर्तनं येन सः (बहु)। **रत्नकर्णपूरमात्राभरणः** = रत्ननिर्मितं मणिनिर्मितं कर्णपूरमात्रं कुण्डलमेव आभरणम् आभूषणं यस्य सः (बहु०)। **समुचितभोजनैः** = समुचितं योग्यं भोजनम् अशनग्रहणं एभिः सह तैः (बहु०)। **भूपतिभिः सह** = भूपालैः साकम्। **आहारम्** = भोजनक्रियाम्। **अभिमतरसास्वादजातप्रीतिः** = अभिमताः अभीप्सिताः ये रसाः मधुरलवणादयः तेषाम् आस्वादेन चर्वणया जाता समुत्पन्ना प्रीतिः सन्तुष्टिजन्यं सुखम् यस्य सः। **अवनिपः** = पृथ्वीपतिः सः राजा शूद्रकः। **निर्वर्तयामास** = सम्पादयामास।।

टिप्पणी– धौतवाससी– शरीर पर कम से कम दो वस्त्र, एक अङ्गवस्त्र दूसरा अधोवस्त्र, धारण करने का विधान है। देवकार्य या पितृकार्य में वस्त्र चाहे नया ही क्यों न हो, धुला कर ही पहनना चाहिए। **कृतशिरोवेष्टनः** – सिर पर पगड़ी बाँधकर। देवकार्य या मांगलिक अनुष्ठान करते

समय सिर को ढँकने का शास्त्रसम्मत विधान है– 'उष्णीषेण' विना राजन्! होमं यः कुरुते नरः। होतुश्चक्षुविनाशः स्यात् होता च विकलो भवेत्।। (होमश्च विफलो भवेत्।।)। शूद्रक ने स्नान करने के बाद शास्त्रीय विधि से सूर्य को प्रणाम किया, शिव की पूजा किया, हवन किया और पितृतर्पण किया। इससे ज्ञात होता है कि उस समय समाज में शास्त्रीय विधियों का सम्यक् पालन होता था। द्रष्टव्य है– 'स्नात्वा संतर्पयेद् देवान् पितृंश्च मानवांस्तथा।' अपि च, 'अर्घ्यं दद्यात् तु प्रथमं भास्कराय महात्मने। ततो विष्णुं शिवं देवं शक्तिं चैव प्रपूजयेत्।। **निष्क्रम्य** = निस्+क्रम्+क्त्वा– ल्यप्। **अनुबध्यमान**– अनु+बध्+यक्+शानच्।

'विषधरनिर्मोकपरिलघुनी' और अतिधवलजलधरच्छेदशुचिना में लुप्तोपमा, 'शरदम्बरैकदेश इव', 'तुहिनगिरिः इव' में उपमालङ्कार है।

परिपीतधूमवर्तिरुपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मात्प्रमृष्टमणिकुट्टिमप्रदेशादुत्थाय नातिदूरवर्तिन्या ससंभ्रमप्रधावितया प्रतिहार्या प्रसारितबाहुमवलम्ब्य वेत्रलताग्रहणप्रसङ्गादतिजरठकिसलयानुकारिकरतलकरेणाभ्यन्तरसञ्चारसमुचितेन परिजनेनानुगम्यमानो, धवलांशुकपरिगतपर्यन्ततया स्फटिकमणिमयभित्तिनिबद्धमिवोपलक्ष्यमाणम्, अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिगतेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम्, अविरलविप्रकीर्णेन विमलमणिकुट्टिमगगनतलतारागणेनेव कुसुमोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकोनिवहेन संनिहितगृहदेवतेनेव गन्धसलिलक्षालितेन, कलधौतमयेन स्तम्भसञ्चयेन विराजमानम्, अतिबहलागुरुधूपपरिमलम्, अखिलविगलितजलनिवहधवलजलधरशकलानुकारिणा कुसुमामोदवासितप्रच्छदपटेन पट्टोपधानाध्यासितशिरोधाम्ना मणिमयप्रतिपादुकाप्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थरत्नपादपीठेन तुहिनगिरिशिलातलसदृशशयनेन सनाथीकृतवेदिकं भुक्त्वा स्थानमण्डपमयासीत्।

हिन्दी अनुवाद–भोजन के पश्चात् धूमवर्तिका पीकर, आचमन करके, (मुख में) पान का बीड़ा रखकर उस परिमार्जित मणियों वाले फर्श से उठकर, पास में ही खड़ी और घबड़ाकर दौड़ पड़ी प्रतिहारी के द्वारा फैलाये गये हाथ का सहारा लेकर, बेंत की छड़ी (निरन्तर) पकड़ने से अति कर्कश किसलय के समान हथेली से युक्त हाथ वाले, राजमहल के भीतर आने जाने के योग्य सेवक के द्वारा अनुगमन किये जाते हुए, चारों ओर लटकने वाले श्वेत रेशमी वस्त्रों के पर्दों के कारण स्फटिकमणि की बनी हुई दीवालों वाला सा लगने वाले, अत्यन्त सुगन्धित कस्तूरी रस से मिश्रित अतएव गमकते हुए चन्दन जल से धोई हुई शीतल मणिनिर्मित फर्श वाले, निर्मल मणियों से जड़ी फर्श जैसे आकाश-मण्डल में भरे हुए ताराओं के समूह के समान सघन बिखरे हुए लाये गये फूलों से सदैव भरे हुए, उपस्थित गृह देवदाओं के समान उत्कीर्ण पुत्तलिकाओं के समूह वाले, सुगन्धित जल से धोये हुए, स्वर्णनिर्मित खम्भों के समूह से सुशोभित, अत्यधिक अगरु की धूप से सुवासित, सम्पूर्ण जल बरसा चुके श्वेत बादल के टुकड़े के समान, फूलों की सुगन्ध से बसी हुई चादर से (ढके हुए), रेशमी मसनन्द से युक्त सिरहाने वाले, मणियों के बने हुए खण्डपीठ पर रखे हुए पायों वाले, बगल में रखे हुए रत्न के चरणाधार वाले, हिमालय के शिलातल के समान पलंग से युक्त चबूतरे वाले विश्रामकक्ष (अथवा) अतिथिकक्ष में जा पहुँचा।

संस्कृत व्याख्या– भुक्त्वा=अशित्वा, भोजनं परिसमाप्य। **परिपीतधूमवर्तिः** = परिपीता सम्यक् मुखे विधृता धूमवर्तिः धूमवीटिका येन तेन सः (बहु०)। **उपस्पृश्य च** =आचम्य च। **गृहीतताम्बूलः**= गृहीतं मुखे कृतं ताम्बूलम् आरचितवीटिकं नागवल्लीपत्रम् येन सः। **तस्मात्** = ततः प्रमृष्टः

मणिकुट्टिमत: प्रदेशात्=प्रमृष्ट: परिमार्जित: मणिकुट्टिमप्रदेश: रत्नबद्धभूस्थलम्, तस्मात्। उत्थाय=उत्थानं विधाय। **नातिदूरवर्तिन्या**=समीपतरं स्थितया। **ससम्भ्रमम्**=सहसा साकुलम्। **प्रधावितया**=सवेग उपसृतया। **प्रतिहार्या**=द्वारपालिकया। **प्रसारितबाहुम्** = विस्तारितभुजम्। अवलम्ब्य = विधृत्य। **वेत्रलताग्रहणप्रसङ्गात्** =वेत्रस्य वेतस्य या लता लघुयष्टिका तस्या: ग्रहणस्य धारणस्य प्रसङ्गात् निरन्तरमभयासात्। **अति जर०** ....**करेण**= अतिजरठम् अतीवकर्कशं यत् किसलयं पल्लवं तदनुकरोति तादृशं करतलं पाणितलं यस्य स: कर: हस्त: यस्या तेन। अभ्यन्तरसञ्चार-**समुचितेन**=अभ्यन्तरे अन्त:भागे सञ्चार; गमनागमनं तत्र समुचितेन योग्येन। **परिजनेन**=सेवकेन, दासदासीवर्गेण इत्यर्थ:। अनुगम्यमान: पश्चाद्गमनेन सेव्यमान:। **धवलांशुकपरिगतपर्यन्तया**=धवलानि श्वेतानि यानि अंशुकानि कौशेयपटानि तै: परिगता: परिवेष्टिता; पर्यन्ता: प्रान्तभागा: तस्य भाव: तत्तया। **स्फटिकमणि०**= स्फटिकमणिनिर्मिता या भित्ति: तया निबद्धम् आरचितम्। इव। **उपलक्ष्यमाणम्**=प्रतीयमानम्। **अतिसुरभिणा** = अतिसुगन्धिना। **मृगनाभिपरिगतेन** = कस्तूरिकारसमिश्रितेन। **आमोदिना** = सुगन्धिना। **चन्दनवारिणा**=मलयजजलेन। **सिक्ताशिशिरमणिभूमिम्** = सिक्ता क्लिन्ना अतएव शिशिरा शीतला मणिभूमि: रत्नखचितकुट्टिम: यत्र ताम्। **अविरलविप्रकीर्णेन** = अविरलं सघनं यथा स्यात्तथा विप्रकीर्णेन प्रक्षिप्तेन। **विमलमणिकुट्टिम०** = विमलं स्वच्छं मणिकुट्टिम् एव गगनतलम् आकाशमण्डलं तत्र स्थितेन तारागणेन नक्षत्रमण्डलेन इव। **कुसुमोपहारेण** = पुष्पराशिना। **निरन्तरनिचितम्** = निरन्तरं निरवकाशं निचितं परिव्याप्तम्। **उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन** =उत्कीर्णा: टंकै निर्मिता: शालभञ्जिका: पुत्तलिका: तासां निवहेन समूहेन। **सन्निहिगृहदेवतेनेव** = सन्निहिता: समीपेऽवस्थानं कृता: गृहदेवता: भवनाधिष्ठातृदेव्य: यस्मिन् तेन इव। **गन्धसलिलक्षालितेन**=गन्धं गन्धियुक्तं यत्सलिलं जलं तेन क्षालितेन धौतेन। **कलधौतमयेन**= स्वर्णमयेन। **स्तम्भसञ्चयेन** = स्तम्भानाम् आधारस्थूणानाम् सञ्चयेन निचयेन। **विराजमानम्** = शोभायमानम्। **अतिबहलागुरुधूपपरिमलम्** = अतिबहलस्य भृशं घुसृणस्य अगुरुधूपस्य गन्धद्रव्यविशेषस्य परिमलम् आमोद: यस्मिन् तम्। **अखिलविगलित०** = अखिल: अशेष: विगलित: नि:सृत: जलनिवह: सलिलराशि: यस्मात् तस्मात् धवल: श्वेत: जलधर: मेघ: तस्य शकलं खण्डम् अनुकरोति इत्येवंविधेन। **कुसुमामोदवासितप्रच्छदपटेन** = कुसुमानां पुष्पाणाम् आमोदेन परिमलेन वासित: भावित: प्रच्छदपट: आस्तरणवस्त्रं यस्य तेन। **पट्टोपधाना०**=पट्टस्य क्षौमवस्त्रस्य उपधानं शिरोधानं तेन अध्यासितं समाश्रितं शिरोधाम शीर्षस्थलं यस्य तेन। **मणिमयप्रतिपादुका०**= मणिमयीषु रत्नरचितासु प्रतिपादुकासु आधारगुटिकासु प्रतिष्ठिता सुस्थिता: पादा: आधारपादा: यस्य तेन। **पार्श्वस्थरत्नपादपीठेन** = पार्श्वस्थ समीपस्थं रत्नपादपीठं मणिमयपादासनं यस्य तेन। **तुहिनगिरिशिलातलसदृशशयनेन**=तुहिनगिरे: हिमगिरे: यत् शिलातलं पाषाणफलकं तत्सदृशेनं तत्तुल्येन शयनेन पर्यङ्केण। **सनाथीकृतवेदिकम्**= सनाथीकृता सहकृता प्रसाधिता वा वेदिका संस्कृता सज्जीकृता चत्वरभूमि: यस्य तम्। **आस्थानमण्डपम्**=विश्रामभवनम् अतिथिभवनम् वा। **अयासीत्** = अगच्छत्।।

टिप्पणी– धूमवर्ति:= धुआवती, आजकल के सिगरेट, सिगार जैसी। अति सुगन्धित पदार्थों से बनी हुई कोई रचना, जिसके धुयें से मुख सुवासित हो जाता रहा होगा। **उपस्पृश्य**– उप+स्पृश्+क्त्वा–ल्यप्। आचमन करने के अर्थ में। मुख शुद्ध्यर्थ आचमन करने का विधान धर्मशास्त्र में बताया गया है। उपस्पर्शस्त्वाचमनम्-अमरकोश। **परिगत**– परि+गम्+क्त। **शालभञ्जिका** = खम्भों

या भवन की दीवालों पर अप्सराओं जैसी अलङ्कृत नारी-आकृतियाँ।

'भुक्त्वा' पद को अनुच्छेद के प्रारम्भ में न रखकर बाण ने अन्त में रखा है। अत: 'दूरान्वय दोष' प्रतीत होता है।

'आस्थानमण्डप' का अर्थ अनेक व्याख्याकारों ने 'सभाभवन' किया है। किन्तु प्रसङ्ग के औचित्य की दृष्टि से यह अर्थ समीचन नहीं है। अभी तो महाराज सभाभवन से ही उठकर राजभवन के भीतर आए हैं और हल्का सा व्यायाम, स्नान, देवार्चन, विलेपन और भोजन किया है। अब उनके विश्राम का क्रम है। ऐसी स्थिति में वे पुन: सभाभवन में क्यों जायेंगे? मैंने उक्त का अर्थ विश्रामकक्ष या अतिथि भवन रखा है। विश्राम करते हुए भी अपरिहार्य अतिथियों से मिला जाता है। अतिथिभवन को आजकल के 'ड्राइंग रूम' जैसा समझा जा सकता है।

बोध प्रश्न–

1. राजा शूद्रक के मन में विस्मय क्यों हुआ?
2. पिंजरे में स्थित वैशम्पायन शुक ने किस पद्य का पाठ किया?
3. शुक के द्वारा पढ़ी गयी आर्या में कौन अलङ्कार हैं?
4. सभामण्डप से उठने के पश्चात् शूद्रक ने भोजन ग्रहण करने से पूर्व क्या कार्य किये?
5. महाराज शूद्रक के विश्राम की शय्या कैसी थी?

प्रश्नोत्तर–

1. उस चाण्डाल कन्या के अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर महाराज शूद्रक के मन में विस्मय हुआ। साथ ही उन्हें ब्रह्मा के उस प्रयत्न पर भी आश्चर्य हुआ कि उन्होंने अनुचित स्थान में इस सौन्दर्य के विधान का प्रयत्न किया।
2. वैशम्पायन ने राजा शूद्रक की स्तुति में 'आर्या' का पाठ किया। लक्षण यथास्थान देखें।
3. शुक द्वारा पठित आर्या में उत्प्रेक्षा, श्लेष और रूपक अलङ्कार है।
4. उन्होंने हल्का व्यायाम, स्नान, पितृतर्पण, सूर्य को अर्घ्यदान तथा पशुपतिपूजन के पश्चात् शरीर पर सुगन्धित चन्दन का लेप कराया।
5. श्वेत चादर और मसनंद से युक्त मणिमय पायों वाली शय्या हिमालय के शिलातल जैसी लग रही थी।

इकाई–08

तत्र च शयने निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्गनिहितासिलतया खड्गवाहिन्या नवनलिनदलकोमलेन करसंपुटेन संवाह्यमानचरणस्तत्कालोचितदर्शनैरवनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन्मुहूर्तमिवासांचक्रे। ततो नातिदूरवर्तिनीम् 'अन्तःपुराद्वैशम्पायनमादायागच्छ' इति समुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्नकुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश। सा क्षितितलनिहितजानुकरतला यथाज्ञापयति देवः' इति शिरसि कृत्वाज्ञा यथादिष्टमकरोत्।

हिन्दी अनुवाद– वहाँ पलंग पर बैठे हुए खड्गवाहिनी के द्वारा तलवार को अपनी गोद में रखकर, वहीं भूमि पर बैठी हुई नूतन कमल की पंखुड़ी के समान कोमल अपनी हथेली से धीरे-दीरे दबाये जाते हुए पैरों वाले (महाराज शूद्रक) उस समय दर्शन प्राप्त करने के योग्य (अधिकारी) सामन्तों, मन्त्रियों और मित्रों से तरह-तरह की बातें करते हुए प्रायः मुहूर्त पर्यन्त रहे। तत्पश्चात् 'अन्तःपुर से वैशम्पायन को लेकर आओ ऐसा आदेश उनके विषय में प्रश्न करने के लिए उत्पन्न कूतुहल वश, समीप में खड़ी प्रतीहारी को दिया। उसने धरती पर घुटने और हथेलियाँ टेककर, 'जैसी महाराज की आज्ञा' ऐसा शिरोधार्य कर, जैसी आज्ञा हुई वैसा किया।

संस्कृत व्याख्या– **तत्र च** = आस्थानमण्डपे तथोक्ते च। **शयने**=पर्यङ्के। **निषण्णः**=आसीनः। **क्षितितलोपविष्टया**=क्षितेः पृथिव्याः तले उपरितले उपविष्टा स्थिरतया स्थिता तया। शनैः शनैः मन्दं मन्दम्। **उत्सङ्गनिहितासिलतया** = उत्सङ्गे अङ्के निहिता धृता यया असिलता खड्गलता सा तया। **खड्गवाहिन्या**=असिधारिण्या। **नवनलिनदलकोमलेन** = नवं चासौ नलिनम् इति नवनलिनं नूतनपङ्कजम्, तस्य दलानि पुष्पपत्राणि तद्वत् कोमलेन मृदुना (कर्मधारय समास)। **करसम्पुटेन** = हस्तयुगलेन। **संवाह्यमानचरणः** = संवाह्यमानौ संपीड्यमानौ चरणौ पादौ यस्य सः। **तत्कालोचितदर्शनैः** = तस्मिन् विश्रामकाले उचितं योग्यं दर्शनम् आलोचनं येषां तैः (बहुव्रीहि)। **अवनिपतिभिः** = सामन्तगणैः। **अमात्यैः** = मन्त्रिभिः। **मित्रैः च** =सुहृद्भि; सत्परामर्शकैर्वा। **सह**=साकम्। **ताःताः** = नाना विषय– प्रसङ्गादियुक्ताः। कथाः = वार्ताः, आलापाः। **कुर्वन्**=विदधन्। **मुहूर्तमिव**=कियत्कालपर्यन्तम्। **आसां चक्रे** = न्यषीदत्। **ततः** = तदनन्तरम्। **नातिदूरवर्तिनीम्** = समीपस्थाम्। **अन्तः पुरात्** = हर्म्याभ्यन्तरात् ए राजमहिषीनां सकाशात्। **वैषम्पायनम्** = एतन्नामकं पूर्वोक्तं शुकम्। **आदाय** =गृहीत्वा। **आगच्छ** = आयाहि। **समुपजाततद्वृत्तान्तप्रश्नकुतूहल** = समुपजातं समुत्पन्नं तद्वृत्तान्तस्य तस्य शुकस्य उदन्तस्य प्रश्ने पृच्छायां कुतूहलं कौतुकं यस्य सः (बहु०) **राजा** = महाराजशूद्रकः। **प्रतीहारीम्** = द्वारपालिकाम्। **आदिदेश** = आदिष्टवान्। **सा** = तथोक्ता प्रतीहारी। **क्षितितलनिहितजानुकरतला** = क्षितितले धरातले कुट्टिमे वा निहिते विन्यस्ते जानुनी उरुपर्वणी करतले पाणितले च यया सा (बहु०)। **यथा** = क्रियोचितेन येन प्रकारेण। **आज्ञापयति** = समादिशति। **देवः** = महाराजः। **इति** = एवम्। **शिरसि** = मूर्धनि। **कृत्वा** = विधाय। **आज्ञाम्** = आदेशम्। **यथादिष्टम्** = यथाज्ञप्तम्। **अकरोत्** = कृतवती।।

टिप्पणी– **निषण्णः** – नि+सद्+क्त। **उपविष्टया**– उप+विश्+क्त, तृतीया एकवचन, स्त्रीलिङ्ग। उत्सङ्गे – उत् + सञ्ज्+घञ्, सप्तमी, एकवचन। **निहित**– नि+धा+क्त। **असिलता**– असिः एव लता। यह एक आलङ्कारिक प्रयोग है। लम्बे, पतले, छरहरे, कोमल आदि अर्थों में शब्द के साथ

समास के अन्त में 'लता' शब्द का प्रयोग **होता है। यथा – तनुलता, देह**लता आदि। यहाँ कर्मधारय समास है। **आसांचक्रे**– आस् (उपवेशने), लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एक वचन **आदाय** – आ+दा+क्त्वा→ ल्यप्। **वृत्तान्त**– वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्– अमरकोश। आदिदेश आङ् उपसर्गपूर्वक दिश् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। 'नवनलिनदलकोमलेन करसम्पुटेन' में लुप्तोपमा अलङ्कार। प्रारम्भ में अनुप्रासालंकार।

अथ मुहूर्तादिव वैशम्पायनः प्रतीहार्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना किंचिदवनतपूर्वकायेन सितकंचुकावच्छन्नवपुषा जराधवलिमौलिना गद्गद्स्वरेण मंदमंदसञ्चारिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहंसेनेव कंचुकिनाऽनुगम्यमानो राजांतिकमाजगाम। क्षितितलनिहितकरतलस्तु कंचुकी राजानं व्यज्ञापयत्– 'देव, देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेष वैशम्पायनःस्नातः कृताहारश्च देवपादमूलं प्रतीहार्यानीतः'। इत्यभिधाय गते च तस्मिन्राजा वैशम्पायनमपृच्छत्– 'कच्चिदभिमतमास्वादितमभ्यन्तरे भवता किंचिदशनजातम्' इति। स प्रत्युवाच– 'देव, किंवा नास्वादितम्। आमत्तकोकिलोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः, हरिनखरभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भमुक्तार्द्रमुक्तरक्तफलत्विषिं खण्डितानि दाडिमबीजानि, नलिनीदलहरित्ति द्राक्षाफलस्वादूनि च चूर्णितानि स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि। किं वा प्रलपितेन बहुना। सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते' इति।

हिन्दी अनुवाद– फिर तनिक ही देर में प्रतीहारी के द्वारा उठाये हुए पिंजड़े में वैशम्पायन, सोने की छड़ी का सहारा लिये हुए, कुछ आगे की ओर झुके हुए शरीर वाले सफेद लम्बे कुरते से ढँके हुए शरीर वाले वृद्धावस्था के कारण सिर के सफेद बालों वाले, भर्रायी हुई आवाज वाले, धीरे-धीरे चलने वाले, मानो पक्षी जाति के प्रति स्नेह से वृद्ध हंस के समान कंचुकी के द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ राजा के पास आ गया। फर्श पर हथेली टेककर कञ्चुकी ने राजा को सूचित किया–

"महाराज, देवियों ने कहलवाया है कि महाराज की आज्ञा से स्नान-भोजन कर चुका यह वैशम्पायन महाराज के चरणों में प्रतीहारी द्वारा ले जाया गया है।" इस प्रकार कह कर कंचुकी के चले जाने पर राजा ने वैशम्पायन से पूछा– "क्या आपने अन्तःपुर में अपनी मनपसन्द का कुछ भोजन ग्रहण किया? उसने उत्तर दिया 'महाराज! क्या नहीं खाया !! मतवाले कोयल की आँखों के रंग जैसे काले-लाल जामुन के फल का कसैला-मीठा रस जी भरकर पीया, सिंह के पंजो से विदीर्ण मदमस्त हाथी के गण्डस्थल से निकले रक्त से सने मोतियों के समान कान्ति वाले अनारदाने चुगे और कमलिनी के पत्तों जैसे हरे, अंगूर जैसे स्वाद वाले पुराने आँवले के फलों को कुतरा। अधिक क्या कहना? देवियों के द्वारा स्वयं हथेलियों पर लाया गया सब कुछ अमृत जैसा हो जाता है।।

संस्कृत व्याख्या– अथ=ततः। **मुहूर्तादिव**= कियत्कालादिव। वैशम्पायनः तथोक्तः शुकः। **प्रतीहार्या**=द्वारपालिकया। **गृहीतपञ्चरः**=गृहीतं विघृतं पञ्जरं शकुनिमञ्जूषां यस्य सः (बहु०)। **कनकवेत्रलतावलम्बिना**=स्वर्णमयी वेत्रलता वेत्रयष्टिः तां अवलम्बितुं शीलः यस्य सः तेन (बहु०)। (कलहंसपक्षे–सुवर्णकान्तवेतसवल्लरी आलम्ब्यते येन सः तेन)। **किञ्चित्** = ईषत्। **अवनतपूर्वकायेन**=अवनता आनम्रा पूर्वकाया देहाग्रभागः यस्य सः, तेन (बहु०)। (कलहंसपक्षेऽपि सङ्गतः)। **सितकञ्चुकावछन्नवपुषा** = सितःशुभ्रः यः कंचुकः कूर्पासः तेन अवछन्नं आच्छादितं

वपुः यस्य स तेन (बहु०) (कलहसंपक्षे–श्वेतेन पक्षद्वयेन अवच्छन्नं वपुः यस्य सः तेन।) **जराधवलितमौलिना** = जरस्या वार्धक्येन धवलिताः केशा श्वेतीकृताः यस्य तेन (बहु०)। कलहंसपक्षे तु तस्य सितवर्णत्वात्)। **गद्गदस्वरेण** = गद्गदस्वरः अस्पष्टकण्ठध्वनिः यस्य सः तेन। (कलहंसंपक्षेऽपि सङ्गतः) **मन्दमन्दसञ्चारिणा**=मन्दं मन्दं शनैः शनैः सञ्चरितुं शीलं यस्य सः तेन। (कलहंसपक्षेऽपि सङ्गतः) **विहंजातिप्रीत्या**=पाक्षिजातिस्नेहेन। **जरत्कलहंसेन इव**=वृद्धराजहंसेन इव। **कञ्चुकिना** = सौविदल्लेन। **अनुगम्यमान;**=अनुस्रियमाणः। **राजान्तिकम्** = भूपतिसमीपम्। **आजगाम** = आगतवान्। **क्षितितलनिहितकरतलः तु** = क्षितितले धरातले कुट्टिमे वा निहितं विधृतं करतलं पाणितलं येन सः तु। **कञ्चुकी**=सौविदल्लः। **राजानम्** = नृपतिं शूद्रकम्। **व्यज्ञापयत्** = विज्ञप्तवान्। **देव**=महाराज। देव्यः राजमहिष्यः। **विज्ञांपयन्ति**=निवेदयन्ति। **देवादेशात् देवस्य** महाराजस्य आदेशः आज्ञा तस्मात्। **एषः**= शुकः वैशम्पायनः। **स्नातः** =कृतस्नानः। **कृताहारः च** = कृतः परिसमापितः आहारः भोजनं येन सः, भुक्त इत्यर्थः। **देवपादमूलम्**=देवस्य चरणमूलम्। **प्रतिहार्या आनीतः**=प्रतिहार्या प्रापितः इति = एवम्। **अभिधाय**=उक्त्वा। **गते च तस्मिन्** =गते सति कञ्चुकिनि। **राजा** = शुद्रकः। **वैशम्पायनम्**=तं शुकम्। **अपृच्छत्** =पृष्टवान्। **कच्चित्** =अपि इति प्रश्ने। **अभिमतम्**=यथेच्छम्। **आस्वादितम्**=भुक्तं रुचिपूर्वकम्। अभ्यन्तरे=अन्तःपुरे। **भवता**=त्वया। **किञ्चित्** = किमपि। **अशनजातम्**=भोज्यवस्तु। इति। **सः** = शुकः। **प्रत्युवाच**=प्रत्यब्रवीत्। **देवः किं वा न आस्वादितम्**= किं किं न भुक्तम्। अभीप्सितं सर्वंभुक्तम् इत्यर्थः। **आमत्तकोकिल०**=उन्मत्त यः कोकिलः पिकः लोचनस्य नेत्रस्य छविः वर्णशोभा यस्य सः नीलपाटलः श्यामश्चासौ पाटलः रक्तः। **कषायमधुरः**=कषायश्चासौ मधुरःमिष्टश्चेति **प्रकामम्**=यथेष्टम्। **आपीतः**=आकण्ठं पानं कृतम् यस्य सः। **जम्बूफलरसः**=जम्बूफलानां निष्कृष्टः द्रवः। **हरिनखभिन्न०**=हरेः सिंहस्य नखरैः नखैः भिन्नाः विदीर्णाः ये मत्तमातङ्गानां मदमत्तगजानां कुम्भाः गणस्थलानि तेभ्यः मुक्तानि बहिर्निर्गतानि यानि रक्तार्द्राणि रुधिरक्लिन्नानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां त्विषः इव त्विषः कान्तयः येषां तानि (बहु०)। **खण्डितानि** = चञ्चुपिष्टानि। **दाडिमबीजानि**=दाडिमफलबीजानि। **नलिनीदलहरिन्ति**=नलिन्यः कमलिन्यः तासां दलानि पत्राणि तद्वत् हरिन्ति हरितानि। **द्राक्षाफलस्वादूनि**=द्राक्षाफलनिभस्वादिष्टानि। **चूर्णितानि**=दलितानि, चञ्चुपाटितानि। **स्वेच्छया**=स्वरुचिपूर्वकम्। **प्राचीनामलकीफलानि**=परिपक्वक्षीरधात्रीफलानि। **किं वा** = अथवा को लाभः। **प्रलपितेन**=जल्पनेन। **बहुना**=अधिकेन। **सर्वम् एव**=समस्तम् एव। **देवीभिः**=भवतः महिषीभिः। **स्वयम्**=निजतया। **करतलोपनीयमानम्**=करतलैः पाणितलैः उपनीयमानं प्रदीयमानम्। **अमृतायते**=अमृतवत् सुधावत् आचरति अर्थात् अमृततुल्यं भवतीति।।

टिप्पणी– मुहूर्तादिव– कालगणना में दो घटी के मान को 'मुहूर्त' कहा जाता है। यहाँ 'मुहूर्त' का अभिप्राय 'स्वल्प समय' से है। **आच्छन्न**–आ+छद्+क्त। **धवलित**–धवल+१इतच्। **कञ्चुकी**–कञ्चुकोऽस्ति अस्य इति। ढीला ढाला लम्बा कुर्ता पहनने के कारण इस रूपक-पात्र को कञ्चुकी कहा जाता है। यह राजाओं के अन्तःपुर का प्रतिपालक वृद्ध और बुद्धिमान् ब्राह्मण होता है जो अन्तःपुर की शुद्धता बनाये रखने के प्रति निरन्तर सावधान रहता है कञ्चुकी के सम्बन्ध में कहा गया है– अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः। सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यमिधीयते।।' **व्यज्ञापयत्** = वि+ज्ञा+णिच्, लङ्लकार, प्रथम पुरुष एक वचन। **अभिमतम्** – अभि+मन्+क्त। इस गद्यखण्ड में तोते के प्रिय खाद्य और पेय वस्तुओं का

उल्लेख है। जरत्कलहंसेन इव' में उपमा अलङ्कार है।।

'कोकिललोचनच्छबि:' में लुप्तोपमा, 'अमृतायते' में आर्थी उपमा, 'नलिनीदल हरिन्ति' और 'द्राक्षाफलस्वादूनि' में भी लुप्तोपमालङ्कार है।

एवंवादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत् –`आस्तां तावत्सर्वम्। अपनयतु नः कुतूहलम्। आवेदयतु भवानादितः प्रभृतिः कात्स्न्येनात्मनो जन्म, कस्मिन्देशे भवान्कथं जातः, केन वा नाम कृतम्, का ते माता, कस्ते पिता, कथं वेदानामागमः, कथं शास्त्राणां परिचयः, कुतः कला आसादिताः, किंहेतुकं जन्मान्तरानुस्मरणम्, उत वरप्रदानम्, अथवा विहङ्गवेषधारी कश्चिच्छन्नं निवससि, क्व वा पूर्वमुषितम्, कियद्वा वयः, कथं पञ्चरबन्धनं, कथं चाण्डालहस्तगमनम्, इह वा कथमागमनम्' इति। वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्– 'देव, महतीयं कथा। यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्–

हिन्दी अनुवाद– इस प्रकार बोलने वाले (वैशम्पायन) की बात बीच में ही काटकर राजा ने कहा– 'यह सब तो रहने दो (ठीक है)। (अब) मेरा कौतूहल दूर करो। आप पूरी तरह आरम्भ से लेकर अपना जन्म बतलाइए कि आप कहाँ और कैसे पैदा हुए? आपका नाम किसने रखा? आपकी माता कौन है और पिता कौन हैं? कैसे आपको वेदों का ज्ञान हुआ? कैसे शास्त्रो से परिचय हुआ? कहाँ से ये कलायें प्राप्त हुईं? कैसे पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण है? यह क्या कोई वरदान है अथवा आप पक्षी का रूप धारण करके छिपे हुए कोई अन्य हैं? इसके पूर्व कहां रहे? अथवा आपकी आयु क्या है? कैसे (पकड़कर) पिंजरे में डाल दिये गये? कैसे चाण्डाल के हाथ में पहुँच गये? यहाँ किसलिए आये हैं? स्वयं उत्पन्न कौतूहल वाले राजा के द्वारा अत्यन्त आदरपूर्वक पूछे जाने पर वैशम्पायन ने कुछ क्षण तक ध्यान करके आदर पूर्वक कहा– ''महाराज! यह कहानी बहुत लम्बी है। (तथापि) यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए–''

संस्कृत व्याख्या– एवं वादिनः = इत्थं कथयतः। **वचनम्** = वाक्यम्। **आक्षिप्य**=मध्यत एव अवरुद्ध्य। नरपतिः = राजा शूद्रकः। **अब्रवीत्**=प्रोवाच। **आस्ताम्**= तिष्ठतु। **तावत् सर्वम्**=पूर्वोक्तम् अखिलम् अपि। **अपनयतु**=निवारयतु। नः अस्मकाम्। **कुतूहलम्** = कौतुकम्। **आवेदयतु**=आख्यातु। **भवान् आदितः प्रभृतिः** = उत्पत्ति कालाद् आरभ्य। **कात्स्र्नेन** = समग्रतया। **आत्मनः** = स्वस्य। जन्म=उत्पत्तिः। **कस्मिन् देशे** = भुवः कस्मिन् भागे। भवान्। **कथं जातः** = केन प्रकारेण उत्पन्नः। **केन वा**= केन जनेन वा। **नाम** = इयं वैशम्पायन इति संज्ञा। कृतम् विहितम्। **का ते माता** = तव जननी। **कः ते पिता**=कः तव जनकः। **कथं केन प्रकारेण। वेदानाम्**=ऋग्गादिश्रुतीनाम्। आगमः उपलब्धिः। कथम्। **शास्त्राणाम्**=दर्शनादिशास्त्राणाम्। **परिचयः**=सविस्तरं गहनञ्च ज्ञानम्। **कुतः** =केनोपायतः। **कलाः** = चतुष्षष्ठिकलाः **आसादिताः**=समाधिगताः **किंहेतुकम्**=किं निमित्तकम्। **जन्मान्तरानुस्मणम्**= जन्मान्तरस्य विगतजन्मनः अनुस्मरणम् अनुस्मृतिः। **उत वरप्रदानम्** = आहोस्वित् गुरुदेवद्विजादीनां प्रसादात् वरदानप्राप्तिः। अथवा। **विहङ्गवेशधारी** = खगरूपधरः। **कश्चित्** = कोऽपि। **छन्नं निवससि**= गुप्तं वासं करोषि। **क्व** = कुत्र। **पूर्वम्** = प्राक्। **उषितम्**=अवस्थितम्। **कियद्वयः** = आयुः किम्। **कथम्** = केन प्रकारेण। **पञ्चरबन्धनम्** = पञ्जरकारा। कथम्। **चाण्डालहस्तगमनम्** = मातङ्गहस्तप्रापणम्। **इह** = अत्र। **कथम् आगमनम्**=किमर्थं केन प्रकारेण वा आगमनम् उपस्थितिः। इति। वैशम्पायनः तु। **स्वयम्** = आत्मनैव। **उपजातकुतूहलेन**= उपजातम् उत्पन्नं

कुतूहलं कौतुकं यस्य तेन (बहु०)। **अवनिपतिना** = राज्ञा। सबहुमानम्=सादरम्। पृष्टः = अभ्यर्थितः। मुहूर्तम् इव = किञ्चित् क्षणम्। **ध्यात्वा** = चिन्तयित्वा। सादरम्= सबहुमानम्। **अब्रवीत्** = अवोचत्। देव। **महती**=अपारा, महिमशालिनी वा। **इयम्** = एषा। **कथा** = वृत्तान्तः। **यदि** = चेत्। **कौतुकम्** = कुतुहलम्। **आकर्ण्यताम्** = श्रूयताम्।।

टिप्पणी– **आक्षिप्य** – आङ्+क्षिप्+क्त्वा–ल्यप्। **कुतुहलम्**– उत्कण्ठाभरी जिज्ञासा 'कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्'– **अमरकोश**। **पृष्टः** – प्रच्छ+क्त। कथा से सामान्यतः कहानी, इतिवृत्त, कथानक, वृत्तान्त आदि का ग्रहण होता है। 'कथा' गद्य काव्य का एक विशिष्ट भेद है। आचार्यों ने 'कथा' का लक्षण दिया है – 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितं ....इत्यादि)। बाणभट्ट-कृत 'कादम्बरी' एक 'कथा' है। अतः यहाँ वह शब्द का प्रयोग अन्वर्थक है। (विशेष द्रष्टव्य चतुर्थ इकाई का प्रारम्भिक भाग)। इस गद्यखण्ड में 'मुक्तक' शैली का गद्य प्रयुक्त है।

अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना, मध्यदेशालङ्कारभूता मेखलेव भुवः, वनकरिकुलमदजलसेकसंवर्धितैरतिविकचधवलकुसुमनिकरमत्युच्चतया तारकागणमिव शिखरप्रदेशसंलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालकिसलयामोदिनी, मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलच्छविना सञ्चरद्वनदेवता-चरणालक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवचयेन संछादिता, शुककुलदलिदाडिमीफलद्रवार्द्रीकृत-तलैरतिचपलकपिकम्पितक्कोलच्युतपल्लव फलशबलैरनवरतनिपतितकुसुमरेणुपांसुलैः पथिकजनरचितलवङ्गपल्लवसंस्तरैरतिकठोरनालिकेरकेतकीकरीरबकुलपरिगत-प्रान्तैस्ताम्बूली-लतावनद्धपूगखण्डमण्डितैर्वनलक्ष्मीवासभवनैरिव विराजिता लतामण्डपैः, उन्मदमातङ्गकपोलस्थल-गलिसलिलसिक्तेनेवानवरतमेलालतावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ता-फललुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेसरिशता, प्रेताधिपनगरीव सदासंनिहित-मृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च।

हिन्दी अनुवाद– पूर्व और पश्चिम सागर तट के वनों से लगी हुई, मध्य देश की अलङ्कारभूत पृथ्वी की करधनी के समान, जंगली हाथियों के मदजल की सिंचाई से बढ़े हुए, खूब खिले हुए सफेद फलों से भरे हुये और ऊँचे होने के कारण अपने ऊपरी भागों में लगे हुये तारामण्डल को (मानो) सिर से वहन करते हुए वृक्षों से सुशोभित मतवाले कुरर पक्षियों के द्वारा कुतरे जाते हुए काली मीर्च के पल्लवों वाली, हाथी के बच्चों की सूडों से मसले गये तमाल के पल्लवों की सुगन्ध वाली, मदिरा पान से मतवाली केरलप्रान्त की स्त्रियों के आरक्त कपोलों की कान्तिवाले मानो विचरण करती हुई वनदेवता के पैरों के महावर से रंगे हुए पल्लव समूह से आच्छादित, तोतों द्वारा कुतरे गये अनार के फलों के रस से गीली जमीन वाले, अति चञ्चल बन्दरों के द्वारा झकझोरे गये कक्कोल के गिरे हुए पल्लवों और फलों से चिकबरे, निरन्तर झड़ रहे फूलों की परागधूलि से धूसरित, राहगीरों द्वारा बिछाये गये लवङ्ग की पत्तियों के बिछौनों वाले, अति कठोर नारियल, केवड़े, करील और मौलश्री से घिरे हुए, नागवल्लीलता से लिपटे हुए सुपारी के झुरमुटों से अलङ्कृत, वन लक्ष्मी के निवास-भवन के समान लतामण्डपों से सुशोभित, मतवाले वनगजों के गण्डस्थलों से निरन्तर बहने वाले मदजल से सींचे जाने वाली अतएव तीक्ष्णगन्ध वाली इलायची के वन से श्यामायमान, पंजों में लगे हुए हाथी के मस्तक के मोतियों के लोभी शबर योद्धाओं के प्रमुखों के द्वारा मारे जाते हुए सैकड़ों सिंहो वाली, यमपुरी के समान सदैव

उपस्थित रहने वाली मृत्यु के कारण भयङ्कर और भैसों से भरी हुई, धनुष पर चढ़ाये गये बाणों वाली और सिंहनाद करती हुई युद्ध के लिए सन्नद्ध सेना के समान बाण और असन के वृक्षों पर बैठे हुए भौरों वाली तथा सिंहों के गर्जन से युक्त ....(विन्ध्य नामक एक अटवी (वन) है।)

संस्कृत व्याख्या– अस्ति = विद्यते। **पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्ना**=पूर्वश्च अपरश्च इति पूर्वापरौ यौ जलनिधि सागरौ तयो: यद्वेलावनं तटकाननं तावत्पर्यन्तां लग्ना संवद्धा या सा। **मध्यदेशालङ्कारभूता**=हिमवत्सह्याद्रिमध्यं मध्यदेश: तस्यालङ्कारभूता तस्याभूषणरूपा। **भुव:**=पृथिव्या: मेखला इव=कटिदाम इव। **वनकरिकुल०** =वने अरण्ये ये करिण: गजा: तेषां कुलानि यूथानि तेषां मदजलस्य दानसलिलस्य सेक: सेचनं तेन संवर्धिता: परिपालिता: तै:। **अतिविकचधवल०**=अतिविकचानि निर्भरविकासितानि यानि धवलानि श्वेतानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां निकर: समूह: तम् अतिशयम् उच्चतया शिखरप्रदेश: श्रृंगभाग: तत्र संलग्नम् अतएव तारकाणां गणम् इव नक्षत्राणां समूहम् इव (अत्युच्चत्वात् शुभ्रत्वाच्च) उद्वहद्भिः धारयद्भि:। **पादपै:**=वृक्षै:। **उपशोभिता**= विराजमाना। **मदकलकुररकुल०** = मदेन कला मनोहारिण: ये कुररा पक्षिविशेषा: तेषां कुलानि समूहा: तै: दश्यमाना: चञ्चुभि: त्रोट्यमाना: मरिचानां पल्लवा: किसलयानि यस्यां सा (बहु०)। **करिकलभकरमृदित०** = करिणां गजानां कलभा: शावका: तेषां करै: शुण्डादण्डै: मृदितानि मर्दितानि यानि तमालस्य किसलयानि तापिच्छस्य मृदुपत्राणि तेषाम् आमोद: सुगन्धि: विद्यते यस्यां सा। **मधुमदोपरक्त०** = मधु आसव: तस्य य: मद: मत्तता तेन उपरक्ता पाटलीभूता: केरलीकपोला: केरलयोषितानां चिबुकोत्तरभागा: तेषाम् इव छबि: कान्ति: यस्य स: तेन। **सञ्चरद्वनदेवता०** = सञ्चरन्त्य: विचरन्त्य: या: वनदेवता: तासां चरणानां पादानाम् अलक्तरसै: रागद्रवै: रञ्जितेन इव रक्तवर्णीकृतेन इव पल्लवानां किसलयानां चयेन समूहेन सञ्छादिता आच्छादिता। शुककुलदलित शुकानां कीराणां कुलै: समूहै: दलितानि विदारितानि यानि दाडिमफलानि तेषां द्रवै: आर्द्रीकृतानि क्लिन्नानि तलानि अध:स्थलानि येषां तै:। **अतिचपलकपिकम्पित०** = अतिचपलै: भृशं चञ्चलै: कपिकुलै: वानरसमूहै: कम्पितेभ्य: आन्दोलितेभ्य: कक्कोलेभ्य: कोशफलपादपेभ्य: च्युतानि पतितानि पल्लवानि किसलयानि फलानि च तै: शबलै: कर्बुरै:। **अनवरतनिपतित०** = अनवरतं निरन्तरं निपतितानां च्युताना कुसुमानां पुष्पाणां रेणुभि: परागकणै: पांसुलै: धूसरितै:। **पथिकजनरचित०** = पथिकजनै: पान्थजनै: रचिता: आस्तीर्णा: लवङ्गानां कषायपुष्पवृक्षविशेषाणां पल्लवानां मृदुपर्णानां संस्तरा: विष्टराणि येषु तै:। **अतिकठोर नालिकेर०** = अतिकठोरा निरतिशयं कठिना: ये नालिकेरा: नारिकेला: केतक्य: क्रकचपत्रच्छदा: करीरा: कण्टकाञ्चिता: वृक्षविशेषा: बकुलाश्च मौलश्रिय: च तै: परिगता: परिवेष्टिता: प्रान्ता पर्यन्तभागा: येषां तै:। **ताम्बूलीलतावनद्ध०** = ताम्बूलीलताभि: नागवल्लीभि: अवनद्धं परिवेष्टितं यत् पूगखण्डं क्रमुकवृक्षराजि: तेन मण्डितं प्रसाधितं वनलक्ष्म्या: वनश्रिय: वासभवनं, तै: इव लतामण्डपै: वल्लरीकुञ्जै: विराजिता उपशोभिता। **उन्मदमातङ्गकपोल०** = उन्मदानाम् उन्मत्तानां मातङ्गानां गजानां कपोलस्थलेभ्य: करटप्रान्तेभ्य: गलितै: स्रुतै: सलिलै: दानवारिभि: सिक्तेन इव क्लिन्नेन इव (अतएव) मदगन्धिना करिदानवारिगन्ध इव गन्ध: यस्मिन् तेन, अनवरतं निरन्तरं एलानां लतानां वनं काननं तेन अन्धकारिता श्यामीकृता। **नखमुखलग्नेभ०** = नखानां मुखेषु अग्रभागेषु लग्नानि संसक्तानि यानि इभकुम्भमुक्ताफलानि गजभालोद्भवानि मौक्तिकानि तेषु

लुब्धैः लोलुपैः शबरसेनापतिभिः शबराणां भिल्लानां सेनापतिभिः सैन्यदलनायकैः अभिहन्यमानं व्यापाद्यमानं केसरिणां सिंहानां शतं यस्यां सा। **प्रेताधिपनगरीव** = प्रेताधिपस्य यमराजस्य नगरी इव पुरी इव। **सदा** = निरन्तरम्। **सन्निहितमृत्युभीषणा** =सन्निहितेन समीपस्थेन मृत्युना कालेन भीषणा भयावहा। **महिषाधिष्ठिता च** = महिषेण यमवाहनेन अधिष्ठिता सहिता च। विन्ध्याटवीपक्षे, सदा सन्निहितेन मृत्युना हिंस्रप्राणिजन्यं मृत्युभयं तेन भीषणा घोरा; महिषैः, वनसैरिभैः अधिष्ठिताः परिव्याप्ता च। **समरोद्यतपताकिनी इव** = समराय युद्धाय उद्यताः सन्नद्धा या पताकिनी सेना तद्वत् इव। **बाणासनारोपित शिलीमुखा** = बाणासनेषु कोदण्डेषु आरोपिताः लक्ष्यं भेत्तुं स्थापिताः शिलीमुखाः शराः यस्यां सा। **विमुक्तसिंहनादा च** = विमुक्ताः वीरैः शब्दिताः सिंह इव नादाः गर्जनानि यस्यां सा। विन्ध्याटवी, पक्षे बाणेषु आसनेषु च तत्तद्वृक्षविशेषेषु आरोपिताः संस्थिताः शिलीमुखाः भ्रमराः यस्यां सा। विमुक्ताः स्वैरं कृताः सिंहैः केसरिभिः नादाः गर्जनानि यस्यां सा तथा विधा। ....

टिप्पणी– इस गद्य खण्ड से विन्ध्याटवीवर्णन प्रारम्भ हो रहा है। 'अस्ति' का दूरतः अन्वय सुदीर्घगद्यखण्ड के अन्त में आये हुए 'विन्ध्याटवी नाम' पदों से होता है। इनके मध्य में प्रयुक्त हुए पद 'विशेषक' पद हैं। मुख्य वाक्य है–'विन्ध्या नाम अटवी अस्ति।' **मध्यदेशः**–भारतवर्ष का मध्यभाग अर्थात् विन्ध्य प्रदेश। विन्ध्यगिरि पर स्थित वन को ही यहाँ विन्ध्याटवी कहा गया है। यदि मनुस्मृति के द्वितीय अध्याय में कथित 'मध्यदेश' का यहां ग्रहण होगा तो वह संगत नहीं होगा क्योंकि उत्तर में हिमालय और दक्षिण में जहां से विन्ध्यपर्वत प्रारम्भ होता है, उसके मध्यवर्ती भूभाग को मध्यदेश कहा गया है। **मेखला**–'कट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा'–अमरकोश। सेकः–सिच् + घञ्। **उद्वहद्भिः**–उत् + वह + शतृ तृतीया बहुवचन। **पादपैः**–पादेन मूलेन पिबतीति पादप तैः। **प्रेताधिप**–प्र + इ + क्त + अधि + प + क प्रत्यय। 'प्रेत' का अर्थ है इस लोक से गया हुआ अर्थात् मृत। 'तारागणम् इव' 'रञ्जितेन इव' 'भवनैः इव' 'सिक्तेन इव' में सर्वत्र उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'कपोलच्छबिना' में लुप्तोपमा है। 'प्रेताधिपनगरीव' से प्रारम्भ करके 'पताकिनीव' आदि से आरम्भ वाक्यों में कवि ने श्लिष्टोपमा का प्रयोग किया है अर्थात् प्रयुक्त पदावली द्व्यर्थक है और उपमालङ्कार से युक्त है।

कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च, कर्णीसुतकथेव संनिहित-विपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसंध्येव प्रनृत्तनीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमथनवेलेव श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणपरिगता च, प्रावृडिव घनश्यामलानेकशतह्रदालङ्कृता च, चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृगबालव्यजनो पशोभिता समदगजघटापरिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसंगता मृगपतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दनमृगमदपरिमलवाहिनी रुचिरागुरुतिलकभूषिता च, सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिलवीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपंक्तिमण्डिता गण्डकाभरणा च, पानभूमिरिव प्रकटितमधुकोशकशता प्रकीर्णविविधकुसुमा च, क्वचित्प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्दभज्यमानतुंगशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्तविवाहभूमिरिव हरितकुशसमित्कुसुमशर्मापलाशशोभिता, क्वचिदुद्वृत्तमृगपति-नादभीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुलप्रतापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेगकृततालशब्दा, क्वचिद्विधवेवोन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित्समरभूमिरिव शरशतनिचिता, क्वचिद ःपतितनुरिव

नेत्रसहस्त्रसंकुला, क्वचिन्नारायणमूर्तिरिव तमालनीला, क्वचित्पार्थरथपताकेव कप्याक्रान्ता, क्वचिदवनिपतिद्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुःप्रवेशा, क्वचिद्विराटनगरीव कीचकशताकुला, क्वचिदम्बरश्रीरिव व्याधानुगम्यमानतरलतारकमृगा, क्वचिद्गृहीतव्रतेव दर्भचीरजटावल्कलधारिणी, अपरिमितबहलपत्रसञ्चयापि सप्तपर्णोपशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।

हिन्दी अनुवाद–चलती हुई तलवार के कारण भयङ्कर और लाल चन्दन (के टीके) से सुशोभित कात्यायनी (दुर्गा देवी) की तरह घूमते हुए गैंडों के कारण भयङ्कर और लाल चन्दन के वृक्षों से सुशोभित; साथ रहने वाले प्रचुर और अडिग मित्रों तथा शश नामक प्रधान अमात्य से युक्त कर्णीसुत के वृत्तान्त की तरह अनेक पर्वतों से भरी हुई तथा खरगोशों वाली; नृत्त कर रहे भगवान् शङ्कर और पल्लवों के समान लाल कल्पान्त (प्रलय) की रात्रिपूर्व सन्ध्या की तरह नाच रहे मोरों तथा पल्लवों से लाल रंग वाली; लक्ष्मी, पारिजात और वारुणी (मदिरा) से युक्त समुद्र (अमृत) मंथन की वेला की तरह श्रीफल (बिल्व) तथा वारुण वृक्षों से शुभोभित; काले बादलों से श्यामायमान तथा कौंधती हुई विद्युत से अलङ्कृत वर्षा ऋतु की तरह सघन, हरी-भरी तथा सैकड़ों सरोवरों से सुशोभित; सदैव नक्षत्रमण्डल से अनुगत और मृग से युक्त चन्द्रमण्डल की तरह सदैव रीछों के समूह से भरी हुई तथा मृगों से सेवित; चमरी के श्वेत बालों से बने चंवरों से सुशोभित और पाले गये मतवाले हाथियों से सुरक्षित राज्य-व्यवस्था के समान चमरी मृग के अनेक चामरों से अलङ्कृत और मतवाले हाथियों से संरक्षित; स्थाणु (भगवान् शङ्कर) के साथ रहने वाली और सिंह- वाहन के द्वारा सेवित पार्वती की तरह अनेक ठूंठे वृक्षों से भरी हुई तथा सिंहों से सुसेवित; कुश और लव को जन्म देने वाली तथा राक्षस (–राज रावण) के द्वारा बन्दी बनायी गयी जनकतनया सीता की तरह कुश के पौधों को उत्पन्न करने वाली तथा निशाचरों (रात में जागकर विचरण करने वाले प्राणियों) से व्याप्त, चन्दन और कस्तूरी की सुगन्ध को धारण करने वाली तथा मनोहर अगरु के तिलक से सजी हुई काम को प्रकट करने वाली स्त्री के समान चन्दन और कस्तूरी की सुगन्ध से भरी हुई तथा सुन्दर अगरु और तिलक के वृक्षों से सुशोभित; नाना प्रकार के कोमल पत्तों से हवा डुलाई जाती हुई सकामा उत्कण्ठिता (प्रियमिलन हेतु) स्त्री के समान हवा से हिलते हुए अनेक वृक्षों के किसलयों वाली तथा मदन वृक्षों से युक्त; गले में बघनखों की लड़ी तथा गण्डे पहनने वाले बालक के गरदन की तरह बाघों के गिरे हुए नखों वाली तथा गैडों से सुशोभित; मदिरा रखने के सैकड़ों पात्रों को प्रदर्शित करने वाली तथा नाना प्रकार के बिखरे हुए फूलों वाली मधुशाला की तरह सैकड़ों शहद के छत्तों को दिखाने वाली तथा बिखरे हुए तरह-तरह के फूलों से भरी हुई; महावराह (रूपधारी नारायण) के द्वारा अपनी दंष्ट्रा के द्वारा उद्धार की गयी पृथ्वी वाली प्रलय की वेला के समान कहीं-कहीं बनैले शूकरों के द्वारा दंष्ट्राओं से खोदी गयी भूमि वाली; चञ्चल वानरों द्वारा ढहाई गयी ऊंची अटारियों से पटी हुई रावण की नगरी लङ्का के समान कहीं-कहीं उत्पाती बन्दरों के द्वारा तोड़े गये ऊंचे शाल वृक्षों से परिव्याप्त; हरे कुश, समिधा, फूल और शमी पल्लवों से सुशोभित सद्यः सम्पन्न विवाह के मण्डप की तरह हरे कुशों, समिधाओं, फूलों और शमी पल्लवों से सुशोभित; कहीं गर्वीले सिंह की दहाड़ से डरे हुए रोमाञ्चित (मनुष्य) की तरह कांटों से भरी हुई; कहीं उन्मत्त अतएव कोयल की तरह प्रलाप करने वाली (स्त्री) की तरह कोयल की कूकों वाली; वायु विकार के उद्वेग से बार-बार ताली

बजाने वाले (या वाली) की तरह हवा के झोंकों से ताड़ के पत्तों से होने वाले शब्दों से भरी हुई; तालपत्र (कर्णाभूषण) से रहित विधवा की तरह कहीं पत्तों से विहीन (ठूँठे) ताड़ के वृक्षों वाली; सैकड़ों बाणों से भरी हुई युद्ध भूमि के समान कहीं सैकड़ों सरकण्डों के झुण्डों से भरी हुई; हजार आँखों से भरे हुए इन्द्र के शरीर की तरह हजारों नारियल के वृक्षों से भरी हुई; तमाल जैसे श्यामवर्ण वाले भगवान् विष्णु के विग्रह (शरीर) के समान तमाल वृक्षों के कारण श्याम वर्ण वाली; कपि (श्रेष्ठ हनुमान्) के द्वारा खचित अर्जुन की रथ की पताका के समान कहीं बन्दरों के उपद्रव से युक्त; सैकड़ों बेंत धारी रक्षकों के कारण दुर्गम प्रवेश वाले राजा की द्वार-भूमि के समान सैकड़ों बेंतलताओं के कारण दुर्गम प्रवेश वाली; सैकड़ों कीचकों से परिव्याप्त विराट की राजधानी की तरह असंख्य पोले बाँसों से भरी हुई; व्याध का वेश धारण करके ताराओं के मध्य मृगशिरा (नक्षत्र) का पीछा करने वाले भगवान् शिव से युक्त आकाश की शोभा के समान चञ्चल पुतलियों वाले मृगों का पीछा करने वाले व्याधों से युक्त; कुश, चीर, जटा और वल्कल-धारिणी ब्रह्मचारिणी के समान कहीं कुश, लम्बी घासे, बरगद की जटायें और वल्कल (वृक्षों की छाल) धारण करने वाली; असीमित पत्तों की राशि से युक्त होने पर भी सप्तपर्ण (छितवन) से सुशोभित, हिंसक जन्तुओं से भरी होने पर भी ऋषियों-मुनियों से सेवित, पुष्पवती फूलों से भरी हुई होने पर भी (रजस्वला होने पर भी) पवित्र विन्ध्या नाम की अटवी वन है।

संस्कृत व्याख्या–कात्यायनी इव = देवी दुर्गा इव। **प्रचलितखड्गभीषणा** = प्रचलितेन दैत्यवधाय सञ्चलितेन खड्गेन असिना भीषणा भयङ्करा। **रक्तचन्दनालङ्कृता च** = रक्तचन्दनेन रक्तचन्दनानुलेपेन अलङ्कृता शोभिता च। विन्ध्याटवी पक्षे, प्रचलितैः सञ्चरणशीलैः खड्गे गण्डकैः भीषणा भयावहा रक्तचन्दनवृक्षैः सुशोभिता च। **कर्णीसुतकथा इव** = कर्णीसुतः क्षत्रियकुलोत्पन्नः एतन्नामक चौरशास्त्रप्रवर्तकः तस्य कथा वृत्तान्तः इव। **सन्निहित विपुलाचला** = सन्निहितौ सङ्गतौ विपुलश्च अचलश्च इत्येतन्नामकौ सखायौ यस्यां सा। **शशोपगता च** = शशेन शखाख्येन अमात्येन उपगता संगता। पक्षे, सन्निहिताः विपुलाः महान्तः अचलाः पर्वताः यस्यां सा; शशैः शशकैः लोध्रपादपैः वा उपगता सहिता च। **कल्पान्तप्रदोषसन्ध्या इव** = कल्पान्ते प्रलयकाले यः प्रदोषः एत्रिमुखं तस्य या सन्ध्या तद्वत्। **प्रनृत्तनीलकण्ठा** = प्रनृत्तन् ताण्डवं प्रयुञ्जन् नीलकण्ठः शिवः यस्यां सा। **पल्लवारुणा च** = पल्लवः किसलयः तद्वद् अरुणा रक्तवर्णा। पक्षे, नृत्तं कुर्वन्तः नीलकण्ठा मयूराः यस्यां सा; पल्लवैः किसलयैः अरुणा रक्तवर्णा। **अमृतमथनवेला इव** = अमृताय सुधायै यन्मथनं (क्षीरसागरस्य) विलोडनं तस्य वेला समयः इव। **श्रीद्रुमोपशोभिता** = श्रियालक्ष्म्या द्रुमेण पारिजातपादपेन उपशोभिता सुशोभिता। **वारुणपरिगता च** = वारुणी मदिरा तया परिगता सहिता च। पक्षे, श्रीद्रुमैः बिल्ववृक्षैः शोभायमाना तथा वारुणपादपैश्च परिवेष्टिता। **प्रावृट् इव** = वर्षाकाल इव। **घनश्यामला** = घनैः मेघैः श्यामला श्यामायमाना। **अनेकशतह्रदालङ्कृता च** = नैकाः शतह्रदा विद्युतः तैः **अलङ्कृता** प्रसाधिता। पक्षे, घन इव श्यामला, तथा च अनेक शतैः असंख्यैः ह्रदैः गभीरसरोभिः अलङ्कृता सुशोभिता च। **चन्द्रभूतिः इव** =शशिमण्डलम् इव। **सततम् ऋक्षसार्थानुगता** = सततं सदैव ऋक्षाणां ताराणां सार्थैः समूहैः अनुगता अनुसृता। **हरिणाध्यासिता च** = हरिणा मृगलाञ्छनेन अध्यासिता सङ्क्रान्ता। पक्षे, निरन्तरं ऋक्षाणां भल्लूकविशेषाणां सार्थैः समूहैः अनुगता संयुक्ता, हरिणैः मृगैः अध्यासिता परिव्याप्ता च। **राज्यस्थितिः इव** = राज्यस्थितिः

राज्यव्यवस्था इव। **चामरमृगबालव्यजनोपशोभिता** = चामरमृगाणां हिमवत्प्रदेशोपलब्धानां मृगविशेषाणां बाला: रोमानि एव व्यजनानि पवनदोलका: तैः उपशोभिता मण्डिता। **समदगजघटापरिपालिता च** = समदा: उन्मत्ता: या: गजघटा: हस्तियूथा: तैः परिपालिता रक्षिता च। पक्षे, तदेव। **गिरितनया इव** = पार्वती इव। **स्थाणुसङ्गता** = स्थाणु : शिव: तेन सङ्गता सहचरिता। **मृगपतिसेविता च** = मृगपति: सिंह: तेन वाहनेन सेविता च। पक्षे, स्थाणुभि: शुष्कवृक्षावशेषै: सहिता मृगपतिभि: सिंहे सेविता आश्रिता च। **जानकी इव** = जनकतनया सीता इव। **प्रसूतकुशलवा** = कुशश्च लवश्च कुशलवौ प्रसूतौ उत्पादितौ कुशलवौ यया सा, इव। **निशाचरपरिगृहीता च** = निशाचरेण राक्षसपतिना रावणेन परिगृहीता अपहृता च। पक्षे, प्रसूतानां उत्पन्नानां कुशानां दर्भाणां लवा: अङ्कुरा: यस्यां सा, तथा च, निशायां रात्रौ चरन्ति भ्रमन्ति इति निशाचरा: तैः उलूकादिभि:-हिंस्रजन्तुभि: राक्षसै: चौरैश्च परिगृहीता स्वायत्तीकृता। **कामिनी इव** = रमणी इव। **चन्दनमृगमदपरिमलवाहिनी** = चन्दनस्य मलयजस्य मृगमदस्य कस्तूर्या: परिमलं सुगन्धं वहति इति एवं शीला। **रुचिरागुरुतिलकभूषिता च** = रुचिरेण अगरुणा मनोहरेण काकतुण्डसुगन्धिना तिलकेन भालटीकया भूषिता अलङ्कृता। पक्षे, चन्दनानां कस्तूरीणां च यत् परिमलं सुगन्धि तद्वहति धारयतीत्येवंशीला तथा च, मनोहरै: अगरुवृक्षै: तिलकवृक्षैश्च भूषिता अलङ्कृता। **सोत्कण्ठा इव** = उत्कण्ठया युता नायिका कामवेदनार्दिता इत्यर्थ:। इव। **विविधपल्लवानिलवीजिता** = विविधानां नानाप्रकाराणां पल्लवानां नवपर्णानां अनिलै: पवनै: वीजिता। **समदना च** = मदनेन कामेन सहिता सकामा इत्यर्थ:। पक्षे, विविध पल्लवानिलवीजिता नानाप्रकाराणां किसलयानां पवनै: वीजिता तथा च, मदननामकवृक्षै: सह विद्यमाना। **बालग्रीवा इव** = बालानां ग्रीवा कण्ठप्रदेश: तद्वत्। **व्याघ्रनखपंक्तिमण्डिता** = व्याघ्राणां शार्दूलानां नखानां पंक्तिभि: अवलीभि: मण्डिता भूषिता। **गण्डकाभरणा च** = गण्डक: आभूषणविशेष: आभरणम् अलङ्करणं यस्यां सा। पक्षे, व्याघ्राणां नखा: तेषां विशीर्णा: ततय: यस्यां सा, तथा च गण्डका वार्धीणसा: एव अलङ्करणानि यस्या: सा। पानभूमि: इव = मदिरालय: इव। **प्रकटितमधुकोशकशता** = मधु मद्यं तस्य कोशकानां चषकाणां शतम् इति मधुकोशकशतम्। प्रकटितं प्रकाशितं मद्यचषकशतं यस्यां सा। **प्रकीर्णविविधकुसुमा च** = प्रकीर्णानि प्रक्षिप्तानि विविधकुसुमानि नानाविधपुष्पाणि यस्यां सा। पक्षे, दृश्यमानानां मधुमक्षिकाधाराणां शतं यस्यां सा तथा च पर्यस्तानि नानाविधिपुष्पाणि यस्यां सा। **क्वचित्** = कस्मिंश्चित् प्रदेशे। **प्रलयवेला इव** = प्रलयवेला कल्पान्तकाल: तद्वत्। महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला = महाँश्चासौ वराह: महावराह: नारायणस्य अवतार: तेन दंष्ट्रया दीर्घदन्तेन समुत्खातं समुद्धृतं धरणिमण्डलं भूमण्डलं यस्यां सा। पक्षे, क्वचित् वन्यै: विशालशूकरै: दंष्ट्राभि: दशनै: समुत्खातं समुत्पाटितं भूतलं यस्यां सा। **दशमुखनगरी इव** = रावणस्य राजधानी लङ्कापुरी इव। **चटुलवानरवृन्द०** = चटुला: चपला: ये वानरा: कपय: तेषां वृन्देन समूहेन भज्यमाना: विखण्ड्यमाना: या: तुङ्गा: उच्चा: शाला: भवनानि ताभि: आकुला अव्यवस्थिता। **अचिरनिर्वृत्तविवाहभूमि: इव** = अचिरं सद्य: निर्वृत्त: सम्पन्न: य: विवाह: पाणिग्रहणं तस्य भूमि: स्थलम् इव। **हरितकुशसमित्०** = हरिता: अशुष्का: ये कुशा: दर्भा: समिध: होमकाष्ठानि कुसुमानि पुष्पाणि शमीपल्लवानि तैः शोभिता भूषिता। पक्षे, पूर्वोक्तमेव। 'पलाश' इति पदेन न केवलं पर्णानि अपितु पलाशपादपा अप्यभिमता: भवेयु:। **उद्वृत्तमृगपतिनादभीता इव** = उद्वृत्त: उच्छृङ्खल: य: मृगपति: सिंह:

तस्य नादेन गर्जितेन भीता त्रस्ता इव। **कण्टकिता** = रोमाञ्चिता। पक्षे, कण्टकाकीर्णा। **मत्ता इव** = मदघूर्णिता इव। **कोकिलकुलप्रलापिनी०** = पिकसमूहवत् कलं मधुरं प्रलपितुं शीलं यस्याः सा। पक्षे, कोकिलसमूहानां प्रलापः कुहूकुहू इति शब्दः यस्यां सा। **उन्मत्ता इव** = उन्मादयुता इव। **वायुवेगकृततालशब्दाः** = वायुवेगेन वातविकारातिशयेन कृता विहिता तालशब्दा करपुटध्वनयः यया सा। पक्षे, वायुवेगेन पवनस्य बहुलप्रवाहेण कृताः तालशब्दाः तालवृक्षपत्राणां रवाः यस्यां सा। **समरभूमिः इव** = सङ्ग्रामस्थलम् इव। **शरशतनिचिता** = शराणां बाणानां शतेन निचिता खचिता। पक्षे, शराणां मुञ्जदण्डानां शतेन समूहेन निचिता व्याप्ता। **विधवा इव** = विगतः मृतः धवः पतिः यस्याः सा इव। **उन्मुक्ततालपत्रा** = उन्मुक्तानि वैधव्यवशात् त्यक्तानि तालपत्राणि ताटंक इति कर्णाभरणानि यया सा। **अमरपतितनुः इव** = इन्द्रस्य शरीरम् इव। **नेत्रसहस्रसङ्कुला** = नेत्राणां लोचनानां यत् सहस्रं तेन संकुला व्याप्ता। पक्षे, नेत्राणां तन्नामकवृक्षाणाम् अथवा, नेत्रचिह्नयुतफलधारिणां नारिकेलवृक्षाणां यत् सहस्रं तेन सङ्कुला परिव्याप्ता। **नारायणमूर्तिः इव** = विष्णुविग्रह इव। **तमालनीला** = तमालं तापिच्छं तद्वत् नीला श्यामा। पक्षे, तमालपादपैः श्यामला। पार्थरथपताका इव = पार्थस्य अर्जुनस्य रथस्य स्पन्दनस्य शिखरे पताका ध्वजा इव। **कप्याक्रान्ता** = कपिना वानरेण हनूमता सङ्क्रान्ता अधिष्ठिता। पक्षे, कपिभिः वानरैः आक्रान्ता परिव्याप्ता अवनिपतिद्वारभूमिः इव = राज्ञां हर्म्यस्य द्वारभूमिः प्रवेशस्थलम् इव। **वेत्रलताशतदुःप्रवेशा** = (द्वारापालानां हस्तेषु स्थितेन) वेत्रलतानां वेतसयष्टिनां शतेन दुःप्रवेशा क्लिष्टाभ्यन्तर्गमनम् यस्यां सा। पक्षे, वेतसलतासमूहानां शतेन दुःखेन अतिक्लेशेन प्रवेष्टुं योग्या। **विराटनगरी इव** = विराटस्य महाभारतकालिकस्य तन्नामकस्य राज्ञः नगरी इव राजधानी इव। **कीचकशताकुला** = कीचकानां कीचक-वंशोद्भवानां रक्षिपुरुषाणां शतेन आकुला व्याप्ता। पक्षे, कीचकाः छिद्रयुताः वन्याः वंशाः तेषां शतेन समुदायेन आकुला परिव्याप्ता। **अम्बरश्रीः इव** = आकाशलक्ष्मीः इव। **व्याधानुगम्यमानं०** = व्याधेन व्याधवेषधारिणा शिवेन अनुगम्यमानं अनुस्रियमाणं अतएव तरलं चपलवेगधाविनं तारकमृगं मृगशिरः नक्षत्रं यस्यां सा। पक्षे, व्याधैः लुब्धकैः अनुगम्यमानाः पश्चाद्धावकानाः अतएव तरलाः भीतिचञ्चलाः तारकाः नेत्र- कनीनिकाः येषां ते तथोक्ता मृगाः हरिणाः यस्यां सा। **गृहीतव्रता इव** = गृहीतम् अङ्गीकृतं व्रतं नियमः यया सा, तपस्विनी ब्रह्मचारिणी वा। इव। **दर्भचीरजटावल्कलधारिणी** = दर्भाः; कुशाः चीराणि आपादलम्बवस्त्राणि जटाः कपर्दाः वल्कलानि तरुत्वचः च धारयितुं शीलं यस्याः सा। पक्षे, कुशाः तृणविशेषा नारिकेलवृक्षा वटानां वायवीयमूलानि वा वल्कलानि च धर्तुं शीलं यस्याः सा। **अपरिमितिबहलपत्रसञ्चया अपि** = अपरिमितानि असीमितानि बहलानि सघनानि च पत्राणि पर्णानि तेषां सञ्चयः निकरः यस्यां सा। अपि। **सप्तपर्णोपशोभिता** = सप्तभिः पर्णैः पत्रैः स्वल्पैरैवपर्णैः इत्यर्थः, शोभिता अलङ्कृता (इति विरोधः)। परिहारस्तु, सप्तपर्णाख्यवृक्षैः (भाषायां 'घितवन' 'सतौन' वा) शोभिता भूषिता। क्रूरसत्त्वा अपि = क्रूरं निर्दयं सत्त्वं हृदयं यस्याः सा। अपि। **मुनिजनसेविता** = मुनिजनैः सेविता समाश्रिता इति विरोधः। परिहारस्तु, क्रूराः हिंस्राः सत्त्वाः सिंहव्याघ्रादिजन्तवः यस्यां सा तथापि मुनिजनसेविता। **पुष्पवती अपि** = पुष्पवती रजस्वला अपि। **पवित्रा** = पूता इति विरोध। परिहारस्तु, पुष्पाणि कुसुमानि यस्याः सन्ति इति पुष्पवती, एवम्भूता पवित्रा विन्ध्या नाम **अटवी** = वनम् अस्ति वर्तते इति गद्यमुखस्थेन पदेन अन्वयः अन्तिमेषु च 'क्वचित्' इति पदस्य सर्वत्र अन्वयः।

टिप्पणी–इस गद्यखण्ड में पूर्व से प्रारम्भ श्लिष्टोपमा चल रही है।

कात्यायनी–दैत्यों का वध करने के लिए भीषण स्वरुपधारिणी दुर्गा। कर्णीसुत नामक एक क्षत्रिय का उल्लेख गुणाढ्यकृत बृहत्कथा में हुआ है जो चौर्य शास्त्र का प्रवर्तक कहा जाता है। मूल बृहत्कथा के आधार पर प्रणीत कथासरित्सागर में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। **प्रदोष**–रात्रि का प्रारम्भिक भाग प्रदोष कहा जाता है। 'प्रदोषस्तु रजनीमुखम्'-अमरकोश। ऋक्ष–भालू की ही प्रज़ाति का किन्तु उससे भिन्न एक जंगली हिंसक जन्तु। इसका अर्थ 'तारा' भी होता है। **घटा**–काले-काले हाथियों के एकत्र जुटने को 'घटा' कहते हैं–'करिणां तु घटना घटा'–अमरकोश। सङ्गता–सम् + गम् = क्त + टाप्। स्थाणु–'स्थाणु' का अर्थ खूँटा या ठूँठा वृक्ष (शाखाओं रहित) होता है। इस शब्द का अर्थ शङ्कर भी है–'स्थाणु रुद्र उमापतिः' अम०। व्याघ्रनख–बच्चोंको बघनखा (बाघ का नाखून) चाँदी में मढ़ाकर गले में पहनाया जाता है ताकि उनका अनिष्ट न हो। इसी प्रकार 'नजर' आदि कुदृष्टि से बचाने के लिए उन्हें गण्डे, ताबीज आदि भी पहनाये जाते हैं। **महावराह**–भगवान् विष्णु का एक आदिम अवतार। प्रलयकाल में जलमग्न पृथिवी को भगवान् विष्णु ने वराह का रूप धारण कर अपने नुकीले दांत से उठाकर बाहर निकाला था–यह पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। **समुत्खात**–सम् + उत् + खन् + क्त।

अमरपति–अमराणां देवानां पतिः इन्द्रः। 'अमरा निर्जरा देवाः'। नेत्र–आँख। पौराणिक कथा है कि शाप वश इन्द्र के शरीर में हजार भग हो गये थे। वे भग सीता-विवाह को देखने के लिए आँखों के रूप में परिवर्तित हो गये। 'नेत्र' नामक वृक्ष अथवा नारियल के फल से जब छिलके (जटा) हटाये जाते हैं तो उसके शिरोभाग में नेत्र जैसे चिह्न दिखाई पड़ते हैं। कीचक–राजा विराट का साला कीचक था और इसके भाई भी बड़े योद्धा थे वनवास (गुप्तवास) के दौरान द्रौपदी की शिकायत पर भीमसेन ने इसका वध किया था। 'कीचक' उन जंगली बाँसों को भी कहा जाता है जो पोले तो होते ही हैं, उनमें छिद्र भी होते हैं। हवा चलने से उन छिद्रों से सुरीली ध्वनि निकलती है। महाकवि कालिदास ने इसका वर्णन किया है–'शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः'–पूर्वमेघ, 56। 'यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान्'– कुमारसम्भव, 1.8। 'स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः'–रघुवंश 2.13। व्याधानुगम्यमान......मृगा– एक पौराणिक कथा के अनुसार शिव ने ब्रह्मा का सिर काटने के लिए बाण छोड़ा तो ब्रह्मा ने मृग का रूप धारण कर मृगशिरा नक्षत्र में प्रवेश किया। बाण ने भी आर्द्रा नक्षत्र का रूप धारण कर उनका पीछा किया। दूसरी कथा के अनुसार भगवान् शिव ने जब दक्ष के यज्ञ का बिध्वंस कराया तो यज्ञ मृग का रूप धारण करके भागा। तब शिव ने व्याध का रूप धारण कर बाण चढ़ाकर उसका पीछा किया। 'अपरिमित–' से तीन बार विरोधाभास अलङ्कार का प्रयोग किया गया है।

तस्यां च दण्डकारण्यान्तःपाति, सकलभुवनविख्यातम्, उत्पत्तिक्षेत्रमिव भगवतो धर्मस्य, सुरपतिप्रार्थनापीतसकलसागरजलस्य, मेरुमत्सराद्गगनतलप्रसारितविकटशिरःसहस्रेण दिवसकररथगमनपथमपनेतुमभ्युद्यतेनावगणितसकलसुरवचसा विन्ध्यगिरिणाऽप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य जठरानलजीर्णवातापिदानवस्य, सुरासुरमुकुटमकरपत्रकोटिचुम्बितचरणरजसो दक्षिणामुखविशेषकस्य, सुरलोकादेकहुंकारनिपातितनहुषप्रकटप्रभावस्य भगवतो महामुनेरगस्त्यस्य भार्यया लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः करपुटसलिलसेकसंवर्धितैः सुतनिर्विशेषैरुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्रेण च गृहीतव्रतेनाषाढिना पवित्रभस्मविरचितत्रिपुण्ड्रकाभरणेन कुशचीवरवाससा मौञ्जमेखलाकलितमध्येन गृहीतहरितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्,

अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्येध्मवाह इति पिता द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृतपरिसरं सरिता च कलशयोनिपरिपीतसागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत्।

हिन्दी अनुवाद–उसी (विन्ध्याटवी) में दण्डकारण्य के अन्तर्गत, सभी भुवनों में विख्यात, भगवान् धर्म की जन्मभूमि जैसा, इन्द्र की प्रार्थना से समुद्र के समग्र जल को पी जाने वाले, (सर्वोन्नत) मेरुपर्वत से ईर्ष्यावश आकाश में हजारों विकट (ऊँचे और विशाल) शिखरों को फैलाने वाले, सूर्य के रथ का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए उद्यत, समस्त देवताओं की अभ्यर्थना का तिरस्कार कर देने वाले विन्ध्य पर्वत के द्वारा भी अनुल्लङ्घित आज्ञा वाले, अपनी जठराग्नि से वातापि दानव को पचा जाने वाले, देव-दानवों के मुकुट के अग्रभाग से चुम्बित चरण रज वाले, दक्षिणापथ के अलङ्कारभूत, अपनी एक हुंकार से नहुष को स्वर्ग से गिराकर अपना प्रभाव प्रदर्शित करने वाले भगवान् महामुनि अगस्त्य की धर्मपत्नी लोपामुद्रा के द्वारा स्वयं थाले बनाकर अंजलि भर-भर कर जल से सींच कर बढ़ाये गये अपने पुत्र से अभिन्न पौधों से अलङ्कृत और पलाशदण्डधारी, ब्रह्मचारी, पवित्र भस्म से मस्तक पर त्रिपुण्ड्र तिलक लगाने वाले, कुश तथा चीवर वस्त्र धारण करने वाले, कमर में मौञ्जी मेखला पहनने वाले, हाथ में हरे पत्तों का दोना लिए कुटियों के द्वार-द्वार भिक्षाटन करने वाले 'दृढदस्यु' नामक उनके पुत्र, अत्यधिक ईंधन लाने के कारण पिता (अगस्त्य) ने अपने जिस पुत्र का दूसरा नाम 'इध्मवाह रख दिया, के द्वारा पवित्र किया गया, चारों ओर तोते के समान हरे केलों के वन से श्यामल बनाये गये परिसर वाला और कुम्भज (अगस्त्य) के द्वारा पान किये गये सागर का मानो अनुसरण करती हुई (वैधव्य शोक मनाती हुई) एक वेणी बनाई हुई गोदावरी नदी के द्वारा घिरा हुआ आश्रम था।

संस्कृत व्याख्या–तस्यां च = तस्यां तथाभूतायां विन्ध्याटव्याम् च। **दण्डकारण्यान्तःपाति** = दण्डकनाम्नः वनस्य अन्तःपाति मध्यवर्ति। **सकलभुवनविख्यातम्** = सकललोकप्रसिद्धम्। **भगवतः** = महानुभावस्य। **धर्मस्य** = पुण्यप्रणीतस्य। **उत्पत्तिक्षेत्रम् इव** = उत्पत्ते जन्मनः क्षेत्रं स्थानम् इव। **सुरपतिप्रार्थना०** = सुराणां पतिः सुरपतिः तस्य इन्द्रस्य प्रार्थनया निवेदनेन पीतम् आचमनीकृतं सकलसागरजलं सकलानां सागराणां (अशेषं) जलं येन सः, तस्य। **मेरुमत्सराद्०** = मेरोः स्वर्णगिरेः मत्सरात् उन्नतिविषयिण्यर्ष्यायाः गगनतले नभस्तले प्रसारितानि ऊर्ध्वं विस्तारितानि विकटानि उच्चैः विपुलाकृतीनि शिरांसि शिखराणि तेषां सहस्रं श्रेणिसमुदायः येन सः, तेन। **दिवसकररथ०** = दिवसकरस्य सूर्यस्य रथस्य स्पन्दनस्य गमनपथं सञ्चरणमार्गम् अपनेतुं अवरोद्धुम् अभ्युद्यतेन सन्नद्धेन, अपि च, **अवगणितसकलसुखचसा** = अवगणितानि तिरस्कृतानि सकलानां समस्तानां सुराणां देवानां वचांसि अनुनयवचनानि येन सः, तेन। **विन्ध्यगिरिणा** = विन्ध्यपर्वतेन। अपि। **अनुल्लङ्घिताज्ञस्य** = न उल्लङ्घिता अनुल्लङ्घिता अनवमानिता आज्ञा आदेशः यस्य सः, तस्य। **जठरानलजीर्णवातापिदानवस्य** = जठरानलेन उदराग्निना जीर्णः सुपाचितः वातापिदानवः वातापिनामकः दैत्यः येन सः, तस्य। **सुरासुरमुकुट०** = सुराः देवा असुराः दानवाः तेषां मुकुटेषु किरीटेषु यानि मकरपत्राणि मकराकृतिस्वर्णरचनाः तेषां कोटिभिः अग्रभागैः चुम्बितानि मालनत्या स्पृष्टानि चरणरजांसि पादधूलयः यस्य स;, तस्य। **दक्षिणामुखविशेषकस्य** = दक्षिणा अवाची (आशा) तस्याः मुखम् आननं तस्य विशेषकः तिलकालङ्कारः यः, तस्य। सुरलोकात् स्वर्गात्। **एकहुंकारनिपातितनहुषप्रकटप्रभावस्य** = एकेन एव हुंकारेण हुंकृतिमात्रेण निपातिते अधःपतिते नहुषे इन्द्रपदप्राप्ते तन्नाम्नि नृपे प्रकटः

प्रदर्शितः स्पष्टतोऽभिव्यक्तः वा प्रभावः तपः पुण्योत्कर्षः यस्य सः, तस्य। **भगवतः** = षडैश्वर्यसम्पन्नस्य महामुनेः = महर्षेः। **अगस्त्यस्य** = कुम्भजस्य। **भार्यया** = धर्मपत्न्या। लोपामुद्रया स्वयम्। **उपरचितालवालकैः** = उपरचितानि विनिर्मितानि आलवालकानि = आवापाः तैः। **करपुटसलिलसेकसंवर्धितैः** = कराभ्यां हस्ताभ्यां बद्धः पुटः रचितः अञ्जलिः तेन करपुटेन अञ्जलिना सलिलस्य जलस्य यः सेकः सेचनं तेन संवर्धितैः पोषितैः। **सुतनिर्विशेषैः** = तनयनिभैः। पादपैः = वृक्षैः। उपशोभितं समलङ्कृतम्। **तत्पुत्रेण च** = तयोरात्मजेन च। गृहीतव्रतेन = गृहीतम् अङ्गीकृतं व्रतं ब्रह्मचर्यं येन तेन। **आषाढिना** = आषाढः पलाशदण्डः अस्यास्ति तेन। पवित्रभस्म० = पवित्रेण पूतेन भस्मना विरचितं विनिर्मितं त्रिपुण्ड्रकं तिलकविशेषः एव आभरणं भूषणं यस्य सः, तेन। **कुशचीवरवाससा** = कुशाः दर्भाः एव चीवरवासं चीवरवसनं यस्य सः तेन **मौञ्जीमेखलाकलितमध्येन** = मौञ्ज्या मुञ्जविरचितया मेखलया काञ्च्या आकलितः परिवेष्टितः मध्यः कटिप्रदेशः येन सः, तेन। **गृहीतहरितपर्णपुटेन** = गृहीतं हस्तधृतं हरितं पर्णपुटं दलनिर्मितपुटकं येन सः, तेन। **प्रत्युटजम्** = उटजम् उटजं प्रति, प्रत्युटजं प्रतिपर्णशालाम्। **अटता** = भ्रमता। **भिक्षाम्** = भिक्षार्थम्। **दृढदस्युनाम्ना** = दृढदस्यु इत्याख्येन। **पवित्रीकृतम्** = तत्र निवासेन प्रयतीकृतम्। अपवित्रं पवित्रं यथा स्यात्तथा कृतम् इति पवित्रीकृतम्। **अतिप्रभूतेध्माहरणात् च** = अतिप्रभूतानि अति प्रचुराणि यानि इध्मानि वन्यकाष्ठानि तेषाम् आहरणात् आनयनात् च। **यस्य** = दृढदस्योः। 'इध्मवाह' इति पिता–तस्य जनकः अगस्त्यः। **द्वितीयं** = अपरम्। **नाम** = संज्ञा अभिख्या। **चकार** = कृतवान्। दिशि दिशि– चतुर्दिक्, प्रतिदिशम्। **शुकहरितैः** = शुक इव कीर इव हरितैः श्यामलैः। **कदलीवनैः** = रम्भाफलपादपानां समूहैः। **श्यामलीकृतपरिसरम्** = श्यामलीकृतः श्यामवर्णीकृतः परिसरः प्रान्तभागः यस्य तत्। **सरिता च** = नद्या च। **कलशयोनिपरिपीत०** = कलशयोनिना अगस्त्येन परिपीतः अशेषतया पानविषयीकृतः यः सागरः जलधिः तस्य मार्गम् अध्वानं अनुगतया अनुव्रजन्त्या इव, वैधव्यविधिं परिपालयन्त्या इवेत्यर्थः। **बद्धवेणिकया** = बद्धा संहता धृतावावेणिका जलधारा यथा सा, तया; यद्वा, बद्धा संयता वेणिका वेणी विशिष्टः केशविन्यासः यया सा, तथा। **गोदावर्या** = गोदावरीनद्या। **परिगतम्** = परिवेष्टितम्। **आश्रमपदम्** = तपोवने ऋषिसंकुलं स्थलम्। **आसीत्** = स्थितं वभूव।।

टिप्पणी–दण्डकारण्य = प्राचीन काल में दानवगुरु शुक्राचार्य के शाप से राजा 'दण्डक' का राज्य वन में परिवर्तित हो गया था, वहीं 'दण्डकारण्य' के नाम से विख्यात है। श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण सहित निर्वासन की अवधि में पर्याप्त समय तक निवास किया था। अनेक ऋषियों समेत महर्षि अगस्त्य का आश्रम की दण्डकवन में था। दण्डकारण्य में तपोवन के आधिक्य के कारण बाण ने उसे धर्म की जन्मभूमि कहा है। **सुरपतिप्रार्थना०**–इन्द्र की प्रार्थना पर अगस्त्य ने समुद्र का जल पीकर उसे सुखा दिया था। महाभारत की एक कथा के अनुसार, कालेय या कालेयक नामक असुरों का कुल दिनभर सागर में छिपा रहता था और रात में निकल कर देवों पर आक्रमण करता था। देवराज की प्रार्थना पर अगस्त्य ने समुद्र को सोख लिया। समुद्र में जल न रह जाने से कालेयों को छिपने का स्थान न मिला और देवों ने उनका संहार कर डाला। मेरु सहस्रेण–स्वर्णमय सुमेरु पर्वत सर्वाधिक ऊंचा है और सूर्य उसकी परिक्रमा करता है। विन्ध्य ने अपनी अनेक चोटियों को आकाश में इतना ऊंचा उठा दिया कि सूर्य का परिक्रमा मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। देवताओं के समझाने का भी असर उस पर न पड़ा। तब देवताओं के अनुरोध

से विन्ध्याचल के गुरु महर्षि अगस्त्य उसके पास गये। वह महर्षि को प्रणाम करने के लिए उनके चरणों में झुका, तो महर्षि ने 'एवमस्तु' कहकर आगे की राह पकड़ ली। विन्ध्याचल अभी भी महर्षि के लौटने की प्रतीक्षा में यथावत् पड़ा है। जठर......दानवस्य–इल्वल और वातापि नाम के दो दैत्य बन्धु थे। 'वातापि' भेड़ा बन जाता था और इल्वल उसका मांस पकाकर ब्राह्मणों को खिलाता था। जब ब्राह्मण वह स्वादिष्ठ मांस खा चुकते थे, तब इल्वल पुकारता था– ''वातापि, आ जाओ''। तब वातापि उन ब्राह्मणों का पेट फाड़कर बाहर आ जाता था और अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर लेता था। इस तरह इन दोनों भाइयों ने बहुत से ब्राह्मणों का संहार कर डाला। यह दु:खद वृत्तान्त सुनकर अगस्त्य ने उन दोनों का आतिथ्य स्वीकार किया। इल्वल ने ज्यों ही वातापि को भेंड़ा बनाकर उसका मांस पकाकर अगस्त्य को खिलाया, उदर में जाते ही उन्होंने वातापि को अपनी तीक्ष्ण जठराग्नि से सदा के लिए पचा डाला। इधर इल्वल वातापि को पुकारता रहा और उधर महर्षि डकारते हुए चल पड़े। सुरलोका.....प्रभावस्य०-वृत्र के वध से इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा और तब उनके स्थान पर नहुष को (इन्द्र के स्थान पर) देवलोक का अधिपति बनाया गया। नहुष इन्द्रपद प्राप्त कर प्रमत्ताचरण करने लगा और उसने इन्द्राणी को प्राप्त करने की इच्छा की। इन्द्राणी ने प्रस्ताव भेजा कि नहुष महर्षियों द्वारा ढोयी जाने वाली पालकी पर बैठकर उसके पास आए। नहुष ने भृगु आदि के कन्धे पर पालकी रखा और उसमें बैठकर चल पड़ा। जल्दी पहुँचने के लिए वह बार-बार महर्षियों से 'सर्प-सर्प' कहने लगा। भृगु की जटा में छिपे अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर उसे सर्पयोनि में आकर पृथिवी पर गिरने का शाप दे दिया।

आषाढिना–आषाढ़ का एक अर्थ 'पलाश' भी होता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी को बिल्व या पलाश का दण्ड धारण करना चाहिए। गोदावर्या परिगतम्–अगस्त्य का आश्रम दण्डकारण्य में गोदावरी नदी के पास अवस्थित था।

इस गद्यखण्ड में, 'सलिलसेकसंवर्धितै:' में 'स' की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलङ्कार है। 'उत्पत्तिक्षेत्रम् इव' 'मार्गानुगतया इव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'शुकहरितै:' में लुप्तोपमा अलङ्कार है।

यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन्सह सीतया लक्ष्मणोपरचितरुचिरपर्णशालः पञ्चवट्यां कञ्चित्कालं सुखमुवास। चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलीननिभृतपांडुकपोतपङ्क्तयोऽमललग्न-तापसाग्निहोत्रधूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः। बलिकर्मकुसुमान्युद्धरन्त्याः सीतायाः करतलादिव संक्रान्तो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु। यत्र च पीतोद्गीर्णजलनिधिजलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्तिषु महाह्रदेषु। यत्र च दशरथसुतनिकरनिशितशरनिपातनिहतरजनी चरबलबहलरुधिरसिक्तमूलमद्यापि तद्रागाविद्धनिर्गतपलाशमिवाभाति नवकिसलयमरण्यम्। अधुनाऽपि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनवजलधर निवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्पकवलमजस्त्रमश्रुजललुलितदृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्जरितविषाणकोटयो जानकीसंवर्धिता जीर्णमृगाः। यस्मिन्ननवरतमृगयानिहतशेषवनहनहरिणप्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार। यत्र च मैथिलीवियोगदु:खदु:खितौ रावणविनाशसूचकौ चन्द्रसूर्याविव कबन्धग्रस्तौ समं रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतु;। अत्यायतश्च यस्मिन्दशरथसुतबाणनिपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्यप्रसादनागतनहुषाजगरकायशङ्कां चकार ऋषिगणस्य। जनकतनया च भर्त्रा

विरहविनोदनार्थमुटजाभ्यन्तरलिखिता यत्र रामनिवासदर्शनोत्सुका पुनरिव धरणीतलादुल्लसन्ती वनचरैरद्याप्यालोक्यते।

हिन्दी अनुवाद–और जहां (अगस्त्याश्रम के समीप) अपने पिता दशरथ के वचन की रक्षा (पालन) करते हुए अत: राज्य का परित्याग करने वाले, रावण की राज्यलक्ष्मी के विलास को समाप्त करने वाले श्रीराम ने पञ्चवटी में लक्ष्मण के द्वारा बनायी गयी सुन्दर कुटिया में सीता के साथ कुछ समय तक सुखपूर्वक निवास किया। बहुत दिनों से सूने पड़े जिस आश्रम में आज भी शाखाओं में नि:शब्द छिपे हुए सफेद कबूतरों की पंक्तियों वाले वृक्ष, तपस्वियों के विशुद्ध यज्ञ के लगे हुए धुयें की पंक्तियों जैसे दिखायी पड़ते हैं। पूजन-विधि सम्पन्न करने के लिए पुष्पों का चयन करती हुई सीता की हथेली से निकल कर मानो लगी हुई लालिमा जहां लतापल्लवों से प्रकट हो रही है या चमक रही है। जहां आश्रम के समीपवर्ती विशालसरोवरों में अगस्त्य मुनि के द्वारा पीया गया समुद्रजल मानो उगल दिया गया है। और, जहां दशरथ के पुत्रों के तीक्ष्ण बाणों से मारी गयी राक्षसों की सेना के रक्त से सीची गयी जड़ वाले (वृक्षों से युक्त) नये पल्लवों वाला यह वन मानो उसके रक्तवर्ण से संक्रान्त पत्तियों वाला सा सुशोभित हो रहा है। जहां आज भी, वर्षा ऋतु में नये बादलों की गंभीर गर्जना सुनकर, भगवान् राम के त्रिभुवनव्यापी धनुष की टंकार का स्मरण करते हुए और दशों दिशाओं को शून्य देखकर निरन्तर आंसुओं से भरी हुई आंखों वाले, बूढ़े हो जाने, के कारण जर्जर हो गयी सींगों की नोक वाले माता सीता के द्वारा पाले गये बूढ़े मृग, घास का ग्रास नहीं ग्रहण करते। जिस दण्डकारण्य में निरन्तर आखेट करने से (राम के द्वारा) मारे गये मृगों में से बचे हुए हरिणों के द्वारा मानो प्रोत्साहित सा एवं सीता से वियोग कराने वाला स्वर्णमृग राम को बहुत दूर तक ले गया। और जहां, सीता के वियोग-क्लेश से दु:खी तथा रावण के विनाश की सूचना देने आले कबन्ध के द्वारा ग्रसे गये चन्द्रसूर्य के समान रामलक्ष्मण ने एक साथ तीनों लोकों में बड़ा भारी भय उत्पन्न किया। जिस (दण्डकारण्य) में राम के बाण से काटकर गिरायी गयी योजनबाहु (कबन्द) की विशाल भुजा ने ऋषियों में अगस्त्य की कृपा प्राप्त करने आये हुए नहुष के अजगराकार शरीर की शङ्का उत्पन्न की। जहां विरह-वेदना को भूलने के उद्देश्य से पर्णशाला के अन्दर स्वामी श्रीराम के द्वारा चित्रित सीता मानो राम के दण्डकारण्य की कुटी देखने की उत्सुकतावश पुन: पृथ्वी के अन्दर से निकली हुई सी आज भी वनवासियों द्वारा देखी जाती है (अर्थात् वनवासी निरन्तर जाकर सीता के उस चित्र का दर्शन करते हैं)।।

संस्कृत व्याख्या–यत्र च = अगस्त्याश्रमपादे च। **दशरथवचनम्**–स्वपित्रा दशरथे कैकेयीं प्रति कृतं अनुबन्धवचनं (रामाय चतुर्दशवर्षमितो वनवास: इति)। **अनुपालयन्** = पालनं कुर्वता, रक्षता वा। **उत्सृष्टराज्य:** = उत्सृष्टं परित्यक्तं राज्यं येन स:। **दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविराम:** = दशवदनस्य दशाननस्य रावणस्य या लक्ष्मी: राज्यश्री: तस्या: विभ्रमस्य विलासस्य विराम: समाप्ति: यस्मात् स:। **राम:**–रमन्ते योगिनो अस्मिन्निति राम: दाशराथि:। **महामुनिम्** = महर्षिम्। अगस्त्यम् = प्रसिद्धं घटयोनिम्। **अनुचरन्** = सेवमान:। **सीतया सह** = धर्मपत्न्या जनकतनयया साकम्। **लक्ष्मणोपरचित०** = लक्ष्मणेन उपरचिता विनिर्मिता रुचिरा मनोहरा पर्णशाला उटज: यस्मै स:। **पञ्चवट्याम्** = एतन्नाम्निस्थले। **कञ्चित् कालम्** = कञ्चित् कालपर्यन्तम्। **सुखम्** = सानन्दम्। **उवास** = न्यवसत्। **चिरशून्ये** = बहुकालात् जनहीने। **अद्य**

अपि = अधुना अपि। **यत्र** = आश्रमपदे। **शाखानिलीन०** = शाखासु पत्रच्छदेषु निलीनाः गुप्ताः निभृताः निःस्वनाः पाण्डवः श्वेतवर्णाः ये कपोताः पारावताः तेषां पंक्तयः श्रेण्यः येषु ते। **अमललग्न०** = अमलाः निर्मलाः लग्नाः संसक्ताः तापसानां तपश्चारिणां यत् अग्निहोत्रं नित्याग्निहवनम् तस्य धूमानां अग्निशिखानां राजयः पंक्तयः येषु ते। **इव। संलक्ष्यन्ते** = प्रतीयन्ते। **तरवः** = पादपाः। **बलिकर्मकुसुमानि** = बलिकर्मणः देवपूजनस्य हेतोः कुसुमानि पुष्पाणि। **उद्धरन्त्याः** = सञ्चयन्त्याः। **सीतायाः**-जनकसुतायाः। **करतलात् इव** = पाणितलात् इव। सङ्क्रान्तः = परिव्याप्तः। **यत्र** = यस्मिन् आश्रमपदे। **रागः** = रक्तवर्णत्वम्। स्फुरति = विद्योतते। **लताकिसलयेषु** = वल्लरीपल्लवेषु। यत्र च। **पीतोद्गीर्णजलनिधिजलम् इव** = प्रथमं पीतं पानविषयीकृतं ततः उद्गीर्णं वान्तं जलनिधेः सागरस्य जलम् इव। मुनिना = अगस्त्येन। **निखिलम्** = अशेषम्। **आश्रमोपान्तवर्तिषु** = आश्रमस्य उपान्तवर्तिषु समीपस्थेषु। **महाह्रदेषु** = सरोवरेषु। यत्र च। **दशरथसुतनिकर०** = दशरथसुतयोः दशरथपुत्रयोः रामलक्ष्मणयोः निकरः समवायः तस्य निशिताः तीक्ष्णाः ये शराः बाणाः तेषां निपातेन प्रहारेण निहतानि व्यापादितानि यानि रजनीचरबलानि राक्षससैन्यानि तेषां बहलैः प्रभूतैः रुधिरैः रक्तैः सिक्तानि आर्द्रीकृतानि मूलानि यस्य तत्। अद्यापि। **तद्रागविद्धपलाशम् इव** = तेषां रागेण रक्तवर्णतया आविद्धानि संयुक्तानि निर्गतानि विनिःसृतानि पलाशानि पर्णानि यत्र तत्। **इव। आभाति** = संशोभते। **नवकिसलयम्** = नूतनपल्लवम्। **अरण्यम्** = वनम्। अधुनापि यत्र। **जलधरसमये** = प्रावृट्काले, वर्षर्तौवा। **गम्भीरम्** = मन्द्रम्। **अभिनवजलधरनिवहनिनादम्** = अभिनवाः नूतनाः ये जलधराः मेघाः तेषां निवहस्य समूहस्य निनादं घोषम्। **आकर्ण्य** = निशम्य। **भगवतो रामस्य** = महात्मनः दाशरथेः। **त्रिभुवनविवरव्यापिनः** = त्रयाणां भुवनानां लोकानां समाहारः त्रिभुवनं तस्य विवराणि सावकाशस्थलानि व्याप्तुं पूरयितुं शीलं यस्य सः, तस्य। **चापघोषस्य** = कोदण्डशब्दस्य। **स्मरन्तः** = समृतिमाप्नुवन्तः। **न गृह्णन्ति** = न कवलीकुर्वन्ति। **शष्पकवलम्** = मृदुतृणग्रासम्। **अजस्रम्** = सततम्। अश्रुजललुलितदृष्टयः = अश्रुजलेन नयनसलिलेन लुलिता परिप्लाविता अवरुद्धा दृष्टिः दर्शनं येषां ते। **वीक्ष्य** = निरीक्ष्य। शून्याः = निर्जनाः। **दशदिशः** = सर्वाः आशाः। **जराजर्जरितविषाणकोटयः** = जरया वार्धक्येन जर्जरिताः जीर्णाः विषाणानां श्रृङ्गानां कोटयः अग्रभागाः येषां ते। जानकीसंवर्धिताः = सीतया पोषिताः। **जीर्णमृगाः** = वृद्धहरिणाः। **यस्मिन्** = यत्र। **अनवरत०** = अनवरतं नित्यं मृगयया आखेटेन निहताः पारिताः तेभ्यश्च शेषाः अवशिष्टाः ये वनहरिणाः अरण्यमृगाः तैः प्रोत्साहितः उत्साहं प्रापितः व। **कृतसीताविप्रलम्भः** = कृतः विहितः सीतायाः जनकसुतायाः विप्रलम्भः विरहः, वियोगः चिञ्चनं वा येन सः। **कनकमृगः** = स्वर्णहरिणः। **राघवम्** = रामम्। **अतिदूरम्** = भृशं दूरम्। **विहार** = हृतवान्। यत्र च। **मैथिलीवियोगदुःखदुखितौ** = मैथिल्याः जानक्याः वियोगदुःखेन विश्लेषक्लेशेन दुःखितौ पीडितौ। **रावणविनाशसूचकौ** = रावणस्य विनाशस्य विध्वंसस्य सूचकौ संकेतहरौ। कबन्धग्रस्तौ = कबन्धरूपेण राहुणा ग्रस्तौ निगीर्णौ। चन्द्रसूर्यौ इव = शशिरवी व। रामलक्ष्मणौ भ्रातरौ। **समम्** = समानक्षणे एव। **महत्** = भीषणम्। **त्रिभुवनभयम्** = त्रिलोकभीतिम्। **चक्रतुः** = कृतवन्तौ। **यस्मिन्** = यत्र। अति आयतः च = अतिविशालश्च। **दशरथसुतबाणनिपातितः** = रामस्य बाणेन सायकेण निपातितः अधःपातितः। **योजनबाहो** कबन्धासुरस्य। बाहुः = भुजा। **अगस्त्यप्रसादनागत०** = अगस्त्यस्य अमितप्रभावस्य महर्षेः कुम्भजस्य प्रसादनाय प्रसन्नतां कृपां वा अवाप्तुं आगतः आयातः यः जगररूपः नहुषः तस्य

कायशङ्कां शरीरभ्रान्तिम्। **चकार** = कृतवान्। **ऋषिगणस्य** = मुनिकुलस्य। **यत्र** = यस्मिन्। **जनकतनया** = जानकी। **भर्त्रा** = स्वामिना, पतिना रामेण। **विरहविनोदनार्थम्** = विरहस्य वियोगस्य विनोदनार्थम् अपाकरणार्थम्। **उटजाभ्यन्तरलिखिता** = उटजस्य पर्णशालाया अभ्यन्तरे अन्तर्भागे भित्तिषु लिखिता चित्रिता। **पुनः** = भूयः। **इव**। **रामनिवासदर्शनोत्सुका** = रामस्य यः निवासः आवासः तस्य दर्शने विलोकने उत्सुका कौतुकोत्कण्ठिता। **धरणीतलात्** = भूतलात्। **उल्लसन्ती** = उपरि आगच्छन्ती। **वनचरैः** = वनवासिभिः। **अद्य अपि** = इदानीम् अपि। **आलोक्यते** = विलोक्यते।।

टिप्पणी–दशरथः–दशसु दिक्षु (अप्रतिहतः) रथः यस्य सः दशरथः। अयोध्यानरेश और रामादि चारों भ्राताओं के पिता। **उत्सृष्ट**–उत् + सृज् + क्त। **निशित**–नि + शी + क्त। **निपात**–नि + पत् + घञ्। निहत–नि + हन् + क्त। **राग**–रञ्ज् + घञ्। **आविद्ध** – आ + विध् + क्त। शष्प–कोमल घास। 'शष्पं बालतृणं **स्मृतम्**'–अमरकोश। जहार–हृ धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। चक्रतुः–कृ धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष द्विवचन। **उल्लसन्ती**–उत् + लस् + शतृ + ङीप्। 'विरामो रामो' में यमक अलङ्कार है। 'बलिकर्म.......संक्रान्तः', 'यत्र च.......महाह्रदेषु'; 'पलाशमिव......आभाति', प्रोत्साहित इव', 'पुनरिव......उल्लसन्ती'–इन प्रयोगों में उत्प्रेक्षालङ्कार है। 'अधुनापि.....जीर्णमृगाः' में स्मरणालङ्कार है। 'चन्द्रसूर्याविव' में उपमालङ्कार है। 'अगस्त्यप्रसादन......ऋषिजनस्य' में भ्रान्तिमान् अलङ्कार है। 'रामलक्ष्मणौ चन्द्रसूर्यौ इव' में समीचीन प्रयोग 'सूर्यचन्द्रौ' होना चाहिए था। 'चापघोस्य स्मरन्तः' में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र के अनुसार हुआ है। यथा–'मातुः स्मरति' इत्यादि।

बोधप्रश्न–

1. विश्रामकक्ष में पहुँच कर मन्त्रि-मित्रगणादि के साथ कुछ बातें करने के बाद शूद्रक ने क्या किया?
2. वैशम्पायन ने अन्तःपुर में रानियों के हाथ से क्या-क्या खाया-पीया?
3. क्वचिन्मत्तेव कोकिल० .... विन्ध्याटवी नाम' की संस्कृत व्याख्या करते हुए इसके अन्तर्गत प्रयुक्त अलङ्कार का निर्देश कीजिए।
4. विन्ध्याटवी में अगस्त्य का आश्रम कहां था?
5. इस इकाई के अन्तिम गद्यांश में बाणभट्ट ने श्रीराम के वनवास की किन घटनाओं का उल्लेख किया है?

प्रश्नोत्तर–

1. महाराज शूद्रक ने वैशम्पायन तोते को अपने पास मंगवाया।
2. वैशम्पायन ने वहां उस तरह से पर्याप्त जामुन के फल का रस पिया, अनार के दानों का स्वाद लिया और परिपक्व आंवले के फल कुतर-कुतर कर खाया।
3. संस्कृत व्याख्या यथास्थान द्रष्टव्य। उक्त गद्यांश में विरोधाभास अलङ्कार है।
4. विन्ध्याटवी में अगस्त्याश्रम दण्डकारण्य के अन्तर्गत गोदावरी नदी के निकट अवस्थित था।
5. राम ने दण्डकारण्य में ऋषियों-मुनियों को त्रास देने वाले राक्षसों का वध किया, स्वर्णमृग (कपट मृग-मारीच) के द्वारा आश्रम से दूर ले जाये गये, कबन्ध नामक राक्षस को मारा और (सीताहरण के पश्चात्) विरहदुःख को दूर करने के प्रयास में पर्णशाला की भित्तियों पर जानकी के चित्र बनाये।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGST-103
संस्कृत

खण्ड-तीन

सिद्धान्त कौमुदी (कारक प्रकरण)

इकाई-09 5

प्रथमा और द्वितीया विभक्ति

इकाई-10 22

तृतीया और चतुर्थी विभक्ति

इकाई-11 34

पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति

इकाई-12 50

अधिकरण कारक-सप्तमी विभक्ति

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम - संयोजक**
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	**कुलसचिव - सचिव**

विशेषज्ञ-समिति

1- प्रो0श्री नारायण मिश्र	सेवानिवृत्त प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराण
2- प्रो0 युगल किशोर मिश्र	संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
3- प्रो0 हरे राम त्रिपाठी	म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
4- प्रो0 श्रीकिशोर मिश्र	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सम्पादक

प्रो0 के0 पी0 सिंह — वरिष्ठ परामर्शदाता (संस्कृत)

लेखक

डॉ0 पी0 डी0 सिंह — म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पाठ्यक्रम-परिचय

इस पाठ्यक्रम में कुल तीन खण्ड हैं **प्रथम खण्ड** के अन्तर्गत चार इकाइयाँ हैं जिनमें क्रमशः संस्कृत गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास; महाकवि बाणभट्ट का जीवन-परिचय, स्थितिकाल एवं कर्तृत्वः; कादम्बरी-कथानक एवं पात्र-परिचय (चरित्र-चित्रण) तथा कादम्बरी-समीक्षा की प्रस्तुति प्रमाणिक रूप में की गई हैं। **द्वितीय खण्ड** के अन्तर्गत चार इकाइयां हैं जिनमें कादम्बरी - कथामुख (अगस्त्याश्रमवर्णन-पर्यन्त) का हिन्दी अनुवाद, संस्कृत व्याख्या एवं टिप्पणी सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत है। **तृतीय खण्ड** के अन्तर्गत भी चार इकाइयाँ हैं, जिनमे सिद्धान्त कौमुदी के कारक प्रकरण का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है।

इकाई–9 प्रथमा और द्वितीया विभक्ति

9.0 उद्देश्य
9.1 कारक का सामान्य परिचय
9.2 प्रथमा विभक्ति
9.3 कर्मकारक–द्वितीया विभक्ति
9.3.1 कर्मकारक का सामान्य परिचय
9.3.2 कारक द्वितीया विभक्ति
9.3.3 विशिष्ट कर्मकारक
9.3.5 प्रेरणार्थक कर्तृ-कर्म-विचार
9.3.6 अकर्मक क्रिया-कर्म-कथन
9.3.7 अधिकरण के स्थान पर कर्म
9.3.8 उपपद द्वितीया विभक्ति
9.3.9 विशिष्ट कर्मप्रवचनीयों में द्वितीया

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप–

कारक का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

प्रथमा विभक्ति के विषय में जान जायेंगे।

कर्म-कारक का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

कारक–द्वितीया विभक्ति में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

विशिष्ट कर्म-कारक के विषय में जान जायेंगे।

गौण-कर्म के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

प्रेरणार्थक कर्तृ-कर्म विषयक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

अकर्मक-क्रिया विषयक कर्म-कथन को जान पायेंगे।

अधिकरण के स्थान पर होने वाले कर्म से परिचित हो जायेंगे।

उपपद द्वितीया विभक्ति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

कर्म-प्रवचनीय संज्ञा के विषय में जान जायेंगे।

9.1 कारक का सामान्य परिचय

व्याकरण के तीन विभाग होते हैं–(1) वर्ण-विभाग, (2) शब्द-विभाग और 93) वाक्य-विभाग। वर्ण-विभाग में वर्णों के उच्चारण-स्थान और प्रयत्न, वर्णों का वर्गीकरण तथा सन्धि-नियमों का उल्लेख रहता है। शब्द-विभाग के दो स्पष्ट भेद होते हैं। पहले में शब्दों की व्युत्पत्ति की चर्चा रहती है, अर्थात् यह बतलाया जाता है कि प्रकृति और प्रत्यय के योग से अथवा दो या दो से अधिक शब्दों के योग से किस प्रकार शब्दों का निर्माण होता है। शब्द-निर्माण के उपरान्त दूसरे में रूप-साधन आता है, जिसमें यह

बतलाया जाता है कि सिद्ध होने पर शब्द किस प्रकार प्रयोगार्ह या वाक्योपयोगी बनता है। वाक्य-विभाग में केवल **कारक-प्रकरण** आता है।

वाक्य में 'क्रिया के साथ अन्वय (सम्बन्ध)' को 'कारक' कहते हैं–अर्थात् किसी क्रिया के सम्पादन में जिन संज्ञा या सर्वनाम शब्दों का 'उपयोग' होता है, वे उस क्रिया के 'कारक' होंगे। 'पाचन' क्रिया के सम्पादन मे अग्नि, चूल्हा, पात्र और पाचक सभी उपयोगी या सहायक होते हैं। 'कारक' शब्द 'हेतु' और 'निमित्त' का पर्याय है। इसलिए किसी क्रिया के सम्पादन में उपयोगी सभी प्रकार के हेतु और निमित्त शब्द 'कारक' कहे जायेंगे–

हे राजन् ! गो-ब्राह्मणों की रक्षा के लिए राम ने रणभूमि में रथ से उतर कर बाण से रावण को मार डाला। इस वाक्य में 'मारना' क्रिया के सम्पादन में जिन-जिन वस्तुओं का उपयोग हेतु अथवा निमित्त कारण के रूप में हुआ है, वे सब किसी न किसी 'कारक' में हैं–

1. 'मारना' क्रिया का करने वाला पद 'राम ने' कर्त्ता कारक में है।
2. 'मारना' क्रिया के द्वारा कर्त्ता जिस वस्तु को सबसे अधिक चाहता है, वह 'रावण को' पद कर्म-कारक में है।
3. जिस कारण या उपकरण से यह 'मारना' क्रिया की गई है, वह 'बाण से' पद करण-कारक में है।
4. जिसके निमित्त यह 'मारना' क्रिया की गई है, वह 'रक्षा के लिए' पद सम्प्रदान-कारक में है।
5. 'उतरना' क्रिया के द्वारा जिस वस्तु से अलग होना बताया गया है, वह 'रथ से' पद अपादान-कारक में है।
6. 'मारना' क्रिया जिस स्थान पर होती है, वह 'रणभूमि में' पद अधिकरण-कारक में है।

इस प्रकार किसी क्रिया के सम्पादन के लिये छः प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं और ये छः सम्बन्ध ही कर्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण-कारक कहलाते हैं। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियाँ आती हैं। संस्कृत में सात विभक्तियाँ होती हैं, जिनमें से सामान्यतः–

1. प्रथमा विभक्ति उक्त–'कर्त्ता' के लिए आती है,
2. द्वितीया विभक्ति 'कर्म' के लिए,
3. तृतीया विभक्ति 'करण' के लिए,
4. चतुर्थी विभक्ति 'सम्प्रदान' के लिए,
5. पञ्चमी विभक्ति 'अपादान' के लिए और
6. सप्तमी विभक्ति 'अधिकरण' के लिए आती है। ये सभी अनुक्त कारकों में ही होती है।

ऊपर के उदाहरण में दो शब्द और भी आये हैं–'हे राजन्!' और 'गो-ब्राह्मणों की'। इनका न क्रिया से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और न क्रिया के साधन में ही इनका कोई उपयोग होता है। अतः इन शब्दों को 'कारक' नहीं कहते। 'हे राजन्!' शब्द 'सम्बोधन' में है और इसके लिए प्रथमा विभक्ति का व्यवहार होता है। 'गो-ब्राह्मणों का' शब्द 'सम्बन्ध' में है और इसके लिए षष्ठी विभक्ति का व्यवहार होता है। क्रिया से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने के कारण षष्ठी विभक्ति कारक-सम्बन्ध नहीं बतलाती–

राम ने रावण के भाई विभीषण को लङ्का का राज्य दिया।

इस वाक्य में 'देना' क्रिया के साथ 'रावण' और 'लङ्का' का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। 'देना' क्रिया का कर्म 'राज्य' है और 'सम्प्रदान' 'भाई' है। 'रावण के' का सम्बन्ध 'भाई' से है न कि 'देना' से। इसी प्रकार 'लङ्का का' पद का सम्बन्ध 'राज्य से' पद से है न कि 'देना' से। अतः क्रिया के सम्पादन में 'रावण के' और 'लङ्का का' पदों का कोई उपयोग न होने से 'षष्ठी' विभक्ति की गणना कारकों में नहीं होती।

उपर्युक्त विभक्तियों का विधान क्रिया के सम्बन्ध से किया जाता है। इसलिये इन्हें **'कारक-विभक्ति'** कहते हैं। किन्तु संस्कृत में कतिपय अव्यय भी किसी न किसी विभक्ति के नियामक होते हैं; जैसे–

1. मामन्तरा,
2. ग्रामादुत्तरम्।

इन उदाहरणों में 'अन्तरा' के योग से 'माम्' द्वितीया में है और 'उत्तरम्' के योग से 'ग्रामात्' पञ्चमी विभक्ति में। इन विभक्तियों के सम्बन्ध क्रिया से न होकर अव्यय से है। जिन विभक्तियों का विधान अव्यय पदों के द्वारा होता है, उन्हें 'उपपदविभक्ति' कहते हैं। जहाँ नियमानुसार 'उपपद-विभक्ति' और 'कारक-विभक्ति' दोनों का प्रयोग सम्भव है, वहाँ 'कारक-विभक्ति' का ग्रहण करना पड़ता है; जैसे–

1. मुनित्रयं नमस्कृत्य,
2. नमो नृसिंहाय।

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'नमस्कृ' (नमस्कार करना) क्रिया का कर्म है 'मुनित्रयम्'। अत: वक्ष्यमाण 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र के अनुसार यहाँ 'मुनित्रयं' में द्वितीया का विधान है। परन्तु वक्ष्यमाण एक अन्य सूत्र 'नम: स्वस्ति-स्वाहा-स्वधाऽलं-वषड्योगाच्च' के अनुसार 'नमस्' के योग में चतुर्थी का भी विधान है और द्वितीय उदाहरण में 'नृसिंहाय' इसीलिये चतुर्थी में आया है। 'नमस्कृत्य' के योग में 'नमस्' के कारण 'मुनित्रयाय' भी प्राप्य है और 'नमस्कृ' क्रिया के कारण कर्म में द्वितीया का विधान करती है और 'उपपद-विभक्ति' चतुर्थी का। जहाँ विधान सम्भव हों, वहाँ 'कारक-विभक्ति' के विधान को बलवान् मानकर ग्रहण करना पड़ता है। अत: यहाँ 'मुनित्रयं' ही हो सकता है, 'मुनित्रयाय' नहीं।

9.2 प्रथमा विभक्ति

सूत्र–प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा 2।3।46।।

नियतोपस्थितिक: प्रातिपदिकार्थ:। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योग:। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राधिक्ये परिमाणमात्रे सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। उच्चै:, नीचै:, कृष्ण:, श्री:, ज्ञानम्। अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्।

अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। तट:, तटी, तटम्। परिमाणमात्रे–द्रोणो व्रीहि:। द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थ:। प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थ: अभेदेन संसर्गेण विशेषणम्। प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्य-परिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेक:।

वचनं = सङ्ख्या। एक:, द्वौ, बहव:। इह उक्तार्थत्वाद् विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।

अर्थ–केवल प्रातिपदिकार्थ, लिङ्गमात्र के अधिक अर्थ, परिमाणमात्र के अधिक अर्थ बताने के लिए एवं सङ्ख्यामात्र अर्थ बताने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिक के साथ लगती है।

विशिष्ट अर्थ–नियतोपस्थितिक: प्रातिपदिकार्थ:।

नियत रूप से उपस्थित रहने वाले अर्थ को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। प्रातिपदिक का उच्चारण करने पर जिस अर्थ की प्रतीति अवश्य होती है, वह प्रातिपदिकार्थ कहलाता है। (यस्मिन्प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेन उपस्थिति: स तदर्थ:।) जाति, द्रव्य, लिङ्ग, सङ्ख्या, कारक–इन पाँचों को प्रातिपदिक का अर्थ माना गया है (पञ्चकं प्रातिपदिकार्थ:) किन्तु यहाँ पाणिनि को प्रातिपदिकार्थ से जाति और व्यक्ति का अर्थ ही अभीष्ट है। (प्रातिपदिक–अर्थवदधातुरप्रत्यय: प्रातिपदिकम्)

जो शब्द धातु नहीं हैं, प्रत्यय या प्रत्ययान्त नहीं हैं, फिर भी अर्थ का बोध कराते हैं, वे प्रातिपदिक कहे जाते हैं। मात्र शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध समझना चाहिये। फलत: अर्थ हुआ कि प्रातिपदिकार्थ मात्र

में, प्रातिपदिकार्थ के साथ लिङ्गमात्र के आधिक्य में, परिमाणमात्र के आधिक्य में, सङ्ख्यामात्र के अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।

1. उदाहरण–प्रातिपदिकार्थमात्र के उदाहरण–उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्। इनमें प्रातिपदिक अर्थ बताने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग हुआ है। इन (प्रातिपदिक) शब्दों में या तो लिङ्ग नहीं होता है, जैसे–उच्चैः, नीचैः में। या लिङ्ग निश्चित होता है, जैसे–कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्। इनमें क्रमशः पुंस्त्व, स्त्रीत्व, नपुंसकत्व का मात्र उनके रूपमात्र से हो जाता है।

विस्तृत अर्थ–जिन शब्दों के लिङ्ग नियत नहीं हैं, उनमें प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त केवल लिङ्ग मात्र का आधिक्य बताने के लिए भी प्रथमा का प्रयोग होता है।

2. लिङ्गमात्र का उदाहरण–तटः, तटी, तटम्। इन तीनों शब्दों में अनियत लिङ्ग की प्रतीति होती है। इनमें प्रथमा का प्रयोग प्रातिपदिकार्थ से अधिक इनके लिङ्गमात्र अर्थ का भी बोध कराता है।

विस्तृत अर्थ–प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त केवल परिमाण मात्र का आधिक्य बताने के लिए भी प्रथमा विभक्ति होती है।

3. परिमाणमात्र का उदाहरण– द्रोणो व्रीहिः = का अर्थ होगा- द्रोण रूप परिमाण से नापा हुआ व्रीहि। यहाँ 'द्रोणः' में प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय 'सु' का अर्थ परिमाण है। 'सु' विभक्ति का अर्थ सामान्य परिमाण है और 'द्रोण' का अर्थ विशेष परिमाण। द्रोण के अर्थ के साथ 'सु' के अर्थ का अभेद सम्बन्ध है। अतः उसके कारण वह विशेषण हुआ। 'सु' प्रत्यय का जो सामान्य अर्थ है, वह व्रीहि के अर्थ का विशेषण हुआ। वस्तुतः, द्रोण के अर्थ और 'सु' के सामान्य अर्थ में सामान्य-विशेष-सम्बन्ध होने से अभेद है। व्रीहि और द्रोण के साथ आई हुई प्रथमा विभक्ति में मेय-मापक या परिच्छेद्य-परिच्छेदक सम्बन्ध है। 'सु' प्रत्यय का अर्थ 'व्रीहि' के अर्थ का परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव सम्बन्ध से विशेषण बन जायेगा। द्रोण से व्रीहि नपा हुआ है और व्रीहि का मापक द्रोण है–ऐसा अर्थ निकला। यहाँ 'व्रीहिः' में तो प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा हुई है, किन्तु 'द्रोणः' में परिमाणमात्र की अधिकता के अर्थ में सामान्य परिमाण = तौल अर्थ बताने के प्रथमा होती है।

4. विस्तृत अर्थ–सूत्र में कहा गया है कि 'वचनमात्रे प्रथमा' अर्थात् जहाँ केवल वचन बताना हो, वहाँ प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। वचन किसी वस्तु आदि की सङ्ख्या को कहते हैं।

वचनमात्र का उदाहरण–एकः, द्वौ, बहवः–में क्रमशः एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन संज्ञाओं (एक, दो या बहुत) का बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग हुआ है। यहाँ वचनमात्र के बोध में ही प्रथमा समझनी चाहिये, वचनमात्र के आधिक्य का अर्थ नहीं लेना चाहिए। यहाँ अभिहित होने से प्रथमा विभक्ति प्राप्त नहीं थी, इसलिए वचन का प्रयोग किया गया है; क्योंकि नियम है कि जिस अर्थ का किसी शब्द द्वारा प्रतिपादन हो गया हो तो उसके लिए दूसरे शंब्द का प्रयोग नही होता है। प्रथमा प्राप्त न होने से 'वचन' का विधान हुआ।

सूत्र–सम्बोधने च 2।3।47।।

इह प्रथमा स्यात्। हे राम।

अर्थ–(प्रातिपदिकार्थ से अधिक) सम्बोधन के अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है।

उदा०–हे राम–में। यहाँ प्रातिपदिकार्थ राम व्यक्ति का ज्ञान होने के अतिरिक्त सम्बोधन रूप अर्थ की प्रतीति हो रही है। सम् + बोधन = सम्बोधन में किसी को भली प्रकार बताने का अर्थ होता है, अपनी ओर आकृष्ट करने का अर्थ होता है।

9.3 कर्मकारक-द्वितीया विभक्ति

सूत्र-कारके 1।4।23।।

इत्यधिकृत्य।

अर्थ-यह अधिकार सूत्र है। आगे आने वाले सूत्रों के साथ 'कारके' का अन्वय करके अर्थ समझना चाहिए। 'अधिकारसूत्र' उस सूत्र को कहते हैं, जो अपने स्थान पर वाक्यार्थ-बोध न होने पर दूसरे सूत्रों के साथ अन्वित होकर अर्थ का बोध कराता है। 'स्वदेशे वाक्यार्थशून्यत्वे सति परदेशे वाक्यार्थबोधकत्वम्'। 'कारके' एकवचनान्त है, तथापि इसका बहुवचनान्त अर्थ लिया जायेगा-'कारकेषु मध्ये'। 'कारक' का अर्थ है 'करोतीति कारकम्' क्रिया को करने वाला अर्थात् जिसका क्रिया के साथ सम्बन्ध हो, वह कारक है। कारक छः हैं-

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्येवं कारकाणि षट्।।

सम्बन्ध कारक नहीं है, उसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं होता। जो वस्तु किसी कार्य की पूर्ति में सहयोग देती है, वह कारक कहलाती है। कारक, हेतु और निमित्त का पर्यायवाची कहा जा सकता है। वे सभी कारण और सभी अवस्थाएँ जो कार्य की पूर्ति में योग देती हैं, कारक कही जाती हैं।

9.3.1 कर्मकारक का सामान्य परिचय

सूत्र-कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1।4।49।।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। कर्तुरिति किम्। माषेष्वश्वं बध्नाति। अत्र कर्मण ईप्सिता माषाः, न कर्तुः तमब्ग्रहणं किम्? पयसा ओदनं भुङ्क्ते। कर्मेत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्त्यर्थम्। अन्यथा-'गेहं प्रविशति' इत्यत्रैव स्यात्।

अर्थ-कर्त्ता अपनी क्रिया द्वारा जिसे विशेष रूप से प्राप्त करना चाहता है, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। कर्त्ता जिसको सबसे अधिक चाहता है, उसे कर्म कहते हैं। जिसे प्राप्त करना अत्यन्त अभीष्ट हो। कर्त्ता की क्रिया से जिस पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, वह कर्म कारक होता है।

विस्तृत अर्थ-कर्तुः किम्? अर्थात् 'कर्त्ता की क्रिया' का उल्लेख क्यों किया गया? इसका समाधान यह है कि कर्त्ता को क्रिया द्वारा जो प्राप्त करना अत्यन्त अभीष्ट नहीं होगा, उसकी कर्म संज्ञा नहीं होगी। **उदा०-कटं करोति** (चटाई बनाता है), **ग्रामं गच्छति** (गाँव को जाता है, में 'कट' और 'ग्राम' कर्म हैं। परन्तु 'माषेष्वश्वं बध्नाति' (उड़द के खेत में घोड़े को बाधता है) में यद्यपि 'माष' अश्व द्वारा अभीष्टतम है परन्तु 'बध्नाति' क्रिया का कर्त्ता 'अश्व' नहीं है। इसलिए कर्त्ता (सः जो यहाँ लुप्त है) को अभीष्टतम न होने से 'माष' में द्वितीया न होकर सप्तमी हुई है। 'माष' 'अश्व' को अभीष्ट है, जो स्वयं कर्म है, कर्त्ता को अभीष्ट नहीं है। इसलिए 'कर्तुः क्रियया' ऐसा कहा गया है।

विस्तृत अर्थ-तमब्ग्रहणं.......ईप्सिततमम् (सर्वाधिक चाहा हुआ) ऐसा क्यों कहा गया है? इसके उत्तर में यह उदाहरण है-**पयसा ओदनं भुङ्क्ते** (दूध से या दूध के साथ चावल खाता है)। यद्यपि दूध भी कर्त्ता द्वारा ईप्सित है किन्तु ईप्सिततम 'ओदन' ही है। खाना तो उसे 'चावल' ही मुख्यरूप से है। 'ओदन' का भोजन कर्त्ता को मुख्य रूप से अभीष्ट होने के कारण 'ओदन' में कर्मकारक हुआ और 'पयसा' में ईप्सिततम न होने के कारण करण-कारक हुआ है; कर्म नहीं।

विस्तृत अर्थ-कर्मेत्यनुवृत्तौ 'कर्म' की अनुवृत्ति इस सूत्र के पहले आये हुए 'अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म'

1।4।46 से हो रहीं थी, फिर भी इस सूत्र में 'कर्म' का पुनः प्रयोग इसलिये किया गया है कि आधार की अनुवृत्ति यहाँ न समझ ली जाय। 'अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म' के अनुसार आधार की कर्मसंज्ञा होती है। इस सूत्र में भी आधार की कर्मसंज्ञा होने का नियम न समझ लिया जाय, इसलिए पुनः 'कर्म' शब्द का सूत्र में प्रयोग किया गया। यदि 'आधार की कर्म संज्ञा हो' इस नियम की अनुवृत्ति होती, तब 'गेहं प्रविशति' रूप हो सकता था, क्योंकि 'गेह' कर्त्ता को ईप्सिततम है, किन्तु 'ओदनं पचति' में कर्मकारक नहीं होता, क्योंकि 'ओदन' आधार नहीं है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए कर्तुरीप्सिततमं०, में कर्म की अनुवृत्ति नहीं ग्रहण की गयी है।

सूत्र–अनभिहिते 2।3।1।।

इत्यधिकृत्य।

अर्थ–आगे आने वाले सूत्रों में 'अनभिहित' (न कहा हुआ, अनुक्त) शब्द का अधिकार समझना चाहिये। अर्थात् इन सूत्रों में अनभिहित शब्द का सम्बन्ध समझना चाहिये। अनभिहित का अर्थ है– जो उक्त न हो, जो विशेष पद या पदांश द्वारा न कहा गया हो।

9.3.2 कारक-द्वितीया विभक्ति

सूत्र–कर्मणि द्वितीया 2।3।2।।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि 'प्रातिपदिकार्थमात्रे इति प्रथमैव। अभिधानञ्च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः। तिङ्–हरिः सेव्यते। कृत्–लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः–शतेन क्रीतः शत्यः। समासः–प्राप्तः आनन्दो यं सः प्राप्तानन्दः।

अर्थ–अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जब कर्म का कथन किसी अन्य द्वारा न हुआ हो तो कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। कर्म का अभिधान प्रायः चार प्रकार से होता है–1. तिङ् प्रत्यय द्वारा, 2. कृत् प्रत्यय द्वारा, 3. तद्धित द्वारा, 4. समास द्वारा।

उदाहरण के लिए–तिङ् = **'हरिः सेव्यते'** (हरि की सेवा की जाती है) यहाँ तिङ् प्रत्यय 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्म के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार कर्म तिङ् के द्वारा उक्त हो गया। 'सेव्यते' के प्रत्यय से 'हरि' रूप कर्म उक्त होगा, यह स्पष्ट हो गया। 'हरिः में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्ग०' सूत्र से प्रथमा विभक्ति हुई।

'कृत्' = प्रत्यय का उदाहरण है **लक्ष्म्या सेवितः हरिः** (लक्ष्मी से सेवा किया जाता हुआ) इसमें भी 'सेवितः' में 'क्त' प्रत्यय 'तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः' सूत्र से कर्म अर्थ में हुआ है। अतः 'क्त' प्रत्यय से कर्म उक्त हो गया।

तद्धित = शतेन क्रीतः = शत्यः (सौ देकर खरीदा हुआ) में 'शत्यः' तद्धितान्त से कर्म का बोध होता है, 'तेन क्रीतम्' सूत्र से शत से यत् प्रत्यय हुआ है, जो क्रयण क्रिया के कर्म के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार यत् प्रत्यय से कर्म उक्त हो गया है।

समास द्वारा–प्राप्त आनन्दो यम् स **प्राप्तानन्दः**। (जिसको आनन्द ने प्राप्त कर लिया है) यहाँ कर्म के अर्थ में बहुव्रीहि समास हुआ है। प्राप्ति क्रिया के कर्म 'जन' का उल्लेख यहाँ नहीं है, किन्तु प्राप्तानन्दः समास उसका विशेषण है, अतः यहाँ प्रातिपदिकार्थ मानकर प्रथमा विभक्ति हुई है।

उदाहरण–हरिं भजति (हरि को भजता है)। जहाँ कर्म क्रिया द्वारा उक्त हो, वहाँ प्रातिपदिकार्थ होने के कारण 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' सूत्र से प्रथमा विभक्ति होगी। उपर्युक्त उदाहरण में कर्त्ता का अभिधान 'भजति' क्रिया के 'ति' प्रत्यय द्वारा किया गया है, किन्तु कर्म का किसी भी क्रियादि

द्वारा अभिधान नहीं हुआ है, अतः कर्म अनभिहित है। इस कारण सूत्र द्वारा 'हरिम्' में द्वितीया हुई है।

विशिष्ट वक्तव्य–क्वचिन्निपातेनाभिधानम्। यथा–विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्। साम्प्रतमित्यस्य हि युज्यत इत्यर्थः।

कहीं-कहीं कर्मकारक निपात द्वारा भी उक्त समझा जाता है, यथा–विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (विष का पेड़ भी बढ़ाकर स्वयं काटना उचित नहीं) 'विषवृक्षोऽपि' का सम्बन्ध 'असाम्प्रतम्' के साथ है। असाम्प्रतम् का अर्थ है 'न साम्प्रतम्'। इसका अर्थ है? न युज्यते (नहीं उचित है)। 'साम्प्रतम्' निपात है इसका अर्थ 'युज्यते' है जो 'युज्' के कर्मवाच्य का रूप है। इससे कर्म उक्त हो गया।

कुछ लोग निपातों के अनेकार्थ होने से 'अपि' से कर्म का अभिधान मानते हैं। वस्तुतः 'युज्यते' तिङ् से यहाँ कर्म का अभिधान हुआ है।

9.3.3 विशिष्ट कर्म-कारक

सूत्र-तथायुक्तं चानीप्सितम् 1।4।50।।

ईप्सिततमवत् क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।

अर्थ–जब कोई पदार्थ कर्त्ता द्वारा अत्यधिक ईप्सित (चाहा हुआ) नहीं होता है फिर भी क्रिया से जिसका ईप्सित के समान अत्यधिक सम्बन्ध होता है तो उस अनीप्सित पदार्थ में भी कर्म कारक होता है।

1. उदाहरण–ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गाँव जाते हुए तिनके को छूता है) में 'तृण' कर्त्ता को अभीप्सित नहीं है परन्तु छुना (स्पृशति) क्रिया के साथ 'तृण' का अत्यधिक सम्बन्ध है, क्योंकि छूने (स्पर्श) की क्रिया 'तृण' पर होती है, इससे अभीप्सित न होने पर भी, क्रिया के साथ अत्यधिक सम्बन्ध होने के कारण 'तृण' में कर्मकारक होने से द्वितीया विभक्ति हुई है।

2. उदाहरण–ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते (भात खाता हुआ विष खा लेता है) में 'विष' कर्त्ता को ईप्सित नहीं है (होना भी नहीं चाहिये) परन्तु 'भुङ्क्ते' क्रिया के साथ उसका अत्यधिक सम्बन्ध है। न चाहते हुए भी खा लेता है। अतः 'विष' में कर्म कारक होगा, द्वितीया विभक्ति होगी।

9.3.4 गौण-कर्म विचार

सूत्र-अकथितं च 1।4।51।।

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

अर्थ–अपादान आदि कारकों से जो कारक अविवक्षित होता है अर्थात् अपादान आदि कारकों द्वारा किसी कारक की अभिव्यक्ति न करना हो तो उसकी कर्म संज्ञा होती है। जब अपादान आदि कारक को अपादान आदि के रूप में न कहा जाय, बल्कि केवल साधारण रूप में कहा जाय, तब उसकी कर्मसंज्ञा होती है, उसे गौणकर्म कहते हैं, वस्तुतः उसमें कर्म से भिन्न अर्थ की प्रतीति होती है।

विशिष्टार्थ–दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।।

दुहादीनां द्वादशानां नीप्रभृतीनां चतुर्णां कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्मेति परिगणनं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

1. दुह् (दुहना), 2. याच् (माँगना), 3. पच् (पकाना), 4. दण्ड् (दण्ड देना), 5. रुध् (रोकना), 6. प्रच्छ् (पूछना), 7. चि (चुनना), 8. ब्रू (कहना), 9. शास् (शिक्षा देना), 10. जि (जीतना), 11. मथ् (मथना), 12. मुष् (चुराना), इन बारह क्रियाओं (और इनकी पर्यायवाची क्रियाओं) तथा 1. नी, 2. हृ, 3. कृष्,

4. वह् आदि ढोना या ले जाना अर्थ वाली चार धातुओं के साथ प्रधान कर्म (Direct object) से जिसका सम्बन्ध होता है, उसे अकथित कर्म कहते हैं। इन धातुओं के ही जो अपादान आदि कारक होते हैं, उनकी अपादान आदि के रूप में विशेष विवक्षा न हो तो उन अविवक्षित अपादान आदि की कर्म संज्ञा होती है। वे इन धातुओं के प्रधान कर्म से सम्बद्ध होने के कारण गौण कर्म कहलाते हैं। अपादानादि की विवक्षा न करने के कारण कर्म कारक होने से अकथित कर्म हुए। इन्हीं धातुओं या इनके समानार्थक धातुओ की ही, अपादान आदि की विवक्षा न कर कर्म संज्ञा की जानी चाहिए, इस कारण इनकी गणना कर दी गयी है।

उदाहरण–गां दोग्धि पय:। बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्त: शतं मुष्णाति। ग्रामसजां नयति, हरित, कर्षति, वहति वा।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति, इत्यादि। कारकं किम्? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति।

1. गां दोग्धि पय: (गाय से दूध दुहता है) 'गो' सामान्यत: अपादान है परन्तु यहाँ अपादान की विशेष विवक्षा नहीं है। अत: गो में कर्म कारक होगा (अपादान की विवक्षा होने पर गाय में पञ्चमी होगी– 'गोर्दोग्धि पय:')।

2. बलिं याचते वसुधाम्–(बलि से पृथ्वी माँगता है) में 'बलि' गौण कर्म है तथा माँगने की क्रिया का निमित्त है। अपादान की विवक्षा न होने से कर्म कारक हुआ है। इसी प्रकार **अविनीतं विनयं याचते** (अविनयी से विनय की याचना करता है)।

3. तण्डुलानोदनं पचति–(चावल से भात बनाता है) में 'चावल' करण कारक है, परन्तु उसकी विवक्षा न होने से कर्म संज्ञा हुई है, अत: 'तण्डुलान्' में द्वितीया हुई है।

4. गर्गान् शतं दण्डयति–(गर्गों को (से) सौ रुपया दण्ड लगाता है) अपादान की विवक्षा नहीं है। अत: गर्ग में कर्मकारक होता है।

5. व्रजमवरुणद्धि गाम्–(वज्र में गायों को रोकता है) में 'व्रज' अधिकरण है, किनतु विवक्षा न होने से कर्मकारक हुआ।

6. माणवकं पन्थानं पृच्छति–(लड़के से रास्ता पूछता है) में माणवक में आपादान की विवक्षा की अभाव में कर्मकारक होता है।

7. वृक्षमवचिनोति फलानि (पेड़ों से फल तोड़ता है) उदाहरण में अपादान की विशेष विवक्षा न होने पर 'अकथितं च' से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई।

8, 9. माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा–(बालक को धर्म कहता है या शिक्षा देता है) में सम्प्रदान विवक्षित नहीं है। अत: माणवक में कर्मकारक होता है।

10. शतं जयति देवदत्तम् (देवदत्त से सौ जीतता है) में अपादान की विशेष विवक्षा नहीं है। अत: देवदत्त में कर्मकारक होता है।

11. सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (अमृत के लिए क्षीरनिधि को मथता है) में सम्प्रदान की विशेष विवक्षा न होने से सुधा में कर्मकारक हुआ है।

12. देवदत्तं शतं मुष्णाति (देवदत्त से सौ चुराता है) में अपादान की विशेष विवक्षा न होने से कर्म कारक हुआ है।

13-16. ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति वहति वा (अजा को गाँव ले जाता है) में 'ग्राम' में अधिकरण कारक की विवक्षा नहीं हुई है, अत: ग्राम में कर्म संज्ञा हुई है।

(उपर्युक्त क्रियाओं की पर्यायवाची क्रियाओं में भी द्वितीया विभक्ति होती है।)

विशिष्ट कथन–इन धातुओं की समानार्थक धातुओं के योग में भी जिसकी अपादान आदि द्वारा विशेष विवक्षा न हो, उसकी कर्मसंज्ञा होगी। यह कर्मसंज्ञा का विधान धातुओं के अर्थ के ऊपर आधारित है। ऐसा नहीं कि केवल इन 16 गिनायी गयी धातुओं तक ही सीमित हो। इन धातुओं की पर्यायवाची धातुओं के योग में भी कर्मसंज्ञा होती है।

उदा०–बलिं भिक्षते वसुधाम्-में याच् के स्थान पर भिक्ष् धातु का प्रयोग है। **माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति वा**- में 'ब्रू' के पर्यायवाची अभिधा एवं वच् धातुओं का प्रयोग है, फिर भी अपादान की विशेष विवक्षा न होने से माणवक तथा बलि में कर्मसंज्ञा हुई है।

कारक क्यों कहा गया है? 'माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति' (बालक के पिता से मार्ग पूछता है) में पूछना क्रिया का सम्बन्ध 'पिता' से है, माणवक से नहीं। माणवक कारक नहीं है, अत: कर्मसंज्ञा नहीं हुई।

वार्त्तिक–अकर्मकधातुभिर्योगे देश: कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्।
कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमास्ते।

अर्थ–अकर्मक धातुओं के योग में देश, समय, भाव या दशा तथा चलकर पार करने योग्य मार्ग–इन सब की कर्म संज्ञा होती है।

उदा०–कुरून् स्वपिति (कुरु देश में सोता है) में 'कुरु' देश है, तथा 'स्वप्' धातु अकर्मक है, अत: 'कुरु' में कर्म संज्ञा हुई।

मासमास्ते (महीने भर रहता है) में 'मास' समय बताता है। 'आस्' अकर्मक धातु है। समयवाचक शब्द 'मास' की कर्मसंज्ञा हुई। कर्मणि द्वितीया से द्वितीया होती है।

गोदोहमास्ते (गाय दुहने तक ठहरता है) में 'गोदोहम्'–भाव या अवस्था को बताता है। 'आस्' अकर्मक धातु है, अत: भाववाचक 'गोदोह' की कर्मसंज्ञा हुई और उसमें द्वितीया विभक्ति हुई।

क्रोशमास्ते (कोश भर रूकता है) में 'क्रोश' मार्ग की लम्बाई बतलाता है। 'आस्' अकर्मक क्रिया है, अत: 'क्रोश' की कर्मसंज्ञा हुई।

9.3.5 प्रेरणार्थक कर्तृ-कर्म विचार

सूत्र–गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ 1।4।52।।
गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणामकर्मकाणाञ्च अणौ य: कर्त्ता स णौ कर्म स्यात्।

अर्थ–1. गति (चलना), 2. बुद्धि (जानना), 3. प्रत्यवसान (खाना) अर्थ वाली धातुओं का, 4. शब्दकर्मक और 5. अकर्मक धातुओं का जो अण्यन्त अर्थात् अ-प्रेरणार्थक अवस्था में कर्त्ता होता है, वह जब इन क्रियाओं से प्रेरणार्थक बनाते हैं, तो कर्म कारक हो जाता है (जब उपर्युक्त धातुओं से 'णिच्' लगाकर प्रेरणार्थक रूप बनाते हैं तो पहली अवस्था में जो कर्त्ता रहता है, वह कर्म हो जाता है।)।

पाँचों प्रकार के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

उदा०–शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्।।
आसयत् सलिले पृथ्वीं य: स मे श्रीहरिर्गति:।

(1) उदा०–शत्रूनगमयत् स्वर्गम् (शत्रुओं को स्वर्ग भेज दिया) में 'अगमयत्' प्रेरणार्थक क्रिया है। अप्रेरणार्थक में **शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्** होगा, परन्तु इससे जब प्रेरणार्थक बना तो कर्त्ता (शत्रवः) को कर्म (शत्रून्) हो गया। यहाँ गम् गत्यर्थक क्रिया है।

(2) उदा०–बुद्ध्यर्थक = वेदार्थं स्वान् अवेदयत् (उसने अपनों को वेद पढ़ाया) यह प्रेरणार्थक है। अप्रेरणार्थक में–**स्वे वेदार्थमविदुः** (उससे अपनों ने वेद समझा) यहाँ भी प्रेरणार्तक (स्व) कर्त्ता, स्वान् (कर्म) हो गया है, क्रिया विद् 'बुद्धि' (जानना) अर्थ की है।

(3) उदा०–प्रत्यवसानार्थक–आशयत् च अमृतं देवान् (देवताओं को अमृत पिलाया) भी **देवा अमृतमाश्नन्** (देवों ने अमृत पिया) से प्रेरणार्थक है, एतदर्थ देवाः (कर्त्ता) को देवान् (कर्म) हो गया है। यह अश् प्रत्यवसान (भोजनार्थ) अर्थ की क्रिया है।

(4) उदा०–शब्दकर्मक–वेदमध्यापयद् विधिम् (ब्रह्मा को वेद पढ़ाया) में प्रेरणार्थक क्रिया है और **विधिः वेदमध्यैत** (ब्रह्मा ने वेद पढ़ा) से प्रेरणार्थक बना है। पढ़ाने अर्थ की धातु से प्रेरणार्थक होने से विधि; (कर्त्ता) को विधिम् (कर्म) हुआ है। 'अध्यापयत्' शब्दकर्मक धातु है। इसका कर्म शब्द है, अतः 'गतिबुद्धि०' सूत्र से कर्त्ता की प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा हुई।

(5) उदा०–आसयत्सलिले पृथ्वीम् (पृथ्वी को जल में रख दिया) भी **सलिले पृथ्वी आस्त** (पृथ्वी जल पर तैरती रही) से प्रेरणार्थक है, अतः 'पृथ्वी' कर्त्ता का 'पृथ्वीम्' कर्म हो गया है। यह अस् अकर्मक धातु है।

विशिष्ट कथन–गतीत्यादि किम्? पाचयत्योदनं देवदत्तेन।

'गति' (चलना) इत्यादि अर्थ वाली क्रियाओं के विषय में ही ऐसा क्यों कहा गया है? क्योंकि 'पाचयति ओदनं देवदत्तेन' (देवदत्त से ओदन बनवाता है) में 'पच्' धातु है, पच् धातु गत्यर्थक, ज्ञानार्थक, भोजनार्थक, शब्दकर्मक या अकर्मक कुछ भी नहीं है, अतः प्रेरणार्थक में देवदत्त की कर्मसंज्ञा न होकर अनुक्त कर्त्ता होने के कारण उसमें तृतीया विभक्ति हुई।

अण्यन्तानां किम्? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम्, तमपरः प्रयुङ्क्ते गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः। अप्रेरणार्थक क्रिया के कर्त्ता को ही प्रेरणार्थक में कर्म करने का नियम क्यों कहा गया है? इसीलिए कि प्रेरणार्थक क्रिया के कर्त्ता के साथ यह नियम नहीं लागू होगा।

उदाहरणार्थ–गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तम् (देवदत्त यज्ञदत्त को भेजता है) में 'गमयति' प्रेरणार्थक क्रिया है, इसका कर्त्ता है 'देवदत्तः'। यदि कोई दूसरा व्यक्ति देवदत्त को ऐसा करने (यज्ञदत्त को भेजने) की प्रेरणा दे तो वाक्य होगा, **गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः** (विष्णुमित्र देवदत्त के द्वारा यज्ञदत्त को भिजवाता है) और प्रेरणार्थक का कर्त्ता 'देवदत्त' तृतीया विभक्ति में रखा जायगा। कर्म नहीं होगा। अतएव अप्रेरणार्थक क्रियाओं से प्रेरणार्थक बनाते समय उपरोक्त अर्थ की क्रियाओं के कर्त्ता को कर्म होगा, प्रेरणार्थक क्रियाओं से नहीं।

वार्त्तिक–नीवह्योर्न-नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन।

अर्थ–नी, वह (ले जाना) क्रियाओं के अप्रेरणार्थक के कर्त्ता को प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म नहीं होता है; अपितु कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।

उदा०–नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन (भृत्य द्वारा बोझ ढुलवाता है) में 'भृत्यः भारं नयति वहति वा' अण्यन्त क्रिया का नाययति तथा वाहयति का प्रेरणार्थक रूप है। अतः नी, वह के साथ अप्रेरणार्थक के कर्त्ता 'भृत्यः' की प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा न होकर तृतीया विभक्ति (भृत्येन) हुई है।

'नी' और 'वह्' दोनों गत्यर्थक धातुएँ हैं। गत्यर्थक होने से 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०' सूत्र से अण्यन्त

अवस्था के कर्ता को प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म होना चाहिए था, किन्तु इस वार्तिक द्वारा निषेध कर दिया गया है।

वार्त्तिक–नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः (वार्त्तिक) वाहयति रथं वाहान् सूत:।

अर्थ–किन्तु जब 'वह' धातु का कर्त्ता प्रेरणार्थक में नियन्ता (हाँकने वाला सारथि, ले जाने वाला) हो तो उपर्युक्त निषेध का नियम नहीं लागू होता। सामान्य नियम ही होता है अर्थात् (अप्रेरणार्थक) अवस्था के कर्त्ता की प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म संज्ञा होती है।

उदा०–वाहयति रथं वाहान् सूतः (सूत घोड़ों से रथ खिंचवाता है) में 'वाहयति' प्रेरणार्थक क्रिया के साथ नियन्तृकर्तृक 'सूत' कर्त्ता है, इसलिए पहले के नियम के अनुसार 'वाहान्' में कर्म ही होगा, तृतीया नहीं।

वार्त्तिक–आदिखाद्योर्न (वार्त्तिक) आदयति खादयति वा अन्नं बटुना।

अर्थ–अद् तथा खाद् (खाना) धातुओं के अण्यन्त अवस्था में जो कर्त्ता होता है, उसको प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म नहीं होना चाहिये।

'अद्' तथा 'खाद्' दोनों प्रत्यवसान अर्थ की धातुएँ हैं, अत: 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ' सूत्र से अण्यन्त अवस्था के कर्त्ता को प्रेरणार्थक में कर्म होना चाहिये, किन्तु यह वार्तिक निषेध कर देता है।

उदा०–आदयति खादयति वा अन्नं बटुना (बटु को अन्न खिलाता है) 'बटुरन्नमत्ति खादति वा' (बटु अन्न खाता है) से प्रेरणार्थक हुआ है। अत: कर्त्ता 'बटु' में, प्रेरणार्थक क्रिया के साथ कर्मकारक नहीं हुआ है, तृतीया विभक्ति हुयी है।

वार्त्तिक–भक्षेरहिंसार्थस्य न (वार्तिक) भक्षयत्यन्नं बटुना। अहिंसार्थस्य किम्? भक्षयति बलीवर्दान् शस्यम्।

अर्थ–'भक्ष्' धातु का जब हिंसा या चोट पहुँचाना अर्थ नहीं होता है, तो कर्त्ता की प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा नहीं होती। किन्तु जब भक्ष (खाना) धातु से हिंसा या हानि पहुँचाने का अर्थ होगा, तब यहाँ कर्त्ता की प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा होगी।

उदा०–भक्षयत्यन्नं बटुना– यहाँ 'भक्ष्' का हिंसा अर्थ नहीं है। अत: बटु की कर्म-संज्ञा नहीं हुई। हिंसा अर्थ का निषेध क्यों किया गया है? **भक्षयति बलीवर्दान् शस्यम्** (बैलों से फसल को खिलाकर हानि पहुँचवाता है) में 'भक्ष्' हिंसा (हानि पहुँचाने) के अर्थ में है, अत: यहाँ 'बलीवर्दान्' में कर्म कारक ही हुआ है। 'भक्षयत्यन्नं बटुना' में तो अहिंसक अन्न खाने के अर्थ की 'भक्ष' क्रिया होने से 'बटु' में। पशु से सस्य कर्म संज्ञा नहीं होती, किन्तु यहाँ 'भक्ष' का अर्थ खिलाकर हानि पहुँचाना है अत: कर्मसंज्ञा हो जायगी।

वार्त्तिक–जल्पतिप्रभृतीनामुपसङ्ख्यानम्– जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्त:।

अर्थ–'जल्पति' इत्यादि को भी इसी नियम के अन्तर्गत समझना चाहिये। अर्थात् 'जल्प्' आदि धातुओं के विषय में भी यह नियम समझना चाहिए कि जो अण्यन्त अवस्था में कर्त्ता हो तो उसे प्रेरणार्थक दशा में कर्म हो जाता है।

सूत्र में 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ' में शब्दकर्मक धातु का कथन किया गया है, किन्तु 'शब्द करना' अर्थ वाली धातुओं का उल्लेख नहीं है। इसी कारण इस वार्तिक की आवश्यकता पड़ी कि 'शब्द करना' अर्थ की जल्प आदि धातुओं के सम्बन्ध में उपर्युक्त कर्त्ता की कर्म संज्ञा होने का नियम समझना चाहिए।

उदा०–'जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्त:' (देवदत्त पुत्र को धर्म सिखाता है) में 'पुत्र' में कर्म कारक

हुआ है।

वार्त्तिक–दृशेश्च = दर्शयति हरिं भक्तान्।

उदा०–'दर्शयति' के साथ भी कर्मकारक होता है।

उदा०–दर्शयति हरिं भक्तान् (भक्तों को हरि दिखलाता है) में 'दर्शयति' होने से 'भक्तान्' कर्मकारक हुआ है।

सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं, न तु तद्विशेषार्थानाम् इत्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रति इत्यादीनां न। स्मारयति, घ्रापयति वा देवदत्तेन।

इस वार्त्तिक में, सूत्र में बुद्धि के सामान्य अर्थ को ही समझना चाहिये– विशेष अर्थ में नहीं अर्थात् देखना, सूँघना स्मरण करना आदि विशेष प्रकार के ज्ञान का अर्थ नहीं लेना चाहिए, सामान्य प्रकार का ज्ञान ही समझना चाहिये। 'दृश्' (देखना) विशेष प्रकार का ज्ञान है, अत: गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०' सूत्र में बुद्धि अर्थ की धातु का उल्लेख होने पर भी चूँकि वहाँ सामान्य प्रकार के ज्ञान का ही अर्थ है, अत: विशेष प्रकार के ज्ञान 'देखना' के लिए 'दृशेश्च' वार्त्तिक की आवश्यकता हुई।

इसलिये यह सूत्र 'स्मरति' तथा 'जिघ्रति' क्रियाओं के साथ नहीं लगेगा।

उदा०–स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन (देवदत्त को याद करवाता है या सुँघाता है) में 'स्मारयति और 'घ्रापयति' विशेष प्रकार के ज्ञान हैं। अत: देवदत्त में कर्म नहीं हुआ है। विशेष अर्थ न बताने पर कर्म होता।

वार्त्तिक–शब्दाययतेर्न (वार्त्तिक) शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थ-सङ्गृहीतकर्मत्वेन अकर्मकत्वात् प्राप्ति:।

अर्थ–'शब्दाययति' क्रिया के कर्त्ता की प्रेरणार्थक अवस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती है।

उदा०–शब्दाययति देवदत्तेन। यहाँ देवदत्त मे कर्मकारक नहीं होगा। कर्त्ता के अनुक्त होने से 'देवदत्त' में तृतीया विभक्ति हुई। अब विचारणीय यह है कि 'शब्दाय' धातु के अर्थ में ही उसके कर्म का ग्रहण हो जाता है, अत: 'शब्दाय' धातु अकर्मक हो गई और इस प्रकार 'गतिबुद्धि०' सूत्र के अनुसार अकर्मक धातु के कर्त्ता की प्रेरणार्थक अवस्था में कर्मसंज्ञा होनी चाहिए थी। इसी का निषेध इस वार्त्तिक द्वारा किया गया है कि कर्मसंज्ञा न हो।

9.3.6 अकर्मक क्रिंया-कर्मकथन

विशिष्ट कथन–येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति तेऽत्राकर्मका: न तु अविवक्षितकर्माणोऽपि। अपि च 'मासमासयति देवदत्तम्' इत्यादौ कर्मत्वं भवत्येव। 'देवदत्तेन पाचयति' इत्यादौ तु न।

अर्थ–'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ०' सूत्र में अकर्मक धातुओं से तात्पर्य है, जिसका कर्म समय या स्थान के अतिरिक्त दूसरा नहीं होता अर्थात् जिनका कर्म समय या स्थान ही होता है। उन धातुओं से तात्पर्य नहीं है, जो सकर्मक हैं, परन्तु वक्ता की इच्छा के अनुसार अकर्मक रूप में प्रयुक्त होती हैं।

उदा०–मासमासयति देवदत्तम् में 'मासम्' कालवाचक कर्म है–'आसयति' अकर्मक क्रिया है, अत: 'देवदत्त' में प्रेरणार्थक अवस्था में 'गतिबुद्धि०' सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई है।

परन्तु 'देवदत्तेन पाचयति' में 'देवदत्त' में कर्म कारक प्रयुक्त नहीं हुआ है, तृतीया हुई है; क्योंकि वहाँ धातु का कर्म विवक्षित नहीं है–कर्म है 'ओदन'–जो न तो देश और न काल है।

सूत्र–हृक्रोरन्यतरस्याम् 1।4।53।। हृक्रो: अणौ य: कर्त्ता स णौ वा कर्मसंज्ञ: स्यात्। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्।

अर्थ–हृ (ले जाना) कृ (करना) धातुओं के अप्रेरणार्थक में जो कर्त्ता होता है, वह जब इन क्रियाओं से

प्रेरणार्थक बनाते हैं तो विकल्प से कर्म हो जाता है (अर्थात् कर्म भी हो सकता है और कर्ता भी)।

उदा०–हरति भारं भृत्यः (सेवक बोझ ले जाता है) का कर्त्ता (भृत्यः) प्रेरणार्थक **हारयति, भारं भृत्यः भृत्येन वा** (सेवक से बोझ ढुलवाला है) में कर्म (भृत्यं) भी हो सकता है और कर्ता (भृत्येन) भी।

उदा०–इसी प्रकार करोति कटं भृत्यः (सेवक चटाई बनाता है) से प्रेरणार्थक कारयति कटं भृत्यं भृत्येन वा (सेवक से चटाई बनवाता है) में कर्मकारक व कर्ता भी रहता है। इन दोनों उदाहरणों का विग्रह इस प्रकार है–(1) भृत्यः कटं हरति, तम् अन्यः प्रेरयति इति हारयति भृत्यं भृत्येन वा कटम्। (2) भृत्यः कटं करोति, तमन्यः प्रेरयति इति कारयति भृत्यं भृत्येन वा कटम्।

वार्त्तिक–अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् (वार्त्तिक) अभिवादयते, दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा।

अर्थ–'अभि + वद्' तथा 'दृश्' धातुएँ जब साधारण-अप्रेरणार्थक रूप में रहती हैं, तो इनसे आत्मनेपद में प्रेरणार्थक का रूप बनाने पर इनके कर्त्ता की विकल्प से कर्म संज्ञा होती है।

उदा०–अभिवादयते देवं भक्तं भक्तेन वा (भक्त से देव को प्रमाण करवाता है) **अभिवदति देवं भक्तः** से प्रेरणार्थक बना है, जिसमें धातु का प्रयोग आत्मनेपद में हुआ है (अभिवादयते)। अतः अप्रेरणार्थक क्रिया (अभिवदति) के कर्त्ता (भक्तः) को प्रेरणार्थक आत्मनेपद क्रिया (अभिवादयते) के साथ कर्म कारक (भक्तम्) हुआ तथा अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति (भक्तेन) होगी।

उदा०–इसी प्रकार **दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा** में भी **भक्तः देवं पश्यति** से प्रेरणार्थक है एवं आत्मनेपद क्रिया 'दर्शयते' है। अतः 'भक्तः' कर्त्ता में कर्म या तृतीया होगी।

9.3.7 अधिकरण के स्थान पर कर्म

सूत्र–अधिशीङ्स्थासां कर्म 1।4।46।।

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्। अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः।

अर्थ–'अधि' उपसर्ग से युक्त 'शीङ्' (सोना), 'स्था' (ठहरना), 'आस्' (बैठना) धातुओं के आधारभूत स्थल की कर्म संज्ञा होती है।

उदा०–अधिशेते वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में सोते हैं) में अधि पूर्वक 'शीङ्' (अधिशेते) क्रिया का आधार 'वैकुण्ठ' है, उसमें कर्मकारक हुआ है।

उदा०–इस प्रकार **अधितिष्ठति वैकुण्ठं हरिः** में अधि पूर्वक 'स्था' धातु तथा 'अध्यास्ते वैकुण्ठं हरिः' में अधिपूर्वक 'आस्' धातु के आधार में कर्म कारक हुआ और द्वितीया विभक्ति हुई)।

सूत्र–अभिनिविशश्च 1।4।47।।

'अभिनि' इत्येतत्सङ्घातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्। अभिनिविशते सन्मार्गम्।

अर्थ–'अभि' तथा 'नि' उपसर्ग अब एक साथ 'विश्' धातु के साथ आते हैं, तो उस धातु के आधार की कर्म संज्ञा हो जाती है। अभिनिविश् = प्रवेश करना।

उदा०–अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग में मन लगाता है)–यहाँ क्रिया का आधार 'सन्मार्ग' है। आधार में सप्तमी होनी चाहिए, परन्तु 'अभि' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक 'विश्' धातु का आधार होने से 'सन्मार्गम्' कर्मकारक हुआ है तथा द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशिष्ट कथन–किन्तु **पापेऽभिनिवेशः** में 'पापे' में कर्म में द्वितीया न होकर आधार में सप्तमी हुई है। इसे ही स्पष्ट करने के लिए कहा गया है–

'परिक्रयणे सम्प्रदानम्०' इति सूत्रादिह मण्डुकप्लुत्या 'अन्यतरस्याम्' ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् क्वचिन्न, पापेऽभिनिवेशः।

स्पष्टीकरण–पहले कहे हुए नियम का विकल्प भी होता है। **'परिक्रयणे सम्प्रदानम्'** (1।4।44 यहाँ 49) सूत्र के 'अन्यतरस्याम्' का अर्थ भी इस सूत्र के साथ समझना चाहिए। यद्यपि सूत्र संख्या 1।4।44 तथा वर्त्तमान सूत्र 'अभिनिविशश्च' 1।4।47 के बीच दो अन्य सूत्र भी आये हैं, फिर भी मण्डूकप्लुतिन्याय से (मेढ़क की तरह उछलकर) 'परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्' सूत्र से 'अन्यतरस्याम्' का सम्बन्ध इस सूत्र के साथ भी हो जायेगा। ऐसी दशा में कहीं-कहीं आधार में अभिनि + विश् धातु के होने पर भी कर्मकारक नहीं होता है, अधिकरण ही होता है।

उदा०–पापेऽभिनिवेशः (पाप में मन की प्रवृत्ति) में अभि + नि + विश् (अभिनिवेश:) के आधार की विकल्प से कर्म संज्ञा नहीं हुई। अत: पाप के अधिकरण कारक होने से सप्तमी का भी प्रयोग हो गया। यहाँ व्यवस्थितविभाषा का नियम ग्रहण किया जाता है अर्थात् सूत्र का विषय कृदन्त क्रिया में नियम यह हो जाता है कि वहाँ कर्म नहीं होता– यह समझना चाहिए।

सूत्र–उपान्वध्याङ्वसः 1।4।48।।

उपादिपूर्वस्य, वसतेराधार: कर्म स्यात्। उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठं हरि:।

अर्थ–यदि 'वस्' (रहना) धातु के पहले उप, अनु, अधि, आङ् में कोई भी उपसर्ग हो, तो क्रिया के आधार में कर्म कारक होता है।

उदा०–उपवसति वैकुण्ठं हरिः। अनुवसति वैकुण्ठं हरिः। अधिवसति वैकुण्ठं हरिः। आवसति वैकुण्ठं हरिः आदि वाक्यों में उपादिपूर्वक वस् क्रिया का आधार वैकुण्ठ है, जिसमें कर्म कारक हुआ है। तब वैकुण्ठं में द्वितीया विभक्ति हुई है।

वार्त्तिक–अभुक्त्यर्थस्य न' (वार्त्तिक) वने उपवसति।

अर्थ–किन्तु 'उपवस' से 'उपवास करने'–न खाने के अर्थ में, आधार में कर्म कारक नहीं होगा।

उदा०–वने उपवसति (वन में उपवास करता है) में उप पूर्वक 'वस्' धातु उपवास करने (न खाने) के अर्थ में आयी है। अत: इसके आधार 'वन' कर्म में द्वितीया विभक्ति न होकर आधार में सप्तमी विभक्ति होगी।

9.3.8 उपपद द्वितीया विभक्ति

यहाँ से उपपद द्वितीया विभक्ति के नियम है। सभी विभक्तियाँ दो प्रकार की हैं–1. कारक विभक्ति, 2. उपपद विभक्ति। कारक विभक्ति-कर्म आदि कारक के अर्थ में होती है। उपपद विभक्ति– किसी पद के योग में आती है।

वार्त्तिक–उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।

उभयत: कृष्णं गोपा:। सर्वत: कृष्णम्। धिक् कृष्णाभक्तम्। उपर्युक्तपरि लोकं हरि:। अध्यधिलोकम्। अधोऽधो लोकम्।

अर्थ–उभयत:, सर्वत:, धिक् तथा उपर्युपरि, अधोऽध:, अध्यधि-, तीनों आम्रेडितान्त शब्दों तथा इनमें भिन्न दूसरे शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है।

उदा०–उपभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दोनों और ग्वाले हैं) में उभयत: का सम्बन्ध कृष्ण से है। किसके दोनों ओर? कृष्ण के। अत: कृष्ण में द्वितीया होगी। इस प्रकार सर्वत: कृष्णम् (कृष्ण के सभी ओर) में भी।

उदा०–धिक् कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के भक्त न होने वाले को धिक्कार है) यहाँ धिक् का सम्बन्ध 'कृष्णाभक्त' (कृष्ण के भक्त) से है, क्योंकि उसे ही तो धिक्कारा जा रहा है, अतः 'कृष्णाभक्त' में द्वितीया होगी।

उदा०–उपर्युपरि लोकं हरिः (संसार के ठीक ऊपर समीप में हरि हैं), **अध्यधि लोकम्** (संसार के ठीक समीप में), **अधोऽधो लोकम्** (संसार के ठीक नीचे) यहाँ भी लोक से अत्यधिक सन्निकटता होने से 'लोकम्' द्वितीया विभक्ति हुई है। सामीप्य के अर्थ में ही आम्रेडितान्त (दो आवृत्ति वाले) शब्दों का प्रयोग होता है। 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये'।

'अधोऽधः' का एक प्रसिद्ध प्रयोग 'शिशुपालवध' प्रथम सर्ग में है 'नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्'। 'पयोधरान्' में द्वितीया हुई है। 'ततोऽन्यत्रापि दृश्यते' का तात्पर्य यह है कि जो शब्द यहाँ गिनाये गये हैं, उनके अतिरिक्त भी कई शब्दों के योग में द्वितीया होती है।

वार्त्तिक–अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि।

अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। ग्रामं समया। निकषा लङ्काम्। हा कृष्णाभक्तम्। तस्य शोच्यत इत्यर्थः। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।

अर्थ–अभितः (दोनों ओर), परितः (सब ओर), समया (निकट), निकषा, (समीप), हा (शोक अर्थ में), प्रति-शब्दों के साथ जिस शब्द की निकटता पायी जाती है, उसमें द्वितीया विभक्ति होतीं है।

उदा०–अभितः कृष्णम् (कृष्ण के दोनों ओर निकट), **लङ्कां निकषा** (लङ्का के निकट), **हा कृष्णाभक्तम्** (हाय, कृष्ण के अभक्त), **बुभुक्षितं न प्रति भाति किञ्चित्** (भूखे आदमी को कुछ सूझता नहीं है)।

अभि तथा परि से तसिल् पत्यय लगाने पर अभितः, परितः–शब्द बने, जो अव्यय हैं। 'पर्यभिभ्यां तसिल्' सूत्र से।

निकषा तथा अन्तिक दोनों समीपवाचक हैं–'निकषाऽन्तिके' तथा 'समयाऽन्तिकमध्ययोः'–अमरकोष। यहाँ प्रति उपसर्ग है।

सूत्र–अन्तराऽन्तरेण युक्ते 2।3।4।।

आभ्यां योगे द्वितीया स्यात्। अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्।

अर्थ–अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना), के योग में द्वितीया होती है।

उदा०–अन्तरा त्वां मां हरिः (तुम्हारे हमारे बीच में हरि हैं), **अन्तरेण हरिं न सुखम्** (हरि के बिना सुख नहीं है)। 'अन्तरा' तथा 'अन्तरेण' दोनों अव्यय हैं।

(कर्मप्रवचनीयसंज्ञा-वर्णन)

सूत्र–कर्मप्रवचनीयाः 1।4।83।।

इत्यधिकृत्य।

अर्थ–इस सूत्र के बाद कर्मप्रवचनीयों पर विचार किया जायेगा। यह अधिकार सूत्र है। आगे आने वाले सूत्रों में इसका अधिकार चलता है। कर्मप्रवचनीय उन पदों को कहा जाता है, जो न तो विशेष क्रिया के द्योतक हैं, न षष्ठी के सम्बन्ध को बताते हैं और न किसी क्रिया पद की अपेक्षा करते हैं। ये सम्बन्ध की विशेषता को प्रकट करते हैं।

क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः।
नापि क्रियापदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः।। (वाक्यपदीय)

ये 'उपसर्ग' तथा 'गति' से भिन्न होते हैं।

कर्मप्रवचनीय' की व्युत्पत्ति है 'कर्म क्रियां प्रोक्तवन्त' इति। जो पहले क्रिया को प्रकट कर चुके होते हैं। 'ये अप्रयुज्यमानस्य क्रियामाहुस्ते कर्मप्रवचनीयाः' = जो अप्रयुक्त धातु की क्रिया को कहते हैं, वे कर्मप्रवचनीय हैं।

यथा–जपमनु प्रावर्षत्– में 'अनु' किसी विशेष क्रिया का बोध नहीं कराता। यह षष्ठी के समान किसी सम्बन्ध को नहीं बताता। किसी दूसरी क्रिया का आक्षेप नहीं सम्भव है, किन्तु इससे जप-सम्बन्धी वर्षण प्रकट होता है, अतः यह विशेष सम्बन्ध का भेदक है।

सूत्र–अनुर्लक्षणे 1।4।84।। लक्षणे द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः स्यात्। गत्युपसर्गसंज्ञापवादः।

अर्थ–लक्षण बताने के अर्थ में 'अनु' कर्मप्रवचनीय संज्ञक होता है। जब किसी विशेष-हेतु को बताना होता है तो 'अनु' कर्मप्रवचनीय होता है। यहाँ 'अनु' की न तो गतिसंज्ञा है और न उपसर्ग संज्ञा। लक्षण की व्युत्पत्ति है–'लक्ष्यतेऽनेति लक्षणम्' जिसके द्वारा सूचित किया जाता है।

उदा०–जपमनु प्रावर्षत् (जप के हेतु से प्रचुर वर्षा हुई) में जप लक्षण है, वर्षा लक्ष्य है। 'अनु' लक्ष्यलक्षण के सम्बन्ध को बताता है। लक्षण के द्योत्य होने से 'अनु' कर्म प्रवचनीय है।

9.3.9 विशिष्ट कर्म प्रवचनीयों में द्वितीया

सूत्र–कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया 2।3।8।।

एतेन योगे द्वितीया स्यात्। जपमनु प्रावर्षत्। हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः। परापि हेताविति तृतीयाऽनेन बाध्यते। लक्षणेत्थंभूतेत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्।

अर्थ–जिसके साथ कर्मप्रवचनीय का योग हो, उससे द्वितीया विभक्ति होगी।

उदा०–जपमनु प्रावर्षत् (जप के कारण प्रचुर वर्षा हुई) यहाँ लक्षणद्योत्य होने से 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है। 'अनु' के योग में आये हुए 'जप' में द्वितीया हुई।

जप हेतु है–उससे वर्षण लक्षित है। इस प्रकार जप लक्षण है, वर्षा लक्ष्य। जप वर्षा का हेतु अर्थात् कारण है।

विशिष्ट कथन–हेतौ 2।3।23।। सूत्र द्वारा हेतु अर्थ में तृतीया होनी चाहिये, परन्तु इस सूत्र के कारण तृतीया का निषेध हो जायेगा। 'लक्षणेत्थंभूताख्यानभावगवीप्सासु प्रतिपर्यनवः' 1।4।90 सूत्र के अनुसार भी 'अनु' कर्मप्रवचनीय है। तो फिर 'अनुर्लक्षणे' में दुबारा कहने की क्या आवश्यकता थी? उसका उत्तर है कि 'लक्षणेत्थंभूता०' से 'अनु' कर्मप्रवचनीय होने पर भी 'हेतौ' से तृतीया हो जायेगी, परन्तु इस सूत्र से पुनः द्वितीया का विधान किया गया है, जिसके तृतीया बाधित हो जाती है।

सूत्र–कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे 2।3।5।।

इह द्वितीया स्यात्। मासं कल्याणी। मासमधीते। मासं गुडधाना। क्रोशं कुटिला नदी। क्रोशमधीते। क्रोशं गिरिः। 'अत्यन्तसंयोगे' किम्? द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः।

अर्थ–अत्यन्त संयोग होने पर काल और गन्तव्य मार्ग को बताने वाले शब्द में द्वितीया-विभक्ति होती है। अत्यन्त संयोग का अर्थ है लगातार कुछ समय तक या कुछ दूर तक कार्य का निरन्तर होना।

उदा०–मासं कल्याणी (महीने भर कल्याणी), **मासमधीते** (महीने भर पढ़ता है), **मासं गुडधानाः** (महीने भर गुड़ मिले धानों का प्रयोग) इन तीन उदाहरणों में 'मास' निरन्तर समय बताता है। मास के साथ 'कल्याणी' 'अध्ययन' तथा 'गुडधाना' का अत्यन्तसंयोग है, अतः 'मास' में द्वितीया विभक्ति हुई।

उदा०–इसी प्रकार **क्रोशं कुटिला नदी** (कोश भर तक नदी टेढ़ी है), **क्रोशमधीते** (कोस भर तक

निरन्तर पढ़ता है) **क्रोशं गिरिः** (कोस भर तक लगातार पर्वत है) यहाँ लगातार कोस भर तक कार्य होने या स्थिति होने के कारण दूरी बताने वाले शब्द 'क्रोश' में द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशिष्ट कथन–अत्यन्त संयोग या कार्य की निरन्तरता होने पर ही द्वितीया क्यों होगी? ऐसा न होने पर–**मासस्य द्विरधीते** (महीने में दो बार पढ़ता है) में तथा **क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः** (कोस के एक भाग में पर्वत है) में समय और दूरी बताने वाले शब्दों 'मास' एवं 'क्रोश' के साथ अध्ययन तथा पर्वत के होने का अत्यन्त संयोग नहीं है अतः 'मास' एवं क्रोश' में द्वितीया न होकर षष्ठी होगी। स्पष्ट है कि इन उदाहरणों में समय या मार्ग की दूरी के साथ-साथ निरन्तर कुछ समय या कुछ दूर तक कार्य का होना या पर्वत की स्थिति का उल्लेख नहीं है, एतदर्थ द्वितीया नहीं हुई है।

इकाई–9

अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) निम्नलिखित सूत्रों की व्याख्या कीजिए–

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा।

(ख) सम्बोधने च।

(ग) कर्तुरीप्सिततमं कर्म।

(घ) अकथितं च।

(ङ) हृक्रोरयतरस्याम्।

(च) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।

(छ) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया।

(ज) उपान्वध्याङ्वसः।

(ii) निम्नलिखित वाक्यों में रेखाङ्कित पदों में सूत्र निर्देश पूर्वक विभक्ति निर्देश कीजिए–

(क)- श्रीः,

(ख)- तटम्

(ग)- द्रोणो व्रीहिः।

(घ)- हरिं भजति।

(ङ)- ओदनं भुञ्जानो विषं-भुङ्क्ते।

(च)- ग्रामं अजां नयति।

(छ)- हरिः वैकुण्ठम्-अधिशेते।

(ज)- क्रोशं कुटिला नदी।

इकाई–10 तृतीया और चतुर्थी विभक्ति

10.0 उद्देश्य

10.1 कर्ता-करण कारक तृतीया विभक्ति

- 10.1.1 कर्ता कारक परिचय
- 10.1.2 सामान्य करण कारक परिचय
- 10.1.3 कारक विभक्ति तृतीया
- 10.1.4 उपपद निमित्तक तृतीया विभक्ति

10.2 सम्प्रदान कारक चतुर्थी विभक्ति

- 10.2.1 सामान्य सम्प्रदान परिचय
- 10.2.2 कारक निमित्तक चतुर्थी
- 10.2.3 विशिष्ट सम्प्रदान कारक
- 10.2.4 उपपद निमित्तक चतुर्थी

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप

कर्ता करण कारक तृतीया विभक्ति के विषय में जान जायेंगे।

सामान्य करण कारक का परिचय समझ सकेंगे।

कारक विभक्ति तृतीया के विषय में जान पायेंगे।

उपपद निमित्तक तृतीया विभक्ति को समझ सकेंगे।

सम्प्रदान कारक चतुर्थी विभक्ति के विभक्ति में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

सामान्य सम्प्रदान का परिचय जान पायेंगे।

कारक निमित्तक चतुर्थी के विषय में जान सकेगें।

विशिष्ट सम्प्रदान कारक का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

उपपद निमित्तक चतुर्थी विभक्ति के विषय में जान जायेंगे।

10.1.1 कर्ता-करण कारक-तृतीया विभक्ति

कर्त्ताकारक परिचय

सूत्र–स्वतन्त्रः कर्त्ता 1।4।54।।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विक्षितोऽर्थः कर्त्ता स्यात्।

अर्थ–क्रिया को सम्पादित करने में जिसकी स्वतन्त्रता विवक्षित हो, उसे कर्त्ता कहते हैं। स्वतन्त्र वह होता है, जो धातु में कहे व्यापार का आश्रय होता है, धातु द्वारा जिस व्यापार या क्रिया का कथन होता है, वह व्यापार या क्रिया जिसमें होती हो, वह कर्त्ता है। धातु के अर्थ में अनेक व्यापार होते हैं, उनमें प्रधान व्यापार के आश्रय को कर्त्ता कहते हैं।

10.1.2 सामान्यकरण कारक परिचय–

सूत्र–साधकतमं करणम् 1।4।42।।

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणसंज्ञं स्यात्। तमब्ग्रहणं किम्? गङ्गायां घोषः।

अर्थ–क्रिया की सिद्धि में जो कर्त्ता को अत्यधिक सहायता पहुँचाता है, वह करणकारक होता है।

विशिष्ट कथन–'तमप्' या 'सर्वाधिक' क्यों कहा गया है? कारण यह है कि जब अत्यधिक सहायक न होगा तो उसमें दूसरी विभक्तियाँ लग सकती हैं; करण निमित्तकविभक्ति नहीं। 'साधकम्' कहने से भी काम चल जाता है। किन्तु यदि प्रकृष्ट सहायक नहीं होता तो साधक होने पर भी दूसरी विभक्ति हो सकती है।

पूर्वोक्त का **उदा०**–'गङ्गायां घोषः' उदाहरण में = 'आधारोऽधिकरणम्' में 'तमप्' का अर्थ नहीं है, अतः मुख्य आधार के अतिरिक्त गौण आधार में भी अधिकरण संज्ञा और सप्तमी विभक्ति होगी। 'गङ्गा' मुख्य आधार न होकर गौण आधार है। 'साधकतमं करणम्' में 'तमप्' का अर्थ लेने पर ही 'प्रकृष्ट उपकारक' की करण संज्ञा हो, ऐसा समझा जायेगा।

2.1.3 कारक विभक्ति-तृतीया–

सूत्र–कर्तृकरणयोस्तृतीया 2।3।18।।

अनभिहिते कर्त्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली।

अर्थ–जब कर्त्ता अनभिहित अर्थात् अप्रधान या अनुक्त होता है (भाववाच्य और कर्मवाच्य में) तो कर्त्ता में तथा अनुक्त करण में तृतीया होती है।

उदा०–रामेण बाणेन हतो बाली (राम के बाण से बाली मारा गया) में 'राम' हनन क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित है–अतः कर्त्ता है, अनभिहित कर्त्ता होने से तृतीया विभक्ति हुई। हनन क्रिया में प्रकृष्ट उपकारक 'बाण' है, उसकी करणसंज्ञा हुई और तृतीया विभक्ति हुई।

वार्त्तिक–प्रकृत्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम्।

प्रकृत्या चारुः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः। समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि।

अर्थ–प्रकृति इत्यादि शब्दों में तृतीया होती है। प्रकृति, प्राय, गोत्र, सम (सीधा), विषम (टेढ़ा), द्विद्रोण, पञ्चक, सहस्र, दुःख, सुख आदि में तृतीया होती है।

उदा०–प्रकृत्या चारु (स्वभाव से सुन्दर), **प्रायेण याज्ञिकः** (प्रायः याज्ञिक) **गोत्रेण गार्ग्यः** (गोत्र से गार्ग्य), **समेनैति** (सीधा, बराबर जाता है), **विषमेणैति** (टेढ़ा जाता है), **द्विद्रोणेन क्रीणाति** (दो द्रोण से धान्य खरीदता है), **सुखेन दुःखेन वा याति** (सुख या दुःखपूर्वक जाता है)।

सूत्र–दिवः कर्म च 1।4।43।।

दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्, चात्करणसंज्ञम्। अक्षैरक्षान्वा दीव्यति।

अर्थ–'दिव् (जुआ खेलना) क्रिया का जो अत्यधिक सहायक कारक होता है, उसकी कर्म और करण संज्ञा होती है। उसमें द्वितीया या तृतीया होती है।

उदा०–'अक्षैः, अक्षान् वा दीव्यति' (पासों से या पासों को खेलता है) में 'दिव्' क्रिया का साधकतम 'अक्ष' है, इस कारण कर्म व करण होने से द्वितीया या तृतीया दोनों हुई हैं।

10.1.4 उपपद निमित्तक तृतीया विभिक्ति

सूत्र–अपवर्गे तृतीया 2।3।6।।

अपवर्गः फलप्राप्तिस्तस्यां द्योत्यायां काला-ध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्। अह्ना, क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः। अपवर्गे किम्? मासमधीतो नायातः।

अर्थ–अपवर्ग अर्थ में तृतीया होती है। 'अपवर्ग' फलप्राप्ति या कार्यसिद्धि को कहते हैं। अपवर्ग या फलप्राप्ति द्योत्य होने पर कालवाची तथा मार्ग की दूरी बताने वाले शब्दों में अत्यन्त संयोग (निरन्तरता) होने पर तृतीया होती है। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र के समान ही यह नियम भी है, अन्तर केवल इतना है कि इसमें कार्य की सिद्धि स्पष्ट होती है।

उदा०–अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः (एक दिन में, या एक कोस चलते-चलते अनुवाक को पढ़ लिया) यहाँ काल तथा दूरी की निरन्तरता के साथ-साथ कार्य की सिद्धि (पढ़ लिया) भी कही गई है, अत: काल तथा मार्ग की दूरी बताने वाले शब्दों में तृतीया हुई है–अह्ना, क्रोशेन।

अपवर्ग होने पर ही क्यों? क्योंकि कार्य की पूर्ति का निर्देश न होने पर तृतीया नहीं होगी। **मासमधीतो नायातः** (महीने भर पढ़ा किन्तु आया नहीं) में कार्यसिद्धि का निर्देश न होने से तृतीया न होकर द्वितीया ही होगी (मासम्)।

सूत्र–सहयुक्तेऽप्रधाने 2।3।19।।

सहार्थेन युक्ते अप्रधाने तृतीया स्यात्। पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकं, सार्धं समंयोगेऽपि। विनापि तद्योगं तृतीया 'वृद्धो यूना' इत्यादिनिर्देशात्।

अर्थ–सह (साथ) तथा उसके समानार्थक साकं, सार्ध, समं– आदि का अर्थ बताने वाले शब्दों के योग में अप्रधान में तृतीया होती है। प्रधान उसको कहते हैं जो क्रिया का कर्त्ता होता है, जिसका सम्बन्ध क्रिया से होता है, अप्रधान वह होता है, जिसका क्रिया के साथ-साथ सम्बन्ध अर्थ के आधार पर ज्ञान होता है। उस अप्रधान में तृतीया होती है।

उदा०–पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्र के साथ पिता आया) इसमें पिता प्रधान है, आगतः का कर्त्ता है। प्रधान का साथ देने वाले अप्रधान (पुत्र) में 'सह' के योग में तृतीया हुई है। इसी प्रकार **साकं, सार्धं, समं** के योग में भी अप्रधान में तृतीया होती है। जब ये शब्द नहीं रहते हैं, छिपे रहते हैं तो भी अप्रधान में तृतीया होती है। **वृद्धो यूना०** (युवक के साथ वृद्ध) में सह का उल्लेख स्पष्ट न होने पर भी **'यूना'** में तृतीया हुई है, क्योंकि सह अर्थ की प्रतीति होती है।

सूत्र–येनाङ्गविकारः 2।3।20।।

येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया स्यात्। अक्ष्णा काणः। अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः। 'अङ्गविकारः' किम्? अक्षिकाणमस्य।

अर्थ–जिस अङ्ग के विकारयुक्त होने से व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर का विकार बतलाया जाय, उस अङ्गवाचक शब्द से तृतीया होती है।

'अङ्गविकार' का अर्थ है। 'अङ्गवान् पुरुष का विकार'। 'अङ्ग' में अच् प्रत्यय 'मतुप्' के अर्थ में है।

उदा०–अक्ष्णा काणः (एक आँख से काना) यहाँ व्यक्ति का शारीरिक विकार (काना होना) एक आँख के विकार से बताया गया है, अत: उस अङ्ग (अक्षि) में तृतीया होगी।

अङ्गी का विकार होने से ऐसा नियम क्यों? क्योंकि जब अङ्ग के विकार से व्यक्ति का विकार न कहा गया हो, केवल अङ्ग का विकार उल्लिखित हो तो, व्यक्ति को विकृत न कहा गया हो तो अङ्गवाचक शब्द से तृतीया नहीं होगी।

उदा०–अक्षि काणमस्य (उसकी आँख कानी है।) में 'अक्षि' में तृतीया नहीं हुई।

सूत्र–इत्थम्भूतलक्षणे 2।3।21।।

कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्। जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः।

अर्थ–किसी विशेष प्रकार को प्राप्त किये हुए व्यक्ति को लक्षित करने वाले में तृतीया होती है। किसी

वस्तु या व्यक्ति के किसी विशेष अवस्था को प्राप्त करने की जो सूचना देता हो, उससे तृतीया होती है।

उदा०–जटाभिस्तापसः (जटाओं से तपस्वी है) जहाँ 'जटा' चिह्न से तपस्वी होना जाना जाता है। तापसत्व रूप विशेष अवस्था का ज्ञापक जटा है, अतः जटा से तृतीया विभक्ति हुई।

सूत्र–संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि 2।3।22।।

संपूर्वस्व जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात्। पित्रा, पितरं वा सञ्जानीते।

अर्थ–'सम्' पूर्वक 'ज्ञा' धातु (जानने के अर्थ में) से कर्म में विकल्प से तृतीया होती है।

उदा०–पित्रा पितरं वा सञ्जानीते (पिता को पहचानता है) कर्म (पितृ) में तृतीया (पित्रा) और द्वितीया (पितरं) दोनों होगी। 'संजानीते' में बहुत दिनों बाद देखने पर पहचानने का अर्थ निहित है।

सूत्र–हेतौ 2।3।23।।

हेत्वर्थे तृतीया स्यात्। द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणञ्च हेतुत्वम्। करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च। दण्डेन घटः, पुण्येन दृष्टो हरिः।

अर्थ–जब कोई शब्द हेतु बताता है तो उसमें तृतीया विभक्ति होती है। अर्थात् जिस कारण या प्रयोजन से प्रेरित होकर कोई कार्य होता है उस कारण या प्रयोजन में तृतीया होती है। कोई पदार्थ, गुण या कार्य जिसके द्वारा प्रभावित हो, वह हेतु है। जो फल साधन में समर्थ है, वह हेतु कहलाता है। द्रव्य, गुण, क्रिया तीनों का साधक हेतु होता है। हेतु सव्यापार और निर्व्यापार दोनों ही होता है। करण केवल क्रिया को उत्पन्न करता है और सदैव व्यापारयुक्त में ही रहता है। करण कारक है, अतः क्रियाजनक होता है। इसका व्यापार नियत होता है।

उदा०–हेतु रूप में द्रव्य का उदाहरण है–**दण्डेन घटः।** यहाँ दण्ड से घड़ा बनने में कारण है, अतएव यह 'हेतु' है और इसमें तृतीया हुई है (दण्डेन) दण्ड में व्यापार है परन्तु यह किसी क्रया को उत्पन्न नहीं करता, अतः करण नहीं है, यह घट द्रव्य को उत्पन्न करता है, किसी क्रिया को नहीं।

उदा०–गुण का उदाहरण–**पुण्येन गौरवर्णः** (पुण्य के कारण गोरा) है। यहाँ किसी 'गुण' (पुण्य) के कारण कार्य है, अतः गुण हेतु है। पुण्य में व्यापार नहीं है, वह अमूर्त है।

उदा०–क्रिया हेतु का उदाहरण–**पुण्येन दृष्टो हरिः** (हरि पुण्य से देखे जाते हैं) यहाँ 'पुण्य' व्यापार रहित होने से 'करण' नहीं है, किन्तु 'हरि' के दर्शन रूप कार्य का हेतु है, अतएव 'पुण्य' में तृतीया हुई है। स्पष्ट है कि हेतु, द्रव्य, गुण या क्रिया का हो सकता है।

विशिष्ट कथन–1. फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति। **2. वार्त्तिक-गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका।** अलं श्रमेण। श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्यत्यर्थः।

स्पष्टीकरण–इस सूत्र के अर्थ में 'फल' भी हेतु है। **उदा०**–अध्ययनेन वसति (अध्ययन के लिए रहता है) में वसति (रहने) का फल या ध्येय है अध्ययन। अतः उसमें तृतीया होगी। फल क्रिया के बाद में ही होता है, जब कि हेतु क्रिया से पहले रहता है, किन्तु इस सूत्र में 'हेतु' से फल का भी अर्थ ग्रहण किया जायेगा।

वार्त्तिक का स्पष्टीकरण–जब क्रिया वाक्य में स्पष्ट रूप से उक्त या पठित न हो, फिर भी यदि अर्थमात्र से ही प्रतीत होती हो, तो वह क्रिया भी कारकविभक्ति का हेतु होती है।

उदा०–1. अलं श्रमेण (परिश्रम अनावश्यक है) इस वाक्य में किसी क्रिया का उल्लेख नहीं है, परन्तु **'साधन क्रिया'** की प्रतीति होती है और 'अलं श्रमेण' का अर्थ है **'श्रमेण साध्यं नास्ति'** (परिश्रम से सिद्ध

होने वाला नहीं है)। इस प्रकार प्रतीत होने वाली क्रिया के प्रकृष्ट उपकार 'श्रम' की करण संज्ञा हुई और तृतीया हुई।

2. शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः (सौ-सौ करके बछड़ों को पानी पिलाता है) का अर्थ होगा, सौ-सौ की सङ्ख्या में बाँटकर। यहाँ 'परिच्छिद्य' (बाँटकर) क्रिया के लुप्त होने पर भी उसके प्रकृष्ट साधक करण 'शत' में तृतीया विभक्ति हुई।

वार्त्तिक–अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया। दास्या संयच्छते कामुकः। धर्म्ये तु–भार्यायै संयच्छति।

अर्थ–अशिष्टों के व्यवहार के सम्बन्ध में (अनैतिक कर्म के बारे में) 'दाण्' धातु का प्रयोग होने पर चतुर्थी के अर्थ (सम्प्रदान) में तृतीया विभक्ति होती है।

उदा०–दास्या संयच्छते कामुकः (कामी व्यक्ति अनैतिक सम्बन्ध की इच्छा से दासी को देता है) यहाँ अशिष्ट अर्थात् धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले के व्यवहार के सम्बन्ध में 'दाण्' धातु का प्रयोग है, अतः सम्प्रदान 'दासी' में चतुर्थी न होकर तृतीया हुई; किन्तु उचित व्यवहार या धर्मपूर्ण व्यवहार के सात 'दाण्' का प्रयोग होने पर चतुर्थी होती है।

उदा०–भार्यायै संयच्छति (अपनी स्त्री को देता है) में धर्मपूर्ण दान के अर्थ में 'भार्या' में चतुर्थी हुई है।

4. सम्प्रदान कारक, चतुर्थी-विभक्ति

10.2.1 सामान्य सम्प्रदान परिचय

सूत्र–कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1।4।32।।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

अर्थ–दान क्रिया के कर्म द्वारा जिसकी ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। 'सम्प्रदीयतेऽस्मै इति सम्प्रदानम्' (जिसके लिए दिया जाता है)। दान का अर्थ है देकर फिर न ग्रहण करना, उसे दूसरे का बना देना ही होता है। यहाँ दान क्रिया को उपलक्षण मात्र माना गया है। क्रिया की सिद्धि के लिए कर्म जिसकी ओर विशेष रूप से किया जाय, उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

10.2.2 कारकनिमित्तक चतुर्थी

सूत्र–चतुर्थी सम्प्रदाने 2।3।13।।

अनभिहिते सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्। विप्राय गां ददाति। अनभिहित इत्येव। दानीयो विप्रः।

अर्थ–अनुक्त सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है अर्थात् जहाँ सम्प्रदान अनुक्त हो, वहाँ चतुर्थी होती है।

उदा०–विप्राय गां ददाति (विप्र को गाय देता है)। इसमें 'दा' (देना) क्रिया से सम्बन्धित कर्म 'गो' द्वारा कर्त्ता विप्र की ओर विशेष रूप से जाता है। अतः विप्र की सम्प्रदानसंज्ञा हुई और 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से चतुर्थी हुई। अनभिहित सम्प्रदान के होने पर ही होती है। अभिहित सम्प्रदान होने में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्ग०' से प्रथमा हो जायेगी।

उदा०–दानीयो विप्रः में 'दा' धातु से सम्प्रदान के अर्थ में अनीयर् प्रत्यय है और सम्प्रदान अभिहित हो गया है, अतः विप्र में प्रथमा विभक्ति है।

वार्त्तिक–क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्। पत्ये शेते।

अर्थ–किसी के लिये जब कोई विशेष कार्य किया जाय तो जिसके लिये वह कार्य अभिप्रेत या अभीष्ट हो, उसमें भी चतुर्थी होती है।

उदा०–पत्ये शेते (पति के लिये सोती है) में 'सोना' क्रिया पति के लिये अभिप्रेत है। पति को अनुकूल बनाने की क्रिया द्वारा कर्त्ता का उद्देश्य पति है, अत: सम्प्रदान कारक होने से उसमें चतुर्थी विभक्ति होगी।

वार्त्तिक–यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा।

पशुना रुद्रं यजते। पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः।

अर्थ–यज् (यज्ञ करना) धातु के साथ कर्म की करण कारक संज्ञा होती है और सम्प्रदान की कर्म संज्ञा होती है। यज् धातु के प्रयोग के होने पर जब एक ही वाक्य में कर्म और सम्प्रदान दोनों आयें, तो कर्म की करण संज्ञा तथा सम्प्रदान की कर्मसंज्ञा हो जाती है। अर्थात् कर्म में तृतीया तथा सम्प्रदान में द्वितीया होती है।

उदा०–पशुना रुद्रं यजते वाक्य 'पशुं रुद्राय ददाति' का समानार्थक है, किन्तु पहले वाक्य में कर्म की करणसंज्ञा (पशुना) तथा सम्प्रदान (रुद्राय) जिसके लिये यज्ञ हो रहा है, उसकी कर्मसंज्ञा (रुद्रं) हो गयी है। 'पशुना रुद्रं यजते' का अर्थ है 'पशुं रुद्राय ददाति' (रुद्र के लिये पशु देता है)।

10.2.3 विशिष्टसम्प्रदानकारक

सूत्र–रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।।4।33।।

रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानं स्यात्। हरये रोचते भक्तिः। अन्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचिः। हरिनिष्ठप्रीतेर्भक्तिः कर्त्री। 'प्रीयमाणः' किम्? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि।

अर्थ–रुच् (अच्छा लगना) तथा इस अर्थ की धातुओं के योग में प्रीयमाण की (जिसको अच्छा लगता हो, या जो सन्तुष्ट होता हो उसमें) सम्प्रदान संज्ञा होती है। रुच्यर्थ = रुचिः अर्थः येषाम्-तेषाम्। यहाँ रुचि का अर्थ अभिप्रीति है पसन्द या अच्छा लगना। प्रीयमाण = जिसे प्रसन्न किया जा रहा हो।

उदा०–हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है) में 'हरि' में चतुर्थी होगी। क्योंकि भक्ति से हरि प्रीयमाण है। किसी दूसरी चीज या कर्त्ता से उत्पन्न अभिलाषा या इच्छा को रुचि कहते हैं। यहाँ हरि की प्रसन्नता में भक्ति कर्त्ता है अर्थात् भक्ति हरि की प्रसन्नता या रुचि को उत्पन्न करती है; और भक्ति से प्रीयमाण 'हरि' है, अत: उसकी सम्प्रदान संज्ञा हुई। अत: 'हरि' में चतुर्थी होगी।

उदा०–प्रीयमाण (प्रसन्न होने वाले व्यक्ति) की सम्प्रदान संज्ञा क्यों होगी? **देवदत्ताय रोचते मोदकः पथिः** (देवदत्त को रास्ते में मोदक अच्छे लगते हैं) में 'रास्ता' तो प्रसन्न नहीं होता, अत: उसमें सप्तमी हुई है; देवदत्त को अच्छा लगता है, अत: उसमें सम्प्रदान हुआ है।

सूत्र–श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ।।4।34।।

एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः सम्प्रदानं स्यात्।

उदा०–गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते, शपते वा। 'ज्ञीप्स्यमानः' किम्? देवदत्ताय श्लाघते पथि।

अर्थ–श्लाघ् (प्रशंसा करना) ह्नुङ् (छिपाना), स्था (रुकना), शप् (उपलम्भ देना) क्रियाओं के योग में जिसका बोध कराया जाय, उसमें सम्प्रदान कारक होता है। ज्ञीप्स्यमान का अर्थ है जिसको बतलाना अभीष्ट हो (बोधयितुमिष्टः)।

उदा०–1. गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते–(गोपी स्मरपीड़ा से कृष्ण की प्रशंसा करती है) अर्थात् प्रशंसा करते **समय कृष्ण को अपना प्रेम** बताना चाहती है, अपनी प्रशंसा से अवगत कराना चाहती है;

अतएव 'कृष्ण' ज्ञीप्स्यमान में सम्प्रदान करक होगा।

उदा०–2. कृष्णाय ह्नुते–(कृष्ण को सपत्नियों से छिपाती है)। यहाँ भी कृष्ण को बताने के लिये छिपाती है। छिपाते समय भी चाहती है कि कृष्ण को उसकी कामदशा का पता चल जाय; अत: जिसको बोध कराना है, उस कृष्ण में सम्प्रदान होगा।

उदा०–3. कृष्णाय तिष्ठते–(गोपी स्मरपीड़ा से कृष्ण के लिए रुकती है) में भी कृष्ण को बताना अभीष्ट है, अत: कृष्ण की सम्प्रदान संज्ञा हुई।

उदा०–4. कृष्णाय शपते–(कृष्ण को उलाहना देती है) गोपी उपालम्भ द्वारा कृष्ण को अपना आशय बताना चाहती है।

'ज्ञीप्स्यमान' अर्थात् जिस व्यक्ति को बताना हो, उसमें ही सम्प्रदान क्यों कहा गया है? इसलिये कि दूसरे यथा **देवदत्ताय श्लाघते पथि** (रास्ते में देवदत्त की प्रशंसा करता है) में प्रशंसा का कार्य पथ को बताना नहीं है और न पथ की प्रशंसा हो रही है अत: उसमें सप्तमी ही होगी; चतुर्थी नहीं।

सूत्र–धारेरुत्तमर्णः 1।4।35।।

धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्ण उक्तसंज्ञः स्यात्। भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः। 'उत्तमर्णः' किम्? देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे।

अर्थ–'धारि' (उधार लेना, कर्ज धारण करना) धातु के योग में उत्तमर्ण में (कर्ज देने वाले महाजन- जिसका कर्ज रहता है उसमें) सम्प्रदान कारक होता है।

उदा०–भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्त के लिये मोक्ष का कर्जदार है) यहाँ ऋण हरि के ऊपर है। जिसके प्रति उसका कर्ज है, वह भक्त 'उत्तमर्ण' हुआ, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होगी।

उत्तमर्ण (कर्ज देने वाले) में ही सम्प्रदान क्यों होगा? **देवदत्ताय शतं धारयति ग्रामे** (गाँव में देवदत्त का सौ रुपये का देनदार है) में ग्राम के प्रति वह कर्ज का देनदार नहीं है, अत: 'ग्राम' उत्तमर्ण नहीं है देवदत्त के प्रति ही कर्ज का देनदार है और देवदत्त ही उत्तमर्ण है।

सूत्र–स्पृहेरीप्सितः 1।4।36।।

स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानं स्यात्। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। 'ईप्सितः' किम्? पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति। इप्सितमात्रे इयं संज्ञा। प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसंज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति।

अर्थ–'स्पृह' धातु के योग में जिसके लिये स्पृहा की जाय या जिसे चाहा जाय उसमें सम्प्रदान **कारक** होता है।

उदा०–पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों की इच्छा करता है) में स्पृहा का विषय पुष्प है, अत: **'पुष्प' की** सम्प्रदान संज्ञा होती। 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से चतुर्थी विभक्ति होगी।

'ईप्सित (चाहे हुए) में ही सम्प्रदान क्यों कहा गया है? **पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति** (वन में फूलों की इच्छा करता है) में 'वन' की इच्छा नहीं करता है, अत: उसमें सम्प्रदान न होकर अधिकरण है। केवल ईप्सित (चाहे हुए) में ही सम्प्रदान होगा। ईप्सिततम (विशेष रूप से अभीष्ट) की सम्प्रदान संज्ञा नहीं होगी, **प्रकर्ष** की विवक्षा होने पर 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से कर्म कारक हो जायेगा।

उदा०–पुष्पाणि स्पृहयति (फूलों को चाहता है) में 'पुष्पाणि' कर्म कारक ही हुआ है, प्रकर्ष-विवक्षा के कारण।

सूत्र–क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः 1।4।37।।

क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्तसंज्ञः स्यात्। हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा। 'यं प्रति कोपः किम्? भार्यामीर्ष्यति मैनामन्योऽद्राक्षीदिति। क्रोधोऽमर्षः। द्रोहोऽपकारः। ईर्ष्याऽक्षमा। असूया

गुणेषु दोषाविष्करणम्। द्रुहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते, अतो विशेषणं समान्येन 'यं प्रति कोप:' इति।

अर्थ–क्रुध्, द्रुह, ईर्ष्या, असूया अर्थ वाली धातुओं के योग में, जिसके ऊपर क्रोध आदि किया जाय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदा०–1. हरये क्रुष्यति–हरि पर क्रोध करता है।

2. हरये द्रुह्यति–हरि से द्रोह करता है।

3. हरये ईर्ष्यति–हरि से ईर्ष्या करता है।

4. हरये असूयति–हरि से असूया करता है।

इन सभी उदाहरणों में कोप का विषय 'हरि' है, अत: सम्प्रदान संज्ञा हुई, अत: चतुर्थी हुई। इन सभी क्रियाओं के मूल में कोप का भाव है।

'यं प्रति कोप:' (जिसके प्रति कोप हो, उसमें ही सम्प्रदान) क्यों कहा? क्योंकि जब क्रोध इत्यादि का अर्थ नहीं होगा तो सम्प्रदान नहीं होगा।

जैसे **भार्यामीर्ष्यति** (अपनी पत्नी का ईर्ष्यालु है) अर्थात् उसे दूसरों द्वारा देखा जाना नहीं चाहता है) यहाँ 'भार्या' में कर्म कारक होगा; सम्प्रदान नहीं। कारण, ईर्ष्या भार्या के प्रति नहीं है। क्रोध, अमर्ष या असहनशीलता को कहते हैं, द्रोह अपकार करके या बुरा करने को कहते हैं; ईर्ष्या किसी से जलने के अर्थ में तथा असूया गुणों में दोष ढूँढने के अर्थ में होती है। द्रोह इत्यादि को भी कोप से उत्पन्न ही समझना चाहिये, अत: 'यं प्रति कोप:' वाक्य में 'कोप' शब्द के अन्तर्गत द्रोह, ईर्ष्या असूया भी समझनी चाहिये।

सूत्र–क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयो: कर्म 1।4।38।।

सोपसर्गयोरनयोर्योगे यं प्रति कोपस्तत्कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। क्रूरमभिक्रुध्यति। अभिद्रुह्यति।

अर्थ–किन्तु जब क्रुध्, द्रुह क्रिया में उपसर्ग लगा होता है तो जिस पर क्रोध किया जाता है, उसकी कर्मसंज्ञा होती है।

जैसे **क्रूरमभिक्रुध्यति** या **अभिद्रुह्यति** में– 'अभि' उपसर्ग लगने से 'क्रुध्' तथा 'द्रुह' क्रिया के योग में जिस पर क्रोध किया जाता है उस (क्रूर) में कर्मकारक होगा, सम्प्रदान नहीं; द्वितीया विभक्ति होगी, चतुर्थी नहीं।

सूत्र–राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्न: 1।4।39।।

एतयो: कारकं सम्प्रदानं स्यात्, यदीयो विविध: प्रश्न: क्रियते। कृष्णाय राध्यति, ईक्षते वा। पृष्टो गर्ग: शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थ:।

अर्थ–'राध्' (पक्ष में करना, प्रसन्न करना), 'ईक्ष' (देखना) के साथ जिस व्यक्ति के अच्छे या बुरे भाग्य के विषय में विचार किया जाता है, प्रश्न किया जाता है, उस व्यक्ति की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदा०–कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा (कृष्ण के लिये पक्ष में करता है या प्रश्नों पर विचार करता है) का अर्थ यह है कि वह कृष्ण के विषय में किये गये प्रश्नों पर विचार करता है, अतएव कृष्ण की सम्प्रदान संज्ञा हुई। प्रश्न पूछने का अर्थ है भाग्य के विषय में प्रश्न।

सूत्र–प्रत्याङ्भ्यां श्रुव: पूर्वस्य कर्त्ता 1।4।40।।

आभ्यां परस्य श्रृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनरूपव्यापारस्य कर्त्ता सम्प्रदानं स्यात्। विप्राय गां प्रतिश्रृणोति, आश्रृणोति वा। विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तित: तत्प्रतिजानीत इत्यर्थ:।

अर्थ–'श्रु' धातु के पहले जब 'प्रति और 'आङ्' उपसर्ग लगे हो और इसका अर्थ प्रतिज्ञा करना हो तो, जो प्रतिज्ञा करने या वादा करने की प्रेरणा देने वाला हो, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

जब कोई वादा किया जाता है तो उसके पहले वादा कराने वाला वादा या प्रतिश्रुति के ले प्रेरित करता

है, इस प्रेरित करने वाले की सम्प्रदान संज्ञा होगी।

उदा० विप्राय गां प्रतिश्रृणोति आश्रृणोति वा (ब्राह्मण के लिये गाय देना स्वीकार करता है, सङ्कल्प करता है) में विप्र पूर्व व्यापार अर्थात् प्रेरणा का कर्त्ता विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होगी। इसमें यह अर्थ छिपा है कि विप्र ने 'मह्यं देहि' (मुझे गाय दो) ऐसा कहा होगा और प्रेरित किया होगा, तब उसने देने की प्रतिज्ञा की होगी।

सूत्र–अनुप्रतिगृणश्च 1।4।41।।

आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्व-व्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति, प्रतिगृणाति वा। होता प्रथमं शसति, तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः।

अर्थ–जब 'गृ' धातु के पहले 'अनु' या 'प्रति' उपसर्ग होते हैं और इसका अर्थ कही हुई बात को दुहराकर उत्साहित करना होता है, तो जो व्यक्ति पहली क्रिया का कर्त्ता होता है और जिसकी बात दुहराई जाती है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

उदा०–होत्रे अनुगृणाति प्रतिगृणाति वा (होता को उत्साहित करता है) में 'अनु' और 'प्रति' के बाद 'गृ' धातु का प्रयोग है। होता प्रथम व्यापार का कर्त्ता है, अतः उसकी सम्प्रदान संज्ञा होगी। इसका तात्पर्य यह है : 'होता प्रथमं शंसति तमध्वर्युः प्रोत्साहयति' (होता पहले कहता है, फिर अध्वर्यु उसे दुहराकर उत्साहित करता है) ऐसा अर्थ सन्निहित है, अत एव 'होता' में सम्प्रदान कारक हुआ है।

सूत्र–परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् 1।4।44।।

नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्, तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदानसंज्ञं वा स्यात्। शतेन, शताय वा परिक्रीतः।

अर्थ–परिक्रयण अर्थ में सम्प्रदान विकल्प से होता है। निश्चितकाल के लिये किसी को वेतन या मजदूरी पर रखने को परिक्रयण कहते हैं, इसमें जो अत्यन्त उपकारक हो, उसकी विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है। जितने से या जितने पर उसे रखा जाता है, अर्थात् इस कार्य (परिक्रयण) में जो अत्यधिक सहायक (साधक) है, उसमें सम्प्रदान संज्ञा होगी (और करण कारक भी होता है)।

उदा०–शतेन शताय वा परिक्रीतः (सौ पर रक्खा हुआ) में 'शत' परिक्रयण में सर्वाधिक साधक है, अतः उसमें विकल्प से सम्प्रदान कारक होगा (शताय)।

10.2.4 उपपद निमित्तकचतुर्थी विभक्ति

अब यहाँ पदों (अव्ययवाचक शब्दों या अन्य कारणों) के कारण होने वाली चतुर्थी विभक्ति का कथन किया जा रहा है। ये चतुर्थी विभक्ति के नियम समझने चाहिये।

वार्त्तिक–तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या। मुक्तये हरिं भजति।

अर्थ–जब 'प्रयोजन के लिये' कोई काम किया जाता है तो उस प्रयोजन में चतुर्थी विभक्ति होती है। 'तादर्थ्य' का अर्थ है 'तस्मै इदं तदर्थम्, तस्य भावः'।

उदा०–मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है) में 'मुक्ति' में चतुर्थी होगी, क्योंकि हरि के भजने का प्रयोजन या परिणाम है 'मुक्ति'।

वार्त्तिक–क्लृपि सम्पद्यमाने च।

भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते इत्यादि।

अर्थ–'क्लृप्' तथा उसकी समानार्थक दूसरी क्रियाओं से जिनका अर्थ फल निकलना, पूरा होना, **उत्पन्न** होना होता है, जो फलरूप में उत्पन्न होता है, उस में चतुर्थी होती है।

उदा०–भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते (भक्ति से ज्ञान उत्पन्न होता है) में 'क्लृप्' का प्रयोग है और 'ज्ञान' सम्पद्यमान है, अतः ज्ञान में चतुर्थी विभक्ति हुई।

वार्त्तिक–उत्पातेन ज्ञापिते च। वाताय कपिला विद्युत्।

अर्थ–उत्पात जिसे सूचित करता हो, उससे चतुर्थी होती है। उत्पात प्रकृति के विकार को कहते हैं, जो शुभ-अशुभ फल की सूचना देता है। प्रकृति के स्वाभाविक रूप में परिवर्तन को उत्पात कहते हैं। उत्पात से जो वस्तु सूचित हो, उसमें चतुर्थी होती है।

उदा०–वाताय कपिला विद्युत् (चितकबरी की चमक प्रबल वायु का आगमन बता रही है–प्रबल वायु के लिये होती है) में 'कपिला विद्युत्' उत्पाद है, इससे 'बात' की सूचना मिलती है, अतः 'वात' में चतुर्थी हुई है (वाताय)।

वार्त्तिक–हितयोगे च। चतुर्थी वाच्या इति शेषः। ब्राह्मणाय हितम्।

अर्थ–'हित के योग में' जिसका हित हो, उसमें भी चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदा०–ब्राह्मणाय हितम् (ब्राह्मण के लिए हित अर्थात् या ब्राह्मण का भला) में ब्राह्मण का हित चाहा जाता है, अतः 'हित' के योग में चतुर्थी हुई।

सूत्र–क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः 2।3।14।।

क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात्। फलेभ्यो याति। फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः। नमस्कुर्मो नृसिंहाय। नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः। एवं 'स्वयंभुवे नमस्कृत्य' इत्यादावपि।

अर्थ–क्रियार्थ क्रिया (क्रिया के लिए क्रिया अर्थात् जिस क्रिया का प्रयोजन दूसरी क्रिया हो, ऐसी क्रिया) जिसके उपपद में हो और उस तुमुन् अर्थ की क्रिया का प्रयोग न हो, तो तुमुन्नन्त अप्रयुज्यमान किया के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदा०–फलेभ्यो याति (फल के लिये जाता है) का अर्थ है **फलानि आहर्तुं याति** (फल लाने के लिये जाता है) यहाँ क्रियार्थोपपद क्रिया, जो तुमुन्नन्त है, 'आहर्तुम्' उसका प्रयोग नहीं किया गया है। जाना क्रिया लाने की क्रिया के लिये है। अप्रयुज्यमान क्रिया 'आहर्तुम्' के कर्म 'फल की सम्प्रदान संज्ञा होगी'।

उदा०–नमस्कुर्मो नृसिंहाय का अर्थ है 'नृसिंहमनुकूलयितुं नमस्कूर्मः' (नृसिंह को अनुकूल बनाने के लिये नमस्कार करते हैं) यहाँ 'अनुकूलयितुं' तुमुन् प्रत्ययान्त क्रिया छिपी है, अतः उसके कर्म (नृसिंह) में चतुर्थी हुई।

उदा०– इसी प्रकार 'स्वयंभुवे नमस्कृत्य' इत्यादि में भी 'स्वयम्भुवम् प्रीणयितुम्' अर्थ है।

सूत्र–तुमर्थाच्च भाववचनात् 2।3।15।।

'भाववचनाश्च' इति सूत्रेण विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः।

अर्थ–किसी धातु में 'तुमुन्' प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, उसी अर्थ को बताने के लिये दूसरे प्रत्यय का विधान होने पर उस प्रत्यय से अन्त होने वाले भाववाचक शब्द में चतुर्थी होती है। भाववाचक तुमुन् प्रत्यय 'घञ्' है, अतः इस प्रत्ययान्त शब्द से ही चतुर्थी होगी।

उदा०–यागाय याति (यज्ञ के लिये जाता है) का अर्थ है 'यष्टुं याति' (यज्ञ करने जाता है)। यहाँ 'यज्' (यज्ञ करना) धातु से तुमुन् प्रत्ययान्त क्रिया का अर्थ बताने के लिये भाववाचक घञ् प्रत्ययान्त संज्ञा 'याग' का प्रयोग होने पर उसमें चतुर्थी हुई है।

सूत्र–नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च 2।3।16।।

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्।

उदा०–हरये नमः। **उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी** (परि०) नमस्करोति देवान्। प्रजाभ्यः

स्वस्ति। **अग्नये** स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। 'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्'। तेन दैत्येभ्यो हरिरलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः। 'तस्मै प्रभवति'–(सू०) 'स एषां ग्रामणीः'–(सू०) इति निर्देशात्। तेन 'प्रभुर्बभूषुर्भुवनत्रयस्ये'ति सिद्धम्। वषडिन्द्राय। चकारः। पुनर्विधानार्थः। तेनाशीर्विवक्षायां परामपि 'चतुर्थी चाशिषि०'–(सू०) इति षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति। स्वस्ति गोभ्यो भूयात्।

अर्थ–नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् तथा वषट्–इन शब्दों के योग में चतुर्थी ही होती है।

उदा०–हरये नमः (हरि को नमस्कार) में 'नमः' के योग में हरि में चतुर्थी हुई है (हरये)।

अर्थ–उपपदविभक्तेः–उपपदविभक्ति की अपेक्षा कारकविभक्ति अधिक प्रबल होती है। जब एक ही स्थान में उपपदविभक्ति और कारक विभक्ति दोनों आयी हों, तो उपपदविभक्ति न होकर कारकविभक्ति ही होगी। यहाँ 'नमः' आदि के योग में चतुर्थी उपपदविभक्ति है।

उदा०–नमस्करोति देवान् (देवों को नमस्कार करता है) में 'नमः' के योग में चतुर्थी प्राप्त थी, जो उपपदविभक्ति है, किन्तु, 'नमस्करोति' क्रिया का कर्म होने से 'देव' में कारकविभक्ति द्वितीया भी प्राप्त है। उपपदविभक्ति न होकर कारकविभक्ति ही होगी।

उदा०–प्रजाभ्यः स्वस्ति, अग्नये स्वाहा, पितृभ्यः स्वधा में भी क्रमशः स्वस्ति स्वाहा, स्वधा के योग में चतुर्थी हुई है। **अलम्** का अर्थ है पर्याप्त, सामर्थ्यवान् होना। **दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः, समर्थः, शक्तः** (दैत्यों के लिये हरि पर्याप्त हैं, बलवान् हैं, समर्थ हैं तथा शक्तिशाली हैं)।

'प्रभु' इत्यादि के योग में षष्ठी का भी प्रयोग होता है। जैसे–**तस्मै प्रभवति** में प्रभु के योग में चतुर्थी है; किन्तु 'स एषां ग्रामणीः' में षष्ठी है। इस कारण से प्रभुर्बुभूषूर्भुवनत्रयस्य' यह प्रयोग उचित है।

वषडिन्द्राय (इन्द्र को वषट्) 'वषट्' के योग में 'इन्द्र' में चतुर्थी हुई है। 'च' का अर्थ है कि इन शब्दों के योग में चतुर्थी ही होगी, षष्ठी नहीं। इसलिये आशीर्वाद अर्थ में 'चतुर्थी चाशिषि०' इस सूत्र में षष्ठी न होकर चतुर्थी ही होगी। यथा–'स्वस्ति गोभ्यो भूयात्' (गायों का भला हो) में आशीर्वाद अर्थ में (गोभ्यः) चतुर्थी हुई, षष्ठी नहीं।

सूत्र–मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु 2।3।17॥

प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात्तिरस्कारे। न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा। श्यना निर्देशात्तनादिकयोगे न। न त्वां तृणं मन्वे।

अर्थ–जब अनादर दिखाया जाता है, तो 'मन्' (समझना) दिवादिगण की धातु के कर्म में यदि वह प्राणी न हो, तो विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदा०–न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा– में मन (समझना) का तिरस्कार अर्थ में प्रयोग हुआ है, अतः उसके कर्म (तृण) में जो प्राणी नहीं है, उसमें विकल्प से चतुर्थी होगी।

'श्यन्' इसलिये कहा गया है–केवल दिवादि गण को धातु 'मन्' के साथ ही चतुर्थी होगी न कि तनादिगण की 'मन्' धातु के साथ वहाँ तो द्वितीया होगी, **न त्वां तृणं मन्वे।**

सूत्र–गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि 2।3।12॥

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मणि एते स्तश्चेष्टायाम्। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। चेष्टायां किम्? मनसा हरिं व्रजति। अनध्वनीति किम्? पन्थानं गच्छति। गन्त्राधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः। यदा तूत्पथात् पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तथा चतुर्थी भवत्येव। उत्पथेन पथे गच्छति। इति चतुर्थी।

अर्थ–गति (चलना) अर्थ वाली धातुओं के कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विकल्प से होती है; जब मार्ग **बतलाने वाला शब्द न हो तथा** गति में शरीर के चलने की क्रिया का तात्पर्य हो।

उदा०–ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति गाँव को जाता है) में गति अर्थ की क्रिया 'गम्' (जाना) के साथ जाने

वाले स्थान (ग्राम) में द्वितीया या चतुर्थी होगी, क्योंकि 'ग्राम' मार्ग का बोध नहीं कराता।

शरीर की गति या चेष्टा क्यों कही गई है? इसलिये कि शरीर की गति होने पर **मनसा हरिं व्रजति** (मन से हरि के पास जाता है) में गत्यर्थ क्रिया–'व्रज' के होने पर भी शारीरिक क्रिया न होकर मन से क्रिया होने के कारण चतुर्थी न होकर द्वितीया ही होगी।

अनध्वनि (मार्ग का वाचक न होने पर ही) क्यों है? इसलिये कि मार्गवाचक शब्द में चतुर्थी नहीं होगी, द्वितीया होगी, जैसे 'पन्थानं गच्छति' में।

यह निषेध केवल मार्ग चलने के अर्थ में ही है, अतः जब कोई व्यक्ति गलत मार्ग से ठीक मार्ग की ओर जाता है तो वहाँ मार्गवाचक शब्द में चतुर्थी हो सकती है, जैसे–**उत्पथेन पथे गच्छति–** में जिस पथ की ओर जाता है, उसमें चतुर्थी हुई है।

इकाई–10

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अधोलिखित सूत्रों में से किन्हीं तीन या चार की सोदाहरण व्याख्या कीजिए–

(क) साधकतमं करणम्।

(ख) सहयुक्तेऽप्रधाने।

(ग) इत्थंभूतलक्षणे।

(घ) रुच्यर्थानां प्रीयमाण:।

(ङ) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन:।

(च) परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्।

(छ) धारेरुत्तमर्ण:

(ज) स्वतन्त्र:कर्ता।

2. अधोनिर्दिष्ट वाक्यों में से किन्हीं चार रेखाङ्कित पदों में सूत्रनिर्देशपूर्वक विभक्ति का प्रतिपादन कीजिए।

(क)- रामेण-बाणेन हतो बाली।

(ख)- अक्षान्-दीव्यति।

(ग)- अह्ना-अनुवाकोऽधीत:।

(घ)- अक्ष्णा-काण:।

(ङ)- पित्रा-सञ्जानीते।

(च)- विप्राय-गां ददाति।

(छ)- भक्ताय-धारयति मोक्षं हरि:।

(ज)- हरये-क्रुध्यति।

(झ)- हरये-नम:।

(ञ)- यागाय-याति।

इकाई–11 पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति

11.0 उद्देश्य

11.1 अपादान कारक-पञ्चमी विभक्ति

- 11.1.1 सामान्य अपादान परिचय
- 11.1.2 कारक निमित्तक पञ्चमी
- 11.1.3 विशिष्ट अपादान कारक
- 11.1.4 उपपद निमित्तक पञ्चमी विभक्ति
- 11.1.5 विशिष्ट कर्मप्रवचनीय संज्ञा
- 11.1.6 कर्मप्रवचनीय निमित्तक पञ्चमी
- 11.1.7 विशिष्ट उपपद निमित्तक पञ्चमी

11.2 शेष-षष्ठी, कारक–शेष षष्ठी विभक्ति

- 11.2.1 शेष–परिचय
- 11.2.2 षष्ठी विषयक कथन
- 11.2.3 विशिष्ट षष्ठी विचार
- 11.2.4 कारक–षष्ठी निमित्तक विचार
- 11.2.5 उपपद निमित्तक षष्ठी विभक्ति

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप

सामान्य आपादान के परिचय को जान सकेगें।

कारक निमित्तक पञ्चमी विभक्ति के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

विशिष्ट अपादान कारक के बारे में जान पायेंगे।

उपपद निमित्तक पञ्चमी विभक्ति का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

विशिष्ट कर्मप्रवचनीय संज्ञा को जान सकेंगे।

विशिष्ट उपपद निमित्तक पञ्चमी को समझ सकेंगे।

शेष षष्ठी का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

षष्ठी विषयक कथन को जान पायेंगे।

विशिष्ट षष्ठी के महत्त्व को समझ सकेंगे।

उपपद निमित्तक षष्ठी को जान सकेंगे।

5. अपादान कारक-पञ्चमी विभक्ति

11.1.1 सामान्य अपादान परिचय

सूत्र-ध्रुवमपायेऽपादानम् 1।4।24।।

अपायो विश्लेषः, तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादानं स्यात्।

अर्थ-अपाय कहते हैं विश्लेष को। जहाँ विश्लेष या अलग होना हो, वहाँ ध्रुव या अवधिभूत कारक को अपादान कहते हैं। अपादान = अप + आ + दा = हटाना, अलग करना। ध्रुव = स्थिर, किन्तु यहाँ वह वस्तु जिससे कोई वस्तु अलग हो (अवधिभूतम्)। 'धावतः अश्वात्' में दौड़ता हुआ घोड़ा भी, जो स्थिर नहीं है, इस अर्थ में 'ध्रुव' है, भर्तृ हरि की उक्ति है-

'अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम्।
ध्रुवमेव तदावेशात् तदपादानमुच्यते।
पततो ध्रुव एवाश्वो यस्मादश्वात् पतत्यसौ।।

अत एव अलग होने में अपाय या विश्लेष की क्रिया से जिसका सम्बन्ध है, किन्तु क्रिया के सम्पादन से नहीं, उसे ध्रुव कहेंगे (प्रकृतधात्वर्थानाश्रयत्वे सति तज्जन्यविभागाश्रयः ध्रुवम्) अश्व का सम्बन्ध अलग होने की क्रिया से तो है किन्तु 'पतति' से नहीं, 'पतति' से देवदत्त का सम्बन्ध है। इसी प्रकार जो उदासीन हो। अपाय उत्पन्न करने वाली क्रिया का आश्रय न हो, वह चाहे चल हो या अचल ध्रुव कहलाता है। उसकी अपादान संज्ञा होती है।

11.1.2 कारक निमित्तक पञ्चमी

सूत्र-अपादाने पञ्चमी 2।3।28।।

ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पतति। कारकं किम्? वृक्षस्य पर्णं पतति।

अर्थ-अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदा०-ग्रामादायाति (गाँव से आता है) में 'ग्राम' से अलग होना पाया जाता है, अतः 'ग्राम' अवधिभूत है, ध्रुव है, उसकी अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी होगी।

इसी प्रकार **धावतोऽश्वात् पतति** (दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है) में भी घोड़े से अलग होना पाया जाता है, अतः वह ध्रुव या अवधिभूत है। उसकी अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति हुई है।

कारक क्यों कहा गया है? **वृक्षस्य पर्णं पतति** (पेड़ का पत्ता गिरता है) में चूँकि वृक्ष का सीधा सम्बन्ध 'पतति' क्रिया से नहीं है, बल्कि 'पर्ण' से है, अतः अपादान न होकर षष्ठी हुई (वृक्षस्य)।

11.1.3 विशिष्ट अपादान कारक-

सूत्र-भीत्रार्थानां भयहेतुः 1।4।25।।

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात्। चोराद् बिभेति। चोरात् त्रायते। भयहेतुः किम्? अरण्ये बिभेति त्रायते वा।

अर्थ-भी (भय) तथा त्रै (रक्षा करना) अर्थ की धातुओं का प्रयोग होने पर भय के हेतु में पञ्चमी होती है।

उदा०-चोराद् बिभेति (चोर से डरता है) और **चोरात् त्रायते** (चोर से रक्षा करता है) में 'चोर' में पञ्चमी हुई है; क्योंकि 'चोर' भय का हेतु है।

भय के हेतु में ही पञ्चमी क्यों होगी? **अरण्ये बिभेति, त्रायते वा**– में अरण्य भय का हेतु नहीं है और न वन से रक्षा की जाती है, अतः 'अरण्य' में अपादान संज्ञा नहीं हुई।

सूत्र–पराजेरसोढः 1।4।26।।

पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोऽपादानं स्यात्। अध्ययनात् पराजयते। ग्लायतीत्यर्थः। असोढः किम्? शत्रून् पराजयते, अभिभवतीत्यर्थः।

अर्थ–'परा' पूर्वक 'जि' (पराजि) धातु का थकने, असह्य होने के अर्थ में प्रयोग होने पर जो असह्य होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है।

उदा०–अध्ययनात् पराजयते (अध्ययन से भागता है–अध्ययन उस बेचारे के लिए असह्य हो गया है, बोझ हो गया है, कष्टप्रद है)।

जो असह्य होता है, उसमें ही अपादान क्यों होता है? **शत्रून् पराजयते** (शत्रु को हराता है) इसमें कष्टप्रद या असह्य होने का अर्थ नहीं है, हराने का अर्थ है। अतः पञ्चमी न होकर द्वितीया हुई।

सूत्र–वारणार्थानामीप्सितः 1।4।27।। प्रवृत्तिविघातो वारणम्। वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽर्थोऽपादानं स्यात्। यवेभ्यो गां वारयति। ईप्सितः किम्? यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे।

अर्थ–वारण (रोकने) अर्थ वाली तथा उसके समानार्थ की धातुओं के प्रयोग में जो ईप्सित हो, उसमें अपादान कारक होता है।

उदा०–यवेभ्यो गां वारयति (जौ से गायों को दूर करता है)। यहाँ वारणकर्त्ता के लिए 'यव' इष्ट है, उसकी अपादान संज्ञा हुई। अपादान में पञ्चमी हुई।

ईप्सित (अर्थात् जिससे वारण किया जाय) उसमें अपादान क्यों कहा है? **यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे**– में क्षेत्र ईप्सित नहीं है, अतः उसमें अपादान नहीं हुई।

सूत्र–अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति 1।4।28।।

व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तदपादानं स्यात्। मातुर्निलीयते कृष्णः। अन्तर्धौ किम्? चौरान् न दिदृक्षते। इच्छतिग्रहणं किम्? अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात्–देवदत्ताद् यज्ञदत्तो निलीयते।

अर्थ–जब व्यवधान होने पर छिपने वाला जिससे अपने को छिपाना चाहता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। जिसके विषय में ऐसा सोचा जाय कि वह मुझे न देखे, उसकी अपादान संज्ञा होती है। जिसके द्वारा देखे जाने का अभाव चाहता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है।

उदा०–मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपता है)। इसमें माता से छिपने की इच्छा होने के कारण 'माता' में अपादान कारक हुआ है।

छिपने के अर्थ में क्यों? **चौरान्न दिदृक्षते** (वह चोरों को देखना नहीं चाहता है) में छिपने का अर्थ नहीं है इसलिए 'चौरान्' में कर्मकारक होगा।

'इच्छति' क्यों कहा है? कहा गया है? अपादान कारक वहीं होता है, जब कोई अपने को दूसरे द्वारा देखा जाना नहीं चाहता है। यदि देखे न जाने की इच्छा होते हुए भी देख लिया जाता है, तब भी आपादान में पञ्चमी ही होगी। न देखे जाने की इच्छा अवश्य होनी चाहिए।

उदा०–देवदत्ताद् यज्ञदत्तो निलीयते (देवदत्त से यज्ञदत्त छिप रहा है) किन्तु देवदत्त देख लेता है, फिर भी देवदत्त में अपादान कारक में पञ्चमी होगी।

सूत्र–आख्यातोपयोगे 1।4।29।।

नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः स्यात्। उपाध्यायादधीते। उपयोगे किम्? नटस्य गाथां श्रृणोति।

अर्थ–जब किसी व्यक्ति या गुरु से नियमपूर्वक कुछ पढ़ा जाता है, तो पढ़ाने वाले, वक्ता या गुरु की अपादान संज्ञा होती है। नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने को 'उपयोग' कहते हैं। उपयोग में वक्ता अर्थात् गुरु की अपादान संज्ञा होती है।

उदा०–उपाध्यायादधीते (उपाध्याय से पढ़ रहा है) यहाँ नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने का अर्थ है, अत: उपाध्याय की अपादान संज्ञा और 'अपादाने पञ्चमी' से पञ्चमी हुई।

उदा०–उपयोग (पढ़ाने) का अर्थ होने पर ही अपादान क्यों कहा गया है? **नटस्य गाथां श्रृणोति** (नट के गीत को सुनता है) में उपयोग या नियमपूर्वक पढ़ने का अर्थ नहीं है; अत: 'नट' में अपादान में पञ्चमी नहीं हुई है।

सूत्र–जनिकर्त्तुः प्रकृतिः ।।4।30।।

जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात्। ब्रह्मण: प्रजा: प्रजायन्ते।

अर्थ–'जन्' (उत्पन्न होना) क्रिया के कर्त्ता (जायमान पदार्थ) का जो प्रधान और आदि कारण होता है उसमें अपादान कारक होता है, प्रकृति का अर्थ मूल कारण है।

उदा०–'ब्रह्मण: प्रजा: प्रजायन्ते' (ब्रह्मा से प्राणी उत्पन्न होते हैं) यहाँ प्रजा जायमान है, उसके कारण 'ब्रह्म' की अपादान संज्ञा हुई। 'अपादाने पञ्चमी' से पञ्चमी हुई।

सूत्र–भुवः प्रभवः ।431।।

भवनं भू:। भूकर्तु: प्रभवस्तथा। हिमवतो गङ्गा प्रभवति। तत्र प्रकाशत इत्यर्थ:।

अर्थ–प्रकट होने के कर्त्ता का जो प्रथम प्रकट होने का स्थान होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। 'भू' प्रथम प्रकट होने को कहते हैं, जो प्रथम प्रकट होता है। उसके आदि उत्पत्तिस्थान की अपादानसंज्ञा होती है। प्रभव का अर्थ है उत्पत्तिस्थान।

उदा०–हिमवतो गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गङ्गा निकलती है)। इसमें 'भू' का कर्त्ता है गङ्गा, गङ्गा के उत्पत्तिस्थान 'हिमवान्' की अपादान संज्ञा तथा पञ्चमी हुई।

11.1.4 उपपद निमित्तक पञ्चमी विभक्ति

सूत्र–अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।।3।29।।

एतैर्योगे पञ्चमी स्यात्। 'अन्य' इत्यर्थग्रहणम्। इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्। आराद्वनात्। ऋते कृष्णात्। पूर्वो ग्रामात्। दिशि दृष्ट: शब्दो दिक्शब्द:। तेनं सम्प्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति। चैत्रात् पूर्व: फाल्गुन:। अवयववाचियोगे तु न। 'तस्य परमाम्रेडितम्' (सू०) इति निर्देशात्। पूर्वं कायस्य। अञ्चूत्तरपदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि 'षष्ठ्यतसर्थ'–(सू०) इति षष्ठीं बाधितुं पृथग्ग्रहणम्। प्राक्, प्रत्यग्वा ग्रामात्। आच्–दक्षिणा ग्रामात्। आहि–दक्षिणाहि ग्रामात्।

अर्थ–अन्य (भिन्न), आरात् (निकट या दूर), इतर (भिन्न), ऋते (बिना), दिशा बताने वाले शब्द पूर्व, उत्तर आदि, 'अञ्चु' उत्तर पद वाले दिग्वाचक समस्त पद, (प्राक्, प्रत्यक् आदि) आच् तथा आहि प्रत्ययान्त दिग्वाची शब्द (यथा-दक्षिणा, उत्तरा, दक्षिणाहि, उत्तराहि इत्यादि) के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। 'अन्य' शब्द से 'अन्य' (दूसरा) अर्थ रखने वाले सभी शब्दों को समझना चाहिये। 'इतर' भी 'अन्य' का पर्यायवाची है। 'अन्य' का अर्थ जब 'दूसरा' न होकर 'नीच' 'निम्न' 'अक्षम' होगा तो यह नियम नहीं लगेगा।

उदा०–अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् (कृष्ण से दूसरा) में अन्य, भिन्न, इतर के योग में, 'दूसरा' अर्थ होने पर 'कृष्ण' में पञ्चमी हुई है।

उदा०–इसी प्रकार **आरात्** (दूर या निकट) के योग में **आरात् वनात्** में 'वन' में पञ्चमी हुई है।

उदा०–ऋते कृष्णात् (कृष्ण के बिना, कृष्ण को छोड़कर) में ऋते के योग में, पूर्वो ग्रामात् (गाँव से पूर्व) में दिशा का निर्देश करने वाले शब्द 'पूर्व' के योग में पञ्चमी हुई है।

उदा०–इस सूत्र में दिक्शब्द से **दिशि दृष्टः शब्दः = दिक्शब्द** का अर्थ है। तात्पर्य यह कि 'दिशा के अर्थ में देखे गये शब्द' = शब्द मूलतः दिशावाचक रहा हो, प्रयोग में वह समय के पौर्वापर्य का वाचक भले ही हो। जब दिशा बताने वाले शब्द समय का क्रम बताने के लिये समयवाची शब्दों के साथ आते हैं तो वहाँ भी पञ्चमी होती है।

उदा०–**चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः** (चैत्र से पहले फाल्गुन होता है) में चैत्र में क्रम बताया गया है, यहाँ भी दिग्वाची 'पूर्व' शब्द के योग में पञ्चमी हुई (चैत्रात्)। किन्तु जब 'पूर्व' शब्द का अर्थ 'अवयव' होता है तो वहाँ पञ्चमी नहीं होती है। पाणिनि के सूत्र **'तस्य परमाम्रेडितम्'** में 'परं' के योग में 'तत्' में पञ्चमी न होकर षष्ठी हुई है। इसी प्रकार **पूर्वं कायस्य**– में 'पूर्व' अवयव या अङ्ग का बोध कराने के लिये प्रयुक्त हुआ है, अतः 'काय' में पञ्चमी न होकर षष्ठी हुई है।

उदा०–जिन शब्दों में 'अञ्चु' धातु उत्तर पद है, वे शब्द हैं प्राक्, प्रत्यक् उदक् इत्यादि। ये दिशा बताने वाले शब्द होते हैं और इनके योग में पञ्चमी होती है। इन शब्दों को पृथक् इसलिये कहा गया है कि इसके पहले जो 'षष्ठ्य-तसर्थप्रत्ययेन' सूत्र से षष्ठी का नियम बताया गया है, उसे यहाँ न समझ लिया जाय। **प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात्** (गाँव के पूर्व या पश्चिम में) 'अञ्चु' लगाकर बने दिशावाची शब्द प्राक्, प्रत्यक् के योग में 'ग्राम' में पञ्चमी हुई है।

आच् का उदा०–दक्षिणा ग्रामात् (गाँव से दक्षिण)। यहाँ 'दक्षिणा' आच् प्रत्ययान्त है। **आहि प्रत्यय से**–दक्षिणाहि ग्रामात्।

11.1.5 विशिष्ट कर्मप्रवचनीय संज्ञा

सूत्र–अपपरी वर्जने 1।4।88।।

एतौ वर्जने कर्मप्रवचनीयौ स्तः।

अर्थ–जब 'अप' और 'परि' शब्द का अर्थ वर्जन करना या दूर करना होता है तो ये कर्मप्रवचनीय होते हैं।

सूत्र–आङ्मर्यादावचने 1।4।89।।

आङ्मर्यादायामुक्तसंज्ञः स्यात्। वचनग्रहणादभिविधावपि।

अर्थ–आङ् कर्मप्रवचनीय होता है, जब 'मर्यादा' का अर्थ होता है। वचन शब्द दोनों ओर की मर्यादा बताने के अर्थ में द्विवचन में प्रयुक्त हुआ है। मर्यादा 'तेन विना' अर्थात् सीमा को छोड़कर excluding होती है। अभिविधि सीमा को लेकर 'तेन सह' होती है Including।

उदा०–**आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः** (पाटलिपुत्र तक वर्षा हुई–पाटलिपुत्र को छोड़कर) में मर्यादा बताने के लिये 'आङ्' का प्रयोग हुआ है, अतः पाटलिपुत्र में पञ्चमी हुई है। 'आसकलाद् ब्रह्म' (ब्रह्म सब तक हैं) में अभिविधि है।

11.1.6 कर्म प्रवचनीय निमित्तक पञ्चमी

सूत्र–पञ्चम्यपाङ्परिभिः 2।3।10।।

कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात्। अप हरेः, परि हरेः संसारः। परिरत्र वर्जने। लक्षणादौ तु हरिं परि।

आमुक्ते: संसार:। आसकलाद् ब्रह्म।

अर्थ–कर्मप्रवचनीय अप, आङ्, परि के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। **अपहरेः परिहरेः वा संसारः**। (हरि के बिना संसार) यहाँ **अप** का अर्थ है अलग करना, वर्जन करना (पृथक् करना), अत: पञ्चमी हुई है। यहाँ 'अप' के साथ उल्लिखित होने से 'परि' का भी वर्जन अर्थ ही है। जब 'परि' का अर्थ 'लक्षण' होता है तो पञ्चमी नहीं होती, जैसे–**हरिं परि**– में।

उदा०–आमुक्तेः संसारः (संसार का अधिकार मुक्ति तक है) में मुक्ति पर अधिकार नहीं है, मुक्ति अधिकार के बाहर है, ऐसा अर्थ है। अत: 'आङ्' के साथा मर्यादा अर्थ होने से आङ् कर्मप्रवचनीय हुआ (आङ् मर्यादावचने) तथा मुक्ति में पञ्चमी हुई है। **आसकलाद् ब्रह्म** (ब्रह्म सभी में है) यहाँ अलग करने के अर्थ में नहीं; किन्तु मिलाने (inclusion) के अर्थ में है। 'आङ्' अभिविधि के अर्थ में होने से कर्मप्रवचनीय हुआ ('आङ् मर्यादावचने') तथा इस सूत्र से कर्मप्रवचनीय के योग में पञ्चमी हुई।

सूत्र–प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः 1।4।92।।

एतयोरर्थयो: प्रतिरुक्तसंज्ञ: स्यात्।

अर्थ–जब 'प्रति' का प्रयोग 'प्रतिनिधि' एवं 'प्रतिदान' (अदला-बदली करने) के अर्थ में होता है तो 'प्रति' कर्मप्रवचनीय संज्ञक होता है।

सूत्र–प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् 2।3।11।।

अत्र कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात्। प्रद्युम्न: कृष्णात् प्रति। तिलेभ्य: प्रतियच्छति माषान्।

अर्थ–कर्मप्रवचनीय के योग में जिसका प्रतिनिधि हो और जिसका प्रतिदान हो, उससे पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदा०–प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति (प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है) यहाँ 'प्रतिनिधि' अर्थ में प्रयुक्त होने से 'प्रति' को कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई है। जिसका प्रतिनिधि है, उसमें (कृष्ण में) पञ्चमी हुई।

उदा०–तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् (तिल से उड़द बदलता है–उड़द देकर तिल लेता है) में प्रतिदान अर्थ में 'प्रति' कर्म-प्रवचनीय है, अत: जिसका प्रतिदान हो रहा है, उस (तिल) में पञ्चमी होगी।

11.1.7 विशिष्ट उपपदमिमित्तक पञ्चमी

सूत्र–अकर्तर्यृणे पञ्चमी 2।3।34।।

कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं तत: पञ्चमी स्यात्। शताद् बद्ध:। अकर्तरि किम्? शतेन बन्धित:।

अर्थ–कर्तृसंज्ञा से रहित ऋण यदि हेतु हो, तो उस ऋण से पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदा०–शताद् बद्धः (सौ के कर्ज के लिए बँधा है) में कर्ज (शत) बन्धन क्रिया का कारण तो है, किन्तु कर्त्ता नहीं है, अत: पञ्चमी हुई है।

उदा०–अकर्तरि (कर्त्ता के भिन्न में) में ही पञ्चमी क्यों होगी? **शतेन बन्धितः** (सौ ने बँधवाया है अर्थात् सौ रुपये के कर्ज ने अधमर्ण को उत्तमर्ण द्वारा बँधवाया है) में 'शत' कर्त्ता है, अत: उसमें पञ्चमी न होकर तृतीया हुई है।

सूत्र–विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् 2।3।25।।

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात्। जाड्याज्जाड्येन वा बद्ध:। गुणे किम्? धनेन कुलम्। अस्त्रियां किम्? बुद्ध्या मुक्त:। विभाषेति योगविभागादगुणे स्त्रियां च क्वचित्। धूमादग्निमान्। नास्ति घटोऽनुपलब्धे:।।

अर्थ–जब हेतु गुण हो, किन्तु स्त्रीलिङ्ग में न हो, तब उसे हेतु से विकल्प से पञ्चमी होती है। पक्ष में तृतीया भी होती है। इस सूत्र के साथ 'हेतौ' की अनुवृत्ति होती है।

उदा०–जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः (मूर्खता के कारण पकड़ा गया) में बाँधे जाने का कारण होने और अस्त्रीलिङ्गशब्द होने से जाड्य में विकल्प से पञ्चमी हुई है।

गुणवाचक होने पर ही क्यों? धनेन कुलम् में धन हेतु भी है, अस्त्रीलिङ्ग भी है, किन्तु गुणवाचक नहीं है; अत: पञ्चमी नहीं हुई।

स्त्रीलिङ्ग से भिन्न शब्द में ही क्यों? 'बुद्ध्या मुक्त:' (बुद्धि के कारण छोड़ा गया) में 'बुद्धि' गुण भी है और मुक्ति का हेतु भी, किन्तु स्त्रीलिङ्ग शब्द है, अत: पञ्चमी नहीं हुई, तृतीया हुई।

यदि यहाँ 'विभाषा' को शेष सूत्र से पृथक् कर अलग नियम के रूप में समझा जाय, तो चाहे कोई शब्द स्त्रीलिङ्ग हो और गुण न भी हो तो हेतु होने पर कहीं-कहीं उसके योग में भी पञ्चमी होती है।

उदा०–धूमादग्निमान् में 'धूम' गुणवाचक नहीं है, फिर भी उसमें पञ्चमी हुई है और नास्ति घटोऽनुपलब्धे: में 'अनुपलब्धि' स्त्रीलिङ्ग शब्द है, फिर भी उसमें पञ्चमी हुई है; क्योंकि ये दोनों हेतु हैं।

'विभाषा' को एक अलग सूत्र जैसा मानकर उसके साथ 'हेतौ' की अनुवृत्ति करने पर यह अर्थ निकलेगा कि हेतुवाचक शब्द से विकल्प से पञ्चमी विभक्ति हो। ऐसा सूत्र बनने पर 'गुणेऽस्त्रियाम्' के अर्थ को नहीं लिया जायेगा और गुण न होने पर या स्त्रीलिङ्ग होने पर भी हेतु में पञ्चमी होगी।

सूत्र–पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् 2।2।32।।

एभिर्योगे तृतीया स्यात् पञ्चमीद्वितीये च। अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चयार्थम्। पञ्चमीद्वितीये अनुवर्तते। पृथग् रामेण रामाद् रामं वा। एवं विना नाना।

अर्थ–पृथक्, विना और नाना के योग में तृतीया, पञ्चमी तथा द्वितीया होती है। 'अन्यतरस्याम्' शब्द द्वारा सबको एक साथ कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत द्वितीया और पञ्चमी विभक्तियाँ भी आ जाती हैं।

उदा०–पृथग् रामेण रामात् रामं वा (राम से भिन्न, राम के बिना) यहाँ पृथक् के योग में 'राम' में विकल्प से तृतीया, पञ्चमी तथा द्वितीया हुई है।

उदा०–इसी प्रकार **विना रामेण, रामात् रामं वा** तथा **नाना रामेण, रामात्, रामं वा** में भी तीनों विभक्तियाँ होगी।

अर्थ–करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य 2।3।33।।

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्य: करणे तृतीयापञ्चम्यौ स्त:। स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्त:। द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण **हत:**।

अर्थ–स्तोक (थोड़ा), अल्प, कृच्छ्र तथा कतिपय–इन चार शब्दों के बाद तृतीया और पञ्चमी वि**भक्ति** होती है; जब वे द्रव्य का सङ्केत नहीं करते और 'करण' की तरह प्रयुक्त होते हैं। ऐसी दशा में **ये शब्द** विशेषण न होकर क्रिया विशेषण होते हैं।

स्तोकात्, स्तोकेन वा मुक्तः, अल्पात्, अल्पेन वा मुक्तः। (वह जल्दी छूट गया) यहाँ 'स्तोक' 'अल्प' किसी द्रव्य की विशेषता नहीं बताते हैं; अपितु 'करण' है, अत: उनमें तृतीया तथा पञ्चमी **दोनों** ही हो सकती हैं। किन्तु जब ये किसी द्रव्य की विशेषता बतायें तो तृतीया ही होगी पञ्चमी नहीं; **जैसे– स्तोकेन विषेण हतः** (थोड़े से विष से मारा गया) में 'स्तोक' 'विष' का विशेषण है।

सूत्र–दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च 2।3।35।।

एभ्यो द्वितीया स्याच्चात् पञ्चमीतृतीये च। प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम्। ग्रामस्य दूरं दूराद्दूरेण **वा**। अन्तिकम् अन्तिकाद् अन्तिकेन वा। असत्त्ववचनस्येत्यनुवृत्तेर्नेह। अदूर: पन्था:।

अर्थ–'दूर' तथा 'अन्तिक' (निकट) अर्थ को बताने वाले शब्दों में पञ्चमी, तृतीया और द्वितीया **होती** है। यह नियम तब होता है, जब ये प्रातिपदिक अर्थ में रहते हैं और **किसी** पदार्थ के विशेषण नहीं होते।

ग्रामस्य दूरं, दूरात्, दूरेण तता ग्रामस्य अन्तिकमन्तिकादन्तिकादन्तिकेन वा में 'दूर' और 'अन्तिक' में द्वितीया, पञ्चमी या तृतीया होगी।

विशिष्ट कथन–जब वे किसी पदार्थ के विशेषण नहीं होते, इस ऊपर के सूत्र की अनुवृत्ति को यहाँ भी समझना चाहिये। अतएव विशेषण होने पर 'अदूर' में ये विभक्तियाँ नहीं लगेंगी। यथा 'अदूर: पन्था'। अद्रव्यवाची 'दूर' और 'अन्तिक' अर्थ वाले शब्दों में ही ये तीनों विभक्तियाँ लगेंगी। द्रव्यवाची अर्थात् विशेषण होने पर नहीं। 'दूर: पन्था:' में 'दूर' विशेषण है, अत: ये विभक्तियाँ नहीं लगी हैं।

11.2 शेष षष्ठी-कारकशेष-षष्ठी विभक्ति

11.2.1 शेष परिचय

विशिष्ट वक्तव्य–(क) क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध होने के कारण केवल छ: ही कारक होते हैं–कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। 'सम्बन्ध' का क्रिया से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, संज्ञा या सर्वनाम के द्वारा होता है।

श्याम: गोविंदस्य पुत्रं ताडितवान् = श्याम ने गोविन्द के पुत्र को पीटा।

श्याम: मम पुत्रं ताडितवान् = श्याम ने मेरे पुत्र को पीटा।

इन उदाहरणों में 'ताडितवान्' क्रिया से 'श्याम' और 'पुत्र' का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है–श्याम: 'ताडितवान्' क्रिया का कर्त्ता है और पुत्रं कर्म। अत: ये दोनों 'कारक' हैं। किन्तु 'गोविन्दस्य' और 'मम' का 'पुत्रं' के साथ सम्बन्ध है क्रिया 'ताडितवान्' के साथ नहीं। अत: षष्ठी विभक्ति किसी कारक का बोध नहीं कराती। इस प्रकरण में यह बतलाया जायेगा कि षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किन-किन सम्बन्धों को सूचित करने के लिए लिये होता है।

(ख) 'सम्बन्ध' का अर्थ है 'क्रिया का योग'। जब कर्म आदि का क्रिया के साथ केवल योग (सम्बन्धमात्र) बतलाने की इच्छा हो, योग का प्रकार (कर्मत्व आदि) बतलाना अभीष्ट न हो, तब 'शेष' अर्थ में षष्ठी होती है। दूसरे शब्दों में जहाँ 'ईप्सिततम का कर्म कहते हैं', 'साधकतम को करण कहते हैं'–इस प्रकार कहने की इच्छा न हो, वहाँ न तो कर्म, करण आदि संज्ञाएँ ही प्राप्त होती हैं न द्वितीया, तृतीया आदि विभक्तियाँ ही। परन्तु उनकी कारकता बनी रहती है। इन्हीं को 'कारक-शेष' कते हैं। इन 'शेष' कारकों (क्रिया-सम्बन्धों, के योग में षष्ठी होती है।

11.2.2 षष्ठी विषयक कथन

सूत्र–षष्ठी शेषे 2।3।50।।

(क) कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्त: स्वस्वामिभावादिसम्बन्ध: शेषस्तत्र षष्ठी स्यत्। राज्ञ: पुरुष:। **(ख)** कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातु: स्मरति। एधोदकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चारणयो:। फलानां तृप्त:।

(क) अर्थ–शेष अवस्थाओं में षष्ठी विभक्ति होती है, अर्थात् जहाँ दूसरी विभक्तियों के नियम नहीं लगते, वहाँ षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। कारक और प्रातिपादिक के अर्थ से भिन्न **स्व-स्वामिभाव** आदि सम्बन्ध को शेष कहते हैं। इस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है। जो कुछ कहा जा चुका है, उससे भिन्न को शेष कहते हैं। प्रातिपदिक के अर्थ में प्रथमा का तथा कर्म आदि कारकों के अर्थ में द्वितीया आदि विभक्तियों का विधान किया जा चुका है। इन दोनों से भिन्न स्व-स्वामिभाव आदि सम्बन्ध होते हैं,

जो कारक नहीं हैं और न प्रातिपदिकार्थ हैं, अतः उसमें शेषत्व विवक्षा के कारण षष्ठी होती है। स्वामी और भृत्य, जन्य तथा जनक एवं कार्य तथा कारण के सम्बन्ध आदि में षष्ठी होती है।

उदा०–राज्ञः पुरुषः (राजा का आदमी) से स्वामी तथा भृत्य का सम्बन्ध है, अतः 'राजन्' में षष्ठी हुई है, क्योंकि यह सम्बन्ध दूसरे कारक द्वारा नहीं प्रकट किया जा सकता है। सम्बन्ध बताने में जो अप्रधान होता है, उसी में षष्ठी होती है।

कारक-शेष

(ख) अर्थ–जहाँ कर्म इत्यादि कारकों का साधारण सम्बन्ध प्रकट करना होता है, वहाँ कारक शेष होता है। वहाँ उस कारक शेष में भी षष्ठी होती है।

कर्तृशेष का उदा० सतां गतम् (सत्पुरुषसम्बन्धिगमनम्) 'सज्जन का जाना'।

करणशेष का उदा०–सर्पिषो जानीते (घी के बारे में जानकर प्रवृत्त होता है) वाक्यों में क्रमशः कर्तृशेष व करणशेष के सम्बन्ध को बताने के लिए षष्ठी हुई है।

उदा०–मातु; स्मरति (माँ को याद करता है) यहाँ भी कर्म का सम्बन्ध दिखाने के लिये षष्ठी हुई है।

उदा०–एधोदकस्योपस्कुरुते (ईंधन पानी को इच्छा करता है, अर्थात् गरम करता है)। में कर्म की शेषत्व विवक्षा में षष्ठी हुई।

उदा०–भेजे शम्भोच्चरणयोः (शम्भु के चरणों की पूजा करता हूँ) में कर्म की सम्बन्धमात्र विवक्षा होने से षष्ठी हुई है।

उदा०–फलानां तृप्तः (फलों से तृप्त) में करण कारक के शेषत्व की विक्षा होने से षष्ठी हुई है।

11.2.3 विशिष्ट षष्ठी विचार–

सूत्र–षष्ठी हेतुप्रयोगे 2।3।26।।

हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात्। अन्नस्य हेतोर्वसति।

अर्थ–जब कोई संज्ञा किसी क्रिया का हेतु बताती है और 'हेतु' शब्द का ही प्रयोग किया हो अर्थात् 'हेतु' हेतु शब्द के द्वारा ही द्योत्य हो तो उस हेतु में षष्ठी विभक्ति होगी।

उदा०–अन्नस्य हेतोः वसति (अन्न के लिए रहता है) में अन्न हेतु है, अतः उसमें षष्ठी हुई साथ ही 'हेतु' शब्द में भी षष्ठी हुई है, क्योंकि समानाधिकरण विशेषण है।

सूत्र–सर्वनाम्नस्तृतीया च 2।3।27।।

सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च। केन हेतुना वसति। कस्य हेतोः।

अर्थ–जब सर्वनाम शब्द हेतु हो और 'हेतु' शब्द का भी प्रयोग हो, तो सर्वनाम शब्द में षष्ठी होती है तथा तृतीया भी होती है। इसके साथ ही 'हेतु' शब्द में भी समानाधिकरण विशेष्य-विशेषणभाव होने से क्रमशः षष्ठी और तृतीया विभक्ति होगी।

उदा०–केन हेतुना वसति या कस्य हेतोः वसति– में सर्वनाम के साथ 'हेतु' का प्रयोग है, अतः सर्वनाम में तथा 'हेतु' शब्द में षष्ठी भी हो सकती है, तृतीया भी।

उदा०–षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन 2।3।30।।

एतद्योगे षष्ठी स्यात्। दिक्शब्द इति पञ्चम्या अपवादः। ग्रामस्य दक्षिणतः। पुरः, पुरस्तात्। उपरि, उपरिष्टात्।

अर्थ–जिन शब्दों के अन्त में अतसर्थक प्रत्यय हों, उनके योग में षष्ठी विभक्ति होती है। अतसर्थ प्रत्यय के अन्त होने वाले शब्द दिक्शब्द होते हैं। दिक्, देश, काल के अर्थ में अतसुच् प्रत्यय होता है। इसी

अर्थ में आने वाले दूसरे प्रत्यय अतसर्थ कहलाते हैं। अतसर्थ प्रत्यय से अन्त होने वाले शब्द मूलत: दिशावाची होते हैं। 'अन्यारादितरर्ते०' सूत्र से दिक्शब्द के योग में पञ्चमी होती है, किन्तु यह सूत्र पञ्चमी का अपवाद है।

उदा०–ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात्, उपरिष्टात् में इन अतसुच् प्रत्ययान्त तथा उसका अर्थ रखने वाले प्रत्ययों से अन्त होने वाले शब्दों के योग में 'ग्राम' में षष्ठी हुई है।

सूत्र–एनपा द्वितीया 2।3।31।।

एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात्। एनपेति योगिभागात्षष्ठ्यपि। दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। एवमुत्तरेण।

अर्थ–'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया तथा षष्ठी होती है।

उदा०–दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा में **दक्षिणेन** 'एनप्' प्रत्ययान्त शब्द है, अत: इसके योग में 'ग्राम' में द्वितीया या षष्ठी होगी। इसी प्रकार **उत्तरेण** के साथ भी।

विशिष्ट कथन–योगविभाग के नियम से इस सूत्र में षष्ठी का नियम समझा जायेगा। यहाँ सूत्र में द्वितीया का उल्लेख है। चूँकि यह षष्ठी के प्रकरण में है, अत: षष्ठी भी होगी।

सूत्र–दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् 3।3।34।।

एतैर्योगे षष्ठी स्यात्पञ्चमी च। दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा।

अर्थ–'दूर' 'अन्तिक' तथा इसके पर्यायवाची शब्दों के योग में षष्ठी और पञ्चमी विभक्ति होगी। षष्ठी न होने पर 'अपादाने पञ्चमी' से पञ्चमी होगी।

उदा०–दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा में 'दूर' और 'निकट' के योग में ग्राम में पञ्चमी भी हो सकती है और षष्ठी भी।

सूत्र–व्यवहृपणोः समर्थयोः 2।3।57।।

शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात्। द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा। समर्थयो: किम्? शलाकाव्यवहार:। गणनेत्यर्थ:। ब्राह्मणपणनं स्तुतिरित्यर्थ:।

अर्थ–वि, अव उपसर्गपूर्वक, हृ धातु तथा 'पण्' धातु जब समानार्थक होती है अर्थात् जब दोनों का अर्थ जुआ खेलना या क्रय-विक्रय करना होता है, तब उनके कर्म में शेषत्व विवक्षा से षष्ठी विभक्ति होती है।

उदा०–शतस्य व्यवहरणं पणनं वा (सौ की बिक्री का दाँव) में 'शत' में 'व्यवहृ' तथा 'पण' धातु का कर्म होने से षष्ठी हुई है।

विशिष्ट कथन–'पण्' धातु जब व्यापार करने या दाँव के अर्थ में हो, तभी यह नियम क्यों होगा? क्योंकि 'शलाकाव्यवहार:' में 'व्यवहृ' धातु 'गिनना' तथा 'ब्राह्मणपणनम्' में 'पण्' धातु 'प्रशंसा करना' अर्थ में प्रयुक्त होने से इनके कर्म में षष्ठी नहीं हुई। अत: अब इनका अर्थ व्यापार करना या दाँव लगाना हो तभी कर्म में षष्ठी होगी।

सूत्र–दिवस्तदर्थस्य 2।3।58।।

द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिव: कर्मणि षष्ठी स्यात्। शतस्य दीव्यति। तदर्थस्य किम्? ब्राह्मणं दीव्यति। स्तौतीत्यर्थ:।

अर्थ–'दिव्' धातु जब 'क्रय-विक्रय' या 'जुआ खेलना' अर्थ में होती है, तो उसके कर्म में षष्ठी होती है।

उदा०–शतस्य दीव्यति (सौ लगाता है) में 'दिव्' के कर्म 'शत' में षष्ठी हुई है।

इन्हीं अर्थों में ही 'दिव्' के कर्म में षष्ठी क्यों?

ब्राह्मणं दीव्यति में 'दिव्' का अर्थ 'स्तुति करना' होने से कर्म (ब्राह्मण) में षष्ठी नहीं होगी।

सूत्र–विभाषोपसर्गे 2।3।59।।

पूर्वयोगापवादः। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

अर्थ–किन्तु जब 'दिव्' (जुआ खेलना, क्रय-विक्रय करना) धातु के पहले उपसर्ग होता है, तो कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है, अर्थात् षष्ठी भी हो सकती है, द्वितीया भी।

उदा०–शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति में 'प्रति' उपसर्ग लगा है। अतः 'शतस्य' तथा 'शतं' दोनों होंगे। यह सूत्र पहले वाले सूत्र का अपवाद है।

सूत्र–कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे 2।3।64।।

कृत्वोऽर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी स्यात्। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्। **शेषे** किम्? द्विरहन्यध्ययनम्।

अर्थ–जब ऐसे शब्द का प्रयोग हो, जिसके अन्त में 'कृत्वसुच्' प्रत्यय का अर्थ देने वाला **प्रत्यय हो** तो उसके योग में कालवाचक अधिकरण में शेषत्व विवक्षा से षष्ठी होती है। इस सूत्र के **अनुसार** 'कृत्वसुच्' तथा 'सुच्' प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन शब्दों के योग में कालवाचक अधिकरण मे षष्ठी हो।

उदा०–पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् (एक दिन में पाँच बार भोजन) यहाँ 'कृत्वसुच्' के साथ 'पञ्च' शब्द है अतः अहन् में षष्ठी होगी। इसी प्रकार **द्विरह्नो भोजनम्** (दिन में दो बार भोजन) में 'द्विः' में सुच् प्रत्यय है, अतः कालवाची अधिकरण अहन् में षष्ठी हुई है।

'कृत्वसुच्' अर्थ के साथ ही क्यों? अह्नि शेते (दिन में सोता है) में कृत्वसुच् अर्थ न होने से षष्ठी नहीं होगी। शेष की विवक्षा होने पर ही यह नियम लगेगा, अन्यथा 'द्विरहन्यध्ययनम्' में सप्तमी हो जायेगी। शेष विवक्षा न होने से षष्ठी नहीं होगी।

11.2.4 कारक षष्ठी निमित्तक विचार–

सूत्र–कर्तृकर्मणोः कृति 2।3।65।।

कृद्योगे कर्त्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्। कृष्णस्य कृतिः। जगतः कर्त्ता कृष्णः।

अर्थ–जब कृत् प्रत्यय का प्रयोग होता है; तो कृत् प्रत्यय से युक्त अनुक्त कर्त्ता में और अनुक्त कर्म में षष्ठी होती है।

उदा०–कृष्णस्य कृतिः (कृष्ण का कार्य) यहाँ 'कृ' धातु से क्तिन् लगाकर बना 'कृति' शब्द कृदन्त है, उसके योग में (कर्त्ता) कृष्ण में षष्ठी हुई।

उदा०–जगतः कर्त्ता कृष्णः (कृष्ण संसार का कर्त्ता है) में कर्म (जगत्) में षष्ठी हुई है, कर्त्ता शब्द कृ धातु से तृच् प्रत्यय लगाकर बना है।

वार्त्तिक–गुणकर्मणि वेष्यते (वार्त्तिक)। नेताऽश्वस्य, स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा। कृति किम्? तद्धिते माभूत्। कृतपूर्वी कटम्।

अर्थ–किन्तु गौण या अप्रधान कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है।

उदा०–नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा में 'स्रुघ्नं' गौण कर्म है, जिसमें षष्ठी विकल्प से होगी, द्वितीया तो होगी ही। नेतृ शब्द 'नी' से तृच् प्रत्यय लगाने पर बना है। इसके योग में प्रधान कर्म 'अश्व' में तो षष्ठी होगी, लेकिन गौण कर्म 'स्रुघ्न' में विकल्प से होगी, अर्थात् षष्ठी या द्वितीया होगी।

'कृत्' के योग में ही षष्ठी, अन्य प्रत्ययों के योग में नहीं होगी, यथा–**कृतपूर्वी कटम्** में 'कटम्' में

षष्ठी विभक्ति नहीं लगी; क्योंकि तद्धित के योग में है। अतः 'कृत्' के योग में ही कर्म में षष्ठी समझना चाहिये।

सूत्र–उभयप्राप्तौ कर्मणि 2।3।66।।

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात् न कर्तरि। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन।

अर्थ–जब कृत् प्रत्ययान्त के योग में कर्त्ता और कर्म दोनों में ही एक ही साथ षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति होती है तो तब वहाँ कर्म में ही षष्ठी होगी, कर्त्ता में नहीं।

उदा०–आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन (अगोप के द्वारा गायों का दुहा जाना आश्चर्य की बात है) यहाँ 'दोहः' में दुह, से घञ् प्रत्यय है। इसके योग में कर्त्ता (गोप) और कर्म (गो) दोनों अनुक्त हैं, किन्तु केवल कर्म (गवाम्) में ही षष्ठी होगी और अनुक्त कर्त्ता में तृतीया ही होगी, षष्ठी नहीं।

सूत्र–क्तस्य च वर्त्तमाने 2।3।67।।

वर्त्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। 'न लोक' इति निषेधस्यापवादः। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

अर्थ–जब 'क्त' प्रत्यय जो भूतकालीन प्रत्यय भी है, जब वर्त्तमानकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, तो अनुक्त कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति होती है, यह सूत्र, 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' (दे 96) सूत्र, जिससे निष्ठा, प्रत्यय ('क्त, क्तवतु') के साथ षष्ठी का निषेध हुआ–का अपवाद है।

राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा (राजा से माना गया, जाना गया, पूजा गया) में 'क्त' प्रत्यय वर्त्तमान काल के अर्थ में है ('मति-बुद्धि-पूजार्थेभ्यश्च' से) वर्त्तमान काल के अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। अतः अनुक्त कर्त्ता में षष्ठी हुई (राज्ञाम्)।

सूत्र–अधिकरणवाचिनश्च 2।3।68।।

क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितं, शयितं, गतं, भुक्तं वा।

अर्थ–जब भूतकालीन 'क्त' प्रत्यय किसी 'अधिकरण' का बोध कराता हो तो उसके योग में अनुक्त कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदा०–इदमेषामासितं, शयितं, गतं, भुक्तं वा (वहाँ वे बैठे, यहाँ सोये, इधर से गये, यहाँ से भोजन किया) में 'क्त' प्रत्यय अधिकरण के अर्थ के साथ युक्त है, जैसे–'आस्यतेऽस्मिन् इति आसितम् अर्थात् आसन्, शय्यतेऽस्मिन् इति शयितम् (शय्या, गम्यते अस्मिन् इति गतम् (मार्ग); भुज्यतेऽस्मिन् इति भुक्तम् (भोजन पात्र), सब में अधिकरण अर्थ में 'क्त' प्रत्यय है। अतः अनुक्त कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति हुई है (एषाम्)।

सूत्र–न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् 2।3।69।।

एषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात्। लादेशाः। कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः। उः - हरिं दिदृक्षुः। अलङ्करिष्णुर्वा। उक - दैत्यान् घातुको हरिः।

अर्थ–(1) लकार के अर्थ में प्रयुक्त किये जाने वाले प्रत्ययों से युक्त शब्दों के योग में, (2) 'उ' तथा 'उक' जिनके अन्त में हो– ऐसे कृदन्त शब्द से योग में, (3) अव्यय कृदन्त के योग में, (4) निष्ठा (क्त, क्तवतु) प्रत्यय जिनके अन्त में हो– उनके योग में, (5) 'खल' या 'खल्' के समान प्रत्यय जिनके अन्त में हों, उन शब्दों के योग में तथा (6) शतृ, शानच्, शानन्, चानश्, तृन् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्त्ता और कर्म में षष्ठी नहीं होती। यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' से जो षष्ठी प्राप्त थी, उसका निषेध किया गया है।

उदा०–कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः– यहाँ लकार के अर्थ में प्रयुक्त प्रत्यय शतृ 'कुर्वन्' और शानच् 'कुर्वाणः' के योग में षष्ठी नहीं हुई। इसी प्रकार 'स्यतृ' 'स्यमान' 'क्वसु' 'कानच्' के योग में भी षष्ठी

नहीं होगी।

उदा०–'उ' प्रत्यय का उदाहरण–**हरिं दिदृक्षुः** (हरि देखने का इच्छुक) यहाँ उ प्रत्ययान्त 'दिदृक्षु:' के योग में 'हरि' में षष्ठी नहीं हुई है। 'उ' से इष्णुच् प्रत्यय को भी इसी नियम के अन्तर्गत समझना चाहिए।

उदा०–'हरिम् अलङ्करिष्णु:' में 'इष्णुच्' प्रत्ययान्त के योग में 'हरि' में षष्ठी नहीं हुई।

उदा०–'उक' प्रत्ययान्त का उदाहरण–**दैत्यान् घातुको हरिः** (हरि देवों के मारने वाले हैं) यहाँ 'उक' प्रत्ययान्त 'घातुक' के योग में 'दैत्य' में षष्ठी नहीं हुई है। हन् धातु से उकञ् = घातुक:।

वार्त्तिक–कमेरनिषेधः। लक्ष्म्या: कामुको हरि:। अव्ययम्–जगत् सृष्ट्वा। सुखं कर्त्तुम्। निष्ठा–विष्णुना हता दैत्या:। दैत्यान् हतवान् विष्णु:। खलर्थ:–ईषत्कर: प्रपञ्चो हरिणा। तृन्निति प्रत्याहार: शतृशनचाविति तृशब्दादारभ्य तृनो नकारात्। शानन्–सोमं पवमान:। चानश्–आत्मानं मण्डयमान:। शतृ–वेदमधीयन्। तृन्–कर्त्ता लोकान्।

उदा०–'कामुक' 'उक' प्रत्ययान्त शब्द के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होगा। अत: **लक्ष्म्या कामुको हरिः** में लक्ष्मी में षष्ठी हुई है।

उदा०–कृत् प्रत्यय से बने अव्ययों के योग में भी कर्त्ता या कर्म में षष्ठी नहीं होगी। जैसे–जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्त्तुम् में 'जगत्' और 'सुखं' में षष्ठी नहीं हुई है; क्योंकि सृष्ट्वा और कर्त्तुम् अव्यय कृदन्त हैं।

उदा०–निष्ठा (क्त, क्तवतु) प्रत्ययों के साथ षष्ठी का निषेध का निषेध होगा। जैसे–**विष्णुना हताः, दैत्या;, दैत्यान् हतवान् विष्णुः** में 'हता:' और 'हतवान्' क्रमश: क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त हैं, अत: इनके योग में 'दैत्य' में षष्ठी नहीं हुई है।

उदा०–खलर्थ प्रत्ययों का–**ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा** में खलर्थ प्रत्यय (ईषत्कर:) के योग में षष्ठी का निषेध है। 'तृन्' 'लट: शतृशानचौ' सूत्र में आये 'तृ' और 'तृन्' सूत्र के 'न्' को लेकर बनाया हुआ प्रत्याहार है इसका अर्थ यह है कि इनके बीच के सभी प्रत्ययों (शानन्, चानश्, शतृ और तृन्) के योग में षष्ठी नहीं होगी।

उदा०–'शानन्' का–**सोमं पवमानः**। चानश्–**आत्मानं मण्डपमानः**। शतृ–**वेदमधीयम्**। तृन्–**कर्त्ता लोकान्**। इन उदाहरणों में क्रमश: शानन्, चानश्, शतृ, तृन् प्रत्ययान्त शब्दों पवमान:, मण्डयमान:, अधीयन् तथा कर्त्ता के योग में क्रमश: सोम, आत्मानं, वेदम्, लोकान् में षष्ठी का निषेध हुआ!

उदा०–द्विषः शतुर्वा। मुरस्य मुरं वा द्विषन्। सर्वोऽयं कारकषष्ठ्या: प्रतिषेध:। शेषे: षष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। नरकस्य जिष्णु:।

अर्थ–जब 'द्विष्' धातु के साथ 'शतृ' प्रत्यय लगता है तो उसके योग में विकल्प से षष्ठी होती है।

उदा०–मुरस्य मुरं वा द्विषन्– यहाँ द्विष् + शतृ = द्विषन् के सात 'मुर' में द्वितीया और षष्ठी दोनों हो सकती है।

विशिष्ट कथन–ये सब नियम कारक षष्ठी का निषेध करते हैं। शेष में षष्ठी होगी, अत: **नरकस्य जिष्णुः** और **ब्राह्मणस्य कुर्वन्**– वाक्यों में 'कुर्वन्' में 'शृत' तथा 'जिष्णु' में 'ग्स्नु' प्रत्यय होने पर भी षष्ठी ही होगी। यहाँ 'न लोक०' से षष्ठी का निषेध होने पर भी शेषत्व विवक्षा से षष्ठी होगी।

सूत्र–अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः 2।3।70।।

भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न स्यात्। सत: पालकोऽवतरति। व्रजं गामी। शतं दायी।

अर्थ–भविष्यत्कालीन अर्थ में 'अक' प्रत्ययान्त शब्द के योग में तथा आधमर्ण्य (ऋण लेने) के अर्थ में 'इन' प्रत्ययान्त शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है। अक प्रत्ययान्त–ण्वुल्, वुञ्, भविष्यत्

काल का ही बोध कराता है, ऋण का नहीं। इन् प्रत्यय 'णिनि; और 'इनि' दोनों अर्थों का बोध कराते हैं।

उदा०–सतः पालकोऽवतरति (सत् की रक्षा करने वाला अवतार लेता है) में 'पालकः' अक प्रत्ययान्त है एवं भविष्यत् काल का अर्थ देता है, इसलिये सत् में षष्ठी नहीं हुई–द्वितीया बहुवचन हुई।

उदा०–इनि प्रत्ययान्त-**व्रजं गामी** (व्रज जाना है), **शतं दायी** (सौ रुपये कर्ज चुकाना है) में 'इनि' प्रत्ययान्त **गामी** और **दायी**, क्रमशः भविष्यत् काल का और 'ऋण' का अर्थ देते हैं, अतः इनके योग में 'व्रज' और 'शत' में षष्ठी नहीं हुई है, कर्म होने से द्वितीया ही हुई है।

सूत्र–कृत्यानां कर्त्तरि वा 2।3।71।।

षष्ठी वा स्यात्। मया मम वा सेव्यो हरिः। कर्त्तरीति किम्? गेयो माणवकः साम्नाम्। 'भव्यगेयः०' इति कर्त्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म। अत्र योगो विभज्यते।

अर्थ–'कृत्य' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी होती है। **कर्तृकर्मणोः कृति** सूत्र से षष्ठी ही होती है, किन्तु इस सूत्र से विकल्प से षष्ठी होगी। अर्थात् कर्त्ता में षष्ठी या अनुक्त होने से तृतीया भी होगी।

उदा०–मया मम वा सेव्यो हरिः में सेव्यः भविष्यत्कालीन कृत्यप्रत्ययान्त है। इसके योग में कर्त्ता में तृतीया तथा षष्ठी दोनों होगी (मया, मम)।

विशिष्ट कथन–कर्त्तरि अर्थात् कर्त्ता में ही क्यों? **गेयो माणवकः साम्नाम्** में 'गेयः' कृत्यप्रत्ययान्त है तथा कर्तृवाच्य में है। 'भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा 3।4।68।। सूत्र के अनुसार यहाँ कर्म अनभिहित है। इससे 'साम्नाम्' में षष्ठी ही होगी। अतः कर्त्ता में ही विकल्प से षष्ठी होगी, कर्म में नहीं।

विशिष्ट कथन–पतञ्जलि के अनुसार इस सूत्र को दो भागों में बाँटा गया है।

सूत्र–(क) कृत्यानाम्–उभयप्राप्ताविति नेति चानुवर्तते। तेन नेतव्या ब्रजं गावः कृष्णेन। ततः।

अर्थ–जब कृत्यप्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग हो, तो कर्त्ता और कर्म दोनों में ही षष्ठी नहीं होगी। 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' सूत्र से 'उभयप्राप्तौ' तथा 'न लोकाऽव्यय' सूत्र से 'न' की अनुवृत्ति लेकर यह अर्थ होगा कि कृत्यप्रत्ययान्त के योग में कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी न हो।

जिन क्रियाओं के दो कर्म होते हैं, उनके भविष्यत्कालीन कृदन्त के साथ षष्ठी नहीं होती है।

उदा०–नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन– में व्रज कर्म है। इसमें षष्ठी नहीं होगी और न कर्त्ता 'कृष्ण' में षष्ठी होगी। 'नेतव्य' कृत्यप्रत्ययान्त है।

(ख) कर्त्तरि वा। उक्तोऽर्थः।

अर्थ–उपर्युक्त स्थिति में विकल्प से कर्त्ता के साथ षष्ठी होगी, जिसे ऊपर 'कृत्यानाम्०–में स्पष्ट किया गया है।

11.2.5 उपपद निमित्तक षष्ठी विभक्ति

सूत्र–तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् 2।3।72।।

तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात्पक्षे षष्ठी। तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। अतुलोपमाभ्यां किम्? तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

अर्थ–'तुला' और 'उपमा' को छोड़कर तुल्य अर्थ शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है और षष्ठी भी।

उदारण–तुल्यः, सदृशः, समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा– में तुल्यार्थ शब्दों के साथ कृष्ण में तृतीया या षष्ठी होगी।

'तुला' और 'उपमा' शब्दों के अतिरिक्त क्यों कहा है? क्योंकि इन दोनों शब्दों के योग में शेष षष्ठी आवश्यक रूप से होती है। **तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति** (कृष्ण की उपमा नहीं है)।

सूत्र–चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः 2।3।37।।

एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा स्यात्पक्षे षष्ठी आशिषि। आयुष्यं चिरञ्जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। एवं मद्रं भद्रं कुशलं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात्। आशिषि किम्? देवदत्तस्यायुष्यमस्ति। व्याख्यानात्सर्वत्रार्थग्रहणम्। मद्रभद्रयोः पर्यायत्वसादन्यतरो न पठनीयः।

अर्थ–आशीर्वाद के अर्थ में प्रयुक्त आयुष्य (दीर्घ जीवन), मद्र (आनन्द), भद्र (कल्याण), कुशल, सुख, अर्थ, हित इत्यादि शब्दों के तथा इनके पर्यायवाची शब्दों के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है।

उदा०–आयुष्यं, चिरञ्जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा– में आयुष्य, चिरञ्जीवित के साथ कृष्ण मे चतुर्थी और षष्ठी दोनों हुई है।

उदा०–इसी प्रकार **मद्रं, भद्रं, कुशलं, निरामयं, सुखं, शं, अर्थः, प्रयोजनं, हितं, पथ्यं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्**– में भी आशीर्वाद देने के अर्थ में प्रयुक्त इन शब्दों के योग में कृष्ण में चतुर्थी और षष्ठी दोनों ही होगी।

आशीर्वाद अर्थ में ही क्यों? आशीर्वाद देना अर्थ न होने पर 'आयुष्यं देवदत्तस्य' (देवदत्त का जीवन लम्बा है) में आशीर्वाद या आशा करना अर्थ न होकर एक सामान्य तथ्य का कथन है। अतः केवल षष्ठी ही होगी। इन शब्दों के अन्तर्गत समान अर्थ देने वाले पर्यायवाची शब्द भी समझना चाहिये। 'मद्र' और 'भद्र' दोनों समानार्थक हैं अतः एक को ही पढ़ना चाहिये, दूसरे को निकाल देना ही उचित है।

इकाई–11

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अधोनिर्दिष्ट सूत्रों में से किन्हीं तीन या चार की सोदाहरण व्याख्या कीजिए–

(क) ध्रुवमपायेऽपादानम्।

(ख) पराजेरसोढः।

(ग) आख्यातोपयोगे।

(घ) अकर्तर्यृणे पञ्चमी।

(ङ) षष्ठी शेषे

(च) कर्तृकर्मणोः कृति।

(छ) कृत्यानां कर्तरि वा।

(ज) सर्वनाम्नस्तृतीया च।

2. निम्नलिखित रेखाङ्कित पदों में सूत्र निर्देश पूर्वक विभक्ति निर्देश प्रतिपादित कीजिए–

(क)- <u>धावतोऽश्वात्</u> पतति।

(ख)- <u>चोराद्</u>-बिभेति।

(ग)- <u>मातुर्</u>निलीयते कृष्णः।

(घ)- <u>ब्रह्मणः</u> प्रजाः प्रजायन्ते।

(ङ)- <u>चैत्रात्</u> पूर्वः फाल्गुनः।

(च)- <u>शताद्</u> बद्धः।

(छ)- <u>राज्ञः</u> पुरुषः।

(ज)- <u>मातुः</u> स्मरति।

(झ)- <u>ग्रामस्य</u>-दक्षिणतः।

(ण)- <u>जगतः</u> कर्ता कृष्णः।

(ट)- <u>राज्ञां</u> मतः।

(ठ)- तुल्यः-<u>कृष्णेन</u>।

(ड)- <u>कृष्णाय</u> कुशलम्।

इकाई –12 अधिकरण कारक–सप्तमी विभक्ति

12.0 उद्देश्य

12.1 सामान्य अधिकरण कारक परिचय

12.1.1 अधिकरण कारक साप्तमी

12.1.2 विशिष्ट सप्तमी विचार

12.1.3 विशिष्ट कर्मप्रवचनीय निमित्तक सप्तमी

12.0 उद्देश्य–

प्रकृत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप
सामान्य अधिकरण कारक का परिचय जान सकेंगें।
अधिकरण कारक सप्तमी के विषय में जान पायेंगे।
विशिष्ट सप्तमी विचार को समझ सकेंगे।
विशिष्ट कर्म प्रवचनीय निमित्तक सप्तमी के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
7. अधिकरण कारक-सप्तमी विभक्ति

12.1 सामान्य अधिकरण कारक परिचय–

सूत्र–आधारोऽधिकरणम् 1।4।45।।

कर्त्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधार: कारकमधिकरणसंज्ञ: स्यात्।

अर्थ–कर्त्ता और कर्म द्वारा अपने विद्यमान क्रिया का जो आधार होता है, उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। आधार क्रिया का ही होता है, परन्तु वह कर्त्ता द्वारा या कर्म द्वारा होता है। आधार को अधिकरण कहते हैं। जिस स्थान या आधार पर कर्त्ता या कर्म द्वारा क्रिया सम्पादित हो, उसे अधिकरण कहते हैं।

12.1.1 अधिकरण कारक सप्तमी–

सूत्र–सप्तम्यधिकरणे च 2।3।36।।

अधिकरणे सप्तमी स्यात्। चकाराद्दूरान्तिकार्थेभ्य:। औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा। कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति। वनस्य दूरे अन्तिके वा। 'दूरान्तिकार्थेभ्य:' इति विभक्तित्रयेण सह चतस्रोऽत्र विभक्तय: फलिता:।

अर्थ–अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। सूत्र में 'च' का प्रयोग होने से दूर और अन्तिक (निकट) अर्थ वाले शब्दों के साथ भी सप्तमी का प्रयोग होता है।

स्पष्टीकरण–अधिकरण तीन प्रकार का होता है–

1. औपश्लेषिक Location of Contact. (उप-समीपे श्लेष:-संयोग इति उपश्लेष:, तत्र भव: औपश्लेषिक:)।

2. वैषयिक Location of Object. विषय: प्रतिपाद्योऽर्थ:, तेन निर्वृत्त:।

3. अभिव्यापक Location of Pervasion. अभिव्याप्नोति सर्वम्।

औपश्लेषिक वहाँ होता है, जहाँ एक वस्तु अपने आधार के साथ संयोग सम्बन्ध में हो। वैषयिक वहाँ

होता है, जहाँ किसी 'विषय' पर क्रिया का आधार होता है, इसमें संयोग नहीं होता। अभिव्यापक वहाँ होता है, जहाँ किसी वस्तु का किसी भी विशेष आधार में विस्तार दिखाया जाय, सभी अवयवों से सम्बद्ध हो।

उदा०–कटे आस्ते (चटाई पर बैठता है) में औपश्लेषिक अधिकरण है, कारण-चटाई से कर्त्ता का संयोग सम्बन्ध होना विदित होता है।

उदा०–स्थाल्यां पचति (थाली में पकाता है) में भी।

उदा०–मोक्षे इच्छास्ति (मोक्ष की इच्छा है) में वैषयिक अधिकरण हैं, कारण-क्रिया किसी विषय (Object) पर आधारित है।

उदा०–सर्वस्मिन्नात्मास्ति (सभी में आत्मा है) में आत्मा का सर्व में व्यापकत्व दिखाये जाने के कारण अभिव्यापक अधिकरण है।

दूर एवं अन्तिक का उदा०–सूत्र में 'च' का प्रयोग होने में 'दूर' और 'अन्तिक' में सप्तमी होगी।

अन्तिके दूरे वा वनस्य (वन के निकट या दूर) में 'अन्तिक' और 'दूर' शब्द में सप्तमी हुई है। 'दूर' और 'अन्तिक' में 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' 2।3।35 सूत्र से द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी तीनों विभक्तियाँ तो लगती ही हैं, इस सूत्र से चौथी सप्तमी विभक्ति भी लगती है।

वार्त्तिक–क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्यानम्।

अधीती व्याकरणे। अधीतमनेनेति विग्रहे 'इष्टादिभ्यश्च' इति कर्त्तरीनिः।

अर्थ–'क्त' प्रत्यय से बने भूतकालीन कृदन्तों में जब 'इन्' लगता है तो उनके कर्म में सप्तमी होती है।

उदा०–अधीती व्याकरणे (व्याकरण में पण्डित) में अधीती 'क्त' प्रत्ययान्त 'अधीत' में 'इनि' प्रत्यय जोड़कर बना है; अतः उसके कर्म (व्याकरण) में सप्तमी हुई है। 'अधीती' का विग्रह करने पर– 'अधीतमनेन' ऐसा होगा। 'इष्टादिभ्यश्च' सूत्र से कर्त्ता में 'इनि' प्रत्यय हुआ है।

वार्त्तिक–साध्वसाधुप्रयोगे च।

साधुः कृष्णो मातरि। असाधुर्मातुले।

अर्थ–'साधु' और 'असाधु' शब्दों के साथ जिसके प्रति साधुता या असाधुता बतलायी जाय, उसमें सप्तमी होगी। उदाहरण–

उदा०–साधुः कृष्णो मातरि (कृष्ण माता के प्रति साधु–अच्छा व्यवहार रखने वाला है)। **असाधुर्मातुले** मामा के प्रति असाधु–बुरा व्यवहार रहने वाला है)। इसमें क्रमशः 'मातृ' और 'मातुल' में 'साधु' और असाधु' के प्रयोग के कारण सप्तमी हुई है।

वार्त्तिक–निमित्तात्कर्मयोगे।

निमित्तमिह फलम्। योगः संयोगसमवायात्मकः।

अतौ तृतीयाऽत्र प्राप्ता तन्निवारणार्थमिदम्। सीमाऽण्डकोशः। पुष्कलको गन्धमृगः। योगविशेषे किम्? नितनेन धान्यं लुनाति।

अर्थ–निमित्त या क्रिया के फल के वाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है, यदि फल का क्रिया के कर्म के साथ संयोग या समवाय सम्बन्ध हो। 'निमित्त' का अर्थ यहाँ 'फल' से है। योग का अर्थ संयोग वं समवाय रूपी सम्बन्धों से है।

दा०–चर्मणि द्वीपिनं हन्ति = चमड़े के लिये सिंह को मारता है।

दा०–दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् = दाँतों के लिये हाथी को मारता है।

दा०–केशेषु चमरीं हन्ति = केश के लिये चमरी गाय को मारता है।

उदा०–सीम्नि पुष्कलको हतः = कस्तूरी के लिये मृग मारा जाता है।

इन उदाहरणों में 'मारना' क्रिया के फल क्रमशः चर्म, दन्त, केश, सीमन् है, इन सबका हनन क्रिया के कर्म क्रमशः द्वीपी, कुञ्जर, चमरी, पुष्कलक से समवाय सम्बन्ध है, अतः फल या निमित्त में चर्म, दन्त, केश, सीमन् में सप्तमी हुई।

विशिष्ट कथन–'हेतौ' सूत्र में भी फल को हेतु मानकर फल में तृतीया का विधान किया गया था, अतः यहाँ 'हेतौ' सूत्र से तृतीया प्राप्त थी, किन्तु यह वार्त्तिक उसका निषेध करता है।

योग विशेष या किसी विशेष सम्बन्ध में संयोग या समवाय सम्बन्ध में ही सप्तमी क्यों?

उदा०–**वेतनेन धान्यं लुनाति** (वेतन के लिये धान्य काटता है) यहाँ 'वेतन' का 'धान्य' के सात उस प्रकार का समवाय या संयोग सम्बन्ध नहीं है, जैसा सिंह और उसके चमड़े में, हाथी और उसके दाँतों में, अतएव 'वेतन' में सप्तमी न होकर 'हेतौ' सूत्र से तृतीया ही होगी (वेतनेन)।

12.1.2 विशिष्ट सप्तमी विचार

सूत्र–यस्य च भावेन भावलक्षणम् 2|3|37||

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी स्यात्। गोषु दुह्यमानासु गतः।

अर्थ– किसी क्रिया से कोई दूसरी क्रिया लक्षित होती है, उसमें सप्तमी का प्रयोग होता है। इस सूत्र में 'भाव' शब्द का अर्थ क्रिया है। जब दो क्रियाओं में एक का समय मालूम हो, किन्तु दूसरी का समय न मालूम हो तब जिस क्रिया का काल ज्ञात हो उसके द्वारा अज्ञातकाल क्रिया को बताया जाता है। एक क्रिया लक्षक होती है, दूसरी लक्ष्य। ऐसी स्थिति में जिस क्रिया से दूसरी क्रिया बतायी जाती है, उसमें सप्तमी होती है।

उदा०–**गोषु दुह्यमानासु गतः** (गायों के दूहे जाने पर गया) में गायों के दूहे जाने की क्रिया से दूसरी क्रिया 'जाने' का बोध होता है, इसलिए 'गो' में सप्तमी हुई है और 'दुह्यमान' उसका विशेषण है, अतः उसमें भी सप्तमी हुई।

सूत्र–षष्ठी चानादरे 2|3|38||

अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठी-सप्तम्यौ स्तः। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्। रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः।

अर्थ–जहाँ अनादर का अर्थ हो–वहाँ जिस क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित होती हो तो उसमें षष्ठी या सप्तमी विभक्ति लगती है।

उदा०–**रुदति रुदतः वा प्राव्राजीत्** (रोते हुए पुत्रादि की उपेक्षा कर संन्यासी हो गया) में अनादर का अर्थ है और रोने की क्रिया से जाने की क्रिया का निर्देश है; अतएव पहली क्रिया के कर्त्ता में षष्ठी या सप्तमी होगी। इसका अर्थ होगा 'रोते हुए पुत्रों आदि का अनादर करके संन्यासी हो गया।'

सूत्र–स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च 2|3|39||

एतैः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पाक्षिकसप्तम्यर्थं वचनम्। गवां गोषु वा स्वामी। गवां गोषु वा प्रसूतः। गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः।

अर्थ–स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू प्रसूत–इन सात शब्दों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ होती है। इनके साथ 'शेषे षष्ठी' के अनुसार केवल षष्ठी का ही नियम था, किन्तु इस सूत्र के अनुसार सप्तमी का भी नियम समझना चाहिए।

उदा०–**गवां गोषु वा स्वामी** (गायों के स्वामी) में 'स्वामी' के योग में तथा **गवां गोषु वा प्रसूतः**

(गायों के लिये उत्पन्न) में 'प्रसूत' के योग में, षष्ठी या सप्तमी दोनों हुई हैं। 'गवां गोषु वा प्रसूतः' का अर्थ होगा गायों की रक्षा के लिए उत्पन्न या गायों को ही अपने भाग के रूप में पाने के लिए उत्पन्न।

सूत्र–आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् 2।3।40।।

आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तस्तात्पर्येऽर्थे। आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा। आसेवायां किम्? आयुक्तो गौः शकटे। ईषद्युक्त इत्यर्थः।

अर्थ–'आयुक्त' तथा 'कुशल' के साथ आने वाले शब्दों में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति लगती है, जब पूर्ण रूप से सेवा करने का अर्थ हो। आयुक्त का अर्थ होता है काम में लगा हुआ।

उदा०–आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा (हरि की पूजा में पूर्णरूप से लगा हुआ या प्रवीण) में 'हरिपूजन' में 'आयुक्त' और 'कुशल' शब्दों के योग में षष्ठी या सप्तमी हुई है। 'आयुक्त' का अर्थ है 'सम्यक् युक्तः'। 'आसेवा' का अर्थ है 'समन्तात् सेवा' (तत्परता से कार्य में पूर्ण रूप से लगा होना)।

आसेवा (पूर्ण रूप से लगा होना) अर्थ होने पर ही क्यों? 'आयुक्तो गौः शकटे' (बैल गाड़ी में जुता है) में थोड़ा जुता है–का अर्थ होने से केवल सप्तमी होगी (शकटे); षष्ठी नहीं होगी। यहाँ अधिकरण सिद्ध था, इस सूत्र द्वारा षष्ठी का भी विधान किया गया है।

सूत्र–यतश्च निर्धारणम् 2।3।41।।

जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः।

अर्थ–जहाँ किसी समुदाय से किसी विशेष को, जाति, गुण, क्रिया या संज्ञा के आधार पर पृथक् किया जाय, वहाँ समुदायवाचक शब्द से षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। समुदाय से किसी अंश को पृथक् करने को ही निर्धारण कहते हैं।

उदा०–1. जातिवाचक– **नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः** (मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है)। मनुष्यों में ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता बताकर उसे अलग किया गया है अतः 'नृ' में षष्ठी या सप्तमी होगी।

उदा०–2. गुणवाचक– **गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा** (गायों में काली अधिक दूध देने वाली होती है) यहाँ गुण के आधार पर गो समुदाय से कृष्णा को पृथक् किया गया है, अतः 'गो' में षष्ठी या सप्तमी होगी।

उदा०–3. क्रियावाचक–**गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः** (चलते हुए में दौड़ने वाला शीघ्र जाता है) में क्रिया के आधार पर 'धावन्' पृथक् क्रिया हो गयी है, अतः समूह में षष्ठी या सप्तमी होगी।

उदा०–4. संज्ञावाचक–**छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः** छात्रसमुदाय में से संज्ञा का उल्लेख कर मैत्र को पृथक् किया गया है, अतः 'छात्र' में षष्ठी या सप्तमी होगी।

सूत्र–पञ्चमी विभक्ते 2।3।42।।

विभागो विभक्तम्। निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्। माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः।

अर्थ–विभक्त का अर्थ होता है 'विभाग, भेद या अन्तर'। जिस वस्तु की विशेषता बतायी जाय, वह वस्तु, जिस वस्तु के साथ विशेषता बताई जाय उससे बिल्कुल भिन्न हो तो वहाँ पञ्चमी होती है। अर्थात् पृथक् की जाने वाली वस्तु का शेष वस्तुओं से भेद हो, तो जिससे पृथक्ता बतायी जा रही हो, उसमें पञ्चमी होती है।

उदा०–माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः आढ्यतराः (मथुरावाले पटनावालों से धनी हैं) में 'माथुराः' की

विशेषता 'पाललिपुत्र' से बताई गई है। 'माथुरा:' निर्धार्यमाण हैं, उनकी 'पाटलिपुत्रा:' से पृथक्ता बतायी जा रही है। ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं, इसलिये 'पाटलिपुत्रेभ्य:' से पञ्चमी हुई है।

सूत्र–साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रते: 2।3।43।।

आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायां न तु प्रते: प्रयोगे। मातरि साधुर्निपुणो वा। अर्चायां किम्? निपुणो राज्ञो भृत्य:। इह तत्त्वकथने तात्पर्यम्।

अर्थ–साधु (भला) और निपुण (चतुर) शब्दों से जब प्रशंसा या आदर प्रकट होता है और इसके साथ जब 'प्रति' का प्रयोग नहीं होता है, तो इन दोनों शब्दों के योग में सप्तमी होती है।

यहाँ शेषषष्ठी प्राप्त होने पर इस सूत्र द्वारा निषेध हो जाता है।

उदा०–मातरि साधुर्निपुणो वा (माता के प्रति भला) में साधु और निपुण शब्दों के साथ 'मातृ' में सप्तमी हुई है।

अर्चा (आदर प्रशंसा) के अर्थ में ही क्यों?

उदा०–निपुणो राज्ञो भृत्य: (राजा का सेवक निपुण है) में केवल कथन है, प्रशंसा या आदर की सूचना न होने से 'राजन्' में षष्ठी हुई है, सप्तमी नहीं।

सूत्र–प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च 2।4।44।।

आभ्यां योगे तृतीया स्याच्चात्पसप्तमी। प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा।

अर्थ–'प्रसित' तथा 'उत्सुक' शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है और सप्तमी भी होती है। सूत्र में 'च' का प्रयोग होने से सप्तमी भी होती है–ऐसा अर्थ हुआ है।

उदा०–प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरि के लिये इच्छुक या तत्पर) में 'प्रसित' और 'उत्सुक' के योग में 'हरि' में तृतीया या सप्तमी होगी।

सूत्र–नक्षत्रे च लुपि 2।3।45।।

नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्संज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थस्तत्र वर्तमानात् तृतीयासप्तम्यौ स्तोऽधिकरणे। मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्। मूले श्रवणे इति वा। वा लुपि किम्? पुष्ये शनि:।

अर्थ–जब मूल शब्द का अर्थ नक्षत्र हो और उसके प्रत्यय का 'लुप्' से लोप कर दिया गया हो और इस प्रकार मूल शब्द ही प्रत्यय के अर्थ को अभिव्यक्त कर रहा हो, तब उस नक्षत्रवाचक शब्द से अधिकरण अर्थ में तृतीया या सप्तमी होती है।

उदा०–मूले मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन श्रवणेवा विसर्जयेत् (मूल नक्षत्र में देवी का आवाहन करना चाहिये, श्रवण नक्षत्र में विसर्जन) में 'मूल' एवं 'श्रवण' नक्षत्रवाची शब्द हैं, जिनके प्रत्यय 'अण्' का 'लुब्विशेषे' 4।2।4 सूत्र से लोप हो गया है, फिर भी ये शब्द प्रत्यय के अर्थ को बताते हैं, अत: 'मूल' एवं 'श्रवण' में तृतीया या सप्तमी होगी।

जब 'लुप्' शब्द से प्रत्यय का लोप किया गया हो तभी क्यों? प्रत्यय का लुप् से लोप न होने से '**पुष्ये** शनि:' में सप्तमी ही होगी। पुष्य शब्द नक्षत्रवाचक है, परन्तु इसके साथ कोई प्रत्यय नहीं आया है।

सूत्र–सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये 2।3।7।।

शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वनौ ताभ्यामेते स्त:। अद्य भुक्त्वाऽयं-द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता। कर्तृशक्त्योर्मध्येऽयं काल:। इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा विध्येत्। कर्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽयं देश:। अधिकशब्देन योगे सप्तमीपञ्चम्याविष्येते। 'तदस्मिन्नधिकम्' इति 'यस्मादधिकम्' इति च सूत्रनिर्देशात्। लोके लोकाद्वाऽधिको हरि:।

अर्थ–दो शक्तियों के बीच में जो काल या अध्व (मार्ग की दूरी) होती है, उनके वाचक शब्दों में सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति होती है। यहाँ 'कारकमध्ये' का अर्थ है दो कारकों की शक्तियों के बीच।

उदा०–अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता (आज खाकर वह दो दिन बाद या दो दिन में खायेगा) यहाँ कर्त्ता एक ही है, वह आज कोई क्रिया करता है (खाता है) और फिर दो दिन बाद कोई क्रिया करता है। इन दो शक्तियों के बीच का समय का अन्तर बताने वाले शब्द 'द्व्यह' में सप्तमी या पञ्चमी होगी।

उदा०–इसी प्रकार **इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्** (यहाँ खड़े होकर वह एक कोस पर लक्ष्य का भेदन करेगा) में यहाँ खड़े होने पर दूसरी क्रिया (लक्ष्य का वेध करने) के बीच के मार्ग की दूरी बताने वाले शब्द 'क्रोश' में पञ्चमी या सप्तमी हुई है।

पहले उदाहरण में दो क्रियाओं के बीच में समय का अन्तर बताया गया है और दूसरे में कर्त्ता और कर्म की शक्तियों के बीच अध्व बताया गया है।

विशिष्ट कथन–'अधिक' शब्द के योग में सप्तमी और पञ्चमी होगी, क्योंकि पाणिनि ने अपने सूत्रों 'तदस्मिन्नधिकम्०' और 'यस्यादधिकम्०' में 'अधिक' के साथ क्रमशः सप्तमी और पञ्चमी का प्रयोग किया है।

उदा०–लोके लोकाद् वा अधिको हरिः में 'अधिक' के योग में 'लोक' में सप्तमी या पञ्चमी होगी।

12.1.3 विशिष्ट कर्मप्रवचनीय निमित्तक सप्तमी

सूत्र–अधिरीश्वरे 1।4।97।। स्वस्वामिभावसम्बन्धेऽधिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः स्यात्।

अर्थ–'अधि' शब्द जब स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध बताने के लिये प्रयुक्त होता है, तो कर्मप्रवचनीय होता है। ईश्वर या 'स्वामी' किसी वस्तु, सम्पत्ति, व्यक्ति का ही होता है। ऐसी स्थिति में प्रयुक्त होने पर 'अधि' कर्मप्रवचनीय होता है।

सूत्र–यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी 2।2।9।।

अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी स्यात्। उप परार्धे हरेर्गुणाः। परार्धादधिका इत्यर्थः। ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी। अधि भुवि रामः। अधि रामे भूः। सप्तमी शौण्डैरिति समासपक्षे तु रामाधीना। 'अषडक्ष' इत्यादिना खः।

अर्थ–जिससे अधिकता बतायी जाय और जिसका स्वामी होना बताया जाय, उन शब्दों में कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी होती है।

उदा०–उप परार्धे हरेर्गुणाः (हरि के गुण परार्द्ध से भी अधिक हैं) में 'उप' कर्मप्रवचनीय के साथ 'परार्द्ध' में, अधिक अर्थ होने से सप्तमी हुई है। 'उप' की 'उपोऽधिके च' से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुई।

उदा०–ऐश्वर्य या स्वामित्व का अर्थ होने पर कभी तो स्वामी में और कभी उस वस्तु या व्यक्ति में जिस पर स्वामित्व है, सप्तमी होती है।

उदा०–अधि भुवि रामः में 'भू' में 'अधि' के योग में सप्तमी हुई है और **अधि रामे भूः** में 'राम' में ही सप्तमी हुई है। जब 'रामे अधि' में 'सप्तमी शौण्डैः' सूत्र से समास होगा तो 'रामाधीना' होगा। 'अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः' 5।4।7। सूत्र से 'ख' जोड़ा जाता है।

सूत्र–विभाषा कृञि 1।4।98।। अधिः करौतौ प्राक्संज्ञो वास्यादीश्वरेऽर्थे। यदत्र मामधिकरिष्यति। विनियोक्ष्यत इत्यर्थः। इह विनयोक्तुरीश्व लवं गम्यते। अगतित्वात् 'तिङि चोदात्तवति' इति निघातो न।।

अर्थ–'अधि' के बाद जब 'कृ' धातु आती है तो 'अधि' विकल्प से कर्म-प्रवचनीय होता है, जब ईश्वर अर्थात् स्वामी होना अर्थ हो।

उदा०–यदत्र मामधिकरिष्यति– में अधि + कृ (अधिकरिष्यति) का प्रयोग 'स्वामी होना' अर्थ में हुआ है, अतएव यहाँ विकल्प से कर्मप्रवचनीय होकर द्वितीया हुई है। 'अधिकरिष्यति' का अर्थ है, लगायेगा,

आज्ञा देगा, नियन्त्रित करेगा। विनियोग करने से विनियोक्ता का 'स्वामित्व' प्रतीत होता है।

विशिष्ट कथन–'अधि' कर्मप्रवचनीय होने पर भी यहाँ सप्तमी नहीं होती, फिर भी इस सूत्र का यह तात्पर्य है कि जब 'अधि' कर्मप्रवचनीय हो जायेगा, तब उसकी गति संज्ञा नहीं होगी और 'तिङ चोदात्तवति' सूत्र से 'अधि' को निघात नहीं होगा। यदि कर्मप्रवचनीय संज्ञा न होती तो गतिसंज्ञा होने पर निघात होता।

इस प्रकार 'अधि' को कर्मप्रवचनीय करने का क्या प्रयोजन है? इस जिज्ञासा की शान्ति हो जाती है।

कारकप्रकरण समाप्त

इकाई–12

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निम्नलिखित किन्हीं तीन या चार सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए–

(क) आधारोऽधिकरणम्।

(ख) यस्य च भावेन भावलक्षणम्।

(ग) यतश्च निर्धारणम्।

(घ) अधिरीश्वरे।

(ङ) विभाषा कृञि।

2. नीचे लिखे हुए रेखाङ्कित पदों में सूत्र निर्देश पूर्वक विभक्ति प्रतिपादन कीजिए–

(क)- कटे अस्ति।

(ख)- मोक्षे इच्छास्ति।

(ग)- अधीती व्याकरणे।

(घ)- चर्मणि द्वीपिनं हन्ति।

(ङ)- रुदति-रुदतो वा प्राव्राजीत्।

(च)- नृणां ब्राह्मण: श्रेष्ठ:।

(छ)- छात्रेषु मैत्र: पटु:।

(ज)- अधि भुवि-राम:।

(झ)- उप परार्धे हरेर्गुणा:।

(ञ)- मातरि-साधु:।

इकाई–9,10,11,12

समस्त इकाईगत अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कर्त्ता कारक का सूत्र क्या है?
2. कर्म कारक की परिभाषा किस सूत्र द्वारा की गयी है?
3. तृतीया विभक्ति का सूत्र क्या है?
4. सम्प्रदान संज्ञा विधायक सूत्र कौन सा है?
5. अपादान संज्ञा कब होती है?
6. शेष शब्द का षष्ठी विधायक सूत्र में क्या अर्थ गृहीत किया जाता है?
7. अधिकरण कितने प्रकार का होता है?
8. सप्तमी विधायक सूत्र लिखिए?

9. निर्धारण में कौन सी विभक्ति होती है?

10. प्रसिद्ध क्रियावाचक शब्द में कब तथा कौन सी विभक्ति होती है?

11. तादर्थ्य में कौन सी विभक्ति आती है?

12. कृदन्त के योग में कर्ता व कर्म में कौन सी विभक्ति होती है?

13. सम्बोधन में कौन सी विभक्ति आती है?

14. अकथित कारक में कौन सा कारक शास्त्र द्वारा विहित है?

15. परिक्रयण अर्थ में साधकतम कारक की क्या कारक संज्ञा होती है?

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGST-103
संस्कृत

खण्ड चार
संस्कृत-निबन्ध

प्रथम इकाई वर्णनात्मक निबन्ध	5
द्वितीय इकाई विचारात्मक-निबन्ध	19
तृतीय इकाई भावात्मक व समीक्षात्मक निबन्ध	25
चतुर्थ इकाई शास्त्रीय, कवि, सूक्ति एवं सुभाषितगत निबन्ध	32

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम - संयोजक
श्री मिठाई लाल कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ-समिति

1- प्रो0श्री नारायण मिश्र	सेवानिवृत्त, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
2- प्रो0 युगल किशोर मिश्र	संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
3- प्रो0 हरे राम त्रिपाठी	म0 गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
4- प्रो0 श्रीकिशोर मिश्र	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सम्पादक

प्रो0 के0 पी0 सिंह	वरिष्ठ परामर्शदाता (संस्कृत)

लेखक

डॉ0 पी0 डी0 सिंह	वरिष्ठ रीडर, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पाठ्यक्रम-परिचय

लोक-व्यवहार में मनुष्य भाषा के माध्यम से विचारों को भाषण तथा लेखन द्वारा दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करता है। लेखनात्मक प्रस्तुति को निबन्ध के नाम से जाना जाता है।

निबन्ध में आदि से अन्त तक निर्धारित विषय पर परिमार्जित भाषा एवं शोभन शैली में क्रमबद्ध विचार उपनिबद्ध किया जाता है। संस्कृत भाषा में निबन्ध लिखने के लिए प्रस्तुत पुस्तक आप लोगों के लिए अतीव सहायक होगी। इस पुस्तक की चार इकाइयों में लगभग 32 निबन्धों का संकलन किया गया है। इसके अन्तर्गत वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक व समीक्षात्मक विषयों के साथ-साथ शास्त्रीय, कवि, सूक्ति आदि पर भी निबन्ध प्रस्तुत हैं जिनसे छात्र अत्यन्त लाभान्वित होंगे।

प्रथम इकाई - वर्णनात्मक निबन्ध

1.0 उद्देश्य

1.1 निबन्ध

1.2 गङ्गा (भागीरथी)

1.3 वाराणसी

1.4 संस्कृतभाषायाः महत्त्वम् वैशिष्ट्यञ्च

1.5 नौका-विहारः

1.6 सैनिकशिक्षा

1.7 समाचारपत्रम्

1.8 पुस्तकालयः

1.9 दीपावली

1.10 वसन्तः

1.11 ग्रीष्मः

1.12 स्वतंत्रतादिवसोत्सवः

1.13 गणतंत्रविशेषोत्सवः

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप संस्कृत भाषा में गङ्गा इत्यादि वर्णनात्मक निबन्धों के लेखन-प्रक्रिया को समझ जायेंगे।

1.1 निबन्ध

1. 'नि+बन्ध् = निबन्ध' (अच्छी तरह से बाँधना)। किसी विषय पर परिमार्जित भाषा में स्वतः परिपूर्ण क्रमबद्ध विचारों के लेखन को 'निबन्ध' कहते हैं। अतः– (1) वर्णित विषय की पूर्णता, (2) विचारों की क्रमबद्धता तथा (3) भाषा की परिमार्जितता - ये तीन मुख्य बातें निबन्ध में होती हैं। इसके लिए जरूरी है कि – (क) भाषा-शैली-सरल, सरस, अर्थ-गम्भीर, भावानुरूप, स्वाभाविक, व्याकरण से शुद्ध, प्रवाहपूर्ण, सुभाषितलोकोक्ति-अलङ्कार आदि से अलंकृत तथा पुनरुक्ति-क्लिष्टता-संदिग्धता, अनावश्यक विस्तार आदि दोषों से रहित हो। (ख) निबन्ध के प्रारम्भ में प्रभावोत्पादक संक्षिप्त प्रस्तावना (इसमें विषय-निर्देश दिया जाता है। प्रस्तावना प्रारम्भ करने के कई ढंग हैं। जैसे – विषय की परिभाषा से, उपयोगिता से, सूक्ति या कहावत से, दृश्यवर्णन से, घटना-विशेष से, आदि) हो। (ग)

अन्त में सारगर्भित संक्षिप्त उपसंहार तथा मध्यभाग में विषय के विविध पहलुओं का विस्तृत विवेचन हो। इसमें मुख्यतः वर्णनीय विषय (प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक वस्तुओं) के बाह्य स्वरूप का स्थूल वर्णन किया जाता है। यथा –

1.2 गङ्गा (भागीरथी)

भगवती गङ्गा (गम्+ग+टाप्) भारतदेशस्य पुण्यतमा पतितपावनी एका दिव्या नदी। इयं हिमालयपर्वतस्य 'गंगोत्री' नामकस्थानात् प्रभवति। ततः प्रयागे यमुना-सरस्वतीभ्यां सम्मिलिता सती तस्मिन्-तस्मिन स्थाने अनेकनदीभिश्च मिलित्वा प्रवहन्ती कलकत्ता समीपे गंगासागरसंगमे समुद्रे निमज्जति।

इयं गङ्गा त्रिधात्मना स्वर्गं, पातालं मर्त्यलोकञ्च व्याप्नोति, तस्मात् 'त्रिपथगा', स्वर्गादवतरन्ती इयं शिवजटासु कञ्चित्कालमवरुद्धा, पुनश्च भगीरथप्रार्थनया सगरसन्ततिसमुद्धाराय ततोऽवतरन्ती पृथ्वीलोके 'भागीरथी', हिमवतः प्रभूतत्वात् 'हैमवती' इति चोच्यते। जह्नोः आश्रमस्य मध्यादधस्तादपसरन्ती इयं 'जाह्नवी' इत्यपि व्यपदिश्यते। हिमवतः ज्येष्ठापुत्री गंगा आसीत्। सा ब्राह्मणः शापवशात् पृथिव्यामापतिता। तत्र शांतनुराज्ञः पत्नी जाता। तस्याः तत्र अष्टौ पुत्राः जाताः, तेषु भीष्मः एकः। इत्थमियं गङ्गादेव्याः मूर्तरूपत्वात् 'गङ्गा' इति। एवमेव अन्यान्यपि बहूनि नामानि पुराणेषु शास्त्रान्तरेषु च समुपलभ्यन्ते।

अस्याः तीरे भूयांसि महानगराणि सन्ति। तेषु हरिद्वारम्, प्रयागः, वाराणसी, पाटलिपुत्रम् ('पटना' इति), भागलपुरम्, कोलकाता ('कलकत्ता' इति) विशेषतः उल्लेखनीयानि। हरिद्वारे वाराणस्याञ्च अस्याः सौन्दर्यं वाचामगोचरतां याति। क्षेत्रादिसेचने विद्युदादिसमुत्पादने च गङ्गा अस्माकं भूयांसमुपकारं करोति। अस्याः जलम् अतिपवित्रम्, निर्मलं स्वास्थ्यकरं च। इदं चिराय रक्षितमपि कीटादिना विकृतिं न प्राप्नोति। अस्याः तीरे निवासेन, जलपानेन, स्नानेन वायुसंस्पर्शेन च महान् स्वास्थ्यलाभो भवति, पापानि च नश्यन्ति। अतः प्रतिवर्षम् असंख्याः धार्मिकजनाः हरिद्वार-प्रयाग-काशी-प्रभृतीनि गङ्गातीर्थस्थानानि स्नानाय गच्छन्ति। अस्याः प्रमुखतीर्थस्थानस्थतटभागेषु बहवः मनोहराः घट्टाः सन्ति, यत्र मनोरञ्जनप्रियाः बहवः जनाः नौकाविहारादिकं कुर्वन्ति, तटस्य रमणीयतां च पश्यन्ति। समये-समये अस्याः तटेषु बहुत्र महान्तः उत्सवाः आयोज्यन्ते।

एवम्प्रकारेण गङ्गानदी इह लोके परलोके च उभयत्र हितावहा। अतः समुचितमेवोक्तं देवीभागवते–

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।

1.3 वाराणसी (काशी)

भारतदेशस्य उत्तरप्रदेशे वाराणसी नगरी प्राचीनतमं तीर्थस्थानम्। केचन असी (अस्सी) वरुणानद्योर्मध्ये स्थितत्वात् अस्याः नाम 'वाराणसी' इति व्यवहरन्ति। इयं नगरी 'काशी' नाम्ना अपि प्रसिद्धा वर्तते। लोकभाषायाम् अस्या नाम 'बनारस' इत्यप्यस्ति। अनेकेषु प्राचीनग्रन्थेषु अस्याः महिमा उपलभ्यते। इयं गङ्गायाः वामतटे धनुषाकारेण विराजते।

इयं नगरी कदा स्थापिताऽभूत् इति निश्चेतुं न शक्यते। पुराणानुसारेण इयं भगवता शंकरेण स्वनिवासाय निवसतां च मुक्तिप्रदानाय त्रिशूलस्योपरि स्वयं स्थापिता। जनता अद्यापि विश्वसिति यद् भगवान् शंकरः अत्रैव निवसति। अतः योऽत्र पार्थिवं शरीरं त्यजति, सः भगवतः कृपया तारकर्मत्रबलेन स सद्यः मुक्तिं प्राप्नोति। 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' इति सिद्धान्तस्तु अस्याः आध्यात्मिकं महत्त्वं प्रतिपादयति।

अत्र जगत्प्रसिद्धं विश्वनाथस्य सुवर्णमयं मन्दिरम्, अन्नपूर्णादेव्याः मन्दिरम, संकटमोचन-नामकं हनुमतो मन्दिरम्, हिन्दूविश्वविद्यालये नवीनं विश्वनाथमंदिरम्, संकटामन्दिरम्, नवदुर्गाणां मन्दिराणि च प्रसिद्धतमानि सन्ति। उक्तमन्दिरातिरिक्तानि अन्यानि अपि विशालमन्दिराणि संतिष्ठन्ते, लघुमन्दिराणां का गणना। भगवती विन्ध्यवासिनी अष्टभुजी देवी समीपस्थे विन्ध्याचले विराजते। इत्थं नगरी इयं समस्तधर्माणामेव केन्द्रीभूता दृश्यते। पतितपावनी मोक्षप्रदायिनी च गङ्गा अत्र भक्तानां श्रेयसे प्रवहति।

गङ्गायाः वामतटे बहवः मनोहराः घट्टाः सन्ति। तेषु च पञ्चगङ्गामणिकर्णिका-दशाश्वमेध-हरिश्चन्द्र-तुलसीघट्टाः प्रसिद्धतमाः। दशाश्वमेधघट्टे तु सर्वदा यात्रिकाणां समावायो दृश्यते, अत्र अनेके स्त्रीपुरुषाः प्रतिदिनमागत्य प्रातः स्नानपूजादिकं सायं च कथा-कीर्तनादिश्रवणं कुर्वन्ति। मणिकर्णिकाहरिश्चन्द्रघट्टयोः दाहसंस्कारः काशीलाभाय (मुक्तिलाभाय) सर्वदैव प्रचलति। पञ्चगङ्गायां कार्तिकमासे, दशाश्वमेधे माघमासे, अस्सीघट्टे च वैशाखमासे, गङ्गास्नानं विशेषफलदायकम्। तुलसीदासस्य निवासस्थानत्वात् तुलसीघट्टस्यापि महत्त्वं सर्वजनप्रसिद्धम्। श्रूयते अत्र तुलसीघट्टे श्रीरामचरितमानसस्य रचना अभवत्। इमां नगरीं परितः पञ्चकोशी परिक्रमार्थं सुप्रसिद्धा।

वाराणसी भारतस्य सुप्रसिद्धं पुरातनं विद्यापीठमासीत्। इदानीमपि अत्र काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः काशीविद्यापीठश्च इमे विश्वविद्यानां केन्द्ररूपेण त्रयो विश्वविद्यालयाः विलसन्ति। अन्येऽपि संस्कृतस्य आङ्गलभाषायाश्च बहवः विद्यालयाः महाविद्यालयाश्च सन्ति। अत्रत्यानां पण्डितानां देशे विदेशे च सर्वत्र ख्यातिरस्ति। इत्थमस्याः शैक्षिकगौरवमपि न न्यूनम्।

1.4 संस्कृतभाषायाः महत्त्वम् वैशिष्ट्यञ्च

संसारेऽस्मिन् विभिन्नदेशेषु विभिन्नाः भाषाः प्रचलिताः सन्ति। न कोऽपि ताः परिगणयितुं समर्थः। संस्कृतभाषायाः इदं वैशिष्ट्यं यदियमेव 'दैवीवाक्', 'सुरभारती', 'गीर्वाणवाणी' इत्याद्दिपदैरभिधीयते, नान्या कापि भाषा। अन्यच्च अन्याः सर्वाः भाषाः मानवव्यवहारमात्रसाधनभूताः किन्तु संस्कृतभाषा कर्मविद्या-ब्रह्मविद्योभयप्रतिपादिका अपि अस्ति। इयं संस्कृतभाषा प्राचीनतमा, सुप्रसिद्धा, प्रायः सर्वासामपि भारतीयभाषाणां जननी च। प्राकृत-पालिअपभ्रंशादिप्रणाल्या अधुना प्रचलिताः हिन्दी-बंगला-मराठी-गुजराती-प्रभृतयः सर्वाः अपि भाषाः एतस्याः एव समुद्भूताः इति पुत्री-पौत्रीस्थानापन्नाः। अस्याः व्याकरणं सर्वतोभावेन वैज्ञानिकं सर्वविधदोषरहितं सुव्यवस्थितं च। अतएव मैकडानल-कीलहार्न-मैक्समूलर-कीथप्रभृतयः वैदेशिकाः विद्वांसः अपि अस्याः प्रशंसां मुक्तकण्ठेन अकुर्वन्।

'सम्' पूर्वकात् 'कृ' धातोर्निष्पन्नः 'संस्कृत शब्दः। भाष्यते = जनैः दैनन्दिनव्यवहारे प्रयुज्यते इति भाषा। अनया व्युत्पत्त्या अनुमातुं शक्यते यत् कदाचिद् इयमपि जनसाधारणैः प्रयुज्यमाना आसीत्। श्रूयते यदियं भाषा पूर्वम् अव्याकृता (प्रकृति-प्रत्ययसंस्काररहिता, अखण्डरूपा च) आसीत्, प्रयोक्तृदोषेण कालक्रमेण किञ्चिद् अपभ्रष्टा च अभवत्। पश्चात् देवतानुरोधेन इन्द्रः व्याकरणशास्त्रं निर्माय इमां व्याकृताम् (प्रकृति-प्रत्ययसंस्कारसहिताम्') अकरोत्। अतएव 'संस्कृतम्' इयं संज्ञा प्रचलिता अभवत्। एवम् अस्याः भाषायाः प्रथमं व्याकरणम् 'ऐन्द्रम' (इन्द्रप्रणीतम्) आसीत्। अधुना 'पाणिनिव्याकरणम्' (प्राणिनिप्रणीतम्) पठन-पाठने प्रचलितम्। प्रकृतिप्रत्ययसंस्कारयुक्ता इयं संस्कृत भाषा साधुशब्दवती इति। साधुशब्दप्रयोगेन धर्मो भवति, असाधुशब्दप्रयोगेन तु अधर्मः। यथोक्तम्–

'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'।

अस्याः भाषायाः द्विविधं रूपम्– वैदिकं लौकिकं च। वेदस्य चत्वारो भागाः– मंत्र-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदः। तत्र भवं संस्कृतं वैदिकमिति कथ्यते। तदुत्तरम् अन्यग्रन्थेषु भवं संस्कृतं लौकिकम् इति निगद्यते। अस्याः भाषायाः शब्दकोषः (Vocabulary) बृहत्तमः, नवीनशब्दनिर्माणसामर्थ्यमपि प्रभूतम् च। एतस्याः साहाय्येनैव हिन्दीप्रभृतिभाषान्तरेषु विज्ञानादिपरिभाषिकशब्दाः निर्मातुं शक्यन्ते।

अस्माकं सर्वाः प्राचीनविद्याः कलाश्च अस्यामेव भाषायाम् उपनिबद्धाः। अतः तस्मिन्-तस्मिन् विषये प्राचीनसाहित्यज्ञानलाभाय नवीनसाहित्यसर्जनाय च संस्कृतस्य अध्ययनमनिर्वायम्। संस्कृतभाषायाः ज्ञानं विना भारतीयाः आत्मनः पुरातनमितिहासं, प्राचीनपरम्पराः, संस्कृतिम्, ज्ञान-विज्ञानादिकं च सम्यग् अधिगन्तुं न प्रभवन्ति। भाषाविज्ञानस्यापि दृष्टया अस्याः महत्त्वं निर्विवादम्। एतत्साहाय्येन भारोपीयअवेस्ता-लैटिनप्रभृतीनामपि

भाषाणां ज्ञानं सुगमं भवति। इत्थं च संस्कृतज्ञाने सति स्वल्पप्रयासेनैव बह्वीनां भाषाणां ज्ञानं लब्धुं शक्यते। विश्वसाहित्यस्य सर्वप्राचीनग्रन्थाः वेदाः संस्कृतभाषायामेव उपनिबद्धाः। वाल्मीकि-व्यास-कालिदास-भवभूति-बाणप्रभृतयः महाकवयः अस्यामेव ग्रन्थान् लिखितवन्तः।

समयानुरोधेन संस्कृतभाषा इदानीं बहुधा आक्षिप्यते। केचन इमां मृतां वर्तमानकालानुपयोगिनीं च मन्यन्ते। अपरे इमाम् अतीवकठिनां मत्त्वा एतदध्ययनात् पराजयन्ते। अन्ये तु इमाम् अर्थोपार्जनाक्षमाम्, व्यर्थाम्, कूपमण्डूकतासाधिकाम्, व्यवहाराद् दूरापेतां च गणयन्ति। इमे सर्वेऽपि अधिक्षेपाः भ्रान्तिमूलकाः, यतः–

1. यावत् कस्यामपि भाषायाम् अध्ययनचिन्तनादिकम् अनुवर्तते, नवीनग्रन्थनिर्माणं च प्रचलति तावत् सा मृतेति कथयितुं न शक्यते। इदानीमपि अस्याम् उभयम् उपलभ्यते। तस्मान्न जातु मृता इति वक्तव्यम्।

2. संस्कृतभाषा साम्प्रतमपि नानुपयोगिनी, नापि व्यर्था। प्रयोगाभावेन अनुपयोगिता न सिद्धयति। यथा पार्श्वस्थितम् उपनेत्रम् धारकेण अप्रयुक्तमपि नानुपयोगि भवति, तस्य प्रकाशनस्वरूपयोग्यतायाः तदानीमपि सद्भावात्। ज्ञान-विज्ञानतृप्तिलाभः यथा संस्कृतभाषया संभवति, न तथा अन्यया भाषया। नायं वस्तुनोऽपराधः यत् क्षमः, योग्यः, समर्थोऽपि नोपयुज्यते, न वा तेन तस्यानुपयोगिता सिद्धयति।

3. काठिन्यं न खलु संस्कृतस्य दोषः किन्तु तदध्यापनप्रणाल्याः। यतः इदानीमपि सुगमतमरीत्या संस्कृतम् अनायासं पाठयितुं शक्यते।

4. संस्कृताध्येतॄणां कूपमण्डूकता नाध्ययनजन्या किन्तु वातावरणप्रयुक्ता, स्वमस्तिष्कप्रयुक्ता च, तेष्वपि यस्मिन् कस्मिन् दूरदर्शितायाः आधुनिकतायाश्चोपलम्भात्। इतिहासपर्यालोचनेन इदं सुस्पष्टं यद् अतीते समये संस्कृतज्ञाः एव महर्षयः राजनीतिज्ञाः, शास्त्रकोविदाः, व्यवहारकुशलाः, देशसमुद्धारकाश्च अभवन्।

5. भाषाज्ञानस्य ज्ञानमेव फलं, न तु अर्थोपार्जनम्। यथोक्तम्– 'गुणाः खलु गुणाः एव, न गुणाः भूतिहेतवः'। धनसञ्चयकर्मणि भाग्यानि पृथगेव हि। अन्यच्च नेदं तथ्यं यत् संस्कृताध्ययनात् धनागमो न भवति, व्यापकविरुद्धोपलब्धेः।

एवं धर्मसंस्कृतिरम्परादिविज्ञानाय ऐक्यसंरक्षणाय च संस्कृतस्य महती उपयोगिता। इयमेव भाषा समस्तदेशम् एकतासूत्रे बध्नाति। इयमेव भारतस्य प्राणभूता भाषाऽस्ति। अस्याः गुणगणस्य वर्णने महाविद्वांसोऽपि असमर्थाः सन्ति। वेदाः, भगवद्गीता, पुराणानि, धर्मशास्त्राणि, काव्यानि च अस्याः माहात्म्यमेवोद्घोषयन्ति। अतः अस्याः संरक्षणाय, संवर्धनाय, प्रचाराय च सर्वैरपि सततं प्रयतनीयम्। इयं देशस्य निधिः, अनुपमं वैशिष्ट्यम्, अनन्यलभ्या विभूतिश्च।

1.5 नौका-विहार

व्यस्तेऽस्मिन् मानवजीवने मनोरंजनं परमावश्यकम्। तस्य बहूनि साधनानि भवितुं शक्नुवन्ति। तेषु नौकाविहारोऽपि एकम्। एकदा अहं शरत्पूर्णिमाया सप्तभिः मित्रैः सह नौकाविहाराय गंगातटम् अगच्छम्। इदानीं गङ्गायाः दृश्यमतिरमणीयमासीत्। यथानिश्चयं नौकाविहारकामाः वयं नौकामेकाम् आरूढवन्तः।

नौका अधिजलं प्रवहन्ती शनैः-शनैः प्राचलत्। शीतल-मन्द-सुगन्धसमीरः नः चेतांसि आनन्दयत्। उत्तिष्ठत्सु पतत्सु चञ्चलजलतरङ्गेषु विलुठत् चन्द्रविम्बं क्षणेन विलीनं क्षणेन प्रकटितं भवति स्म। ईदृशं मनोहारि दृश्यं कस्य सचेतसः चेतः नाह्लादयति। अस्मास्वन्यतमः संगीतकलाकोविदः सुहृद् गीतमेकम् अगायत् तद्गीतं श्रुत्वा अन्यैरपि सहयोगिभिः यथारूचि गीतानि अगीयन्त। मया अप्येकं गीतं श्रावितम्। अन्ते नाविकेनापि एकं गीतं लोकभाषायां गीतं, येन सर्वेऽपि मुग्धाः समजायन्त। एवं परस्परं विनोदयन्तः, उपहसन्तः, सहानीतानि भोज्यवस्तूनि आस्वादयन्तः वयं गंगायाः मध्यभागं प्राप्ताः। ततश्च एवमेव घट्टाद्घट्टम् संचरन्तः विविधानि मनोहराणि तीरदृश्यानि अपश्याम। यथा – गंगाजले प्रतिबिम्बितानि विशालभवनानि, भव्यदेवमंदिरशिखराणि, तटसोपानप्रभृतीनि। अपि च मध्ये मध्ये वयमपि नावं चालयन्तः स्नान्तीनां नगररमणीनां, बालकानां, यूनामितरेषां च जले निमज्जनोन्मज्जनसंतरणशोभाम् अवलोकयन्तः परमप्रमोदमनुभवन्तश्च अतिदूरमागताः। तदानीं वेगेन वायुः प्रावहत्। वायोः वेगात् नौका इतस्ततः दोलायमाना जाता। सर्वेऽपि चिन्ताकुलाः संजाताः। परमीश्वरकृपया नाविकस्य नैपुण्येन च नौका सकुशलं तीरमागता। तदनु नौकायाः अवतीर्य विनोदस्वभावं नाविकं निश्चिताद् किञ्चिदधिकं द्रव्यं अददाम्। पश्चात् नौकाविहारस्य अभूतपूर्वानन्दमनुभूय परस्परं संलपन्तः वयं स्वं स्वं गृहं प्रत्यागताः।

1.6 सैनिकशिक्षा

कस्यापि स्वतंत्रराष्ट्रस्य स्वतन्त्रतारक्षणाय सैनिकशिक्षायाः आवश्यकता न केनापि अपह्नोतुं शक्यते। सेना राष्ट्रम्, शासकम्, प्रजाश्च आपद्भ्यः रक्षति। प्राचीनभारतीयशास्त्रेषु त्रिविधाः शक्तयः मन्यन्ते– 'प्रभावोत्साहमंत्रजाः'। तत्र प्रथमायाः द्वे अङ्गे – केशो बलं (सैन्यम्) च। प्राचीनकालादेव राज्यस्य सप्ताङ्गेषु (स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषराष्ट्रदुर्गबलानि च'– अमरकोषः) सेनायाः प्रमुखं स्थानम्। तस्याः आवश्यकता न केवलं युद्धाय, अपितु बलबुद्धयोः विकासाय, उद्योगाध्यवसाययोः संरक्षणाय, उत्साहवर्धनाय, हीनताभावनोत्सारणाय सुखशान्तिमयजीवनयापनाय च भवति।

वर्तमानकाले यदा सर्वेऽपि दुःखदैन्यभयाक्रान्ताः, समराशंकाकुलिताः अवलोक्यन्ते

सैन्यशक्तिवर्धनमेव समाधानम्। सैन्यशक्तिवर्धनाय सैनिकशिक्षायाः विपुलराजकोशस्य च आवश्यकता भवति। संसारे सर्वत्र मत्स्यन्यायस्य साम्राज्यं परिदृश्यते। सत्त्वेष्वधिकः ऊनं शान्तिः। समृद्ध-राष्ट्रम् अर्थकृशं प्रभवति। अतः अद्य संरक्षणकामाः सर्वे देशाः अस्त्रशस्त्रनिर्माणे सैनिकशिक्षाप्रदाने कोशवर्धने च अनवरतं प्रयतन्ते। भारतस्योपरि तु चीन-पाकिस्तानप्रभृतयो देशाः सततं बुभुक्षितवृकवत् क्रूरदृष्टिं निक्षिपन्ति। तस्मात् स्वतन्त्रतारक्षणाय शक्तानां सर्वेषां कृते सैनिकशिक्षा अनिवार्या आपतिता। दिष्ट्या भारतदेशनायकाः अत्र पूर्णसचेष्टास्सन्ति। पञ्चवर्षीययोजनासु सैनिकशिक्षापरिवर्धनाय अस्त्रशस्त्रनिर्माणाय च विशेषस्थानं प्रदत्तम्।

अद्य भगवान्महावीर-बुद्ध-गान्धिप्रभृतिभिरुपदिष्ट अहिंसानीतिः तदा एव चरितार्था भविष्यति, यदा वयं शक्तिसम्पन्नाः भवेम। अन्यथा दुर्बलानां कृते सा हास्याय एव। अहिंसा सिद्धान्ततः रम्या भवेन्नाम किन्तु व्यवहारे दौर्बल्यप्रकाशिकैव। युद्धं विना न शक्तिनिर्णयः, शक्तिं विना न रक्षा संभवति, रक्षां विना सुखशान्तिसमृद्धिविकासासम्भवः। तस्मात् अनिच्छतोऽपि युद्धम् अपरिहार्यम्। ज्ञानविज्ञान-सभ्यतानां चरमोत्कर्षेऽपि शक्तिप्राधान्यम् अक्षुण्णम्। साम्प्रतं तस्यैव देशस्य डिण्डिमघोषः, (बोलवाला) यः सैनिकदृष्ट्या सुसम्पन्नः समृद्धश्चास्ति। शक्त्यभावे अहिंसावादः शक्तिहीनतातिरोधानाय कवचमात्रम्। निःशस्त्रीकरणस्य विश्वशान्तिस्थापनायाश्च प्रस्तावौ, तस्यैव देशस्य शोभते यः सैन्यसमृद्धिसम्पन्नः, न च दुर्बलस्य। यथोक्तम्—

शक्तिः सबलता यत्र, क्षमा तत्रैव शोभते।
सा निर्बले तु हास्याय, विषहीनभुजङ्गवत्।।

सैनिकशिक्षा केवलं पुस्तकी शिक्षा नास्ति, अपितु सैनिकशिक्षायाम् अनुशासनम् शारीरिकसंघटनम्, देशभक्तिः शत्रुषु प्रतिशोधभावना, देशार्थं प्राणपरित्यागसंकल्पः, बुद्धिमत्ता, जागरूकता इत्यादयः सर्वेऽपि अपेक्ष्यन्ते। राष्ट्रं तावच्छरीरम्, सुसैनिकास्तु करचरणकल्पावयवाः इति।

1.7 समाचारपत्रम्

अद्य समाचारपत्रं मानवाय तथैवावश्यकं, यथा तस्य जीवनयापनाय अन्नं वस्त्रं च। 'मनुष्यः सामाजिकः प्राणी' इति सः समाजस्य देशविदेशयोश्च सर्वविधं वृत्तम् अवगन्तुं सदैव स्वभावतः समुत्सुको भवति। मानवस्य इमां प्रवृत्तिं पूरयितुमेव समाचारपत्रस्य जन्म अभवत्। सर्वत्र प्रतिक्षणं घटमानानां वृत्तानां विस्तृततरूपेण ज्ञानं समाचारपत्रादेव द्राग् भवितुमर्हति। अधुना यः संसारस्योदन्तान् न जानाति सः मूर्खः कूपमण्डूको वा मन्यते। संसारः सर्वक्षेत्रेषु क्षिप्रं परिवर्तते। अतः यो नवीनतमघटना (Latest developments) – अनभिज्ञातः सः जीवनयात्रायां समीहितां सफलतां नाधिगच्छति। एवम् अद्य मानवजीवने सत्यपि दूरदर्शनयन्त्रे

समाचारपत्राणां महती उपयोगिता अस्ति।

समाचारपत्राणामितिहासः नातिप्राचीनः। सर्वप्रथमं यूरोपमहादेशे इटलीदेशस्य 'वेनिस'–नगरे षोडशशताब्द्यां समाचारपत्रं प्रादुरभवत्। ततः परं जर्मनी-इंग्लैण्ड-प्रभृतिदेशेषु अस्य प्रसारोऽभवत्। श्रूयते यत् चीनदेशे एकादश शताब्द्यामेव समाचारपत्रं प्रचलितमासीत्। भारतवर्षे तु मुगलसाम्राज्यकाले हस्तलिखितं 'संवादपत्रं' केवलं शासनाधिकारिषु प्रयुक्तमासीत्। पश्चाद् आगतेषु गौराङ्गेषु अत्र 1740 खिष्टाब्दे 'इण्डिया-गजट' नामकम् आङ्ग्लभाषापत्रं सर्वप्रथमं प्रारभत। हिन्दीभाषायाः प्रथमं पत्रं 'समाचारदर्पण' इति नाम्ना प्रकाशितमभवत्। शनैः-शनैः शिक्षाप्रसारेण सहैव पत्र-पत्रिकायां तत्पाठकानां च संख्या द्रुतमवर्धत। इदानीं समस्तभूमण्डलं समाचारपत्रैः परिव्याप्तम्। न कापि भाषा यस्यां समाचारपत्राभावः।

समाचारपत्राणि बहुविधानि। यथा–प्रकाशनकालभेदेन-दैनिक-अर्धदैनिक-साप्ताहिक-अर्धसाप्ताहिक-पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षाण्मासिक- वार्षिकाणिः विषयभेदेन–राजनीति-धर्म-दर्शन-वाणिज्यादिगोचराणि, भाषाभेदेन–हिन्दी-अंग्रेजी-बांग्ला-प्रभृतिसंबन्धीनि अपि समाचारपत्राणि विद्यन्ते। पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिकादिपत्राणां केचन साप्ताहिकपत्राणां च परिगणना न समाचारपत्रेषु, किन्तु पत्रिकासु (Magazines) क्रियते, तेषु समाचारापेक्षया लेखबाहुल्यात्। समाचारपत्रेषु समाचारस्य प्राधान्यं भवति। यद्यपि तत्रापि विविधविषयकाः विचाराः, निबन्धाः विज्ञापनादयश्च प्रकाश्यन्ते तथापि तेषां प्रेरणाप्रदः समाचार एव।

समाचारपत्राणामनेके लाभास्सन्ति। यथा–1. यत्र कुत्रापि स्थितो मानवः संसारस्य सर्वविधान् नवीनतमसमाचारान् विजानाति। 2. सेवावृत्ति विवाह-व्यवसायादिविषयकैः विज्ञापनैः पाठकाः लाभान्विताः भवन्ति। 3. समाचारपत्राणि जनता-समाज-शासकादीनां परस्परविचारविनिमयसाधनानि भवन्ति। समाचार-पत्रद्वारा समस्यानां समाधानम्, मनोगतभावानां प्रकाशनम्, अधिकारिध्यानाकर्षणं च संपद्यते। 4. राष्ट्रीयभावनायाः उद्बोधनम्, सभ्यतायाः संस्कृततेश्च प्रचारः, साहित्यिक-समीक्षा, परीक्षाफलादिघोषणा, लोकमताकलनम्, जनमतनिर्माणम्, जनमनोरञ्जनम्, सूचनाप्रसारः एवंविधानि बहूनि कार्याणि समाचारपत्रैः सम्यक् प्रसाध्यन्ते।

समाचारपत्राणां यथोपरिवर्णिताः लाभाः तथा हानयोऽपि बहुविधाः। तद्यथा–1. मिथ्यासमाचाराणां प्रसारण, 2. सत्यसंगोपनम्, 3. जघन्यस्वार्थसाधनम्, 4. अश्लीलविज्ञापनादिभिः समाजस्य अधःपातनम्, 5. देशहितप्रतिकूलसमाचारप्रकाशनम्, 6. पक्षपातपूर्णसमालोचनादिभिः पारस्परिकविद्वेषवर्द्धनम्, 7. कुत्सितवातावरणनिर्माणम्-इत्यादयः।

वस्तुतस्तु नेमे समाचारपत्राणां दोषाः किन्तु तदधिकारि-शासनादिजनिताः। दोषपरिमार्जनाय सम्पादकैः संवाददातृभिः अधिकारिभिश्च निर्दोषैः निर्भीकैः सत्यप्रणयिभिश्च भाव्यम्, येन समाचारपत्रं तथ्यमेव प्रकाशयेत्, न तु विपरीतम्। कथमपि कस्यापि हानिकरं तथ्यं न

प्रकाशयेत्। शासकैः समाचारपत्रेभ्यः पूर्णस्वतंत्रता प्रदेया, तन्मार्गे बाधाश्च न कथमपि उपस्थापनीयाः। तदैव समाजस्य, देशस्य, संसारस्य च कल्याणं सम्पत्स्यते।

1.8 पुस्तकालयः

यत्र विविधानां पुस्तकानां संग्रहो (आलयः) भवति, सः 'पुस्तकालयः' ग्रन्थालयो वा कथ्यते। वर्त्तमानयुगे पुस्तकालयः शिक्षायाः अभिन्नमङ्गमस्ति। शिक्षकाः यत् कार्यं कुर्वन्ति पुस्तालयोऽपि तदेव प्रकारान्तरेण करोति। उभयतोऽपि ज्ञानसंवर्धनं भवति। अतएव प्रत्येकशिक्षासंस्थायां पुस्तकालयः लघुः महान् वा अवश्यमेव दृश्यते। वस्तुतः अद्य पुस्तकालयः शिक्षितसमाजस्य जीवनाधारः पुस्तकालयमहत्त्वादेव एकस्मिन्नपि नगरे बहवः पुस्तकालयाः संस्थाप्यन्ते, यत्र जनाः पुस्तकानि अध्येतुं समाचारपत्राणि च वाचयितुं यथावकाशं प्रतिदिनं गच्छन्ति।

अस्मिन् युगे अनुसन्धानादिकार्यं महत्त्वपूर्णमस्ति। तच्च सुव्यवस्थितं, समृद्धं पुस्तकालयं विना न सम्भवति। प्रत्येकं जनः विविधपुस्तकानि संग्रहीतुं न शक्नोति, तस्मात् पुस्तकालयं विहाय किमप्यन्यत्साधनं नास्ति, येन जनानां ज्ञानपिपासा शाम्येत। किञ्च, येषां पार्श्वे पर्याप्तं धनं नास्ति, ते पुस्तकालयं गत्वैव पाठ्यपुस्तकानि पुस्तकान्तराणि च यथारुचिं पठन्ति। पुस्तकालयेषु समाचारपत्रद्वारा देशविदेशयोः दैनिकवृत्तान्ताः ज्ञायन्ते।

पुस्तकालयाः बहुविधाः भवन्ति। यथा-केचन पुस्तकालयाः विश्वजनीनाः भवन्ति, अन्ये तु संस्था-सम्बद्धाः निर्धारितसदस्यानां कृते। केषुचित् केवलमेकभाषापुस्तकानि, केषुचिद् अनेकभाषाग्रन्थाः भवन्ति। केषुचित् तत्तद्विषयस्य। यथा—विज्ञानस्य, वाणिज्यस्य, कलासाहित्यस्य, दर्शनस्य, मनोरंजकोपन्यासादीनां वा। केषुचित् प्रायः सर्वविषयाणां। यथा-विश्वविद्यालयेषु पुस्तकालयेषु।

पुस्तकालयस्य सञ्जालनाय एकः पुस्तकालयाध्यक्षो भवति, यः प्रतिदिनं यथासमयमागत्य पुस्तकानाम् आदानप्रदानयोः व्यवस्थां करोति। तस्य सहायतार्थम् अन्येऽपि कर्मचारिणः आवश्यकतानुसारं भवन्ति। विभिन्नपञ्जिकासु तत्तत् विषयाणां पुस्तकानि उल्लिख्यन्ते। पञ्जिकान्तरेषु पुस्तकवितरणस्य प्रत्यावर्तनस्य च विवरणं लिख्यते। नियामानुसारेण पञ्जिकानां संख्या हीनाधिका भवति। ये जनाः पुस्तकालस्य सदस्याः भवन्ति, ते कानिचित् पुस्तकानि अध्यक्षाज्ञया स्वगृहमपि नयन्ति। यदि ते यथासमयं न प्रत्यावर्तयन्ति, तदा ते नियमानुसारं दण्डभाजः भवन्ति। क्वचित्-क्वचित् पुस्तकालये दुर्व्यवस्थाऽपि दृश्यते, येन पुस्तकालयस्य समुचितः सदुपयोगः लाभो व न सञ्जायते। यदि इयं दुर्व्यवस्था दूरीकृता स्यात्तर्हि महान् जनलाभो भवेत्। अद्य विश्वविद्यालयेषु पुस्तकालयविज्ञानस्य अध्यापनं भवति।

अतश्च निर्विवादमेतत् यत् पुस्तकालयस्य स्थापना सर्वत्र करणीया, येन जनानाम्

अज्ञानान्धकारः अपसारितः स्यात् देशविकासोऽपि सम्भवेत्।

1.9 दीपावली (दीपमाला)

भारतवर्षे रक्षाबन्धनम् (श्रावणी), विजयदशमी (दशहरा), दीपावली, होलिका चैते चत्वारः हिन्दूधर्मावलम्बिनां प्रमुखां महोत्सवाः सन्ति। यद्यपि एते सर्वेऽपि सर्वैः वर्णैः समानमेव प्रतिवर्षं समाद्रियन्ते तथापि एषां चतुर्णां वर्णानां कृते यथाक्रमं पृथक्-पृथक् महत्त्वमस्ति। तद्यथा श्रावणी ब्राह्मणानाम्, विजयदशमी क्षत्रियाण्णाम्, दीपावली वैश्यानाम्, होलिका शूद्राणाम् प्रधान पर्वतया मन्यते। तेषु दीपावलीसमारोहः कार्त्तिकमासस्य कृष्णपक्षे अमावस्यायां सम्पाद्यते।

अस्मिन् पर्वणि निशामुखे सर्वत्र पंक्तिबद्धाः दीपाः प्रज्वाल्यन्ते। अतः अस्योत्सवस्य नाम 'दीपावली' 'दीपमाला' वा वर्तते। साम्प्रतं पंक्तिबद्धेन विद्युत्प्रकाशेनापि प्रकाशः क्रियते। उत्सवादस्माद् बहुदिनानि पूर्वमेव जनाः स्वस्वगृहान् सम्मार्ज्य सुधादिना परिष्कुर्वन्ति तथा नानाविधैः रङ्गैः भूषयन्ति। केचन तोरणद्वाराणि पुष्पमालादिभिः अलङ्कुर्वन्ति च। तस्माद् गृहाः नवा इव प्रतीयन्ते। नगरेषु, ग्रामेषु, गृहेषु, मन्दिरेषु, आपणेषु सर्वत्र दीपा एव दृष्टिपथमायान्ति। अपि च चन्द्रिकारहितायामपि अमावस्यायां गगनमंडलं पूर्णिमावत् प्रतिभाति। नगरेषु विविधवर्णविद्युन्मालामण्डिताः गृहाः कस्य नाम नाकर्षन्ति चेतः। दृश्यमिदं विलोकयितुं जनाः परितः भ्रमन्ति, येन मार्गेषु महान् जनसम्मर्दो जायते। अस्मिन् महोत्सवे निशीथे लक्ष्मीपूजनमपि क्रियते। व्यापारिणः लक्ष्मीं विशेषरूपेण आराध्य आयव्ययपञ्जिकां पूजयन्ति। वार्षिकमायव्ययादिकमपि सङ्कलयन्ति च। अनेके जनाः द्यूतक्रीड़ा मद्यपानं चापि कुर्वन्ति। सर्वे नराः परस्परं मिष्टान्नादिकस्यादानप्रदानं कुर्वन्तः प्रमुदिताः दृश्यन्ते। विप्रेभ्यः याचकेभ्यश्च मिष्टान्नमिश्रितं लाजादिकं प्रदीयते।

प्रायः सर्वोऽपि उत्सवः नूनं यया कयाचित् पूर्वघटनया सम्बद्धो भवति। जनैः अस्योत्सवस्यापि अनेकानि कारणानि कल्प्यन्ते। केचित् कथयन्ति यदस्मिन्नेव दिने श्रीरामचन्द्रः लङ्कां विजित्य अयोध्यां प्रत्यावर्तत। अपरे वदन्ति यदस्मिन्नेव दिने जैनमतप्रवर्तकस्य भगवतो महावीरस्य निर्वाणमभवत्। अन्ये मन्यन्ते यदस्मिन्नेव दिने भगवान् विष्णुः वामनरूपं धृत्वा वलिना वन्दीकृतां लक्ष्मीम् अमुञ्चत्। एतेषु यदपि भवेत् कारणमस्य महोत्सवस्य निर्विवादमेतद् यदयं परमरमणीयः वैज्ञानिकदृष्ट्या महत्त्वपूर्णश्च। यदस्माद् दरिद्रतायाः निस्सारणम्, रोगकीटाणूनां विनाशः, स्वच्छतायाः सम्पादनम्, समाजे नवीनतायाः आविर्भावः, अन्येऽपि बहवो लाभाः भवन्ति। इदानीं केचन दोषाः अपि दृष्टिपथमायान्ति। यथा—द्यूतक्रीड़ा, मद्यपानम्, विस्फोटकपदार्थप्रयोगः अपव्ययश्च। यदि एतेषां दोषाणां परित्यागः भवेत्तर्हि अस्योत्सवस्य मानवजीवने अवर्णनीयं महत्त्वं जायेत।

1.10 वसन्तः

अयम् ऋतुः साधारणतया चैत्र-वैशाखमासयोः मन्यते। शिशिरग्रीष्मर्तोर्मध्ये स्थितत्वाद् अस्मिन् ऋतौ नाधिकं शैत्यं न वा अधिकोष्णता बाधते। मन्दशीतलसुरभिः दक्षिणपवनः प्रवहति। यथोक्तम् –

इह मधुपबधूनां पीतमल्लीमधूनां, विलसति कमनीयः काकलीसम्प्रदायः।

इह नटति सलीलं मञ्जरीमञ्जुलस्य, प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षिणेनानिलेन।।

सर्वे शुष्कवृक्षाः, सर्वाः पत्रहीनाः लताश्च नूतनपत्र-पुष्पफलादिभिः समलङ्कृताः भवन्ति। आम्रेषु नवकिसलयाः मञ्जर्यश्च समुद्भवन्ति। सरोवरेषु कमलानि, स्थलेषु च वकुलाशोकप्रभृतितरूणां लतानां च नानावर्णानि पुष्पाणि विकसन्ति। प्रतिवनं सहकारविटपेषु कोकिलाः मधुरं कूजन्ति, भ्रमराश्च सामोदं पुष्पाणां रसमास्वाद्य मञ्जु गुञ्जन्ति। यथोक्तम् कालिदासेन –

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।

इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।।

अपि च –

नवपलाश-पलाशवनं पुरः स्फुटपराग-परागतपङ्कजम्।

मृदुलतान्त-लतान्तमवलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।

जडेषु चेतनेषु च सर्वत्र नवनवोल्लासः, अपूर्वो मधुरिमा मादकता च अनुभूयते। कुसुमायुधप्रियदूतकः वसन्तकालोऽयं मधुमयः मुधसामोऽपि कथ्यते, यतः पुष्पावचूलोऽयं समयः। यथोक्तं हरविजयकाव्ये–

अलिव्रजस्यानशनव्रतान्तः मानोग्रशापावधिरङ्गनानाम्।

अथैकादानाङ्गमदानुकूलः पुष्पावचूलः समयो जजृम्भे।।

किं बहुना, प्रकृतौ सर्वत्र अनुपमं सौन्दर्यं समुल्लसति। प्रकृतिः वसन्तर्तोः राज्ञी, पृथिवी च इन्द्रपुरसदृशी राजधानी। प्रतीयते यत् प्रकृतिराज्ञी चित्राविचित्रैः विविधैः पत्रपुष्पादिमयैः अलङ्करणैः विभूषिता वसन्तराजम् आवर्जयितुं यतते। एभिरेव हेतुभिः वसन्तः 'ऋतुराजः' व्यपदिश्यते। अस्य सर्वातिशायि सौन्दर्यं नवीनैः प्राचीनैः सर्वैरपि कविभिः सविस्तरं वर्णितम्। वैज्ञानिकदृष्ट्या अपि अयम् ऋतुः महत्त्वपूर्णः, शरीराङ्गपोषकः, आमोदकरः, स्फूर्तिदायकः, उत्साहवर्धकश्च।

1.11 ग्रीष्मः

ग्रीष्मप्रधानदेशोऽयम्। यथा इंग्लैण्डदेशे प्रतिवर्षम् अष्ट-नवमासपर्यन्तं शैत्यस्योद्रेकः तथैव भारतदेशस्य अधिकांशप्रदेशेषु सप्ताष्टमासपर्यन्तम् उष्णतायाः उत्कर्षः। अस्य ऋतोः द्विमासपरिमितता उष्णताधिक्यतन्त्रा। यतः अनयोः मासयोः (ज्येष्ठाषाढयोः) सूर्यः प्रचण्डांशुभिः अत्यधिकं तपति, येन कोपांसुलस्य नृपस्य मुखमिव उच्चैर्गगनं दुष्प्रेक्ष्यम्, गृहाद् बहिर्निर्गमनं पञ्चाग्नितप इव महत्कष्टकरं भवति। उष्णः तीव्रश्च विरहिणां निःश्वास इव दुःसहः वायुः प्रवहति। वृक्ष-लता-सरित्-प्रभृतयः प्रोषितानां विरहातुराः प्रमदाः इव प्रतिदिनं शुष्यन्ति। जलस्थाने प्रायः मृगमरीचिकाः प्रतिभान्ति किन्तु इदानीमपि समुद्रः प्रभूतजलपूर्ण एव गर्जति। यथोक्तम् – शोषितसरसि निदाघे नितरोमेवोद्धतः सिन्धुः। कृपणस्य धनतृष्णेव पिपासा अत्यधिकं वर्धते। स्नानं प्रीतिजनकं भवति। आतपबहुलापि छाया तरुपादमूलं न त्यजति। तरुछायासु विश्रामः सुखकरः भवति। यथोक्तं कालिदासेन–

सुभगसलिलावहागाः पाटलसंसर्ग-सुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।

अपि च –

तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्तिस्तृणाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति।
सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलो नु छाया सतीव न विमुञ्जति पादमूलम्।।

स्वेदः अजस्त्रं प्रवहति, शरीरे शिथिलता च आयाति। कार्येषु मनः स्थिरं न भवति। विद्युद्व्यजनानि अन्यानि वा व्यजनानि जनाः अहर्निशं सेवन्ते। शीतलचन्द्रकिरणोज्ज्वला रात्रिः रम्या आमोदकरी च भवति। तस्मात् जनाः बहिः शेरते। केचन जीवाः तापाधिक्यात् म्रियन्ते। धर्मानुरागिणः प्रपामण्डपादेः व्यवस्थां कुर्वन्ति। निशा कृशतां, दिनानि च दीर्घतामुपयान्ति। कष्टबहुलोऽपि अयं ग्रीष्मर्तुः अनेकदृष्टिभिः कल्याणकारी मन्यते। यतः प्रभूततापात् शरीरस्थाः विकाराः रोमकूपमार्गेण स्वेदेन सह बहिः निस्सरन्ति। हानिकारकाः कीटाणवो विनश्यन्ति। पृथिव्याः उर्वरताशक्तिश्च वर्धते।

1.12 स्वतन्त्रतादिवसोत्सवः

1947 ईसवीयस्य अगस्तमासस्य पञ्चदशतारिकायां (निशीथे चतुर्दशतारिकाविगमे पञ्चदशतारिकाप्रारम्भे) चिरकालात् पराधीनाः भारतवासिनः आङ्गलशासकानां शासनपाशात् मुक्ताः । चतुर्दशतारिकायां रात्रौ स्वतन्त्रतालाभाय समुत्सकैः नागरिकैः प्रातरुथाय अग्रिमदिवसायोजनस्य विपुलानि साधनानि एकत्रीकृतानि। स्वतन्त्रताप्राप्तिकाले (द्वादशवादने) तुमुलशंखध्वनिभिः विविधवाद्यैश्च माङ्गलिकसमारोहः समपद्यत। 'जय भारतमाता', 'वन्दे

मातरम्', 'जय महात्मागान्धिः' प्रभृतिभिः घोषैः गगनमण्डलं व्याप्तमभवत्। प्रातः यत्र तत्र प्रभातप्रदर्शनानि (प्रभातफेरी), राष्ट्रियध्वजोत्तोलनानि, देशार्पितजीवनेभ्यः पुण्यश्लोकेभ्यः (शहीद) श्रद्धाञ्जलिप्रदानानि, 'जनगणमन' इति राष्ट्रियगीतप्रसारणानि, मिष्ठान्नवितरणानि, देशभक्तानां भाषणानि च आयोजितानि। सज्जीकृतद्वाराणां गान्धिद्वार-राजेन्द्रद्वार-जवाहरद्वार-सुभाषद्वार-सभासु प्रमुखनायकैः भाषणानि विहितानि। यत्र तत्र सर्वत्र तिरङ्ग-पताकाः, आम्रपल्लवानां मालावत् तोरणद्वाराणि नानारूपविद्युत्प्रकाशाः, राष्ट्रियध्वजाः एव दृष्टिगोचराः अभवन्। तदानीं देशव्यापिनि दर्शनीये महति उत्सवे सर्वेषाम् युगपत् हर्षोल्लाससमिश्रितः अदृष्टपूर्वः स्वाभाविकः अन्तःप्रेरितः अदम्योत्साहः सहयोगश्च आसीत्। किं बहुना पवित्रतमस्य पर्वणः अनुरूपं सर्वं सम्पादितमभवत्।

भारतवर्षस्येतिहासे इदं स्वतंत्रताभिधानं प्रधानपर्व भारतीयानां कृते गर्वस्य गौरवस्य चास्पदमिति। परतन्त्रतायां स्वर्गोपमपि सुखं नगण्यम्, स्वातन्त्र्ये तु अल्पमपि सुखं अमृतोपममिति निर्विवादम्। एतदर्थस्य देशभक्तैः प्रारब्धस्य अहिंसान्दोलनस्य प्रयोगः अद्य चरितार्थः अभवत्। तदा प्रभृति इदं पर्व प्रतिवर्ष तस्यामेव तारिकायां देशे सर्वत्र तथैव समायोज्यते। अत्रावसरे देशसंरक्षणाय सर्वैरपि यथाकथमपि संरक्षणाय सकल्पाः क्रियन्ते। पुण्यश्लोकानां गाथाः गीयन्ते। वर्षाभ्यन्तरम् अतीते इतिहासे भाषणेषु विहङ्गमदृष्टिरपि दीयते।

1.13 गणतन्त्रदिवसोत्सवः

जनवरीमासस्य षड्विंशतितारिकायां गणतन्त्रदिवसोत्सवः समारुह्यते। यद्यपि 1947 ईसवीये अगस्तमासस्य पञ्चदशतारिकायामेव स्वतंत्रताप्राप्तिरभवत् तथापि जनताप्रतिनिधिनिर्मित-संविधानानुसारं गणतंत्रशासनपद्धतेः स्थापना 1950 ईसवीये जनवरीमासस्य षड्विंशतितारिकायां समपद्यत। एवं च देशशासनस्य समग्रो भारः अस्माकं शिरसि न्यपतत्, देशश्चायं प्रभुतासम्पन्नगणतन्त्रः उद्घोषितः। ततः प्रभृति अयमपि स्वतंत्रतादिवस-समकक्ष एव द्वितीयं पर्व प्राचलत्। अस्यास्तिथेरपरमपि माहात्म्यं यत् अस्यामेव तारिकायां 1930 ईसवीये लाहोरनगरस्य रावीतटे कांग्रेससभायाः अधिवेशनम् अभवत्, यस्मिन् श्रीजवाहरलालनेहरूमहोदयस्य नेतृत्वे देशभक्तैः स्वदेशं वैदेशिकशासनात् मोचयितुं शपथः गृहीतः, प्रतिज्ञातं च यत् आस्वतन्त्रतालाभात् वयं क्षणमपि न विश्रमिष्यामः। ततश्च महात्मागान्धि-सुभाषचन्द्रबोसप्रभृतिभिः प्रारब्धं स्वतन्त्रतान्दोलनं तेषाम् अविरतप्रयासैः अस्मिन्नेव दिवसे सफलमभवत्। ततः प्रभृति प्रतिवर्षम् उत्सवोऽयं पूर्णेन उत्साहेन च भारतवासिभिः विधीयते।

अस्मिन्नपि उत्सवे राष्ट्रियध्वजोत्तोलनादिकं तत्सर्वमपि सम्पाद्यते यत् पूर्वोक्ते पर्वणि विस्तरेण वर्णितमस्ति। राजधान्यां (दिल्लीनगरे) एतद्देशघटकप्रदेशानां (States) सर्वेषामपि विशेषदृश्यानि (झाँकियाँ) प्रदर्श्यन्ते। शतघ्नीध्वनिभिः (तोप दागकर) देशप्रतीकभूतस्य

राष्ट्रपतेः समादरोऽपि (सलामी) अनुष्ठीयते।

1.14 अभ्यास -

निम्नांकित में से किसी एक विषय पर संस्कृत भाषा में निबन्ध लिखें —

(क) गङ्गा

(ख) दीपावली

(ग) स्वतंत्रतादिवसोत्सवः

(घ) संस्कृतभाषायाः महत्त्वम् वैशिष्ट्यञ्च।

द्वितीय इकाई विचारात्मक-निबन्ध

2.0 उद्देश्य

2.1 भगवान् श्रीकृष्णः

2.2 भगवान् बुद्धः

2.3 महामना मदनमोहन मालवीयः

2.4 महात्मा गान्धिः

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप संस्कृत-भाषा में भगवान् श्रीकृष्णः– इत्यादि विचारात्मक-निबन्धों के लेखन-प्रक्रिया को समझ जायेंगे।

2.1 भगवान् श्रीकृष्णः

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। इति वचनमनुसृत्य पञ्चसहस्रवर्षपूर्वं (द्वापरान्ते-कलेरादौ) देशेऽस्मिन् भगवान् श्रीकृष्णः अवातरत्। तदनुसारं भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे अष्टम्यां तिथौ लीलापुरुषोत्तमस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य प्रादुर्भावः अभवत्। तदा प्रभृत्येव अद्यापि जनाः तस्य जन्मोत्सवं 'कृष्णजन्माष्टमी' इति पर्वरूपेण सोत्साहं विदधति। कंसस्य स्वसा देवकी तस्य माता, वसुदेवश्च पिता आस्ताम्। अनेनैन महाभारयुद्धकाले रणभूमौ अर्जुनाय सकलशास्त्रसाररूपा भगवद्गीता उपदिष्टा। दशावतारेषु भगवान् श्रीकृष्णः पूर्णकलावतारः मन्यते।

कंसस्य स्वसुः वसुदेवेन सह विवाहावसरे एका आकाशवाणी अभवत् यत् तस्याः अष्टमगर्भादुत्पन्नो बालकः कंसस्य घातको भविष्यति। तथा अस्याः भविष्यवाण्याः भीतः कंसः सप्त नवजातशिशून् निर्दयं हतवान्। अष्टमः शिशुः श्रीकृष्णः कठोरकारागारे प्रादुरभवत्। तदानीं कंसभीतौ स्वौ पितरौ विलोक्य सोऽवदत्–'हे तात! गोकुले नन्दगृहे यशोदागर्भात् अधुनैव सम्भूतां कन्यकां समानय मां च तत्र स्थापय।' दैवप्रभावात् पित्रा वसुदेवेन तथैव कृतम्। दैवप्रभावादेव इमां घटनां न कोऽपि अजानात्। तथाभूते कारागारजनेभ्यः सुतोत्पत्तिं श्रुत्वां कंसः अविलम्बं तत्र प्राप्य तामेव कन्यकां योगमायां मारयितुं प्रवृत्तः, किन्तु सा गगनमण्डले उत्सर्प्य व्याहरत्–'रे मूढ़! किमर्थं मां मारयितुं प्रयत्नं करोषि, क्वचिज्जातः तवान्तकृत्।'

श्रीकृष्णः नन्दवेश्मनि यशोदापार्श्वे शुक्लपक्षे चन्द्र इव प्रतिदिनम् अवर्धत। यथा-यथा सः अवर्धत तथा-तथा राजा कंसोऽपि व्याकुलः अभवत्। सः विविधाः वाल्यलीलाः

कुर्वन् सर्वेषां विशेषतः पित्रोः परमहर्षम् अजनयत्। अस्य नाम 'कृष्णः' 'श्यामश्च', अभवत् कृष्णवर्णत्वात्। बाल्यकाले एव सर्वासु विद्यासु अस्त्रशस्त्रादिकलासु च निपुणतां प्राप्नोत्। मुरलीवादने तु विशेषतः सिद्धहस्त आसीत्। तस्य मुरलीध्वनिं श्रुत्वा सर्वे मन्त्रमुग्धाः अभवन्। बाल्यकाले सः प्रत्यहं गोपैः सह यमुनामूले धेनूः अचारयत्। गोपीनां मनस्तु मदनमोहने श्रीकृष्णे आसक्तम् आसीत्। 'राधा' तस्य प्रिया 'सुदामा' च सहपाठिमित्रमासीत्। श्रीकृष्णः गोपीनां भाण्डेभ्यः नवनीतं चोरयित्वा प्रचुरम् अस्वादयत्। सः बाल्यावस्थायामेव स्वविनाशाय कंसेन प्रेषितानां पूतना-बकारसुरप्रभृतीनां राक्षसानां बधमकरोत्। अन्ततश्च सः कंसमपि हतवान्। सः महानीतिज्ञः अपि आसीत्। महाभारते सारथिरूपेण अर्जुनस्य साहाय्यमकरोत्। फलतः सर्वेऽपि कौरवाः विनाशिताः पाण्डवाश्च विजयिनोऽभवन्। अन्ततश्च स्वराजधानीं द्वारकापुरीम् असौ अलङ्कृतवान्।

एवं धर्मसंस्थापनाय मानवरूपेण लीलां समाप्य सः लीलापुरुषोत्तमः श्रीकृष्णः शताधिकविंशतितमे वर्षे मानवशरीरम् अत्यजत्। ततः प्रभृत्येव देशेऽस्मिन् कृष्णभक्तेः प्रचारः समभवत्।

2.2 भगवान् बुद्धः

संसारे भगवतो बुद्धस्य नाम को न जानाति। परमात्मनः दशावतारेषु भगवतो बुद्धस्य नवमं स्थानम्। सार्ध-द्विसहस्त्रसंवत्सरपूर्वं भारतस्योत्तरकोशलेषु कपिलवस्तुनाम्न्यां नगर्यां लुम्बिनीवने वैशाखपूर्णिमायां भगवान् बुद्धः स्वजन्मना भारतभुवमलंकृतवान्। अस्य माता 'मायादेवी' पिता च गणानामधिपतिः शाक्यवंशीयो महाराजः 'शुद्धोदनः'। अस्य माता प्रसवात् सप्तमे दिने स्वर्गं गता। अतोऽस्य पालनं विमाता 'प्रजावती' अकरोत्। अस्य नाम सर्वार्थसिद्धिकरः 'सिद्धार्थः' आसीत्, परन्तु बोधिज्ञानप्राप्त्यनन्तरं 'बुद्ध' नाम्ना विख्यातोऽभवत्।

अस्य जन्मकाले एव ज्योतिर्विद्भिः फलादेशः कृतः यदयं महापुरुषः राज्यादिसुखं परित्यज्य वने तपश्चरित्वा च स्वधर्मं समस्ते भूमण्डले प्रसारयिष्यति। अतः दैवज्ञप्रबोधितो राजा पुत्रवियोगभिया संसारस्य सर्वान् रमणीयान् पदार्थान् आनाय्य तं तथा अरञ्जयत् यथा सः 'किं दुःखम्' इति ज्ञातुं न शक्नुयात्। अल्पे एव वयसि सः सर्वासु विद्यासु पारङ्गतोऽभवत्। समस्तसुखसाधनैः परिवृतमपि तं राजकुमारं संसारात् विरक्तं वीक्ष्य पिता तस्य परिणयम् अन्वर्थनाम्न्या राजकुमार्या यशोधरया सह अकरोत्। सा अचिरेणैव कालेन 'राहुल' नामानं पुत्रमजनयत्।

दैवप्रेरणया परिभ्रमणकाले सिद्धार्थः जराजर्जरितसर्वाङ्गं वृद्धम्, रोगाक्रान्तगात्रं रुग्णम्, श्मशानं नीयमानं मृतपुरुषम्, प्रशान्तचित्तं सौम्यमूर्तिं सन्यासिनं च दृष्ट्वा

नितान्तदीर्घवैराग्यम् अन्वभवत्। सः एकदा स्वनिश्चयानुसारम् अर्धरात्रौ स्तनन्धयं पुत्रं मनोरमां पत्नीं च सुषुप्त्यवस्थातायां परित्यज्य सारथिना सह 'कन्थक' नामकम् अश्वमारुह्य महाभिनिष्क्रमणमकरोत्। मार्गे सारिथये स्वाभरणादीनि दत्त्वा स्वाभिप्रायं च प्रकटीकृत्य प्रत्यावर्तयत्। अथ वनाद्वनं परिभ्रमन् घोरं तपः अतपत्। पश्चात् 'गया' नगर्यां वटमूले चिरं तपस्यन् दिव्यज्योतिः अलभत। ततः परं सः 'बुद्ध' इति नाम्ना सः वटवृक्षश्च 'बोधिवृक्ष' नाम्ना प्रख्यातोऽभवत्।

अथ लब्ध-ज्ञानज्योतिः सः विश्वकल्याणाय सर्वप्रथमं सारनाथे (वाराणसी-समीपे) धर्मचक्रप्रवर्तनमकरोत्। पश्चात् ग्रामाद् ग्रामं परिभ्रमन् धर्मं चोपदिशन् अनेकान् भिक्षुसंघान् विहारांश्च अस्थापयत्। पञ्चचत्वारिंशत् वर्षाणि तथा कुर्वन् 'देवरिया' जनपदस्य 'कुशीनगरे' अशीतिवयस्कः सः महापरिनिर्वाणं प्राप्नोत्। भारत-वर्मा-चीन-लंका-जापान-नेपालप्रभृतिदेशेषु अद्यापि तेनोपदिष्टधर्मस्य प्रभावः प्रसारश्च दृश्येते। अद्य बौद्धधर्मः अन्ताराष्ट्रियतां प्राप्तः। अस्य मुख्योपदेशाः पञ्चशीलादिपदेन व्यपदिश्यन्ते। 'अहिंसा, सत्यम्, अचौर्यम्, ब्रह्मचर्यम्, मद्यमांसादित्यागः इति पंचशीलाः दुःखम्, दुःखसमुदयः, दुःखनिरोधः, दुःखनिरोधमार्गः, इति 'चत्वारि आर्यसत्यानि'।

2.3 महामनामदनमोहनमालवीयः

श्रीमद्भगवद्गीतानुसारेण ये केचन् अलौकिकशक्तिसम्पन्नाः महापुरुषाः महीतले समवतरन्ति, ते ईश्वरस्यैव अंशभूता भवन्ति। एतादृशाः जगद्वन्दनीयाः महापुरुषाः सर्वेष्वेव देशेषु समये-समये प्रादुर्भवन्ति। सर्वविधेषु आधुनिकेषु महापुरुषेषु भारतीयसंस्कृतेः समुपासकस्य हिन्दुधर्मजीवनस्य महामनसो मदनमोहनमालवीयस्य स्थानं परममहत्त्वपूर्णम् अनुकरणीयञ्च।

अस्य जन्म 1861 ईसवीये दिसम्बरमासस्य 25 तारिकायां प्रयाग-समीपवर्तिनि ग्रामे ब्राह्मणकुले अभवत्। अस्य पूर्वजानां राजस्थानान्तर्गत-मालवदेशनिवासित्वाद् अयं 'मालवीयः' इति उपाख्यातः। अस्य पिता पं0 'ब्रजनाथमालवीयः' विद्वान् सरसकथावाचकश्च आसीत्। अस्य विवाहः मिर्जापुरवासिन्या कुन्दनदेव्या सह जातः। मालवीयेन प्रारम्भिकशिक्षा पितृपादमूले गृहे एव प्राप्ता। अग्रे कलकत्ता-विश्वविद्यालयात् 1884 ईसवीये वर्षे बी0 ए0 परीक्षा समुत्तीर्णा। निर्धनताकारणादस्याध्ययनकाले बहुविघ्नानि समायातानि। अर्थाभावात् 1884 ईसवीयादारभ्य 1887 पर्यन्तं राजकीयोच्च-विद्यालयेऽयं शिक्षकपदं स्वीकृतवान्। पश्चात् 1891 ईसवीये सः विधिपरीक्षां (वकालत = एल0 एल0 बी0) समुत्तीर्य प्राड्विवाककार्यं (वकालत) प्रयागे प्रारभत। परन्तु देशसेवायै वाक्कीलव्यवसायं परित्यक्तवान्। मालवीयः प्रतिदिनं श्रीमद्भागवतस्य भगवद्गीतायाश्च स्वाध्यायमकरोत्।

कालाकाङ्करस्य राज्ञः अनुरोधेन 'दैनिक-हिन्दुस्तान' नामकं समाचारपत्रं सम्पादितवान्।

किञ्चित्कालान्तरम् अयं बह्वीः पत्र-पत्रिकाः तत्तत्काले नैपुण्येन समपादयत्ः यथा—'इण्डियन-यूनियनपत्रम्', 'हिन्दी-साप्ताहिकपत्रम्', 'अभ्युदयपत्रम्', दैनिकं 'लीडर' नामकं ऑङ्गलपत्रम्, मासिकपत्रिका 'मर्यादा' च। 1902 ईसवीये वर्षे उत्तरप्रदेशीयविधानसमितेः तदनु 1909 ईसवीये केन्द्रीयविधानसमितेश्च सदस्यत्वरूपेण शासनेन सम्मानितः। तदानीं पदमिदं प्रायः आङ्गलदेशवासिनां कृते एव सुरक्षितमासीत्, सदस्यानां कार्यं च परामर्शप्रदानमात्रमासीत्। परं तत्पदासीनः मालवीयः शासननीतिसमालोचनमपि यथावसरं निर्भयमकरोत्। 1909 ईसवीये वर्षे लाहौरकांग्रेससभायाः तथा 1912 ईसवीये दिल्ली-कांग्रेसाधिवेशनस्य च सभापतिपदमभूषयत्। 1919 ईसवीये 'रोलट-एक्ट' इत्यस्य विरोधं गान्धिमहोदयेन सह कृतवान्। देशसेवापरायणः अयं द्वि-त्रिवारं कारागारवासमपि असहत। अयं हिन्दूमहासभा-गोसेवासंघ-सनातनधर्म-महासभादिधार्मिक-सामाजिक-संस्थानां संस्थापकः संचालकश्च आसीत्। एवं कालक्रमेण अस्य कीर्तिः सर्वासु दिक्षु प्रासरत्।

अस्य महानुभावस्य नीतिः प्राधान्येन पक्षपातरहिता, देशभक्तिप्रधाना, विदेशवस्तुपरित्यागात्मिका, भारतीयसंस्कृतिसम्पोषिका, स्वतन्त्रताप्रवणा, प्राचीनपरम्परानुसारं शिक्षाप्रदानोन्मुखी चासीत्। प्रचलितशिक्षाप्रणालीं दास्यमनोवृत्तिवर्धिनीं विचिन्त्य प्राचीन-संस्कृतिसंवर्धनाय राष्ट्रियभावनासमुद्बोधनाय च काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयं 1916 ईसवीये फरवरीमासस्य चतुर्थतारिकायां शुभमुहूर्ते संस्थापितवान्। देशनायकः अयं 1946 ईसवीये नवम्बरमासस्य द्वादशतारिकायां भौतिकं शरीरं अत्यजत्, न यशःशरीरम्।

एवं महामना यावज्जीवनं सततं सामाजिकक्षेत्रे, धार्मिकक्षेत्रे, राजनीतिक्षेत्रे शिक्षाक्षेत्रे च चिरस्मरणीयां सेवामकरोत्। काशी-हिन्दूविश्वविद्यालयः तु अस्य एकः कीर्तिस्तम्भ एव, अन्येऽपि बहवः आसन् किन्तु विस्तरभिया तदुल्लेखः परित्यज्यते। किं बहुना, मालवीयः महान् राजनीतिज्ञः, समाजसेवकः, देशभक्तः, शिक्षाप्रसारकः, अध्यात्मपरायणः निर्भयश्चासीत्। अस्य कीर्तिकौमुदी दिग्दिगन्तरव्यापिनी।

2.4 महात्मागान्धिः

को हि भारतीयो न जानाति महात्मानं गान्धिमहोदयम्। एतेन भारतीयानां स्वतन्त्रतायै समुन्नतये च महान्ति अद्भुतानि च कार्याणि कृतानि। सर्वेषु अभूतपूर्वा सफलता च प्राप्ता। अस्य स्मरणं राम-कृष्ण-बुद्धादीनामिव क्रियते।

गान्धिमहोदयस्य जन्म 1869 ईसवीयस्य वर्षे अक्टूबरमासस्य द्वितीयतारिकायां गुर्जरप्रदेशे (गुजरातप्रान्ते) पोरबन्दरनगरे अभवत्। अस्य पितुर्नाम 'श्रीकाबागान्धिः', परमधर्मिष्ठायाः मातुश्च 'पुत्तलीबाई' इति। अस्य पिता राजकोटराज्यस्य प्रधानमन्त्री आसीत्। एतेन धार्मिकशिक्षा स्वमातुरेव प्राप्ता। प्राचीनपरम्परानुसारम् अस्य विवाहः बाल्यकाले

त्रयोदशवर्षीये वयसि श्रीमत्या कस्तूरबया सह समपद्यत। विवाहानन्तरं सः मैट्रिकुलेशनपरीक्षामुत्तीर्य विधि (Law)—शिक्षायै आङ्गलदेशं गतः, तत्र चतुर्षु वर्षेषु तां शिक्षां समाप्य तदुपाधिं (Bar-at-Law = L.L.B) लब्ध्वा च सः स्वदेशं प्रत्यागतः। अत्र आगत्य प्राड्विवाककार्यं (वकालत) प्रारभत सः, किन्तु तद्व्यवसायं छलकपटमयमनुभूय तस्माद् उपारमत। एकदा सः दक्षिण-अफ्रीका-देशे गतः। तत्र भारतीयानां कष्टबहुलां शोचनीयां दशां विलोक्य तेषां समुद्धाराय महद् आन्दोलनं समचालयत्। अयं खलु गान्धिमहोदयस्य राजनीतौ प्रवेशस्य प्रथमावसरः। तत्र सफलतां प्राप्य सः प्रायः विशंतिवर्षानन्तरं 1914 तमे वर्षे पुनः स्वदेशं प्रत्यागतः। अत्रागत्यैव अयं मोतीहारीमण्डले निवसतां नीलव्यवसायिनां गौराङ्गानाम् अत्याचारेभ्यः पीडितां जनतां समुद्धर्तुं सर्वप्रथममान्दोलनं समचालयत्। ततश्च अमृतसरे 'जलियांवालाबाग' नामकस्थानस्य दारुणनरसंहारघटनातः अतिद्रवितचित्तः सः शासनविरोधे 'असहयोगान्दोलनं' प्रारभत। तदा सः शासनेन सहयोगिभिः सह कारागारवासं दण्डितः।

1930 ईसवीये लवणसत्याग्रहे सः पुनः सहयोगिभिः सह कारागारवासं प्रापितः। 1931 ईसवीये सः लण्डने आयोजितायां गोलमेज-परिषदि (Second Round Table Conference) कांग्रेसप्रतिनिधिरूपेण गतः, परन्तु सफलतां न अवाप्नोत्। 1937 ईसवीये अस्य प्रेरणया राष्ट्रियमन्त्रिमण्डलैः खादीप्रोत्साहनम्, ग्रामसुधारः, मादकद्रव्याणां प्रतिषेधः, भारतीयशिक्षापद्धतेः प्रसारः, हरिजनेभ्यः विविधसुविधाप्रदानम्-इत्यादीनि कार्याणि साधितानि। 1942 ईसवीये 'भारतं त्यजत' (Quit India) इति प्रसिद्धं महत्त्वपूर्णञ्च अन्तिमम् आन्दोलनं प्रारब्धम्। पुनरपि सः सहयोगिभिः सह कारागारे निक्षिप्तः। अन्ततः 1947 तमे वर्षे अगस्तमासस्य पञ्चदशतारिकायां पूर्णस्वतन्त्रतां प्रदाय वैदेशिकघोषणया वैदेशिकशासनं समाप्तिमगच्छत्, देशश्च स्वतन्त्रोऽभवत्। किन्तु तदानीं दुर्भाग्येन देशस्य हिन्दुस्तान-पाकिस्तानरूपेण द्विधा विभाजनं जातम्। दैवदुर्विपाकादेव 1948 तमे वर्षे जनवरीमासस्य त्रिंशत्तारिकायां यवनपक्षपातरुष्टेन 'नाथूरामगोडसे' नामकेन यूना विडलाभवने पञ्चवादनकाले प्रार्थनावसरे सः गुलिकया हतः। एवं भारतभाग्यभानुः अकाले एव अस्तं गतः महात्मनो गान्धिनः स्थानस्य पूर्तिरसम्भवैव सर्वथा।

गान्धिमहोदयेन सञ्चालितस्य स्वतन्त्रतासंग्रामस्य सफलतायाः मूलमंत्रः सत्यअहिंसात्मकास्त्रप्रयोग एव। अयं मानवेतिहासे असाधारणः सफलः अभूतपूर्वः प्रयोगः आसीत्। यतः दुर्दान्तैः प्रबलारिभिः सह अस्त्रविहीन-देशस्य कृते नान्या गतिरासीत्। अतः एवंविधः सफलः प्रयोगः अस्य देवत्वम् असंशयं प्रकटयति। ततः प्रभृति भारतीयाः परमप्रेम्णा एनं 'बापू', 'राष्ट्रपिता' चेति पदद्वयेन सम्मानयन्ति। वस्तुतः शरीरेण विरहितोऽपि सः अहिंसादिसिद्धान्तैः अमरत्वं प्राप्तः। तस्य यशःशरीरं न केवलं भारतवर्षे एव अपितु समस्तेऽपि विश्वे अभिव्याप्नोति।

2.5 अभ्यास :

निम्नांकित में से किसी एक विषय के ऊपर संस्कृत भाषा में निबन्ध लिखें–

(क) भगवान् श्रीकृष्णः

(ख) महामनामदनमोहनमालवीयः

(ग) महात्मागान्धिः।

तृतीय इकाई-भावात्मक व समीक्षात्मक निबन्ध

3.0 उद्देश्य

3.1 महाकविः कालिदासः

3.2 सत्सङ्गतिः

3.3 सदाचारः

3.4 परोपकारः।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप भावात्मक व समीक्षात्मक निबन्धों का संस्कृत भाषा में लिखने की प्रक्रिया को जान जायेंगे।

3.1 महाकविः कालिदासः

कविकुलगुरुः कालिदासः न केवलं भारतस्य अपितु समस्तविश्वस्य महाकविषु मूर्धन्यतया परिगण्यते। संस्कृतसाहित्ये अस्य प्रतिभा सर्वातिशायिनी। पाश्चात्यसमालोचकाः अपि एनं शेक्सपीयरोपमं स्वीकृत्य सम्मानयन्ति। यथा चोक्तम्-

'पुरा कवीनां गणना-प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।

अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।'

कालिदासस्य जन्मस्थानमधिकृत्य त्रीणि मतानि सन्ति- (1) केचिदेनं बङ्गदेशीयं मन्यन्ते, यतः अस्य 'कालिदास' इति नामैव अभिव्यनक्ति यदयं 'कालि' समाराधनेन कविप्रतिभां लब्धवान्। बङ्गेषु देवी-काली प्राधान्येन पूज्यते। अद्यापि आषाढस्य प्रतिपदि कालिदासोत्सवः महतायोजनेन सम्पाद्यते। (2) अपरे तु एनं काश्मीरवासिनं मन्यन्ते। अत्र कुमारसंभवे हिमालयवर्णनम, मेघदूते अलकापुर्यादिवर्णनम्, अभिज्ञानशाकुन्तले मारीच्याश्रमोपकण्ठे काश्मीरप्रदेशानुहारि उपत्यकावर्णनं चैव प्रमाणम्। (3) अन्ये तु एनं उज्जयिनीनिवासिनं मन्यन्ते। एतन्मतसाधकं मेघदूते अवन्तिदेशस्थोज्जयिन्याः, तत्समीपस्थप्रदेशानां (दशार्ण-मन्दसौर-विदिशा-भेलसादीनां), शिप्रायाः भगवतो महाकालस्य च वर्णनम् । अन्यच्च पण्डितसमाजे एतदपि प्रचलितं यत् कालिदासः स्वजन्मना काश्मीरभुवमलङ्कृत्य प्रौढ़े वयसि उज्जयिनीमागतः।

एवमेव कालिदासस्य समयोऽपि विवादग्रस्तः। अत्रापि चत्वारि मतानि प्राधान्येन प्रचलितानि सन्ति (1) 'मालविकाग्निमित्र' नाटकस्य अनुरोधेन शुङ्गवंशीयस्य राज्ञः अग्निमित्रस्य

कालः (ईसापूर्वद्वितीयशताब्द्याम् अर्धशतकम्) उपरितना सीमा, तथा सम्राजः हर्षस्य आश्रितेन बाणेन सबहुमानं कालिदासनाम वर्णितम्, तदनुसारेण सप्तमशताब्दीतः प्राक् षष्ठशताब्दी अधस्तना सीमा पर्यवस्यति। एतदभ्यन्तरे एव केचन कालिदाससमयं ईसापूर्वद्वितीयशताब्दीं मन्यन्ते। (2) अपरे जनश्रुतिमनुसृत्य राज्ञः विक्रमादित्यस्य नवरत्नेषु अन्यतममिमं विक्रमसंवत्सरारम्भे वर्तमानं कालिदासं प्रथमशताब्द्याम् स्थापयन्ति। (3) अन्ये तु सम्राजः विक्रमादित्यापरनामकस्य द्वितीयचन्द्रगुप्तस्य समकालिकस्य कालिदासस्य समयं चतुर्थशताब्दीं स्वीकुर्वन्ति। अत्र युक्तिरियमुपस्थाप्यते यत् कालिदासस्य काव्ये यत् वर्णनमुपलभ्यते तत् प्राय अस्मिन्नेव राज्ञि संगच्छते। (4) मेक्समूलरप्रभृतिभिः कालिदासस्य कालः षष्ठशताब्दी निर्णीयते।

अस्य प्रारम्भिकजीवने एका किंवदन्ती बद्धमूला प्रचलति। अयं साधारणब्राह्मणकुलोत्पन्नः अल्पे एव वयसि पितृविहीनः परगृहे पालितोऽभवत्। अशिक्षितः अयमेकदा यस्य वृक्षस्य यस्याः शाखायाः अग्रभागं अधिरुढ़ः आसीत् तामेव छेत्तुं प्रारभत। तं तथा दृष्ट्वा 'महामूर्ख' इति च मत्वा शास्त्रार्थे कयाचित् विद्योत्तमया राजकुमार्या तिरस्कृताः विद्वांसः तं तस्याः प्रासादं प्रतीकारभावनया नीतवन्तः। तत्र प्रवृत्ते च शास्त्रार्थे छलेन पराजितायाः तस्या तत्प्रतिज्ञानुसारम्, एतेन सह परिणयं कारितवन्तः। पश्चात् प्रथमसमागमे एव उष्ट्रस्थाने 'उट्र' इति शब्दं प्रयुञ्जानं तं महामूर्खं मत्वा सा तं गृहात् निस्सारितवती। एवं स्त्रिया पराभूतः कालिदासः कालान्तरे महाकालीप्रसादेन सिद्धिं कविप्रतिभां च लब्ध्वा स्वगृहमागतः, यदा सः पत्नीं द्वारकपाटमुद्घाटयितुं सम्बोधितवान् तदा सा अन्तःस्थिता एव प्रत्यवदत् 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' ततः सः तद्वाक्यस्य प्रतिपदमधिकृत्य क्रमशः कुमारसंभवम् (अस्त्युत्तरस्यामित्यादि), मेघदूतम् (कश्चित् कान्ताविरहेत्यादि) रघुवंशम् (वागर्थाविवेत्यादि) चेति त्रीणि काव्यानि अरचयत्। अन्यान् अपि ग्रन्थान निर्मितवान्। यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् मालविकाग्निमित्रम् चेति त्रीणि नाटकानि तथा ऋतसंहारनामकमेकं मुक्तककाव्यम् च। तत्र काव्येषु रघुवंशमहाकाव्यम्, नाटकेषु अभिज्ञानशाकुन्तलम, खण्डकाव्येषु मेघदूतं सुविख्यातम्।

अस्य रचनासु (1) ध्वनिप्राधान्यं तत्प्रयुक्तं चार्थगाम्भीर्यम्; (2) अलङ्कारविषयाणां सर्वसाधारणानुभवगोचरता तत्प्रयुक्तमुपमादिवैशिष्ट्यम्, यथोक्तम् 'उपमाकालिदासस्य'; (3) प्रसाद-माधुर्यवैशद्यम्; (4) शब्दस्य अर्थानुरूपता; (5) वैदर्भीरीति-रस-विषयानुकूलछन्दसां प्रयोग; (6) भावप्रवणता; (7) कला-कौशलम्; (8) प्रकृतिवर्णन-चरित्रचित्रणनैपुण्यम्; (9) सहजसौन्दर्यनिरूपणम्; (10) भारतीय-संस्कृतिसम्पोषकत्वञ्च बाहुल्येन दृश्यते। अन्येऽपि बहवो विशेषाः सन्ति किन्तु निबन्धविस्तरभिया नोल्लिख्यते। किं बहुना, यादृशं चारुत्वं रचना-चमत्कृतिर्वा अस्य ग्रन्थेषु उपलभ्यते तत् प्रायो अन्यत्र दुर्लभम्। उदाहरणार्थं त्रीणि पद्यानि प्रस्तूयन्ते-

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।। रघुवंशः।।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं च इच्छति।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां क्षेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।।शाकुन्तलम्।।

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां

वामश्चायं नुदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र।

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य।।मेघदूतम्।।

किं बहुना, कवेरप्रतिमं वैदुष्यं विचार्य श्रीकृष्णेन कविना सम्यगेवोक्तम् :-

अस्पष्टदोषा नलिनीव हृद्या हारावलीव ग्रथिता गुणोघैः।

प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी।।

3.2 सत्सङ्गतिः

सतां -सज्जनानां सङ्गतिः - संपर्कः (सम्बन्धः) 'सत्सङ्गतिः'। यो यादृशैः पुरुषैः सह सङ्गतिं करोति, सः तादृगेव भवति। सज्जनानां सङ्गत्या जनः सज्जनो विनम्रश्च भवति, असज्जनानां च सङ्गत्या सः दुष्टः उद्धतश्च भवति। यथा स्पर्शमणेः संसर्गात् लौहमपि स्वर्णायते, तथैव सज्जनसंगर्तात् निर्गुणोऽपि सकलगुणोपेतः सज्जनश्च जायते। यथोक्तम्-

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्।

तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।

अपि च 'संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति'। तथा च 'कीटोऽपि सुमनः संगाद् आरोहति सतां शिरः'। तस्मात् सतामेव सङ्गतिर्विधेया न कदाप्यसताम्। सतां संगत्या बुद्धिर्निर्मला भवति। असत्संपर्केण तु मलिनीभवति। निर्मलायां बुद्धौ कार्याकार्यविवेकः प्रस्फुटति, मलिनायां तु सोऽपगच्छति। अतः उक्तम्-

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह। न दुष्टजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि।।

अस्मिन् जगति न कोऽपि एकाकी संसरति। अनेकैः परिचितापरिचितैः सह मिलित्वैव व्यवहरन्ति जनाः। संसारयात्रायां विविधक्रियाकलापेषु परसङ्गतिरनिवार्या। मनुष्यः सामाजिकः प्राणी। तस्मात् परसंपर्कं विना सः जीवनयात्रां न कर्तुं शक्नोति। सर्वस्यैव मित्राणि शत्रवश्च भवन्ति। एवं स्थिते यदि सः सद्भिः संपर्कं करोति तर्हि तस्य जीवनं सुन्दरं सफलं च भवति। अन्यथा महान्ति कृच्छ्राणि आयन्ति, अकीर्तिश्च प्रसरति। इत्थं च मानवस्योपरि सङ्गतेरनिवार्यः

विनम्रता, धार्मिकता, जितेन्द्रियता, अलोलुपता, निष्कपटता अन्ये च सर्वे सद्गुणाः मित्रभावेन निवसन्ति। 'सदाचारश्च परमो धर्मः'। आहारनिद्रादयः प्राणिमात्रसाधारणाः भावाः, किन्तु सदाचारधर्म एव विशिनष्टि मानवम् अन्येभ्यः प्राणिभ्यः। यथोक्तम्—

आहारनिद्राभयमैथुनं च समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

सदाचारिणः समाजं देशं विश्वं च समुन्नेतुं पारयन्ति। ते केनापि प्रलोभनेन न्यायात् पथः न विचलन्ति, अपितु सर्वदैव सर्वेषां कल्याणं निस्स्वार्थं कर्तुं प्रयतन्ते। एतादृशानां महापुरुषाणां समाजे महान् प्रभावो भवति, सर्वत्र सर्वदा च विपुलः समादरः। सदाचारिणः जनानां मूर्धनि तिष्ठन्ति, न कुत्रापि कदापि वा उपहासास्पदानि निन्दाभाजनानि वा भवन्ति। अत एवोक्तम्—'शीलं परं भूषणम्।' सर्वाः दुष्प्रवृत्तयः सदाचाराभावमूलाः, सर्वे गुणाः सदाचारमूलाश्च। सत्स्वपि अर्थबलादिषु सदाचारेण विना तस्य सर्वं शून्यं भवति। यथोक्तम्—'वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च। अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः।' अपि चाङ्गलभाषायाम्—

"If health is lost, something is lost.

If wealth is lost nothing is lost.

If character is lost everything is lost."

सदाचारविहीनाः निरर्गलं (स्वच्छन्दम्) कुमार्गे विचरन्तः इहलोके परलोके च दुःखभाजः भवन्ति। यथा सर्वशास्त्रनिष्णातो महाबलवान् रावणः सवंशः काल-कवलितः, स्वर्गं गतोऽपि राजा नहुषः अधः निपातितः। यदि कोऽपि धन-विद्यादिबलात् आत्मनो दुश्चरित्राणि गोपयित्वा प्रतिष्ठां प्राप्नुयात् सोऽपि परं दुष्कर्मणां भाण्डस्फोटे परमनिन्दनीयां दुर्दशां प्राप्नोति। सच्चरित्रतायाः कोऽपि अनिर्वचनीयः लोकोत्तरः प्रभावो भवति, येन तस्य पुरस्तात् महान्तोऽपि जनाः निष्प्रभा भवन्ति। मर्यादापुरुषोत्तमराम-महावीर-बुद्धप्रभृतयः महापुरुषाः सदाचारबलेनैव पूजनीयाः। चिरं देशोऽयं सदाचारे विख्यातः आसीत्, किन्तु इदानीं महतः खेदस्य विषयः यद् केचन परोपदेशकुशलाः नेतारः सदाचाराद् दूरं गताः। अतएव अस्मद्देशे प्रशस्तदेशे प्रशस्तसिद्धान्तेषु सत्सु अपि सुखस्य शान्तेश्च ह्रासः सञ्जातः, विदेशेषु च अस्य प्राचीनं गौरवम् अपाचिनोत्। वस्तुतः सदाचाराभावे प्रशस्तसिद्धान्तानां मूल्यवत्ता शून्यैव यथा सुविचारितमपि औषधं नाम-स्मरणमात्रेण आरोग्य-जनकत्वाभावात् निष्फलम्। उक्तमेव सत्यम्—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स एव।

सुचिन्तितञ्चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।

ये जनाः धनविद्यादिगुणसम्पन्नाः परन्तु आचारहीनाः सन्ति तान् वेदाः अपि न

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः, स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

अस्मद्देशे अनेके महापुरुषाः परहितमाचरन्तः अशेषजीवनम् अयापयन्। परोपकारभावनया महाराजः शिविः शरणागतस्य कपोतस्य रक्षणाय स्वमांसं श्येनाय प्रायच्छत्। महाराजो दधींचिः देवानां हिताय स्वकीयानि अस्थीनि दत्तवान्। महाराजा मयूरध्वजः अन्यस्य क्षुधानिवारणाय स्वकीयं पुत्रं समर्पितवान्। एतादृशाः एव अनेके परोपकारपरायणाः श्रीराम-कृष्ण-महावीर-बुद्ध-गान्धि-मालवीय-प्रभृतयः महापुरुषाः संजाताः, येषां सुकृत्यैः देशः समुन्नतः अभवत्। एतेषां सर्वेषां यशांसि चिरस्थायीनि। उक्तञ्च—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।

विभाति कायः खलु सज्जनानां, परोपकारेण न चन्दनेन।।

'परोपकारपरायणानां सर्वदा सर्वत्र च सम्मानः अवश्यम्भावी' इति मत्त्वा सर्वैरपि क्षुद्रं स्वार्थं परित्यज्य परोपकाराय यतनीयम्। यदि मानवानां हृदयेषु परोपकारस्य अल्पा अपि भावना समुदिता भवेत्तर्हि संसारस्य बह्वीनां जटिलसमस्यानाम् अनायासमेव समाधानं सम्पद्येत, शान्तिश्च स्थाप्येत। 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्', सर्वे भवन्तु सुखिनः'- इत्यादिसिद्धान्तवन्तः परोपकारिणः भवन्ति। अन्येषाम् उपकर्तुः आत्मनोऽपि हितानि भवन्ति, विभूतयश्च पदे-पदे आयान्ति। यथोक्तम्—

'परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्। नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदस्तु पदे-पदे।।'
अपि च- परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि। परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि।।

3.5 अभ्यासः

निम्नलिखित में से किसी एक विषय पर संस्कृत भाषा में निबन्ध लिखें—

(क) महाकविः कालिदासः

(ख) परोपकारः

(ग) सत्सङ्गतिः।

चतुर्थ इकाई- शास्त्रीय, कवि, सूक्ति एवं सुभाषितगत निबन्ध

4.0 उद्देश्य

4.1 अनुशासनम्

4.2 विद्यार्थिकर्त्तव्यम्

4.3 आधुनिकं विज्ञानम्

4.4 विद्या

4.5 सत्यम् (सत्यमेव जयते नानृतम्)

4.6 उद्योगः

4.7 अहिंसा

4.8 गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते

4.9 मातृभक्तिः देशभक्तिश्च

4.10 वैदिकी संस्कृतिः

4.11 भारतीय-संस्कृतिः

4.12 ऋग्वेदः

4.13 वेदाङ्गानां महत्त्वम्

4.14 महाकविः दण्डी

4.15 महाकविः बाणभट्टः

4.16 महाकविः अश्वघोषः

4.17 महाकविः भारविः

4.18 अस्माकम् देशः।

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप शास्त्रीय, कवि, सूक्ति एवं सुभाषितगत निबन्धों को संस्कृत भाषा में लिखने में समर्थ हो सकेंगे।

4.1 अनुशासनम् (सङ्घे शक्तिः कलौ युगे =एकता)

'अनु' उपसर्गपूर्वकात् 'शास्' धातोः निष्पन्नोऽयम् 'अनुशासन' शब्दः। तैत्तिरीयोपनिषदः शाङ्करभाष्ये अस्य व्याख्यानम् ईश्वरवचनरूपेण कृतम्। गुरुवचनं शासकवचनं वा ईश्वरचने

अन्तर्भूतम्। प्रकारान्तरेणापि इदं व्याख्यातुं शक्तते—अनु – पश्चात् – गुरूपगमनानन्तरं तदीयशासनम् – हिताहितकरण-परिहाररूपवचनम् 'अनुशासनम्'। अग्रे एतदेव सामान्यरूपेण कस्यापि शासकस्य वचनानुसरणे तदादेशपालने वा परिणतम्, फलतः अस्य शब्दस्य अयमर्थः अस्ति यत् कस्यापि व्यवस्थितनियमसमुदायस्य विधिवाक्यवत् (क्षोद-क्षेमं विनैव) पालनमेव अनुशासनम्।

अनुशासनम् द्विविधम्—स्वाभाविकं बलादारोपितं च। पूर्वं तु विनम्रता-आत्मसंयमादिसहितम्, व्यवस्थित-नियम-सदादर्शप्रभवम्, स्वेच्छया परिगृहीतं च भवति। अपरं तु दुःखदैन्यादिसंवलितम्, दण्डभीतिजन्यम्, अनिच्छया पालितं च। दासत्वभावनाविकासप्रतिबन्ध-स्वतन्त्रचिन्तनाभावादिदोषाः द्वितीये एव अनुशासने सम्भवन्ति, न तु प्रथमे।

जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रे अनुशासनस्य महती आवश्यकता भवति। एतद् विना कुत्रापि कदापि कस्यापि सफलता न सम्भवति। अनुशासनमन्तरेण कापि सुव्यवस्था न प्रचलितुं शक्नोति। स एव देशः समाजश्च समुन्नतो भवति, यस्मिन् प्रजाः शासकाश्च अनुशासनपालकाः। अतः गृहे आशैशवाद् अनुशासनस्य शिक्षा पितृभिः शिक्षासंस्थासु च तदधिकारिभिः प्रदेया। अन्यान् स्वप्रभावेण, न तु दण्डभयेन अनुशासयितुम् अधिकारिभिरपि स्वयं सदाचारिभिः कर्त्तव्यपरायणैः अनुशासनप्रणयिभिश्च भाव्यम्। नहि स्वयं सदाचारविरहिताः कर्त्तव्यपराङ्मुखाः अनुशासनविहीनाः अन्यान् अनुशासने स्थापयितुं प्रभवन्ति। अनुशासनं न केवलं सैनिकानां कृते आवश्यकं किन्तु सर्वेभ्यः, विशेषतश्च छात्रेभ्यः। यतः देशस्य छात्राः भाविनः कर्णधाराः भाग्यविधातारश्च सन्ति। अतः तेषाम् आत्महिताय, देशकल्याणाय, आगामिन्याः सन्ततेः पुरः समुचितादर्शसंस्थापनाय च अनुशासनमपरिहार्यम्।

साम्प्रतं परितः दृश्यमाना स्वेच्छाचारिता अनुशासनस्य बाधिका। स्वेच्छा-चारितया अध्ययनानुरागिणः छात्राः, अभिभावकाः, शिक्षासंस्थाधिकारिणः अन्ये सर्वेऽपि चिन्तिताः उद्विग्नाश्च। छात्रेषु अनुशासनशिथिलतायाः चरित्र-हीनतायाः स्वेच्छाचारितायाश्च प्रधानं कारणम्—समुचितादर्शानुपलम्भः। यस्मिन् गृहे अनुशासनं नास्ति, तत्र कुटुम्बिनः गुरोः अनादरं कुर्वन्तः, यथेच्छं व्यवहरन्तः परस्परं पदे-पदे विवदमानाः न जातु शान्ति सुखं च लभन्ते। इयमेव स्थितिः अनुशासनापेतस्य समाजस्य देशस्य च। अत्र इतिहास एव प्रमाणम्।

निर्विवादमेतत् यत् अल्पसङ्ख्यात्मकेन सङ्घटितेन अनुशासितेन सैन्येन विपुला अपि अनुशासनविहीना विघटमाना सेना पराजीयते। यतः सङ्घे शक्तिः कलौ युगे-यदा भारतीयेषु एकता-भावनायाः जागृतिरभूत्, तदा ते स्वाधीनाः अभवन्। एकमुद्देश्यं लक्ष्यीकृत्य बहूनां नराणाम् एकत्वभावनाया कार्यकरणम् एकता इत्युच्यते। एकता अनुशासनं विना न सम्भवति। यतः अनुशासनाधीना संहतिः, संहितिनियता एकता, एकता-निबन्धना शक्तिः, शक्तिमूलको अभ्युदयः, अभ्युदयापेक्षं च सुखम्। अत एवोक्तम्—

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।

तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः।।

ऋग्वेदेऽपि अनुशासित-एकतायाः आवश्यकता प्रतिपादिता–

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।।

प्रकृतिरपि अनुशासनप्रवणा यत् निश्चिते काले एव फलन्ति वृक्षाः, पुष्पाणि विकसन्ति, ऋतवः आयान्ति गच्छन्ति च। नात्र संदेहलेशोऽपि यद् अनुशासनाभावे सर्वमपि अव्यवस्थितम्, अकिञ्चित्करम्, कष्टबहुलम्, विनाशोन्मुखं च। देशस्य स्वतन्त्रताप्राप्तिः, तद्रक्षणम्, समष्टिरूपेण व्यष्टिरूपेण वा उत्थानम्, एवं विद्याः सङ्ख्यातीताः, अनेके भावाः अनुशासनस्य अमितमहत्त्वं प्रकटयन्ति। यथोक्तम्–

लालने बहवो दोषाः शासने बहवो गुणाः। तस्माद् जीवनस्य सर्वेषु अपि क्षेत्रेषु अनुशासनं पालनीयम्। सफलतायाः मूलमन्त्रः अनुशासनमेव।

4.2 विद्यार्थिकर्त्तव्यम्

विद्यायाः अर्थिनः—अभिलाषिणः 'विद्यार्थिनः' तेषां कर्त्तव्यम्—करणीय-कार्यकलापः 'विद्यार्थिकर्त्तव्यम्'। मानवजीवने चतुर्षु कालेषु भिन्नरूपेण विद्या उपयुज्यते। तत्र प्रथमः आगमकालः (अध्ययनकालः), द्वितीयः स्वाध्यायकालः (बोधकालः), तृतीयः प्रवचनकालः (अध्यापनकालः) चतुर्थः व्यवहारकालः (प्रयोगकालः) च। इमे एव चत्वारः कालाः ब्रह्मचर्याद्याश्रम-पदैरपि व्यपदिश्यन्ते। तेषु अधीयानानां (अध्ययनकालमापन्नानाम्) छात्राणां कर्त्तव्यानि अधो निरूप्यन्ते–

पूर्वम् अन्तेवासिनः ब्रह्मचर्याश्रमधर्मान् पालयन्तः अध्ययनसमाप्तिपर्यन्तम् अजस्रं गुरुकुले न्यवसन्। तेषां ब्रह्मचारिणां धर्माः धर्मशास्त्रादिग्रन्थेषु विशेषतो वर्णिताः किन्तु इदानीन्तने शिक्षासंदर्भे विद्यार्थिनः कर्त्तव्यानि प्रधानतया सप्त परमावश्यकानि। तानि–(1) विद्योपार्जनम्, (2) शारीरिकशक्तिसञ्चयः, (3) नियमितता, (4) समयस्य सदुपयोगः, (5) अनुशासनपालनम्, (6) गुरुभक्तिः, (7) चरित्रनिर्माणञ्च। क्रमेण यथा–

विद्योपार्जनम्—छात्राणाम् अध्ययनं वाग्देव्याः उपासना तपः च। विद्या सदभ्यासबलेन लभ्या भवति। विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्। विद्यया च अमृतमश्नुते। अतः नियमितरूपेण यथाशक्ति विद्याभ्यासः करणीयः। विद्यागमस्य द्वे स्थाने–(1) अध्यापकः, (2) पुस्तकालयश्च। अतः पुस्तकालस्यापि सम्यग् उपयोगः छात्रैः कार्यः। अवकाशदिनेषु पाठ्यपुस्तसहायकानि पुस्तकान्तराणि अपि अध्येतव्यानि। अध्ययनकाले आलस्यम्, दीर्घसूत्रतां, चञ्चलतां, अन्यमनस्कतां च परिहरेत्। वक्तृत्वकलायाम्, सुन्दरलेखने, भाषणे च योग्यता सम्पादनीया।

शारीरिकशक्तिसञ्चयः—यदा शरीरं सबलं स्वस्थश्च भवति तदैव पठनम्, लेखनम्,

चिन्तनम्, कवित्वञ्च सर्वमपि सम्यग् भवितुमर्हति। वेदव्यासेन महाभारते कथितम्–'सर्वं बलवतां साध्यम्'। अतः छात्रैः नियमेन व्यायामः सेवनीयः व्यायामश्च बहुविधः। यथा–क्रीड़ा (Games and Sports), सैनिकशिक्षा (N.C.C.), दण्ड-बैठकादिसंज्ञकः प्राचीन-भारतीयव्यायामः योगासनादिर्वा। एतैः शरीरिकशक्तिसंवर्धनं छात्राणां कृते नितान्तमावश्यकम्।

नियमितता–प्रातरुत्थानादारभ्य रात्रौ शयनपर्यन्तं बहूनि कार्याणि भवन्ति। यस्य कार्यस्य यः समयो भवेत्, तस्य तदैव अनुष्ठानं नियमितता। अस्याः परिपालनेन विद्यार्थिनां पूर्णविकासो भवति कार्याणि च यथासमयं सम्पद्यन्ते।

समयस्य सदुपयोगः–व्यतीतः समयः न कथमपि पुनरायाति। यथोक्तम् वाल्मीकिना–'यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः शीघ्रमपामिव'। अतः सर्वैः तथा प्रयतनीयं यथा क्षणमपि निरर्थकं न गच्छेत्। ये समयस्य सदुपयोगं न कुर्वन्ति, अन्ते च पश्चात्तापमनुभवन्ति।

अनुशासनपालनम्–यौवने अनुशासनस्य महती आवश्यकता। तद् विना कस्मिन्नपि क्षेत्रे साफल्यं दुराशामात्रमेव। विद्यार्थिनां कृते तु इदमनिवार्यमेव, यतः अनुशासनहीनाश्छात्राः अध्ययनपराङ्मुखाः भवन्ति। अध्ययनाध्यापनादिव्यवस्थां च विनाशयन्ति।

गुरुभक्तिः–पिता, माता, आचार्यश्च एते त्रयोऽपि गुरवः। तेषां – शुश्रुषा छात्राणां कर्त्तव्यम्। विद्यालाभस्य त्रयः एव उपायाः, तेषु गुरुशुश्रूषा प्रधानतमा। यथोक्तम्–

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।

अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नोपपद्यते।।

भगवत्प्राप्तिहेतुत्वाद् गुरवः देवकल्पाः भवन्ति। उपदिष्टं च तैत्तरीयोपनिषदः शिक्षावल्याम्–'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' इति।

चरित्रनिर्माणम्–पूर्वं गुरुकुले न केवलं विद्यालाभः, चरित्रनिर्माणमपि शिक्षायाः उद्देश्यमासीत्। इन्द्रियसंयमः, मान्यजनानां सम्मानः, विनयः, सुशीलता, अलोलुपता, शिष्टाचारपालनम्, विहितनिषेवणम्, प्रतिषिद्धपरिवर्जनम्-इत्यादिभिः गुणगणैः चरित्रनिर्माणं भवति। विद्याध्ययनस्य न ज्ञानमात्रं फलं किन्तु सच्चरित्रनिर्माणमपि। विद्वांसः निसर्गतः निर्मलचरिताः भवन्ति। चरित्रदोषे विद्या गर्हिता भवति। तस्मादुदात्तचरित्रोपार्जनाय छात्रैः सततं प्रयतितव्यम्।

विद्यार्थिनः देशस्य संसारस्य च भाविनः कर्णधारास्सन्ति। यदि ते स्वकर्त्तव्यपालनं सम्यग्रूपेण न कुर्युः तर्हि समाजस्य देशस्य स्वस्य च कापि उन्नतिः असम्भवप्राया। यतः ते एव अग्रे अध्यापकाः, न्यायाधीशाः शासकाः विविधव्यवसायभाजश्च भविष्यन्ति। स्वकर्त्तव्यच्युताः विद्यार्थिनः यदि तत्र स्थिताः सन्तः सम्यक् न अध्यापयेयुः, सम्यक् न्यायं न कुर्युः, सम्यक् न अनुशासयेयुः, स्व-स्वपदोचितकार्यजातं च न सम्पादयेयुः तर्हि देशः समाजश्च विनाशगर्ते निपतेताम्। तस्मात् छात्रैः निर्दिष्टकर्त्तव्यपरायणैर्भाव्यम्।

4.3 आधुनिकं विज्ञानम् (विज्ञानं वरदानरूपम् अभिशापरूपं वा)

भूतभौतिकपदार्थानां विश्लेषणात्मकं ज्ञानम् आधुनिकं विज्ञानम्। अद्य अस्यैव डिण्डिमघोषः सर्वत्र संसारे श्रूयते, यतः साम्प्रतं मानवाः प्रायः आध्यात्मिकज्ञानविमुखाः लौकिकसुखसाधनपरायणाश्च। तदर्थं कृतान् तान् सर्वान् विश्वविस्मयकरान् नवनवान् आविष्कारान् बहु मन्यते। अतएव अस्मिन् विज्ञानयुगे मानवाः बाल्यकालादारभ्य मृत्युपर्यन्तं विज्ञानक्रोडे खेलन्तः दृश्यन्ते, प्रकृतिश्च विज्ञानस्य अनुचरीव प्रतीयते। अधुना विज्ञानं प्रकृतेः अनन्तशक्तीनां रहस्यानि उद्घाटयत् तस्यां सर्वथा प्रभवितुभपि प्रयतमानमिव परिदृश्यते। विज्ञानेन मानवसभ्यतायाः स्वरूपमेव परिवर्तितम्। सर्वत्र जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रे मानवजातिः वैज्ञानिकशक्त्या प्रभाविता दृश्यते। मानवोऽपि विज्ञानमयः संवृत्तः। विज्ञानप्रभावादेव इदानीम् अगम्यमपि सुगमम्, असाध्यमपि सुसाध्यम्, अदृश्यमपि सुदर्शनम्, अलभ्यमपि सुलभं जातम्।

वैज्ञानिकाविष्काराः संक्षेपेण चतुर्षु प्रकारेषु विभाजयितुं शक्यन्ते—(1) दैनन्दिनोपयोगिनः, (2) आधि-व्याधिहराः, (3) मनोरञ्जकाः विध्वंसकाश्च। तत्र आद्याः त्रयः जनहितसाधकाः इति वरदानरूपाः, अन्तिमश्च हानिकरः इति अभिशापरूपः, परं शत्रोराक्रमणकाले स्वरक्षासम्पादनेन चतुर्थोऽपि वरदानरूपः।

(1) दैनन्दिनोपयोगिनः—अत्र परिगणनीयाः आविष्काराः अधोलिखितास्सन्ति—

(क) यानानि—ट्रेन (वाष्पयान), मोटर (मृत्तरः), स्कूटर-साईकिल (द्वि-चक्रयान), प्रभृतीनि स्थलयानानि; एरोप्लेन-हेलिकाप्टर-अपोलो-लूना-प्रभृतीनि वायुयानानि; शिप-स्टीमर (वाष्पनौका), पनडुब्बी (जलान्तर्वर्ति-नौका), प्रभृतीनि जलयानानि सन्ति। एतैः यानैः कष्टबहुला चिरकालिकाऽपि यात्रा सुखेन स्वल्पेन च समयेन सम्पाद्यते। स्थले, भूगर्भे, दुर्गमप्रदेशे, जले, अन्तरिक्षे च सर्वत्र मानवानाम् अप्रतिहता गतिः सञ्जाता। अधुना अपोलो-लूना-संज्ञकैः वायुयानैः चन्द्रलोकयात्रा सफलीभूता। अन्येष्वपि ग्रहेषु तल्लोकेषु वा यात्रायै सततं प्रयत्नाः विधीयन्ते।

(ख) विद्युत्, तन्निबन्धनानि यन्त्राणि उपकरणानि च—विद्युतः प्रधानं कार्यं प्रकाशः। एषः प्रकाशः अतिनिविडेऽन्धकारे सौरप्रकाशम् अतिशयान इव प्रतीयते। विद्युद्बलेन वायुसञ्चारः, शीततापनिवारणम्, विविधयानयन्त्रादिसञ्चालनम्, अन्येषां दुष्करकार्याणां च सम्पादनम् पूर्वमशक्यमपि इदानीं सम्भवति। किं बहुना, प्रायः सर्वेषामपि वैज्ञानिकाविष्कारणाम् इयं आधारशिला।

(ग) प्रसार-सूचनायन्त्राणि—टेलीग्राम-टेलीफोन (शब्दसंवादयन्त्रम्), रेडिया (ध्वनिविक्षेपकयन्त्रम्), केबुल-लाउडस्पीकर-टेलीप्रिंटर-टेलेक्स-टेलीविजन-रडार-वायरलेस-घटीयन्त्रप्रभृतीनि प्रमुखानि यन्त्राणि। एतैः गृहस्थितेनापि अतिविप्रकृष्टैः सह वार्ता, अतिदूरस्थ-

सङ्गीत-समाचारादिश्रवणम्, अन्यत्रभाविनां वृत्तान्तानां तात्कालिकाधिगमः। देशान्तरस्थपुरुषादीनां रूपसाक्षात्कारः, आरात् स्थले जले नभसि वा प्रचलतां वायुयानानां नक्षत्रादीनां सूचनोपलम्भः, घण्टादिविभागेन समयपरिज्ञानं च सम्भवति। किं बहुना, एतद्बलेन त्वरितगतिः सर्वंचरी वायुरपि पराजितः। अतिविस्मृतमपि इदं जगत् स्वाङ्गणस्थमिव जातम्।

(घ) प्रेक्षायन्त्राणि—टेलिस्कोप (दूर-सूक्ष्मवीक्षकयन्त्रम्), कैमरा-उपनेत्र (चश्मा), प्रभृतीनि प्रेक्षायन्त्राणि विशेषतः उल्लेख्यानि। टेलिस्कोपयन्त्रेण लौकिकप्रत्यक्षाधिगमः अपि अतिसूक्ष्म-विप्रकृष्टपदार्थानां सम्यक् प्रेक्षणं सम्भवति। चित्रण-यन्त्रेण (कैमरा) एकस्य बहूनां समवेतानां वा यथावस्थचित्रणं गृह्यते। उपनेत्रद्वारा दुर्बलचक्षुषाऽपि सूक्ष्माणि, अन्यथा अनधिगम्यानि च अक्षराणि साक्षात्कर्त्तुं शक्यन्ते।

(ङ) अन्यानि विविधयन्त्राणि—टङ्कण (टाइपराइटर-टेलिप्रिण्टर-टेलेक्स), मुद्रण (प्रिंटिङ्ग-मशीन)—गणन (कम्प्यूटर), कृषि (टैक्कर, हारवेस्टर, ट्यूब्बेल), प्रभृतीनि उद्योग-वाणिज्य (मिल, फैक्टरी, मशीन), प्रभृतीनां विविधानि यन्त्राणि विवरणीयानि सन्ति। एतेषां तत्तत्क्षेत्रे अभूतपूर्वः आश्चर्यजनकः प्रभावः, सर्वेषां चेतस्सु कौतुकमावहति। साम्प्रतं बहुजन-चिरकालसाध्यमपि कार्यं यन्त्रद्वारा अतिपरिमितपुरुषैः स्वल्पेनैव कालेन चारुतरं सम्पाद्यते।

(2) आधिव्याधिहराः—अधुना प्रचलतां बहूनां भयरोगाणां प्रशमाय विज्ञानेन नूतनानि एक्सरे-रेडियम-सर्जरी-प्लास्टिकसर्जरीप्रभृतीनि चिकित्सा-साधनानि आविष्कृतानि, तदर्थं पेनसिलिन-स्टेप्टोमाइसिन-एक्रोमाइसिन-क्लोरोमाइसटिन-प्रभृतयः नवीनौषधयश्च निर्मिताः। मानसिकरोगाणां कृते मनोवैज्ञानिकोपायाः अपि प्रादुर्भाविताः। किं बहुना, विज्ञानस्य प्रभावेण नवीनहृदयादिरोपणादिकम् अपि क्रियते; बधिराः श्रृण्वन्ति, मूकाः वदन्ति, पङ्गवः चलन्ति च।

(3) मनोरञ्जकाः—ग्रामोफोन-रेडियो-रेडियोग्राम-रिकार्डप्लेयर-टेप-रिकार्डरप्रभृतीनि ध्वनियन्त्राणि, हारमोनियम-आर्केष्ट्रा-वेला-सरोदप्रभृतीनि नवीनवाद्ययन्त्राणि; टेलीविजन-चलचित्र (सिनेमास्कोप) प्रभृतीनि चित्रमययंत्राणि मनोरञ्जनसाधनानि। एतेषामाविष्काराणां प्रभावेण मनोरञ्जनं सुलभं सर्वजन-साधारणं च सञ्जातम्। तेषु चलचित्राणाम् आविष्काराः विशेषतः उल्लेख्याः। तद्रङ्गशालासु (Cinema Hall) प्रदर्शिता अवर्णनीयप्रभावोत्पादकाभिनयाः जनानां श्रान्तिम् अपहरन्ति, प्रमोदं च जनयन्ति।

(4) संहारकाः—एटमबम-हाइड्रोजनबम (उद्जनबम), प्रभृतीनि विष्फोटकक्षेप्यास्त्राणि; मोर्टारादिसंज्ञकनूतनशतघ्नी-भुशुण्डीप्रभृतीनि विविधायुधानि टैंक-टारपीटो-मिग-मिराज-प्रभृतीनि आधुनिकयुद्धनियन्त्राणि च दारुणानि आग्नेयास्त्राणि आविष्कृतानि। एतैः विश्वविनाशोऽपि क्षणमात्रलीला। एतेषामाविष्कारे रुस-अमेरिकादेशौ अग्रगण्यौ। द्वितीय-महायुद्धे अमेरिकैः जापानदेशस्य हीरोशिमा-नगर्याः (नागासाक्याश्च) उपरि परमाण्वस्त्रं (Atom-Bomb) प्रक्षिप्तम्,

येन क्षणैनैव सा स्वर्गकल्पा महानगरी दग्धोत्खाता मरुभूमिरिव सञ्जाता।

इत्थम् आधुनिकाः वैज्ञानिकाः आविष्काराः एकत्र मानवानां श्रेयसः सम्पादनं कुर्वन्ति। अन्यत्र तेषां विनाशम्। एवं विज्ञानं वरदानरूपम् अभिशापरूपं चेति पक्षद्वयम्।

यद्यपि विज्ञानेन प्रथमत्रिविधैराविष्कारैः विश्वस्य महानुपकारः कृतः तथापि चरमकोटिकैराविष्कारैः विनाशस्यापि सामग्री भृशं सुलभीकृता; यथा-इदानीं सर्वेऽपि मानवाः संत्रस्ताः भीताश्च विज्ञानमभिशापं मन्यन्ते। वस्तुतस्तु, न किमपि वस्तु स्वतः एकान्ततः उपकारकम् अपकारकं वा। प्रयोगाधीनैव तस्य उपकारकता अपकारकता वा। तस्मात् नायं विज्ञानदोषः यदि कोऽपि विषं भुञ्जानम् आत्मानं विनाशयेत् नायं विषस्यापराधः, किन्तु तत्प्रयोक्तुरेव। यदि विज्ञानस्य प्रयोगः सुखाय कल्याणाय शान्तये च भवेत् तर्हि अभिशापवार्ताऽपि नोदीयात्। तस्मात् विज्ञानं तथैव प्रयोक्तव्यं यथा समस्तं जगतीतलं स्वर्गतुल्यं मानवजीवनं सुखशान्तिमयं च सम्पद्येत।

4.4 विद्या (विद्ययाऽमृतमश्नुते)

विद्याधनं सर्वश्रेष्ठं धनमस्ति। अस्य वैशिष्ट्यमिदं यत् व्यये कृते अपि विद्या संवर्द्धते, अव्यये तु क्षीयते। किञ्च, इदं धनं न भ्रातृभाज्यं न च चौरादिभिः अपहरणयोग्यम्। विद्यया इहलोकस्य परलोकस्य च सर्वाः अपि सम्पदः प्राप्तुं शक्यते, नान्येन साधनेन। अत एवोक्तं विचारकैः—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति?।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्।।
न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।।

विद्याशब्दस्य निष्पत्तिः 'ज्ञानार्थकस्य' विद्धातोः भवति। अतः वस्तुनः सम्यक्तया ज्ञानं विद्येति। लौकिकी विद्या (भौतिकज्ञानम्) अलौकिकी विद्या (आध्यात्मिकज्ञानम्) चेति द्विविधा विद्या। धर्माधर्मयोः, कर्त्तव्यकर्त्तव्ययोः विवेकः विद्ययैव भवति। अनया एव मनुष्यो मनुष्य इति। विद्याविहीनस्तु मूर्खः, असभ्यः, पशुरिति च व्यपदिश्यते। विद्यावैभवसम्पन्नः देशे विदेशे सर्वत्र पूज्यते। विदेशे यत्र सर्वे अपरिचिताः सन्ति तत्र विद्यैव बन्धुः, गुरूणां गुरुरपि विद्यैव। किमधिकं विद्यैव परमा देवता। केनापि कविना समीचीनमुक्तम्—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

तथा च–'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'।

विद्याबलेनैव मानवाः अमृताः भवन्ति परमपदवीञ्च प्राप्नुवन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते। राजानः विद्यावतां पुरस्तात् नतमस्तकाः जायन्ते। विद्या प्रदीप इव सन्मार्गं दर्शयति-घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्। महाकविना दण्डिनाऽपि उद्घोषितं यद् यदि जगति विद्याज्योतिः न भवेत् तर्हि इदं सकलं जगत् अन्धकारावृत्तं सम्पत्स्येत–

इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।

अपि च–'सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः'।

शब्दाह्वयं ज्योतिरत्र विद्यैव अस्ति। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति', 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इत्यादयः श्रुतयः अपि मोक्षप्राप्तिकारण.भूतायाः विद्यायाः माहात्म्यं प्रकटयन्ति। विद्या एकमुत्तमं भूषणमपि अस्ति–'विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्'।

सर्वविधवैशिष्ट्ये सत्यपि एतदपि सुनिश्चतं यद् विनयेनैव विद्या शोभते। विनयाभावे विद्या 'विद्या' नास्ति। अत एवोक्तम्–

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।

पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद् धर्मस्ततः सुखम्।।

यद्यपि संसारे लक्ष्मीसरस्वत्योः विरोधोऽपि दृश्यते। कुत्रचित् मतिमतां या दरिद्रता अवलोक्यते तत् सर्वं दुर्भाग्यविजृम्भिजम् सम्यग्ज्ञानाभावो वा। स एव विद्वान् यस्तु क्रियावान्। अत एवोक्तम्–'विद्यामधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्'। विद्याकृते महान् श्रमः अपेक्ष्यते। अतः विद्यार्जनकाले विद्यार्थिभिः आलस्यं परित्यज्य सुखचिन्ता न करणीया, यतो हि सुखार्थिनो कुतो विद्या, विद्यार्थिनश्च कुतः सुखम्।

किं बहुना, आविष्काराणां जननी, कर्त्तव्याकर्त्तव्यज्ञापिका, मुक्तिप्रदा, सुखावहा' कीर्तिविस्तारिका, कामदुहा, बन्धुसमा, प्रदीपतुल्या, दिव्यनेत्रसदृशा, कल्पलतेव विद्या किं किं न साधयति। समुचितमेव भणितम्–

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते, कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।

4.5 सत्यम् (सत्यमेव जयते नानृतम्)

सर्वेषु गुणेषु सत्यं सर्वोत्कृष्टं वर्तते। सर्वे ग्रन्थाः एकमुखेन सत्यस्य महिमानमुद्धोषयन्ति। यथा–नास्ति सत्यात् परो धर्मो, नानृतात् पातकं महत्। ये नराः सततं सत्यमेव भाषन्ते, न खलु कदाचिदपि अनृतां गिरं निःसारयन्ति। ते सर्वेषामपि कृते विश्वासस्य श्रद्धायाश्च भाजनानि

भवन्ति। ऐहिकं पारलौकिकञ्च सर्वविधं मङ्गलं भवति अनेन गुणेन। अश्वमेधसहस्रादपि सत्यमेव विशिष्यते। अत एवोक्तम्–

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।

अश्वमेधसहस्राद् हि सत्यमेव विशिष्यते।।

तथा चोपनिषदि लिखितम्–'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा'। किञ्च, 'सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्'।

सते कल्याणाय हितं सत्यम्। वस्तुनः यद् स्वरूपं विद्यते तस्य, तेनैव रूपेण प्रकाशनं सत्यमिति। सत्यधर्मस्य परिपालनमतीवकठिनम्। सत्यभाषण-विषये एतदपि चिन्तनीयम् यत् तत् प्रियमपि भवेत् नाप्रियम्। अत एवोक्तम्–सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। एवं सत्यवादिनः सर्वत्र साफल्यम्, सम्मानम्, कल्याणञ्च लभन्ते। यः खलु असत्यं वदति सः पथभ्रष्टः चरित्रभ्रष्टश्च भवन् सर्वत्र निन्दापात्रं भवति। इत्थम् असत्यभाषणेन स्वस्य हानिः नाशश्च भवतः।

इतिहासाद् ज्ञायते यत् महाराजो दशरथः स्वप्रियपुत्रं रामं चतुर्दशवर्षेभ्यो वनं प्रैषयत्। राजा हरिश्चन्द्रः सत्यपरिपालनार्थमेव विविधानि दुःखानि सेहे, पदे पदे अपमानितश्च अभवत्, परं सत्यभाषणात् न विरक्तः। अजातशत्रुः धर्मराजो युधिष्ठिरः सत्यभाषणस्य प्रभावादेव विजयश्रियमलभत। राजा मयूरध्वजो निजपुत्रस्य शिरो अरया द्विधा विभक्तवान्। महात्मा गान्धिमहोदयोऽपि सत्यादेव भारतवर्षं स्वतन्त्रमकरोत्। अत एव सत्यमेव जयते इति राजचिह्नं भारतस्य स्वीकृतम्।

इत्थं यदि वयं जीवनपथि उन्नतिमभिलषामः तर्हि अस्माभिः सत्यव्रतस्य परिपालनमवश्यं करणीयम्। देशस्य, समाजस्य संसारस्य च कल्याणम् अभ्युदयश्च सत्यादेव भविष्यतः। अतः सत्यमेवोक्तम्–सत्यमेव जयते नानृतम्।

4.6 उद्योगः (उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः)

लघुनो महतो वा कस्यापि कार्यस्वरूपस्य सिद्धये उद्योगस्य महती आवश्यकता भवति। केवलम् इच्छामात्रेण कार्यं न सिद्ध्यति। ये जनाः सततमेव उद्योगपरायणाः सन्ति, तेषां कृते जगति किमपि असाध्यं दुर्लभञ्च नास्ति। उद्योगिनः पुरुषस्य पुरतः सिद्धयः बद्धाञ्जलयः उपस्थिताः भवन्ति, भाग्यमपि उद्योगिनः एव साहाय्यं कुरुते। उक्तञ्च–

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।

तस्मात् पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति।।

तथा च–उद्यमः साहसं धैर्यं, बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।

षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र साहाय्यकृद् विभुः।।

अभिलषितार्थप्राप्त्यर्थं सुदृढेन सङ्कल्पेन बाधामविगणय्य या प्रवृत्तिः सा उद्योगः। उद्योगो हि पुरुषकारः, कर्म, उद्यमः इति च कथ्यते। सर्वाणि दुःखानि सर्वे चाभावाः अकर्मण्यतया भवन्ति। आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुरस्ति। उद्यमसमो नान्यः बन्धुरस्ति। उद्योगी पुरुषः यदि इच्छेत्तर्हि समस्तं लोकमपि परावर्तयेत्। उद्योगाभावे सति प्राप्तमपि विनश्यति। अत एवोक्तम्–

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।

दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।।

किञ्च–उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

तथा च–आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।।

योजनानां सहस्रं तु शनैर्गच्छेत् पिपीलिका।

अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।।

सर्वत्र वयम् उद्योगस्य महत्त्वम् अवलोकयामः, येषां कृते पूर्वम् एकवारमपि भोजनं दुर्लभमासीत्, ये च शतशो विदीर्णानि वस्त्राणि धारयन्तः महता कष्टेन अङ्गगोपनं कर्तुं शक्नुवन्ति स्म, ते एव उद्योगेन महान्तो धनवन्तः सन्तः बहुमूल्यैः कौशेयवसनैः शरीराणि विभूषयन्ति। किमधिकम्, उद्योगेन अलभ्यमपि सुलभं भवति, असम्भवमपि सम्भवं भवति, दुर्बलोऽपि बलवान् भवति, मूर्खोऽपि विद्वान् भवति। प्रकृतिः स्वकीयं सर्वमपि वैभवं तस्मै उपायनीकरोति। वैज्ञानिकाः उद्योगप्रभावेणैव जले, स्थले आकाशे च सर्वत्र अप्रतिहतगतिवन्तः सन्ति।

लोके विषमतां विलोक्य केचन कार्यसिद्ध्यर्थं दैवं (भाग्यम्) प्रमाणयन्ति। दैवे अनुकूले सर्वं सुसाध्यं भवति, प्रतिकूले सति सर्वं विपर्यस्यति। दैवप्रभावादेव पुरुषोत्तमः रामोऽपि असम्भवमपि हेममृगं विलोक्य अलुभत। अत एवोक्तम्–'नैवान्यथा भवति यल्लिखितं विधात्रा'। परन्तु यथा क्षेत्रेषु उप्तमपि बीजं सेचनादिकर्म अपेक्षते तथैव दैवसाधनेऽपि उद्योगस्यावश्यकता नियता। अत एवोक्तं भगवद्गीतायाम्–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।।

प्रकृतिरपि उद्योगपरतायाः एव शिक्षां वितरति। सूर्यचन्द्रादयः पक्षिकीटादयश्च सर्वे स्व-स्वकार्यसंलग्नाः अवलोक्यन्ते। अतः अस्माभिरपि आलस्यं विहाय उद्योगपरायणैः भवितव्यम्,

यतः पौरुषं विना भाग्यमपि फलदं न भवति–

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।

तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति।।

4.7 अहिंसा (अहिंसा परमो धर्मः)

सर्वेषामपि सत्य-ब्रह्मचर्यादीनां धर्माणां मूलम् अहिंसा वर्त्तते। अहिंसैव धर्ममार्गः। परमात्मनोऽपरं रूपमहिंसैव। अधुना जगति हिंसायाः साम्राज्यमस्ति। प्राणिवधः मनोरञ्जनस्य साधनम् वर्त्तते। युद्धबिभीषिका सर्वत्र जृम्भायते। विश्वशान्तिः चिन्तनीयां दशां प्राप्ता। अतः वर्त्तमानसमये अहिंसाया उपयोगिता प्राचीनकालादपि अधिका जाता।

हिंसा त्रिविधा भवति–मानसिकी वाचिकी कायिकी च। कस्यचित् जीवस्य अशुभादिचिन्तनं 'मानसिकी' हिंसा। असत्यभाषणेन कठोरभाषणेन वा कस्मैचिदपि प्रदानं 'वाचिकी' हिंसा। शस्त्रादिना जीवस्य हननं प्रताडनं 'कायिकी' हिंसा। एतासां तिसृणां हिंसानां परित्यागोऽहिंसेति कथ्यते। इत्थमहिंसाया इदमेव मौलिकं रूपं यत् मानवैः मनसा, वाचा, कर्मणा च तन्न करणीम् , यदन्येषां प्रतिकूलं भवेत्। उक्तञ्च–

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

तथा च–'आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः'। एवम् 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' इति सिद्धान्तानुसारणमहिंसा।

यदि जगति हिंसायाः ताण्डवनृत्यं स्यात्तर्हि न कोऽपि नरः देशो वा शान्त्या सुखेन वा स्थातुं शक्नोति। अहिंसाबलेनैव स्वस्य लोकस्य च कल्याणं भविष्यति। अहिंसाशस्त्रेणैव भारतदेशः पराधीनतां विहाय स्वतन्त्रतामलभत। भगवता महावीरेण, भगवता बुद्धेन, महात्मना गान्धिमहोदयेन च अहिंसाया एवोपदेशः प्रदत्तः। कलिङ्गाधिपतिना सम्राजा अशोकेनाऽपि अहिंसायाः प्रचारः कृतः। जैनधर्मस्य तु मूलोद्देश्यमहिंसा एव।

अहिंसायाः महिमा अचिन्त्या। शत्रवोऽपि अहिंसया मित्राणि भवन्ति, क्रूराः अपि सरलाः जायन्ते। अहिंसापरायणाः सर्वत्र निर्भयं विचरन्ति, सुखं प्रतिष्ठां च प्राप्नुवन्ति। सत्य-तप-त्याग-क्षमा-प्रेम-पवित्रता-प्रभृतयः गुणाः समायान्ति। किं बहुना, असम्भवानि अपि कार्याणि अहिंसया सिद्ध्यन्ति। अहिंसायाः माहात्म्यं विचिन्त्य एव अधुना सर्वाणि राष्ट्राणि विश्वशान्त्यर्थं प्रयतन्ते। इत्थम् अहिंसाव्यवहारः प्रशस्तः सर्वोत्कृष्टधर्मश्चेति निर्विवादमेव। सत्यमेवोक्तम्–'अहिंसा परमो धर्मः'।

4.8 गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते

'पूजायाः आधारभूताः गुणा एव सन्ति न तु लिङ्गं न च वयः' इति प्रतिपादकेन महाकविना भवभूतिना अरुन्धत्या मुखेन सीतां प्रति स्वकीयः श्रद्धाभावः प्रदर्शितः अस्यां सूक्तौ। श्लोकश्चायम्–

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा

विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं दृढयति।

शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।।

वस्तुतः गुणीपुरुषः सर्वस्यापि जगतः सम्मानपात्रतां लभते। लघुरपि सः महतां पूज्यः श्रद्धेयश्च भवति। महानपि गुणरहितः जनः सदाचारिभिः न केवलम् अनाद्रियते एव अपितु त्यज्यतेऽपि। धर्मप्रियेण गुणवता विभीषणेन विद्वान् स्वभ्राता रावणोऽपि परित्यक्तः, रामश्च आद्रितः।

यद्यपि जगति, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति, इत्यपि सूक्तिः सुप्रसिद्धा। दृश्यते च निर्गुणोऽपि गुणवान्, निरक्षरोऽपि विद्वान् भवति धनप्रभावाद्। परन्तु अर्थेनैव सर्वत्र जीवननिर्वाहः न भवति। अर्थराशिं प्राप्य जनाः सम्मानावाप्तये समाजे समुत्सुकाः दृश्यन्ते। वास्तविकी सम्मानप्राप्तिस्तु गुणद्वारा एव भवति। गुणिनं विना धनिकानां कार्यसिद्धिर्न भवति। गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते– इत्थं गुणैरप्राप्यं किञ्चिदपि नास्ति। 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'- इत्यपि चोक्तम्। शास्त्राध्ययनमात्रेण कोऽपि विद्वान् गुणी वा न भवति। वस्तुतः स एव विद्वान् गुणवान् च यः क्रियावान्।

गुणाः कुत्र भवन्ति? कस्मिन् समये कस्य वयसि वा समुद्भूताः भवन्ति? इति वक्तुं न शक्यते। तत्र स्त्रीत्वं-पुरुषत्वं, बाल्यत्वं-वृद्धत्वं, शूद्रत्वं-ब्राह्मणत्वं च कारणं नास्ति। अत एवोक्तम्–

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः।

वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः।।

न हि जन्मनि ज्येष्ठत्वं ज्येष्ठत्वं गुण उच्यते।

गुणात् गुरुत्वमायाति दधि-दुग्ध-घृतं तथा।।

वस्तुतस्तु मानवजीवने गुणानां महन्मूल्यं वर्त्तते। गुणानामभावे तु मानवजीवनं पशुवदेव निष्फलं भवति। सम्यगुक्तम्–

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

एतेषां गुणानामेव वैशिष्ट्यात् पिकः सत्क्रियते, काकः तिरस्क्रियते च। गुणैः यादृश सम्मानं प्रतिष्ठा स्नेहश्च प्राप्यते तत् सर्वं नान्यैः साधनैः। धनादिभिः या प्रतिष्ठा लभ्यते सा न चिरस्थायिनी, न लोकव्यापिनी न च सज्जनैरनुमोदिता। अतः गुणान् पृच्छस्व मा रूपम्, शीलं पृच्छस्व मा कुलम्–इत्युक्तम्। किञ्च, गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः– इत्यादिभिः यथा गुणमाहात्म्यं निर्विवादम्, तथैव तत्र 'आयुर्लिङ्गादीनां वैशिष्ट्यं नास्ति'– इत्यपि समीचीनम्। अतः सर्वत्र गुणान् विचार्य एव आदरः कर्त्तव्यः, न तु केवलम् आयुर्लिङ्गादीन् विलोक्य।

4.9 मातृभक्तिः देशभक्तिश्च (जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी)

भगवता रामचन्द्रेण कनकमय्याः लङ्कायाः सुखानि तिरस्कृत्य मातुः (जनन्याः) मातृभूमेः (स्वदेशस्य) च महत्त्वमङ्गीकृतम्–

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण! रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

यो नरः यस्या कुक्षौ जन्म लभते, सा तस्य जननी माता वा, तथा यो यस्मिन् प्रदेशे जन्म लब्ध्वा वर्धते जीवनं च यापयति, सः तस्य जन्मभूमिः स्वदेशः मातृभूमिर्वा। यथा जनन्याः स्वसुतं प्रति नैसर्गिकं प्रेम भवति, तथैव नराणां जननीं जन्मभूमिं च प्रति नैसर्गिकी भक्तिः, तयोः प्राणेभ्योऽपि संरक्षणं मातृभक्तिः देशभक्तिश्च कथ्येते। मातृकुक्षौ मातृभूमौ च नरैर्यादृशं सारल्यपूर्णं निष्कपटः स्वाभाविकश्च सुखं समनुभूयते, तादृशं स्वर्गेऽपि न सम्भवम् इति।

बालकस्य कृते मातैव सर्वस्वमस्ति। सा तदर्थं स्वीयं कष्टजातं अगणयित्वा तं प्राणैरपि रक्षति। सा स्वयमपीत्वा पुत्रं पाययति, स्वयमनशङ्कृत्वा स्वसुतस्योदरं भरति, बालकस्य सुखचिन्तैव सदा तस्याः समक्षं भवति। पुत्रं कष्टान्वितमवलोक्य तस्याः हृदयमतिशयेन द्रवति। सा स्वकीयेन अलौकिकेन स्नेहेन स्वयं करकवर्षं सहमानापि स्वजातं स्वाङ्के पालयति लालयति च।

4.10 वैदिकीसंस्कृतिः

प्राचीनता–वैदिकसंस्कृतिः, यस्याः गौरवम् वेदेषु गीयते, विश्वस्य प्राचीनतमा संस्कृतिः वर्तते। यद्यपि अस्याः संस्कृतेः सांस्कृतिकपरम्परायाः वा सम्बन्धे इयम् भारतीया परम्परागता मान्यता अस्ति यत् इयम् वेदानाम् आधारे प्रवृत्ता अस्ति, अथ च यतः वेदाः

अनादिकालीनाः अपौरुषेया सन्ति, अतः तेषाम् आधारे प्रवर्तमाना इयम् संस्कृतिः अपि अनादिकालीना अपौरुषेया चास्ति, किन्तु,यथा च अग्रे द्रक्ष्यते, वेदानाम् अनादिकालीनत्वम् अपौरुषेयत्वम् च तथ्यानुकूलम् सिद्धं न भवति, अन्यथा चापि सामान्यतः कस्यापि वाङ्मयस्य अनादिकालीनत्वम् अपौरुषेयत्वम् च बुद्धिग्राह्यम् नास्ति, अतः अस्याः संस्कृतेः सांस्कृतिकपरम्परायाः वा सम्बन्धे प्रचलिता उक्ता मान्यता अपि वितथा सिध्यति। यथा च पूर्वम् उक्तम् अस्ति, प्रत्येकम् संस्कृतेः सांस्कृतिकपरम्परायाः वा प्रवर्तनम् अनुभवानाम् आधारे एव भवति, इत्थम् च मानवः एव प्रत्येकम् संस्कृतेः मूलम् अस्ति। तेन एव प्रत्येकम् संस्कृतेः मूलस्तम्भाः— विज्ञानम्, दर्शनम् धर्मश्च—जनिताः। वैदिकी संस्कृतिः अपि अस्य अपवादः भवितुम् न शक्नोति। सापि एतन्नियमानुसारेण वैदिकानाम् ऋषीणाम् पूर्वजैः स्वानुभवानाम् आधारे प्रवर्तिता सती अस्तित्वम् प्राप्तवती सिध्यति।

अपि च, यथा प्रत्येकम् वाङ्मयम् स्वकाले पूर्वतः प्रचलिताः विभिन्नाः मान्यताः पश्चात् अभिव्यनक्ति, तथैव श्रुतिवाङ्मयस्य विभिन्नाः अंशाः—मन्त्राः, ब्राह्मणानि, आरण्यकानि, उपनिषदः—अपि स्वस्वकालेषु पूर्वतः प्रचलिताः मान्यताः पश्चाद् अभिव्यञ्जन्ति। अत एव च यथा प्रत्येकम् वाङ्मयम् स्वेन अभिव्यक्तासु पूर्वप्रचलितासु मान्यतासु आधारित्वहेतोः ताभ्यः उत्तरवर्ति भवति, तथैव श्रुतिवाङ्मयस्य विभिन्नाः अंशाः अपि स्वैः अभिव्यक्तासु पूर्वप्रचलितासु मान्यतासु आधारितत्वहेतोः ताभ्यः उत्तरवर्तिनः सन्ति एवम् स्पष्टम् अस्ति यत् श्रुतिवाङ्मये अभिव्यक्तानाम् मान्यतानाम् समष्टिभूता सा संस्कृतिः सांस्कृतिकपरम्परा वा, या स्वकीयस्य सर्वप्रथमस्य वाङ्मयस्य 'वेदस्य' नाम्नः आधारे 'वैदिकसंस्कृतिः' 'वैदिकपरम्परा' वा इतिनाम्ना प्रसिद्धा अस्ति। वेदेभ्यः अपि पूर्ववर्तिनी। अथ च रचना आसां आधारभूता अस्ति। शब्दान्तरेषु, 'वैदिकी संस्कृतिः' वेदानाम् दानम् नास्ति अपि तु स्वयम् वेदाः एव अस्या दानम् सन्ति।

एतदतिरिक्तम्, स्वयम् वेदानाम् साक्ष्येण अपि इदमेव ज्ञातम् भवति, यत् इयम् परम्परा वेदानाम् आधारे न प्रवृत्ता, अपि तु तेषाम् उद्भवात् अपि पूर्वम् सुदूरे अतीतकाले प्रवृत्ता आसीत्। यथा च 'ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूचिरे सोमपीथं वसिष्ठाः' (ऋ0वे0 10|15|08, य0 वे0 19|59) इत्यनेन स्पष्टः संकेतः प्राप्यते यत् अस्य मन्त्रस्य प्रणेतुः ऋषेः वसिष्ठगोत्रोत्पन्नाः एतादृशाः 'पूर्वे' पितरः अपि भूतवन्तः सन्ति, ये सोमपीथस्य अर्थात् सोमपानस्य आयोजनम् कुर्वन्तः आसन्ः अपि च 'त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः' (ऋ0वे0 9|96|11, य0 19|53) इत्यनेन ज्ञातम् भवति यत् अस्य मन्त्रस्य प्रणेतुः ऋषेः 'पूर्वे' पितरः सोमसाध्यानि कर्माणि सम्पादितवन्तः, वैदिकमन्त्राणाम् रचनायाः पूर्वमेव सोमपानस्य अन्येषाम् च सोमसाध्यानाम् यज्ञादिकर्मणाम् सम्पादनस्य परम्परा प्रवृत्ता अभवत्। एतेषाम् एव 'पूर्वेषाम्' 'पितृजनानाम् परम्पराप्रवर्तकरूपे 'इदं नमः

ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः' (ऋ0वे0 10|14|14) इत्यादिमन्त्रैः महत्या श्रद्धया विनम्रतया च सह स्मरणम् कृतम् अस्ति, अथ च एषाम् मन्त्राणाम् प्रणेतृभिः ऋषिभिः इदम् स्पष्टतः कथितम् अस्ति यत् यस्मिन् 'पथिनि' अर्थात् पद्धतौ मार्गे वा ते प्रवर्तमानाः सन्ति, तस्य प्रस्तोतारः ते स्वयम् न सन्ति, अपि तु तेषाम् 'पूर्वे पितरः पूर्वजाः वा ऋषयः सन्ति। उक्तेषु मन्त्रेषु इदम् तथ्यम् अपि ध्येयम् अस्ति यत् यदा सर्वेषाम् पितरः पूर्वजाः वा पूर्ववर्तिनः एव भवन्ति, पुनरत्र तेभ्यः 'पूर्वे' इति विशेषणम् कथम् दत्तम् अस्ति? फलतः अनेन विशेषणेन स्पष्टम् भवति यत् अत्र उक्तानाम् कर्मणाम् कर्त्तारः ये पितरः पूर्वजाः वा निर्दिष्टाः सन्ति, ते सुदूरे अतीतकाले अभवन्। इत्थम् च वेदगेया सांस्कृतिकपरम्परा वेदेभ्यः सामान्यतः पूर्ववर्तिनी एव नास्ति, अपितु तेषाम् उद्भवात् पूर्वम् सुदूरे अतीत काले प्रवृत्ता भवन्ती सिध्यति। एवम्, इयम् वेदसमेतस्य समस्तस्य श्रुतिवाङ्मयस्य सुदूरपूर्ववर्तिनी आधारभूता च गेया परम्परा अस्ति, इति हेतोः इयम् अस्मिन् अर्थे 'वैदिकपरम्परा' न कथयितुम् शक्यते यत् इयम् वेदेभ्यः प्रसूता प्रवृत्ता वा अभवत्, अपि तु केवलम् अस्मिन् अर्थे कथयितुम् शक्यते यत् कामम् पश्चात् अस्याः गौरवगानम् ब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सूत्र-स्मृतिपुराणादिभिः विभिन्नैः ग्रन्थैः कृतम्, किन्तु पुनरपि केवलम् वेदैः एव अस्यै सर्वप्रथमम् वाङ्मय्याः अभिव्यक्तेः दत्तत्वात् इयम् मूलतः 'वेदगीता परम्परा' अस्ति, फलतः वेदेषु अस्तित्वम् प्राप्तवस्तु सत्सु अस्याः अग्रिमः विकासः एषाम् एव आधारे जातः अस्ति। अस्तु! एवम् वैदिकी संस्कृतिः वेदवाङ्मयस्य आधारभूता अस्ति, अथ च यतः वेदवाङ्मयम् विश्वस्य प्राचीनतमम् वाङ्मयम् अस्ति? अतः तस्य अपि आधारभूता इयम् संस्कृतिः सुतराम् विश्वस्य प्राचीनतमा संस्कृतिः सिध्यति। वेदवाङ्मयम् कियत्प्राचीनम् अस्ति, इत्येव यदा आधुनिकः इतिहासः ज्ञातुम् न अशक्नोत्, तदा तदाधारभूता 'वैदिकसंस्कृतिः' कियत्प्राचीना, इति तु नितराम् आधुनिकेन इतिहासेन ज्ञातुम् अशक्यम्।

4.11 भारतीयसंस्कृतिः

प्रास्ताविकम्—यद्यपि विगते निबन्धे चर्चिता वैदिकी संस्कृतिः, भारतीयसंस्कृतेः एकम् आधारभूतम् मूलम् प्राचीनतमम् च स्वरूपम् अस्ति, तथापि केवलम् सा एव समग्रा भारतीया संस्कृतिः नास्ति। भारतीयसंस्कृतिः व्यापिका सती वैदिकीम् संस्कृतिम् स्वमुख्याङ्गरूपे दधती सती अन्यासाम् संस्कृतीनाम् तत्त्वानि अपि प्राप्नुवती वर्तते, अतः एतस्या वैदिकसंस्कृतेः पृथक् चर्चा आवश्यकी भवति।

यद्यपि सर्वा अपि मानवजातिः समष्टिरूपेण एका एव वर्तते, फलतश्च सर्वेषाम् मानवानाम् संस्कृतिः, या 'मानवसंस्कृतिः' इति उच्यते, स्वकीये मूलस्वरूपे अभिन्नतया एका एव अस्ति, तथापि यतो हि सा मानवसंस्कृतिः विभिन्नेषु भूखण्डेषु विविधरूपैः सह

विकसिता वर्तते, अतो हि सा विविधरूपयुक्ता विविधैः नामभिः अभिधीयते, विविधम् च रूपगतम् वैशिष्ट्यम् भजते। अस्मिन् विश्वे व्यापिकायाः मानवसंस्कृतेः यानि प्रमुखानि रूपाणि वर्तन्ते, तेषु तत् रूपम् येन युक्ता सती सा 'भारतीयसंस्कृतिः' इति अभिधीयते, स्वकीयम् असाधारणम् वैशिष्ट्यम् धत्ते। इदम् वैशिष्ट्यम् एव भारतीयसंस्कृतये अन्याभ्यः मानवसंस्कृतिभूताभ्य विभिन्नाभ्यः संस्कृतिभ्यः पृथक् महत्त्वपूर्णम् स्थानम् ददाति।

2. प्राचीनता—भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपम् स्वरूपाधारभूतम् तत्त्वम् वा किमस्ति, किम् वा तस्याः वैशिष्ट्यम् अस्ति, इत्यादिकथनाद् पूर्वम् तस्याः विषये सर्वप्रथमम् इदम् वक्तव्यम् अस्ति यत् सा विश्वस्य प्राचीनतमा, प्राचीनतमासु अन्यतमा संस्कृतिः अस्ति। यथा च पूर्वम् दृष्टम् अस्ति वैदिकसंस्कृतिः वेदरचनायाः आधारभूता सती वेदेभ्यः अपि पूर्वकालीना वर्तते, एवञ्च यदा विश्वस्य प्राचीनतमम् वाङ्मयम् वेदवाङ्मयम् एव कदा उद्भूतम्, इति आधुनिकेन इतिहासेन इदानीम् अपि ज्ञातुम् न शक्यम्। तदा तस्य अपि आधारभूता संस्कृतिः कदा प्रवृत्ता अभवत्, इति तु नितराम् तेन ज्ञातुम् अशक्यम्। यतो हि इयम् वैदिकसंस्कृतिः भारतीयसंस्कृतेः मूलम् प्राथमिकम् वा स्वरूपम् वर्तते, अर्थात् भारतीयसंस्कृतिः वैदिकसंस्कृतिरूपे एव सर्वप्रथमम् प्रवृत्ता अभवत्, अतः वैदिकसंस्कृतिप्राचीनता एव अस्याः प्राचीनता अस्ति। फलतश्च अस्याः प्राचीनता अस्ति। केवलम् तस्याः विकासः ऐतिहासिकी गतिः वा इतिहासेन ज्ञातुम् पार्यते।

3. इतिहासः—भारतीयसंस्कृतिः मूलरूपे आधारभूतरूपे वा वैदिकसंस्कृतिः आर्यसंस्कृतिः वा अस्ति, वैदिकसंस्कृतिरूपेण एव सह इयम् प्रवृत्ता। वैदिकसंस्कृतिश्च अनेकानि विकासरूपाणि अनुभूतवती। अस्याः एव एकम् विकासरूपम् तत् संभाव्यते यच्च सिन्धुतटसभ्यतानाम्ना प्रसिद्धम् वर्तते। यदि सिन्धुतटसभ्यता वैदिकसंस्कृतिविकासरूपम् न मन्यते चेदपि सा भारतीयसंस्कृतिविकासरूपम् तु अस्त्येव। मूलतः वैदिकसंस्कृतिरूपायाम् भारतीयसंस्कृतौ कदाचित् भिक्षुसंस्कृतितत्त्वानि सन्निविष्टानि सन्ति संभाव्यन्ते, येन तत्र भिक्षाचर्यायाः संन्यासाश्रमादिकस्य च प्रचलनम् जातम्। भिक्षुसंस्कृतिश्च प्रायः विलीना जाता। पुनः तत्र आगमिकसंस्कृतेः विभिन्नानि तत्त्वानि समागतानि, संस्कृतिश्च एषा भारतीयसंस्कृतौ पूर्णतया विलयम् प्राप्ता, येन भारतीयसंस्कृतिः निगमागममूलकरूपेण प्रसिद्धा। अस्य एव रूपस्य दर्शनम् प्रायः पुराणेषु जायते।

मोक्षोन्मुखता—भारतीयसंस्कृतौ प्रथमम् वैशिष्ट्यम् मोक्षोन्मुखता अस्ति। यदा इदम् सिद्धान्तिततम् यत् देहात् अस्मात् व्यतिरिच्य आत्मतत्त्वम् अस्ति, यच्च अस्मिन् देहे विविधेषु प्रपञ्चेषु निगडितम् सत् स्वरूपानुभूतिविरहेण दुःखजाले पतितम् वर्तते, तदा इदम् अपि स्वाभाविकरूपेण आपतति यत् अस्याम् संस्कृतौ अयम् विचारः प्रामुख्यम् भजेत् यत् अस्य आत्मतत्त्वस्य जागतिकप्रपञ्चेभ्यः मोक्षः स्यात्, येन अयम् आत्मा स्वरूपस्य सन् स्व-

स्वरूपानन्देन युक्तः स्यात्। फलतश्च भारतीयसंस्कृतौ मोक्षोन्मुखतायाः प्राबल्यम् वर्तते। अस्याम् संस्कृतौ जीवनस्य परमम् लक्ष्यम् परमनिःश्रेयसम् वा मोक्षः एव मन्यते। अतश्च अत्र सर्वेषु कार्येषु क्रियमाणेषु सत्सु विचारणीयम् इदम् अपि भवति यत् किम् इदम् कार्यम् मोक्षबाधकम् तत्साधकम् वा वर्तते। भारतीयसंस्कृतेः भारतीयधर्मस्य वा आशावादस्य रूपविद्यमानः अयम् विश्वासः अस्ति यत् प्रत्यक्षजीवनात् परम् अपि परोक्षम् जीवनम् परलोकश्च वर्तते, अस्याः एव मोक्षोन्मुखतायाः एकम रूपम् अस्ति।

त्यागप्रमुखता–भारतीयसंस्कृतौ द्वितीयम् वैशिष्ट्यम् त्यागप्रमुखता अस्ति। यदा आधिभौतिकी संस्कृतिः भोगप्रमुखा भवति, तदा आध्यात्मिकी मोक्षोन्मुखा संस्कृतिः स्वत एव त्यागप्रमुखा भवति। भारतीयसंस्कृतेः अध्यात्ममूलकत्वात् फलतश्च मोक्षोन्मुखत्वात् अत्र त्यागप्रमुखता वर्तते। भोगे अतिशयितेन अभिनिवेशेन प्रपञ्चः वर्धते, प्रपञ्चाच्च आत्मनः मोक्षः अभिप्रेतः अस्ति, अतः भोगात् वैमुख्यम् त्यागः वा स्वतः एव कर्तव्यत्वेन आपतति। अत एव अत्रत्यायाम् जीवनपद्धतौ त्यागप्रमुखः 'संन्यासाश्रमः' एकः सम्माननीयः आश्रमः अस्ति। यस्मिन् च सर्वम् अपि भोगजातम् संन्यस्यते त्यज्यते वा। त्यागप्रमुखत्वात् एव अस्याम् संस्कृतौ यत् गौरवम् त्यागिभिः पूर्वम् प्राप्तम्, इदानीम् अपि च प्राप्तुम् शक्यते, तत् भोगलिप्सुभिः जनैः कदापि न प्राप्तम्, न च इदानीम् अपि प्राप्तुम् संभाव्यते, कामम् इदानीम् धनसंचयस्य भोगस्य च महत्त्वम् वर्धमानम् वर्तते।

तपश्चरणम्–अस्याम् संस्कृतौ तृतीयम् वैशिष्ट्यम् तपश्चरणम् अस्ति। आत्मकल्याणस्य मोक्षस्य वा सम्पादनाय आध्यात्मिकसाधनानाम् स्वत एव आवश्यकता भवति। तानि एव साधनानि समष्टिरूपेण सामान्यतया 'तप' इत्यभिधीयते। तपश्चरणपरायणतायाः ईदृशम् प्रामुख्यम् अस्याम् संस्कृतौ वर्तते यत् प्रत्येकम् धर्मे दर्शने च विभिन्नानि तपोरूपाणि साधनानि अवश्यकर्तव्यत्वेन निर्धारितानि वर्तन्ते। तपश्चरणप्रामुख्यात् एव हेतोः अस्याम् संस्कृतौः वनवासस्य वानप्रस्थाश्रमस्य वा महिमा वर्तते, यतो हि वनेषु तपश्चरणम् सौकर्येण सम्पादयितुम् शक्यते।

समन्वयभावना–चतुर्थम् च वैशिष्ट्यम् अस्याम् संस्कृतौ वर्तते यत् अत्र समन्वयभावना सर्वत्र एव विराजते। यद्यपि संस्कृति, इयम् अध्यात्ममूलिका अस्ति, पुनरपि जीवने समन्वयानयनस्य उद्देश्येन एव अत्र भौतिकम् जगत् अनुपेक्षितम् वर्तते। अत एव भौतिकस्य देहस्य रक्षार्थम् अत्र 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्', 'धर्मार्थकाममोक्षामारोग्यं मूलमुत्तमम्' इत्यादिरूपाणि उपदेशवचनानि वर्तन्ते। समन्वयभावनया एव अत्र पुरुषार्थचतुष्टयस्य स्वीकृतिः वर्तते, येन अर्थकामौ अपि अनुपेक्षितौ स्याताम्। आश्रमचतुष्टयस्य सिद्धान्तम् गृहस्थाश्रमे भोगाय यत् समुचितम् स्थानम् दत्तम् वर्तते, तत् अपि समन्वयभावनायाः एव हेतोः वर्तते। एतद्भावनाफलस्वरूपम् च शासनपद्धतिः अपि विकसिता जाता, राष्ट्ररक्षार्थम् चापि सर्वदा

एव प्रयत्नाः जाताः।

अन्यानि अपि गौणानि तत्त्वानि भारतीयसंस्कृतौ वर्तन्ते, किन्तु उक्तानि तत्त्वानि तत्र प्रमुखताम् भजन्ति वर्तन्ते। एतैः विशिष्टैः तत्त्वैः विराजमाना इयम् भारतीयसंस्कृतिः मानवसंस्कृतेः एकम् असाधारणम् प्रमुखम् रूपम् दधती सती जगति प्रकाशमाना वर्तते। विश्वसंस्कृतौ च तस्याः अपूर्वम् योगदानम् अस्ति, येन इदम् एव कथनीयत्वेन आपतति यत्–

'धन्या भारतभूः प्रकामवसुधा च तत्संस्कृतिः।'

4.12 ऋग्वेदः

प्राचीनता–इदम् प्रायः सर्वसम्मतम् तथ्यम् अस्ति यत् 'ऋग्वेदः, विश्वस्य उपलब्धम् प्राचीनतमम् वाङ्मयम् अस्ति। यथा च पूर्वम् दृष्टम्, वेदवाङ्मयम् इयत्प्राचीनम् वर्तते यत् तस्य रचनाकालम् ज्ञातुम् अधुनावधिं पर्यन्तं अपि आधुनिकः इतिहासः समर्थः नास्ति। एतादृशे प्राचीने वेदवाङ्मये अपि ऋग्वेदस्तु सर्वाधिकप्राचीनः प्राचीनतमः वा वर्तते। यथा च मन्त्र-ब्राह्मणात्मकस्य श्रुतिवाङ्मयस्य अध्ययनेन ज्ञातम् भवति यत्, ब्राह्मणारण्यकोपनिषदात्मकात् ब्राह्मणभागात् मन्त्रात्मकम् वेदवाङ्मयम् प्राचीनतरम् अस्ति, यतो हि ब्राह्मणभागे मन्त्राणाम् निर्देशः, व्याख्यानम्, विनियोगप्रकारश्च इत्यादिकम् वर्तते, यदा च मन्त्रेषु ब्राह्मणभागस्य निर्देशादिकम् नास्ति। मन्त्रात्मके वेदवाङ्मये च दृष्टे ज्ञातम् भवति यत् अस्य प्राचीनतमानाम् अंशानाम् आकारः ऋग्वेदः अस्ति। अस्य वेदस्य अपि विभिन्नानि सूक्तानि विभिन्नेषु कालेषु विभिन्नैः ऋषिभिः प्रणीतानि सन्ति, अथ च कामम् अपवादस्वरूपम् अस्य कतिपयानि सूक्तानि वेदवाङ्मयस्य अन्यस्मात् कस्माच्चिदपि अंशात् अर्वाचीनानि सन्तु नाम, किन्तु अस्य अधिकांशभागः वेदवाङ्मयस्य प्राचीनतमः भागः अस्ति।

उक्तविषये च इदम् विनिगमकम् अस्ति यत् चतुर्षु अपि वेदेषु समानरूपेण प्राप्तेषु मन्त्रेषु ध्यानेन दृष्टेषु सत्सु इदम् स्पष्टम् भवति यत् तत्र ऋग्वेदे ते मन्त्राः स्वकीये मौलिके स्वाभाविके च स्थाने सन्तः स्वाकरसूक्तानाम् प्रतिपाद्यस्य शृङ्खलारूपाः सन्ति, तत्र ते एव मन्त्राः अन्येषु वेदेषु प्रकरणप्रतिपाद्यस्य शृङ्खलारूपाः न सन्तः अन्येन उद्देश्यविशेषेण तत्र संकलितीकृता सन्ति, यदि च कुत्रापि ते प्रतिपाद्यस्य दृष्ट्या अपि स्थापिताः सन्ति चेत् ते ऋग्वेदस्य मौलिकप्रतिपाद्यस्य आधारे विकसितस्य प्रतिपाद्यस्य अङ्गरूपे कृताः सन्ति, तत्र च तेषाम् प्रतिपाद्यम् स्पष्टतरम् पल्लवितम् च कृतम् अस्ति। सामवेदे कतिपये अल्पाः एव मन्त्राः तदीयाः सन्ति, अन्यथा तत्रस्थाः मन्त्राः मौलिकरूपेण ऋग्वेदस्य सन्ति, तस्माच्च तान् गृहीत्वा तत्र ते संगीतमयसामरूपाः गीतिरूपाः वा कृताः सन्ति। यजुर्वेदः ऋग्वेदीयमन्त्राणाम् कस्यापि प्रतिपाद्यस्य प्रतिपादनाय नहि, अपि तु कर्मविशेषे विनियोगार्थम् संकलनम् कृतम् वर्तते। प्रतिपाद्यस्य दृष्ट्या तत्र तेषाम् किंचिदपि महत्त्वम् नास्ति। यजुर्वेदस्य अथर्ववेदस्य च कतिपयेषु

स्थलेषु च ऋग्वेदीयसूक्तानि प्रतिपाद्यदृष्ट्या पल्लवितानि कृतानि सन्ति। एवम् इदम् एकम् निर्विवादम् तथ्यम् अस्ति यत् कतिपयानि अपवादस्वरूपाणि सूक्तानि विहाय ऋग्वेदस्य अधिकांशः भागः वेदवाङ्मयस्य प्राचीनतमः भागः अस्ति। अन्यथा च अपि ऋग्वेदस्य प्राचीनतमत्वम् संभाव्यते, यतो हि पूर्वपरम्पराप्राप्तम् देवयजनम् कुर्वतः मानवस्य भक्तिभावना-प्लावितात् भावुकतापूर्णात् हृदयात् स्वान् इष्टदेवान् प्रति कस्याश्चिद् वाङ्मय्याः रचनायाः रूपे सर्वप्रथमम् ये उद्गाराः निःसृताः स्युः, ते स्वभावतः देवानाम् गुणगानस्य तान् प्रति च स्वमनोरथप्रकाशनस्य रूपे एव निःसृता स्युः, इदमेव च ऋचाम् स्वरूपम्, अस्ति यासाम् संकलनम् ऋग्वेद अस्ति।

अस्तु? इत्थम् ऋग्वेदः वेदवाङ्मयस्य प्राचीनतमम् अधिकांशम् स्वरूपं स्वस्मिन् संकलितरूपेण दधाति– इति हेतोः वेदवाङ्मये सर्वाधिकरूपेण प्राचीनः अस्ति, अथ च समग्रस्य भारतीयसाहित्यस्य तु कापि वार्ता एव नहि, समस्ते विश्ववाङ्मये अपि उपलब्धम् प्राचीनतमम् वाङ्मयम् अस्ति।

ऋग्वेदस्य स्वरूपम्—यथा च वेदानाम् अध्ययनेन जायते, एषाम् रचनायाः पूर्वमेव देवयजनादिकस्य कर्मणः परम्परा प्रवृत्ता, तस्याः एव अनुरूपम् च इज्यमानदेवानाम् स्तवनाय देवयजनादिकस्य च कर्मणः गौरवगानाय ऋग्वेदीयसूक्तानाम् रचना जाता। स्तुत्यात्मकत्वात् ऋग्वेदीयमंत्राः 'ऋचः' उक्ता, ऋचाम् समूहात्मकः एकः स्वतन्त्रः घटकः एव 'सूक्तम्' उच्यते। प्रत्येकम् सूक्तम् एव ऋग्वेदस्य मौलिकः अन्तिमः घटकः अस्ति। ऋक्सूक्तानाम् संकलनम् एव 'ऋग्वेदः' अस्ति। एवम् प्रायः सम्पूर्णस्य ऋग्वेदस्य स्वरूपम् स्तुत्यात्मकम् अस्ति।

ऋग्वेदस्य शाखा—ऋगादीनाम् विभिन्नप्रकाराणाम् मन्त्राणाम् ऋग्वेदादिरूपे विभिन्नानि संकलनानि यज्ञकर्मणि नियुज्यमानानाम् विभिन्नानाम् ऋत्विजाम् प्रयोगार्थम् कृतानि सन्ति। ऋचाम् ऋग्वेदरूपे संकलनम् ऋत्विजाम् अन्यतमस्य होतुः प्रयोगार्थम् कृतम् वर्तते। यज्ञे होतुः कार्यम् अस्ति यत् सः स्तुतिस्वरूपाभिः ऋग्भिः इज्यमानदेवानाम् आह्वानम् करोति।

ऋचाम् संकलनम् एकत्र एव न जातम्, अपि तु ऋचाम् अध्ययनाध्यापनम् कुर्वताम् तासाम् यज्ञेसु प्रयोगम् च कुर्वताम् होतृजनानाम् शाखापराभिधानेषु विभिन्नेषु वर्गेषु कुलेषु वा जातम्। फलतः ऋचाम् विभिन्नानि संहितापराभिधानानि संकलनानि जातानि येषु प्रत्येकम् 'ऋग्वेद' इतिशब्दाभिधेयम् स्वतन्त्ररूपेण 'ऋग्वेदः' वा आसीत्। ऋग्वेदस्य अध्ययनाध्यापनम् कुर्वताम् तस्य यज्ञेषु प्रयोगम् कुर्वताम् च विभिन्नाः शाखाः आसन्। 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्' इति महाभाष्यवचनानुसारेण ऋग्वेदस्य एकविंशतिः शाखाः आसन्। चरणव्यूहादिषु अन्येषु ग्रन्थेषु आसाम् संख्याभेदः अपि उपलभ्यते। चरणव्यूहानुसारेण विभिन्नासु ऋग्वेदशाखासु शाकला, वाष्कला, आश्वलायनी, शाङ्खायनी, माण्डूकायनी,

इति पञ्च शाखाः प्रमुखाः सन्ति। एकस्यः शाखायाः तत्र संकलिता एका स्वतन्त्रा संहिता आसीत्, इति हेतोः विभिन्नासु ऋग्वेदशाखासु संकलिताभिः ऋग्वेदसंहिताभिः अपि विभिन्नाभिः भाव्यम्, किन्तु इदानीम् केवलम् एकस्याः शाकलशाखायाः एव ऋग्वेदसंहिता उपलभ्यते, या अस्मिन् विषये पूर्वप्रचलितव्यवहारानुसारेण स्वभावतः स्वशाखानाम्ना 'शाकलसंहिता'– इति रूपे अपि प्रथिता अस्ति। इदानीम् ऋग्वेदस्य यत् परिचयादिकम् दीयते तत् अस्याः एव संहितायाः अनुसारेण दीयते, यतो हि इदानीम् इयमेव केवला ऋग्वेदस्य स्वरूपम् प्रस्तुतम् करोति। अत्रापि तदनुसारेण एव ऋग्वेदस्य चर्चनम् क्रियमाणम् वर्तते।

ऋग्वेदस्य प्रतिपाद्यविषयाः— ऋग्वेदस्य प्रमुखः विषयः विभिन्नदेवानाम् स्तवनम् अस्ति। अयम् वेदः देवस्तुतीनाम् एकः विशालः संग्रहः अस्ति। आभिः स्तुतिभिः स्यूयमानाः प्रमुखाः देवाः-अग्निः, इन्द्रः, वरुणः, विष्णुः, सविता, मरुत्, रुद्रः, मित्रश्च इत्यादिकाः सन्ति। एषाम् देवानाम् विषये प्रस्तुताः विभिन्नाः स्वतन्त्राः स्तुतयः 'सूक्तानि' उच्यन्ते। देवस्तुतीनाम् प्रसङ्गात् विभिन्नविषयाणाम् प्रतिपादनम् अपि देवविषयकसूक्तेषु जातम् अस्ति, येन तत्कालीनासु भौगोलिकैतिहासिक-सामाजिक-धार्मिकार्थिक-राजनीतिकादिषु स्थितिषु परिस्थितिषु च प्रकाशः पतति। देवविषयकसूक्तेभ्यः अतिरिक्तानि अन्यानि अनेकानि एतादृशानि सूक्तानि ऋग्वेदे सन्ति, येषु स्वतन्त्रविषयाणाम् प्रतिपादनम् अस्ति। यथा कतिपयेषु दानस्तुतयः सन्ति, कतिपयेषु स्वतन्त्रविषयाणाम् प्रतिपादनम् अस्ति। यथा कतिपयेषु दानस्तुतयः सन्ति, कतिपयेषु पारस्परिकाः संवादाः सन्ति, कतिपयेषु द्यूतनिन्दादिप्रसङ्गेन उपदेशः, अन्येषाम् लौकिकानाम् विषयाणाम् प्रतिपादनम् वा अस्ति, कतिपयेषु च दार्शनिकविचाराणाम् अभिव्यक्तिः अस्ति।

ऋग्वेदे प्रमुखतः परम्परागतायाः धार्मिकविचारधारायाः भावनामयी सरिता प्रवहति, या पश्चात् स्वकीयम् इदम् रूपम् रक्षन्ती अपि, विकसिता सती एकेन अन्येन रूपेण दार्शनिकविचारधारायाः ज्ञानमय्याः सरितायाः रूपे अपि प्रवहन्ती भवति, यस्याः दर्शनम् पुरुषसूक्तनासदीयसूक्तादिषु एतादृशेषु सूक्तेषु भवति, यानि पश्चात् औपनिषदविचारधारायाः मूलाधाररूपे स्थितानि भवन्ति।

अस्तु! इत्थम् ऋग्वेदः भारतस्य प्राचीनतमम् वाङ्मयम् सन् भारतीयधर्मस्य भारतीयदर्शनस्य च प्राचीनतमम् मूलम् स्वरूपम् प्रस्तुतम् करोति, यद्ज्ञानाय अस्य अध्ययनम् अनुशीलनम् च परमावश्यकम् अस्ति।

4.13 वेदाङ्गानाम् महत्त्वम्

सर्वेषाम् वेदाङ्गानाम् सामान्यरूपेण महत्त्वम्—यथा च पूर्वम् उक्तम्, वेदस्वरूपसंरक्षणार्थम् तत्तत्त्वावबोधार्थम् च शिक्षादीनाम् वेदाङ्गानाम् उद्भवः जातः। वेदाङ्गानि- यथा च एतेषाम् अनया संज्ञया एव सूच्यते, अङ्गवत् वेदानाम् तत्प्रतिपाद्यस्य च सहायकानि सहकारीणि वा

सन्ति। यद्यपि वेदाङ्गानि मूलतः वेदानाम् अङ्गानि इव सहायतार्थम् उद्भूतानि, किन्तु पश्चात् तानि स्वविकासपरम्परायाम् लौकिकस्य संस्कृतस्य, तद्वाङ्मयस्य, तस्य च प्रतिपाद्यस्य अपि सहायकानि अभवन्, इदानीम् च वर्तन्ते; यथा हि शिक्षा-व्याकरणे वेदाङ्गे यथा स्वमौलिकरूपे वैदिकक्षेत्रे सहायताम् कुरुतः, तथैव ते स्वविकसितरूपे लौकिकक्षेत्रे अपि साहाय्यम् वितनुतः। एवम्, संस्कृतस्य वैदिके लौकिके च इति उभयोः अपि क्षेत्रयोः वेदाङ्गानाम् महत्त्वम् वर्तते।

यद्यपि वेदाङ्गानाम् बीजम्, यथा च 'अथ शीक्षां (शिक्षां) व्याख्यास्यामः' (नै0 उ0, शि0 व0 1), 'शिक्षा कल्पो व्याकरणम्' (मु0 उ0 1|1|14) इत्यादिभिः वचनैः ज्ञायते, श्रुतिवाङ्मयेऽपि समुपलभ्यते तथापि यानि व्यवस्थिवाङ्मयरूपे श्रुतिवाङ्मयात् अनन्तरम् एव अस्तित्वम् प्राप्नुवन्, अतः अस्मिन् रूपे तानि स्मृतिवाङ्मयस्य अन्तः समागच्छन्ति। स्मृतिवाङ्मये च तेषाम् मूर्धन्यभूतम् कालक्रमेण च प्रायः सर्वप्रथमम् स्थानम् अस्ति। तानि आधारीकृत्य भूयसः स्मृतिवाङ्मयस्य विकासः जातः, यथा हि कल्पम् तदंशभूतानि च धर्मसूत्रामि आधरीकृत्य विभिन्नाः स्मृतयः स्वास्तित्वम् प्राप्नुवन्।

पृथक्-पृथक् विशिष्टरूपेण महत्त्वम्—'शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति' (मु0 उ0 1|1|5) इति मुण्डकोपनिषद्वाक्यानुसारेण शिक्षा, कल्पः, व्याकरणम्, निरुक्तम्, छन्दः, ज्योतिषम् चेति षट् वेदाङ्गानि वर्तन्ते।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुख व्याकरणं स्मृतम्। —(पा0 शि0 41-42)

इति प्रकारेण पाणिनीयशिक्षायाम् अपि एषाम् वेदाङ्गानाम् परिगणनम् कृतम् वर्तते। अत्र इदमपि प्रतिपादितम् अस्ति यत् एतानि वेदस्य हस्तपादादिवत् अङ्गानि वर्तन्ते अर्थात् एतानि अङ्गानि इव विशिष्टरूपेण तस्य सहकारीणि सन्ति। उक्तेषु शिक्षादिषु वेदाङ्गेषु वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारः यया शिक्ष्यते उपदिश्यते वा सा 'शिक्षा' उच्यते। शिक्षायाः अस्य स्वरूपेण तस्या महत्त्वम् स्वत एव प्रकाशते वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारस्य ज्ञानेन विना वेदमन्त्राणाम् अन्यस्य वा कस्यचित् वाङ्मयस्य शुद्धरूपेण समीचीनतया च पाठः कर्तुम् न शक्यते। प्राचीनकाले यदा वाङ्मयस्य उपदेशः गुरुशिष्यपरम्परया मौखिकरूपेण एव क्रियमाणः आसीत् =तदा तु उक्तस्य उच्चारणप्रकारस्य ज्ञानेन विना वेदादिवाङ्मयस्य शुद्धः पाठ एव असंभवः अभविष्यत्, फलतश्च इदानीम परम्परया अशुद्धः पाठः प्राप्तः अभविष्यत्। इत्थम्, वेदादीनाम् शुद्धपाठसंरक्षणेन अनेन वेदाङ्गेन बहु उपकृतम्।

यत्र यागप्रयोगः कल्प्यते समर्थ्यते वा सः कल्पः अस्ति। शनैःशनैः यागानुष्ठानप्रक्रिया जटिला जाता, ताम् सूत्ररूपेण अवबोधयितुम् अस्य वेदाङ्गस्य उद्भवः जातः। अनेन वेदाङ्गेन विना श्रुतिप्रतिपादितानाम् यागादीनाम् कर्मणाम् यथातथरूपेण सम्पादनम् एव

असंभवम् अभविष्यत्, अतः अस्य महती उपयोगिता अस्ति। अस्य वेदाङ्गस्य विकास जाते, अस्य चातुर्विध्यम् जातम् यदनुसारेण कल्पसूत्रामि चतुर्विधानि सन्ति—श्रौतसूत्राणि, गृह्यसूत्राणि, धर्मसूत्राणि, शुल्वसूत्राणि च। श्रौतसूत्रेषु श्रौते श्रुतिविहते वा अग्नौ सम्पाद्यमानानाम् श्रौतानाम् श्रुतिविहितानाम् वा यागादिकानाम् कर्मणाम् अनुष्ठानप्रकारः वर्णितः वर्तते। गृह्यसुत्रेषु गृह्याग्नौ सम्पाद्यमानानाम् यागानाम् विभिन्नानाम् संस्काराणाम् च अनुष्ठानप्रकारः वर्णितः अस्ति। धर्मसूत्रेषु वर्णाश्रमाचारस्य राजकर्तव्यस्य च वर्णनम् वर्तते। शुल्वसूत्रेषु वेदिनिर्माणरीतिः प्रतिपादिता अस्ति। एतेषु गृह्यसूत्राणि धर्मसूत्राणि च स्मार्तसूत्राणि मन्यन्ते, शुल्वसूत्राणि च श्रौतसूत्रैः सम्बद्धानि सन्ति। एषाम् चतुर्विधानाम् कल्पसूत्राणाम् अनेनं स्वरूपपरिचयेन कल्पवेदाङ्गस्य अनेकप्रकारम् महत्त्वं स्वत एव स्पष्टम् भवति।

यत्र यज्ञानुष्ठानकालनिर्णयः वर्तते तत् ज्योतिषम् अस्ति। विभिन्नानाम् यज्ञानाम् अनुष्ठनस्य कालः नियतः अस्ति। नियतकाले अनुष्ठिताः एव यज्ञाः निर्दिष्टफलदायकाः भवन्ति। अतः यथार्थकालज्ञानम् आवश्यकम् वर्तते, तच्च अस्य वेदाङ्गस्य एव शरणवरणेन प्राप्तुम् शक्यम्। एवमेव अन्येषाम् अपि विभिन्नानाम् वैदिकानाम् लौकिकनाम् च कर्मणाम् कालज्ञानाय इदम् वेदाङ्गम् अपेक्षितम् भवति। इत्थम् अस्य महत् महत्त्वम् वर्तते।

अस्तुः एवम् स्पष्टम् अस्ति यत् विभिन्नानाम् वेदाङ्गनाम् विविधम् महत्त्वम् वर्तते।

4.14 महाकविः दण्डी

स्थितिकालः—(अ) **काव्यादर्शकारस्य आचार्यस्य दण्डिनः कालः**— दशकुमारचरितकारः महाकविः दण्डी संस्कृतस्य प्रमुखेषु कथाकारेषु गद्यकविषु महत्त्वपूर्णम् स्थानम् अधिकरोति। अयम् कदा कुत्र वा अभूत्, इदम् अधुनावधि पूर्णतः निश्चितम् नास्ति। 'काव्यादर्शे' 'सेतुबन्ध' नामकस्य एकस्य प्राकृतकाव्यस्य उल्लेखः अस्ति। इदम् प्राकृतकाव्यम् राज्ञः प्रवरसेनस्य रचना अस्ति। राज्ञः प्रवरसेनस्य समयः ईसवीयः पञ्चमः शतकः मन्यते। इत्थम् 'काव्यादर्शस्य' रचयितुः आचार्यस्य दण्डिनः स्थितिकालस्य पूर्वसीमा ईसवीयात् पञ्चमात् शतकात् पूर्वम् न गन्तुम् शक्रोति। अपरतः, कन्नडभाषायाः एकस्मिन् अलंकारग्रन्थे— कविराजमार्गे—काव्यादर्शस्य पर्याप्तः प्रभावः प्रतीयते, अथ च सिंहलीयभाषायाः एकस्य 'सिव-स-लंकार' (स्वभाषालंकार) नामकस्य अलंकारग्रन्थस्य रचना अपि काव्यादर्शस्य आधारे कृता प्रतीयते। 'कविराजमार्गः' 814 ईसवीयवर्षस्य रचना मन्यते, अथ च 'स्व-भाषालंकारस्य' रचयितुः राज्ञः प्रथमस्य सेनस्य कालः 843-866 ईसवीय-वर्षाणाम् इतस्तः मन्यते। एवम् 'काव्यादर्शस्य' रचयितुः आचार्यस्य दण्डिनः स्थितिकालस्य उत्तरसीमा 800 ईसवीयवर्षस्य समीपे तिष्ठति।

अस्तु! एवम् 'काव्यादर्शस्य' रचयितुः आचार्यस्य दण्डिनः स्थितिकालः 500

ईसवीयवर्षात् 800 ईसवीयवर्षम् यावत् प्रसृतस्य अवधेः मध्ये पतति।

काव्यादर्शकारेण दण्डिना दशकुमारचरितकारस्य दण्डिनः अभिन्नत्वम्—'काव्यादर्शः एकः अलङ्कारशास्त्रीयः ग्रन्थः अस्ति, दशकुमारचरितम्' च एकम् कथात्मकम् गद्यकाव्यम् अस्ति। काव्यादर्शे गद्यकाव्यस्य शैलीकथावस्त्वादिसम्बन्धे ये आदर्शभूताः सिद्धान्ताः प्रतिपादिताः सन्ति, तेषाम् पालनम् दशकुमारचरिते पूर्णतः कृतम् न वर्तते। अतः केषाञ्चित् विदुषाम् मतम् अस्ति यत् दशकुमारचरितम् काव्यादर्शकारस्य आचार्यस्य दण्डिनः रचना नास्ति। किन्तु इदम् अपि सम्भवम् अस्ति यत् दण्डिना दशकुमारचरितस्य रचना स्वस्य साहित्यिकजीवनस्य प्रारम्भिककाले कृता स्यात्, काव्यादर्शस्य च रचना पश्चात् साहित्यिक्याम् प्रौढतायाम् प्राप्तायाम् सत्याम् कृता स्यात्, अथ च इत्थम् उत्तरकालीनायाः प्रौढतायाः आधारे पश्चात् निर्धारितानाम् काव्यादर्शप्रतिपादितानाम् नियमानाम् स्वीकायाम् एव पूर्वकालीनायाम् कृतौ दशकुमारचरिते पूर्णतः पालनम् न जातम् स्यात्।

दण्डिनः बाणात् पूर्ववर्तित्वम्—यतः काव्यादर्शस्य 'अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः।' (2|197) इत्यस्मिन् पद्ये कादम्बर्याश्च 'केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्' (शुकनासोपदेशः) इत्यस्मिन् वर्णने साम्यम् उपलभ्यते, अतः पीटर्सनः याकोबी च इमम् निष्कर्षम् प्राप्तवन्तौ यत् दण्डी बाणात् परवर्ती अस्ति। किन्तु दशकुमारचरितस्य प्रसादपूर्णा सरला शैली बाणस्य श्लेषगर्भितया शैल्या किञ्चिन्मात्रम् अपि प्रभाविता न प्रतीयते। यदि दण्डी बाणात् परवर्ती अभविष्यत् चेत्, तस्य शैल्याम् उद्भटस्य गद्यकाव्यकारस्य बाणस्य शैल्याः प्रभावः अवश्यम् एव अपतिष्यत्। एतदतिरिक्तम् दशकुमारचरितस्य भौगोलिकेन वर्णनेन राजीतिकेन चित्रणेन च अपि अयम् एव संकेतः प्राप्यते, यत् इयम् कृतिः महाराजात् हर्षवर्धनात् पूर्वकालीना अस्ति। अस्याम् दशायाम् इदम् अपि सम्भवम् प्रतीयते यत् काव्यादर्शस्य कादम्बर्याश्च उक्ते वर्णने कस्मिश्चित् पूर्वकालीने एकस्मिन् एव रूढे वर्णने आधारिते स्याताम्, अथवा कादम्बर्याः एव उक्तम् वर्णनम् काव्यादर्शस्य उक्ते वर्णने आधारितम् स्यात्।

अस्तु! इत्थम् दशकुमारचरितकारस्य महाकवेः, दण्डिनः स्थितिकालः 600 ईसवीयवर्षस्य समीपे प्रतीयते।

जन्मस्थानम्—काव्यादर्शस्य दशकुमारचरितस्य च वर्णनानाम् आधारे विद्वाँसः इमम् निष्कर्षम् प्राप्तवन्तः यत् दण्डी दाक्षिणात्यः आसीत्, अथ च विदर्भदेशस्य निवासी आसीत्।

रचना—यथा च पूर्वम् उक्तम्, राजशेखरस्य 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च' इत्यनेन कथनेन इदम् सूच्यते यत् दण्डी त्रीन् ग्रन्थान् रचितवान्। एषु 'काव्यादर्शः' 'दशकुमारचरितम्' च

इति द्वौ तु उपलभ्येते, किन्तु तृतीयः कः? इति निश्चितम् नास्ति। केषाञ्चित् विदुषाम् कथनम् अस्ति यत् 'अवन्तिसुन्दरीकथा' दण्डिनः तृतीया रचना अस्ति, किन्तु अन्ये केचन विद्वाँसः इदम् न मन्यन्ते।

कवित्वम्—यथार्थचित्रणम्—दण्डिनः कवित्वस्य प्रामाणिकरूपेण प्रकाशकम् एकमात्रम् 'दशकुमारचरितम्' अस्ति। यथा च अस्य दर्शनेन स्पष्टम् अस्ति अस्य आधारे इदम् कथयितुम् शक्यते यत् महाकविः दण्डी एकः यथार्थवादी कथाकारः गद्यकविः अस्ति। 'दशकुमारचरितम्' एकम् यथार्थचित्रणपरम् कथात्मकम् गद्यकाव्यम् अस्ति। यथार्थस्य यादृशम् चित्रणम् अस्मिन् गद्यकाव्ये प्राप्यते, तादृशम् संस्कृतस्य अन्यस्मिन् कस्मिँश्चित् प्राचीने गद्यकाव्ये न उपलभ्यते। अस्मिन् तत्कालीनस्य समाजस्य यथातथम् चित्रणम् कृतम् वर्तते। अस्मिन् वर्णितानि सर्वाणि पात्राणि सजीवानि, अथ च स्वकीयैः गुणदोषैः युक्तानि सन्ति यथार्थस्य धरातले विचरणम् कुर्वन्ति वर्तन्ते। सर्वाणि पात्राणि वास्तविकतया स्वाभाविकतया च ओतप्रोतानि सन्ति। वस्तुतः दशकुमारचरिते प्रस्तुतम् चरित्रचित्रणम् एकम् एतादृशम् यथार्थवादिचरित्रचित्रणम् अस्ति। यस्य रूपे तत्कालीनस्य समाजस्य सर्वेधाम् अपि वर्णाणाम् एकम् जीवज्जागृतम् यथार्थम् चित्रण् स्पष्टतः उपस्थितम् जातम् अस्ति। अस्मिन् चित्रे तपस्वी, ब्राह्मणः, भिक्षुः, भिक्षुकी, राजा, राज्ञी, राजकुमारः राजकुमारी, ऐन्द्रजालिकः, वेश्या, कुट्टिनी, चौरः, जारः, लम्पटः, कपटी, दम्भी च इत्यादीनाम् प्रायः सर्वेषाम् अपि वर्गाणाम् प्रतिनिधीनाम् सम्मेलनात् हेतोः एका आकर्षिका बहुरूपता स्वत एव समागता अस्ति। यद्यपि दशकुमारचरितस्य कथानके अपि कतिपयानाम् असंभवरूपे प्रतीयमानानाम् अलौकिकघटनानाम् समावेशः अस्ति, पुनरपि तस्मिन् एतादृशम् यथार्थम् अस्ति यत् अस्यै कृतये संस्कृतस्य अन्येभ्यः गद्यकाव्येभ्यः पृथक् विशिष्टम् स्थानम् ददाति।

वर्णन-शैली—दशकुमारचरिते व्यवहृता महाकवेः दण्डिनः वर्णन-शैली अपि स्वकीयस्य कुतूहलपूर्णस्य यथार्थस्य च कथावस्तुनः अनुरूपम् एव अतीत सरला, सरसा, मनोरमा च अस्ति। तस्याम् क्लिष्टतायाः दर्शनम् न भवति। एतदितिरिक्तम् वर्णने सर्वत्र प्रवाहः प्राञ्जलता च अस्ति, तत्र एतादृशः गत्यवरोधः नास्ति यश्च संस्कृतस्य प्राचीनेषु गद्यकाव्येषु प्रायः प्राप्यते। अत्र अलङ्काराणाम् प्रयोगः अपि स्वाभाविकः अस्ति। भाषा अपि सरला, सानुप्रासा, विषयानुकूला, व्याकरणसम्मता च सती ललितपदावलीयुक्ता वर्तते। पदलालित्यम् तु 'दण्डिनः पदलालित्यम्' इति प्रकारेण भारतीयसमालोचकैः प्रशंसितम् एव वर्तते।

रसाभिव्यक्तिः—दशकुमारचरिते यद्यपि विभिन्नानाम् रसानाम् अभिव्यञ्जना जाता अस्ति, किन्तु तत्र मुख्यतः अभिव्यक्तः रसः अद्भुत एव अस्ति। अत्र पाठकस्य पदे-पदे अस्य रसस्य अनुभूतिः भवति।

अस्तु! उक्तप्रकारेण 'दशकुमारचरितम्' स्वकथानकस्य कुतूहलपूर्णायाः यथार्थतायाः,

परिस्थितीनाम् विविधतायाः जटिलतायाश्च, पात्राणाम् सजीवतायाः बहुरूपतायाश्च, वर्णन-शैल्याश्च सरलतायाः रोचकतायाश्च हेतोः समन्वितरूपे एकः उपन्यास एव आनन्दम् प्रददाति। आसाम् विशेषतानाम् हेतोश्च तत् संस्कृतगद्यसाहित्ये स्वकीयम् एकम् विशिष्टम् स्थानम् दधत् स्वस्रष्टारम् महाकविम् संस्कृतगद्यकारेषु महत्त्वपूर्णे स्थाने प्रतिष्ठितम् करोति।

वस्तुतः सरलस्य, सुबोधस्य, ललितस्य च संस्कृतगद्यस्य लेखकरूपे महाकविः दण्डी अनुपमः अस्ति। इदम् एव कारणम् यत् अनेकैः भारतीयैः समालोचकैः तस्य बहुशः प्रशंसा कृता। एषु एकेन कथितम् अस्ति यत् दण्डी एव एकमात्रम् कविः अस्ति–'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः'। एकेन अन्येन समालोचकेन कथितम् अस्ति यत् दण्डी वाल्मीकिना व्यासेन च सदृशः कविः अस्ति–

'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवि इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।'

4.15. महाकविः बाणभट्टः

(1) परिचयः–संस्कृतस्य कथाकारेषु गद्यकविषु महाकवेः बाणभट्टस्य सर्वोत्कृष्टम् स्थानम् अस्ति। अस्य कृतयः संस्कृतगद्यकाव्यस्य चरमोत्कर्षम् प्रदर्शयन्ति। सौभाग्यस्य विषयः अयम् अस्ति यत् अस्य जीवनवृत्तम् स्थितिकालश्च संस्कृतस्य अन्येषाम् अनेकेषाम् साहित्यकाराणाम् इव अविज्ञातौ विवादग्रस्तौ वा न स्तः, अपि तु अधिकांशतया निश्चितरूपेण ज्ञातौ स्तः। अयम् स्वयम् स्वकीयायाः सर्वप्रथमायाः गद्यकृतेः–हर्षचरितस्य–प्रारम्भिके उच्छ्वासत्रये स्वकीयम् परिचयम् दत्तवान् अस्ति, येन ज्ञायते यत् अयम् वत्सगोत्रोत्पन्नः, अथ च संभवतः सारस्वतः ब्राह्मणः आसीत्। कादम्बर्याम् दत्तेन परिचयेन ज्ञायते यत् अस्य एकः पूर्वजः 'कुबेर' इति नामा आसीत्, यः संस्कृतस्य प्रकाण्डः विद्वान् आसीत्। कुबेरस्य पौत्रः 'अर्थपतिः' बाणस्य पितामहः आसीत्। बाणस्य पितुः नाम 'चित्रभानुः' मातुश्च नाम 'राज्यदेवी' आसीत्।

महाकविः बाणः बाल्यकाले एव मातृपितृरहितत्वात् अभिभावकविहीनः जातः, फलतः अस्य यौवनकालः व्यवस्थितरूपेण व्यतीतः भवितुम् न अपारयत्। अयम् भ्रमणशीलः जातः, भ्रमणे च अनेन अनेकविधानाम् जनानाम् सम्पर्कः प्राप्तः; येन अस्य पर्याप्तः सांसारिकः अनुभवः जातः। प्रवासात् गृहम् प्रत्यावृत्तः सन् यदा अयम् महाराजस्य हर्षस्य राजसभाम् प्राप्तवान्, तदा हर्षः इमम् उपेक्षापूर्णया दृष्ट्या दृष्ट्वा अस्य विषये 'महानयं भुजङ्गः' इति कथितवान्, येन क्षुब्धः सन् अनेन अतीव विनम्रभावेन सह स्वकीयस्य उच्चस्य विद्याध्ययनस्य परिचयः दत्तः, अथ च भविष्ये पूर्णतः सदाचरणपरम् नवीनम् जीवनम् यापयितुम् सङ्कल्पः कृतः। एतदन्तरम् कतिपुचित् दिनेषु एव अस्य चरित्रस्य

पाण्डित्यस्य च प्रभावः रूढ़ः जातः, फलतश्च महाराजेन हर्षेण अयम् 'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती' इति उपाधिना विभूषितः। किञ्चित् अनन्तरम् अनेन 'हर्षचरितस्य' रचना प्रारब्धा। एतदवधिं यावद् एव बाणस्य जीवनवृत्तम् उपलभ्यते।

विदुषाम् अनुमानम् अस्ति यत् हर्षस्य मृत्योः (648 ई0) पश्चात् बाणः कान्यकुब्जात् स्वग्रामम् 'प्रीतिकूटम्' प्रत्यावृत्तः, यत्र अयम् स्वदेहावसानपर्यन्तम् निवसन् साहित्यसाधनारतः अभवत्। स्वस्य चरितनायकस्य महाराजस्य हर्षस्य मृत्योः कारणात् एव संभवतः बाणः स्वकीयम् ग्रन्थम्–हर्षचरितम्–अपूर्णम् एव त्यक्तवान्।

(2) **स्थितिकालः**–यतः इदम् एकम् सुनिश्चितम् तथ्यम् अस्ति यत् बाणः महाराजस्य हर्षस्य सभापण्डितः आसीत्, अतः अस्य स्थितिकालः सारल्येन एव निश्चितः कर्तुम् शक्यते। ऐतिहासिकानाम् अनुसारेण हर्षस्य राज्याभिषेक 606 ईसवीये वर्षे सम्पन्न अभवत्, अथ च तस्य मृत्युः 648 ईसवीये वर्षे अभवत्। एवम्, हर्षस्य समये वर्तमानत्वात् बाणस्य स्थितिकालः ईसवीयसप्तमशतकस्य पूर्वार्द्धः सिद्ध्यति। बाणेन येषाम् साहित्यकाराणाम् साहित्यकग्रन्थानाम् च स्वरचनासु निर्देशः कृतः अस्ति, तेषु कश्चन अपि सप्तमात् शतकात् परवर्ती नास्ति। अपरतः, आचार्यवामनेन (800 ई0) स्वकीयाम् 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ' कादम्बर्याः 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' इति उद्धरणम् दत्तम् अस्ति, अथ च पश्चाद्वर्तिभिः आनन्दवर्धनधनञ्जयादिभिः अनेकैः आचार्यैः कविभिश्च बाणेन तत्कृतिभिः वा स्वीयः परिचयः प्रदर्शितः अस्ति। इत्थम् बाणस्य महाराजस्य हर्षस्य सभापण्डितत्वात् अथ च सहैव अन्येभ्यः अन्तरङ्गेस्यः बहिरङ्गेभ्यश्च प्रमाणेभ्यः प्राप्तस्य आधारस्य वर्तमानत्वात् अस्मिन् मते का अपि विप्रतिपत्तिः न संभाव्यते यत् बाणस्य स्थितिकालः ईसवीयसप्तमशतकस्य पूर्वार्द्धः अस्ति।

(3) रचना–महाकवेः बाणस्य तिस्रः रचनाः सर्वसम्मतरूपेण प्रामाणिक्यः मन्यन्ते–हर्षचरितम्, कादम्बरी, चण्डीशतकम् च। एतदतिरिक्तम्, 'पार्वतीपरिणय' नामकम् नाटकम् अपि कैश्चित् विद्वद्भिः बाणस्य रचना मन्यते, किन्तु अन्ये विद्वांसः अनया मान्यतया सहमताः न सन्ति। 'चण्डीशतकम्' एका पद्यात्मिका रचना अस्ति, यस्याम् पद्यशतकेन भगवत्याः दुर्गायाः स्तुतिः कृता वर्तते। अन्ये द्वे रचने गद्यकृती स्तः, ययोः 'हर्षचरितम्' एकः आख्यायिकाग्रन्थः अस्ति, 'कादम्बरी' च एकः कथाग्रन्थः अस्ति। 'हर्षचरिते' अष्ट उच्छ्वासाः सन्ति, येषाम् प्रारम्भिकेषु त्रिषु बाणस्य आत्मकथा अस्ति, अवशिष्टेषु च पञ्चसु उच्छ्वासेषु महाराजस्य हर्षस्य जीवनचरितम् अस्ति। 'कादम्बरी' एका कविकल्पनाप्रसूता प्रेमकथा अस्ति। इयम् 'पूर्वभागः' 'उत्तरभागश्च' इति नामभ्याम् द्वयोः भागयोः विभक्ता अस्ति। कादम्बर्याः समाप्तेः पूर्वम् एव बाणः दिवङ्गतः अभवत्, अतः तस्य पुत्रेण अस्याः समाप्तिः कृता। अस्य सः भागः यः बाणस्य रचना अस्ति, 'पूर्वभागः' अस्ति, अवशिष्टश्च भागः यः तत्पुत्रस्य रचना अस्ति, 'उत्तरभागः' अस्ति।

(4) कवित्वम्–गद्यशैली–महाकविः बाणः संस्कृतगद्यकाव्यस्य सम्राट् अस्ति। गद्यशैल्याः आदर्शः अस्ति–

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटो रसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्।।' (हर्षचरितम्)

यद्यपि बाणेन स्वयम् एव अयम् आदर्शः दुर्लभः कथितः, तथापि सः स्वकृतिषु अस्य आदर्शस्य यथाशक्ति पालनस्य प्रयत्नम् कृतवान्। अथ च अयम् एव आदर्शः तत्प्रयुक्तायाः गद्यशैल्याः स्वरूपस्य परिचयम् ददाति। बाणस्य गद्यशैली गद्यरीतिः वा 'पांचाली' अस्ति, यस्याः स्वरूपम् अस्ति–'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते।' सरस्वतीकण्ठाभरणकारेण भोजेन पांचालीरीतेः उक्तस्य स्वरूपस्य परिचयम् ददता 'बाणोक्तिषु च सा यदि' इति रूपे कथितम् अस्ति यत् बाणस्य उक्तिषु पांचाली रीतिः एव अस्ति। वस्तुतः, बाणेन स्वकृतिषु शब्दस्य अर्थस्य च अपूर्वम् सामंजस्यम् प्रस्तुतम्। तस्य कृतिषु प्रत्येकम् स्थले भाषा विषयानुवर्तिनी अस्ति, शब्दान्तरेषु तत्र अनुभूतिः अभिव्यक्तिश्च इति उभे अपि परस्परम् स्नेहसिक्ते भगिन्यौ इव एकाकारे जाते स्तः। तत्र यदि विकटानाम्, कठोराणाम्, भयङ्कराणाम् वा पदार्थानाम् वर्णनम् प्रस्तुतम् अस्ति चेत् कवेः लेखन्याः स्वत एव विकटपदावल्याः निःसरणम् प्रारब्धम् भवति, अथ च यदि कोमलपदार्थानाम् वर्णनम् प्रसक्तम् चेत् तत् स्वेन सह कोमलपदावलीम् गृहीत्वा एव समागतम् अस्ति। एतदतिरिक्तम्, बाणस्य कृतिषु समग्ररूपे दृष्टासु सतीषु एव स्पष्टम् भवति यत् यद्यपि सः यत्र-तत्र 'वैदर्भी' 'गौडी' च इति रीतिद्वयस्य अपि प्रयोगम् कृतवान्, किन्तु मुख्यतः सः पांचालीम् रीतिम् एव आश्रितवान्। यस्याम् वैदर्भ्याम् इव न तु नितान्तम् श्लेषराहित्यम् प्रासादिकता च भवति, न च गौड्याम् इव क्लिष्टानाम् श्लेषानाम्, समासानाम्, पदानाम् च एव बाहुल्यम् भवति, अपि तु मध्यममार्गस्य अनुसरणम् क्रियते।

बाणस्य कवित्वमय्याः कल्पनायाः परिधेः कश्चन अपि विषयः, भावः, अभिव्यक्तेः रूपम् च बहिः स्थातुम् न अशक्नोत्। इदमेव कारणम् यत् सहृदयः समालोचकः बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' इति घोषयितुम् विवशः अभवत्। बाणस्य विषये श्रीचन्द्रेवेन इदम् उचितम् एव उक्तम् यत्–

'श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ–

लङ्कारे कतिचित्तदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।

आः! सर्वत्र गंभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी–

संचारीकविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।।

अस्तु! उक्तप्रकारेण महाकविः बाणः संस्कृत-गद्यकवीनाम् सम्राट् अस्ति, अथ च

तस्य गद्यकृती संस्कृतस्य सर्वोत्कृष्टे गद्यकाव्ये सतः। 'गद्यं कवीनां निकषम्' कथितम् सत् गद्यकवेः बाणस्य कवित्वम् उत्तरोत्तरम् उज्ज्वलात् उज्ज्वलतरम् एव भवत् भासते। केषाञ्चित् पाश्चात्त्यानाम् आलोचकानाम् बाणस्य वर्णनशैली अवश्यम् किञ्चित् कष्टकरी प्रतीता स्यात्, यतो हि ते आधुनिकसमालोचनायाः सिद्धान्तानाम् निकषे बाणस्य शैलीम् कथितवन्तः, यत् च उचितम् नास्ति। कश्चन अपि साहित्यकारः स्वसमयमान्यताभिः आदर्शैश्च अप्रभावितः स्थातुम् न शक्नोति, अतः यदि पाश्चात्याः आलोचकाः तत्कालीनानाम् मान्यतानाम् प्रकाशे बाणस्य शैलीम् अद्रक्ष्यन् चेत् तत्र ते संभवतः काश्चन कष्टकरीम् वार्ताम् न अन्वभविष्यन्। बाणस्य समये अलंकृता गद्यशैली एव उत्कृष्टा अमन्यत, अथ च 'ओजः समासभूयस्त्वमतेद् गद्यस्य जीवितम्' इत्यादिरूपे समासबाहुल्यम् एव गद्यस्य प्राणाः अमन्यत। एतेषाम् एव आदर्शानाम् पालनम् बाणः अपि स्वसमयापेक्षया स्वभावतः कृतवान्, अतश्च कामम् पाश्चात्त्यानाम् आलोचकानाम् तस्य शैली कष्टकरी प्रतीता स्यात्, किन्तु एभिः आदर्शैः परिचिताः भारतीयाः समालोचकाः बाणस्य बाणीम् सर्वदा एतादृशैः प्रशंसितवन्तः यत्–

'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।'

4.16 महाकविः अश्वघोषः

(1) परिचयः –'बौद्धदर्शनक्षेत्रे लब्धकीर्तिः अश्वघोषः संस्कृतसाहित्यक्षेत्रे अपि एक महाकविः मन्यते। अस्य महानुभावस्य स्थितिकालस्य विषये कश्चन उल्लेखनीयः विवादः नास्ति। प्रायः सर्वसम्मत्या अयम् कुषाणवंशीयस्य सम्राजः कनिष्कस्य काले वर्तमानः मन्यते। यतो हि कनिष्कस्य कालः ईसायाः प्रथमशताब्द्याम् (78 ई0) मन्यते, अतः अस्य महाकवेः अपि अयम् एव कालः स्वीक्रियते। अयम् कनिष्कस्य गुरुः, आश्रितः कविश्च मन्यते। ऐतिह्यविदाम् अनुसारेण अयम् मूलतः वैदिकपरम्परानुयायी ब्राह्मणः आसीत्। अस्याः मान्यतायाः आधारः अयम् अस्ति यत् अस्य रचनासु वैदिकानाम् शास्त्राणाम्, विभिन्नानाम् विषयाणाम् निर्देशः प्राप्यते। अनन्तरम् अयम् बौद्धधर्मावलम्बी जातः। बौद्धधर्मे अस्य प्रबला निष्ठा आसीत्, फलतः अनेन बौद्धधर्मप्रचाराय अतिशयितः प्रयासः कृतः। यत्फलस्वरूपम् अयम् बौद्धधर्मावलम्बिषु अतीव सम्मानपूर्णम् स्थानम् प्राप्तवान्। सः आचार्यभदन्तेत्युपाधिना अपि तत्र सम्मानितः अभवत्। सम्राजा कनिष्केन या बौद्धसंगीतिः आयोजिता, तस्यः अध्यक्षपदे अयम् एव सम्राजा प्रतिष्ठापितः। बौद्धदर्शनक्षेत्रे अस्य नाम बौद्धदर्शनस्य तथतायाः भूततथतायाः वा सिद्धान्तेन सम्बद्धम् मन्यते। अयम् अस्य सिद्धान्तस्य प्रायः प्रवर्तकः एव स्वीक्रियते। यद्यपि अयम् मूलतः सर्वास्तिवादी आसीत् तथापि महायानसम्प्रदायसिद्धान्तानाम् पूर्वाभासः अपि अस्य ग्रन्थेषु मन्यते।

(2) रचना—अश्वघोषप्रणीतरूपाः सप्त ग्रन्थाः प्रसिद्धाः सन्ति—(1) बुद्धचरितम्, (2) सौन्दरनन्दम्, (3) शारिपुत्रप्रकरणम्, (4) महायान-श्रद्धोत्पादसंग्रहः, (5) सूत्रालंकारः, (6) गण्डिस्तोत्रगाथा, (7) वज्रसूची।

एतेषु सप्तसु ग्रन्थेसु प्रथमान् त्रीन् प्रति अश्वघोषस्य कर्तृत्वम् निर्विवादरूपेण मन्यते, यदा च अवशिष्टेषु चतुर्षु कतिपयान् प्रति तस्य कर्तृत्वम् विवादास्पदम् मन्यते। एतद्ग्रन्थातिरिक्तम् नामरहितम् खण्डितम् नाटकद्वयम् अपि अश्वघोषप्रणीतम् मन्यते। अश्वघोषस्य रचनासु प्रथमे त्रयः ग्रन्थाः—बुद्धचरितम्, सौन्दरनन्दनम्, शारिपुत्रप्रकरणम् च—प्रमुखाः मन्यन्ते, अथ च अत्रापि, 'बुद्धचरितम्' परमम् प्रामुख्यम् धत्ते।

अश्वघोषस्य उक्तेषु ग्रन्थेषु 'बुद्धचरितम्' 'सौन्दरनन्दम्' चेति द्वे महाकाव्ये स्तः, 'शारिपुत्रप्रकरणम्' च एकम् प्रकरणरूपम् रूपकम् अस्ति। 'महायानश्रद्धोत्पाद संग्रहः', यः महायानश्रद्धोत्पादः' इत्यपि कथ्यते। बौद्धदर्शनस्य प्रसिद्धः ग्रन्थः अस्ति, अस्मिन् महायानसम्प्रदायस्य सिद्धान्तानाम् कश्चन पूर्वाभासः समुपलभ्यते। 'सूत्रालङ्कारः', यः 'कल्पना-मण्डतिका' इत्यपि उच्यते, बौद्धधर्मस्य एव ग्रन्थः अस्ति, अस्मिन् विभिन्नानाम् कथानाम् माध्यमेन बौद्धधर्मसिद्धान्ताः प्रतिपादिताः सन्ति। 'गण्डिस्तोत्रगाथा' एकम् एतादृशम् गीतिकाव्यम् अस्ति यत् अश्वघोषस्य कवित्वेन सह संगीतज्ञत्वम् छन्दःशास्त्रनिपुणत्वम् च अपि प्रकटयति। 'वज्रसूची' एकः खण्डनात्मकः आलोचनात्मकः वा ग्रन्थः अस्ति। अस्मिन् श्रुतिस्मृतिपरम्परानुयायिनाम् चातुर्वर्ण्यसिद्धान्तस्य खण्डनम् आलोचना वा वर्तते। एते सर्वे ग्रन्थाः बौद्धधर्मप्रचारे एव व्यापृताः सन्ति, अथ च प्रायः सर्वे मूलतः संस्कृतभाषायाम् एव लिखिताः सन्ति।

(3) कवित्वम्—यद्यपि अश्वघोषः मूलतः दार्शनिकः आसीत् तथापि सः एकः प्रतिभासम्पन्नः महाकविः अपि आसीत्। तस्य कवित्वम् उत्कृष्टम् वर्तते। तस्य द्वयोः अपि महाकाव्ययोः—बुद्धचरितसौन्दरनन्दयोः—प्रायः सर्वाणि महाकाव्योपयोगीनि तत्त्वानि उपलभ्यन्ते। सः कालिदासवत् वैदर्भीरीतेः कविः अस्ति। तेन सरलायाम् भाषायाम् सरलायाम् शैल्याम् च स्वकाव्यरचना कृता। यत्र भावाभिव्यक्तिदृष्ट्या तस्य कवित्वम् उत्कृष्टम् प्रतीयते, तत्र अलंकारविन्यासादिदृष्ट्या अपि तस्य कवित्वम् न्यूनम् नास्ति। यद्यपि अश्वघोषस्य काव्यरचनायाः उद्देश्यम् बौद्धसिद्धान्तानाम् प्रचारः आसीत्, तथापि तेन अस्य उद्देश्यस्य पूर्तिः एतादृशेन नैपुण्येन सह कृता यत् किचिंदपवादेन सह प्रायः कवित्वस्य एतद्धेतुकः अपकर्ष नः जातः। तेन काव्यरचनायाः स्वकीयम् उक्तम् उद्देश्यम् स्वयमेव सौन्दरनन्दे इत्थम् प्रकटितम्—

इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृता।
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात् कृता।
यन्मोक्षात् कृतमन्यदध्रे हि मया तत् काव्यधर्मात् कृतं

पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति।

एवमेव अन्येषु अपि कतिपयेषु स्थलेषु कालिदासस्य अश्वघोषस्य च रचनासु भाषासाम्यम् , वर्णनसाम्यम् भावसाम्यम् वा परिलक्ष्यते। इदम् साम्यम् दृष्ट्वा विद्वांसः अनयोः एकम् अपरेण प्रभावितम् मन्यन्ते, किन्तु अत्र विषये विदुषाम् ऐकमत्यम् नास्ति; केचन कालिदासेन अश्वघोषम्, केचन च अश्वघोषेण कालिदासम् प्रभावितम् मन्यन्ते। एतदाधारेण एव च ते अनयोः एकम् अपरस्मात् पूर्ववर्तिनम् परवर्तिनम् वा मन्यन्ते। किमपि स्यात्, अत्र सन्देहः नास्ति यत् यादृशम् साम्यम् कालिदासस्य अश्वघोषस्य च रचनासु प्राप्यते, तादृशम् अन्यत्र प्रायः दृष्टिगोचरम् न भवति। किमिदम् साम्यम् अनयोः कालसामीप्यस्य अपि द्योतकम् अस्ति न वा, इति विद्वद्भिः विचारणीयम्।

अस्तु! उक्तेन संक्षिप्तेन अश्वघोषस्य परिचयेन इदम् स्पष्टम् अस्ति यत् सः बौद्धिककविषु तु सर्वश्रेष्ठः कविः अस्त्येव, सहैव समस्तेषु संस्कृतमहाकविषु अपि अन्यतमः सन् संस्कृतकाव्यक्षेत्रे एकस्य दार्शनिककवेः रूपे महत्त्वपूर्णम् स्थानम् धत्ते।

4.17 महाकविः भारविः

(1) परिचयः–'किरातार्जुनीयम्' इत्याख्यस्य प्रसिद्धस्य संस्कृतमहाकाव्यस्य प्रणेता महाकविः भारविः ईसवीयसप्तमशतकस्य पूर्वार्द्धात् किञ्चित् पूर्वम् एव स्वकीयेन अस्तित्वेन भारतभुवम् अलंकृतवान्, यतो हि 634 ईसवीयवर्षस्य एहोलस्य शिलालेखे चालुक्यवंशिनः राज्ञः द्वितीयस्य पुलकेशिनः या प्रशस्तिः लिखिता अस्ति, तस्याम् अस्य महाकवेः अस्मिन् रूपे निर्देशः वर्तते यत्–

'येनायोजिनवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।

स विजयता रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।।

अनेन निर्देशेन यत्र इदम् ज्ञायते यत् अस्मिन् काले भारविः दक्षिणभारते प्रसिद्धिम् प्राप्तवान् तत्र, यतः महाकविना बाणेन (650 ई0) स्वकीये हर्षचरिते अन्यैः कविभिः सह अस्य उल्लेखः न कृतः, अतः इदम् अपि ज्ञायते यत् एतत्कालात् अनन्तरम् बाणस्य काले अपि अयम् उत्तरभारते प्रसिद्धिम् प्राप्तुम् न अशक्नोत्। यतः भारवेः काव्ये कालिदासस्य अनुकरणम् प्रतीयते, अतः इदम् स्पष्टम् अस्ति यत् अयम् कालिदासात् पश्चाद्वर्ती अस्ति, अथ च यतः माघस्य (700 ई0) काव्ये अस्य काव्यस्य अनुकरणम् दृश्यते, अतः इदम् अपि स्पष्टम् अस्ति यत् अयम् माघात् पूर्ववती अस्ति। 'अवन्तिसुन्दरीकथायाः' आधारे भारविः दाक्षिणात्यः, अथ च द्वितीयस्य पुलकेशिनः अनुजस्य विष्णुवर्धनस्य सभापण्डितः आसीत्। विष्णुवर्धनस्य शासनकालः 615 ईसवीयवर्षस्य समीपे मन्यते। इत्थम् उक्तैः प्रमाणैः भारवेः स्थितिकालः 600 ईसवीयवर्षस्य समीपे सिद्ध्यति। कतिपयानाम् विदुषाम् अनुसारेण

भारविः त्रावणकोरनिवासी आसीत्। अस्य जीवनवृत्तस्य विषये किञ्चित् अपि निश्चितरूपेण ज्ञातम् नास्ति।

(2) रचना—भारवेः एकमात्रम् एव ग्रन्थः 'किरातार्जुनीयम्' इत्याख्यम् महाकाव्यम् अस्ति। अस्य समग्रा अपि कीर्तिः अस्मिन् एव एकस्मिन् महाकाव्ये आधारिता वर्तते। अस्मिन् महाकाव्ये अष्टादश सर्गाः सन्ति। अस्य कथानकम् महाभारताधारितम् वर्तते। तस्य मूलम् महाभारतस्य वनपर्वणि वर्णितम् कथानकम् अस्ति। अस्य महाकाव्यस्य कथानकस्य सारः अयम् एव अस्ति, यत् द्यूते दुर्योधनात् पराजिताः पाण्डवाः द्वैतवने निवसन्तः आसन्, यदा च तेषाम् एकेन गुप्तचरेण तेभ्यः दुर्योधनस्य समीचीनायाः शासनव्यवस्थायाः समाचारः श्रावितः। इमम् समाचारम् श्रुत्वा भीमः द्रौपदी च धर्मराजम् युधिष्ठिरम् दुर्योधनेन सह युद्धकरणाय उत्तेजितम् कुरुतः, किन्तु सः तयोः इमम् परामर्शम् न स्वीकरोति। तत्पश्चात् पराशरपुत्रः महर्षिः वेदव्यासः तत्र समागत्य पाण्डवेभ्यः परामर्शम् ददाति यत् अर्जुनः इन्द्रकीलम् पर्वतम् गत्वा तत्र पाशुपतास्त्रप्राप्त्युद्देश्येन पशुपतिप्रसादनाय तपश्चरेत्। अर्जुनः तत्र गत्वा कठोरम् तपश्चरति, पुनश्च सः संयोगवशात् किरातवेषेण शिवेन सह युद्धम् करोति। तस्य साहसेन पराक्रमेण च प्रसन्नः सन् शिवः तस्मै पाशुपतास्त्रम् ददाति। केवलम् एतावत् एव कथानकम् गृहीत्वा कविना महाकाव्यस्य रचना कृता अस्ति। अस्मिन् महाकाव्ये अनेन कथानकेन सह प्रायः तेषाम् सर्वेषाम् अपि वस्तूनाम् वर्णनम् कविना कृतम्, येषाम् च वर्णनम् आलंकारिकैः महाकाव्ये आवश्यकम्। मतम्। इत्थम् अनेकेषु सर्गेषु महाकाव्यलक्षणानुसारेण ऋतु-पर्वत-सूर्यास्त-जलक्रीडादीनाम् वर्णनम् कुर्वता कविना काव्यस्य अधिकः विस्तारः कृतः अस्ति।

(3) कवित्वम्—उक्तप्रकारेण भारवेः कवित्वस्य मुख्या विशेषता अलंकृता वर्णनशैली कलाप्रधानता वा वर्तते। अस्याः विशेषतायाः अनुसारेण काव्यम् अलंकारैः प्राकृतिकवर्णनैः, शाब्दिकचमत्कारैश्च भूषयितुम् भारवेः प्रमुखा प्रवृत्तिः अस्ति। कामम् कथानकम् लघु संक्षिप्तम् वा स्यात्, किन्तु भारविः उक्तैः अलंकारादिभिः साधनैः तत्र चमत्कारस्य कमनीयतायाश्च सन्निवेशम् करोति। वस्तुतः भारविः रुचिरैः अलंकारैः काव्यस्य मण्डने अतीव कुशलः अस्ति। उदाहरणार्थम्= किरातार्जुनीयस्य चतुर्थे सर्गे कृतम् शरदः नैसर्गिकम् हृदयाग्राहि च वर्णनम्, अष्टमे सर्गे कृतम् जलक्रीडायाः सुन्दरम् वर्णनम् च इत्यादीनि प्रस्तोतुम् शक्यन्ते। एषु शरद्वर्णनस्य एकः अंशः अस्मिन् रूपे द्रष्टुम् शक्यते यत्—

'मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः शिखाः पिशङ्गीः कलमस्य बिभ्रती।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति।। (4|36)

अत्र कीदृशम् संश्लिष्टम् अथ च अलंकृतम् प्रकृतिचित्रणम् अस्ति! जलक्रीडाम् कुर्वतीनाम् अप्सरसाम् एकम् सुन्दरम् अलंकृतम् चित्रम् अस्मिन् रूपे द्रष्टुम् शक्यते—

'तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः।

ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः।।' (8|47)

भारवेः कवित्वस्य अयम् दोषः अपि वर्तते यत् सः कुत्रचित् अनावश्यके अतिमात्रे वा कलात्मके प्रदर्शने अतीव व्यापृतः भवति। उदाहरणार्थम्– किरातार्जुनीयस्य पञ्चदशः सर्गः द्रष्टुम् शक्यते, यत्र कविना स्वकीयम् चित्रकाव्यनिर्माणकौशलम् प्रदर्शितम् अस्ति। तत्र एतत्कौशलप्रदर्शने कविः इयान् व्यापृतः जातः, यत् तेन एकत्र एकेन एव 'न' इति व्यञ्जनेन सम्पूर्णः अपि श्लोकः ग्रथितः, यथा–

'न नोननुन्नो नन्नोनो नाना नानानना ननु।

नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्।।' (15|14)

एतादृशैः उदाहरणैः परिष्कृतायाः रुचेः प्रदर्शनम् न भवति, रमणीयता अपि दूरम् व्रजति।

अस्तु! एवम् स्वकालस्य प्रभावेण यत्र कुत्रचित् कृताम् कलात्मकप्रदर्शनस्य अतिमात्राम् विहाय, भारवेः कवित्वम् अनेकाभिः प्रशस्ताभिः विशेषताभिः युक्तम् वर्तते। संस्कृतसाहित्यस्य इतिहासे तस्य नाम अभिनवायाः कलापक्षप्रधानायाः काव्यशैल्याः प्रवर्तकरूपे स्मरणीयम् स्थास्यति। वस्तुतः अस्याः शैल्याः प्रवर्तनम् एव भारवेः संस्कृतकाव्यानां मुख्यम् दानम् अस्ति, येन माघादीनाम् परवर्तिनाम् काव्यानि समृद्धानि जातानि।

4.18. अस्माकम् देशः

(1) अस्माकम् देशः इति प्रयोगस्य विषयः—यद्यपि सकलम् अपि विश्वम् अखण्डरूपेण एकम् एव वर्तते, अतश्च निखिलम् अपि विश्वम् सर्वेषाम् जनानाम् 'अस्माकम् देशः' इति प्रयोगस्य विषयः भवितुम् शक्नोति, किन्तु तथापि यतो हि सर्वम् अपि विश्वम् भौगोलिकदृष्ट्या विभिन्नेषु विभक्तम् वर्तते, यद्वशात् सर्वेषाम् भूभागानाम् परस्परभिन्नम् भौगोलिकम् वातावरणम् स्वरूपम् च अस्ति, सहैव च प्रत्येकम् भूभागानाम् स्वतन्त्ररूपेण विकसितम् स्वकीयम् सांस्कृतिकम् राजनीतिकम् च स्वरूपम् वर्तते, अथ च एवम् प्रत्येकम् भूभागः भौगोलिकसांस्कृतिक राजनीतिक-दृष्टिभिः स्वेतरभूभागभिन्नम् स्वतन्त्रम् धत्ते, अतः सः एकः स्वतन्त्रव्यक्तित्वसम्पन्नः भूभागः सन् 'देशः' 'राष्ट्रम्' वा इति व्यवह्रियमाणः स्वतन्त्ररूपेण विराजते, स एव च तत्र जातानाम् जनानाम् 'अस्माकम् देशः' इति प्रयोगस्य विषयः भवति।

(2) अस्माकम् देशः भारतवर्षम्—अस्माकम् देशः भारतवर्षम् अपि विश्वस्य एतादृशेषु विभिन्नेषु भागेषु अन्यतमः वर्तते। सोऽपि भौगोलिकसांस्कृतिकराजनीतिकदृष्टिभिः स्वेतरभूभागभिन्नम् स्वतन्त्रम् स्वरूपम् धत्ते। स्वतन्त्रव्यक्तित्वसम्पन्नः अयम् देशः विश्वस्य प्राचीनतमेषु महत्सु देशेषु अन्यतमः अस्ति। विश्वेऽस्मिन् वर्तमानकाले विद्यमानानाम् बहूनाम् राष्ट्राणाम् यदा

अस्तित्वम् अपि नासीत्, तदापि भारतवर्षम् गौरवपूर्णेन स्वकीयेन व्यक्तित्वेन सह विराजते स्म। राष्ट्राणाम् भौगोलिकदृष्ट्या यत् स्वतन्त्रम् भौतिकम् व्यक्तित्वं भवति, तत् तेषाम् शरीरस्थानीयम् भवति, यच्च तेषाम् राजनीतिकदृष्ट्या स्वतन्त्रम् शासकीयम् वा व्यक्तित्वम् भवति, तत् तेषाम् परिधानमात्रम् भवति, किन्तु यत् तेषाम् सांस्कृतिकदृष्ट्या आन्तरिकम् स्वतन्त्रम् व्यक्तित्वम् वर्तते, तत् तेषाम् वास्तविकम् जीवनाधायकम् स्वरूपम् अस्ति। विश्वेऽस्मिन् साम्प्रतम् वर्तमानानाम् बहूनाम् राष्ट्राणाम् तु भौगोलिकम् व्यक्तित्वम् अपि स्वल्पकालीनम् एव वर्तते, व्यक्तित्वप्राचीनतायाम् भारतवर्षेण सह तेषाम् कापि तुलना एव नास्ति। यदा तेषाम् शरीरस्थानीयम् भौगोलिकम् व्यक्तित्वम् एव स्वल्पकालीनम् वर्तते, तदा तेषाम् आत्मस्थानीयस्य आन्तरिकस्य सांस्कृतिकस्य स्वरूपस्य कथा एव का! तत्तु राष्ट्राणाम् भौगोलिकव्यक्तित्वस्य प्राप्तेः अपि अन्यापरम् उद्भूतम् विकसितम् च भवति। अपरतश्च भारतवर्षस्य भौगोलिकम् राजनीतिकम् सांस्कृतिकम् च व्यक्तित्वम् अतिशयितरूपेण प्राचीनम् वर्तते।

(3) भारतवर्षस्य शरीरस्थानीयम् भौगोलिकम् व्यक्तित्वम्—भारतवर्षस्य शरीरस्थानीयम् भौगोलिकम् व्यक्तित्वम् अतीव पुष्टम् मनोहारि च वर्तते। विभिन्नैः हिमालयादिभिः पर्वतैः, गंगा-सिन्धु-नर्मदा-कावेरी-ब्रह्मपुत्र-सरयू-यमुनादिकाभिः पवित्रसलिलाभिः सरिताभिः, सर्वतः प्रसृताभिश्च वनराजिभिः समन्वितम् समुद्रपरिवृत्तम् च अस्य भौगोलिकम् विशालम् व्यक्तित्वम् पुष्टम् सत् सर्वर्तुमनोहरम्, धनधान्यसम्पन्नम्, सुजलम्, सुफलम्, सस्यश्यामलम् च विराजते। अत एव च तत् बहूनाम् विदेशीयानाम् शासकानाम् आकर्षणस्य वस्तु जातम्।

भारतवर्षस्य भौगोलिकम् व्यक्तित्वम् विभिन्नैः असंख्यैः तीर्थैः समन्वितम् सत् तीर्थीभूतम् एव वर्तते, यस्य तीर्थरूपाणाम् विभिन्नानाम् स्थलानाम् यात्राम् कृत्वा जनाः विविधान् धार्मिकाध्यात्मिकादीन् लाभान् प्राप्नुवन्ति।

(4) परिधानस्थानीयम् राजनीतिकम् व्यक्तित्वम्—भारतवर्षस्य परिधानस्थानीयम् राजनीतिकम् व्यक्तित्वम् अपि सदैव गौरवपूर्णम् अतिष्ठत्। प्राचीनकाले शौर्यपराक्रमसम्पन्नैः आर्यैः इदम् सर्वथा एव दुर्दमनीयम् कृतम्। यद्यपि मध्यकाले भारतस्य राजनीतिकम् रूपम् किञ्चित् विश्रृंखलितम् जातम्। विदेशीयैश्च शासकैः स्वायत्तीकृतम्, किन्तु वर्तमानकाले पुनस्तत् स्वकीयायाम् वास्तविक्याम् गौरवयुक्तायाम् स्थितौ वर्तते। अद्य भारतम् एकस्य व्यापकस्य लोकतन्त्रस्य रूपे विशालेन परिधानेन सह विराजमानम् विश्वस्य राजनीतिके मञ्चे गौरवेण सह सुशोभते।

(5) जीवनाधायकम् सांस्कृतिकम् व्यक्तित्वम्—अस्माकम् देशस्य भारतस्य जीवनाधायकम् यत् आन्तरिकम् सांस्कृतिकम् व्यक्तित्वम् वर्तते, तत् अतीव प्राचीनम्, महिमान्वितम् तेजोमयम् च वर्तते। इदम् व्यक्तित्वम् प्रागैतिहासिककालीनम् वर्तते। इदम्

एतावत् प्राचीनम् यत् यदा बहूनाम् राष्ट्राणाम् जन्म अपि न जातम्, जातानाम् च राष्ट्राणाम् यदा आन्तरिकम् स्वकीयम् सांस्कृतिकम् स्वरूपम् अपि न उद्भूतम् विकसितम् वा, तदा अस्माकम् देशः स्वकीयेन तेजस्विना सांस्कृतिकेन स्वरूपेण विराजमानः विश्वे स्वप्रभया प्रकाशमानः आसीत्। तदा पृथिव्याम् वर्तमानाः मानवाः चारित्रिकीम् शिक्षाम् भारतात् एव गृहीतवन्तः आसन्, यथा च धर्मशास्त्रकारेण मनुना स्मृतम्–

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

भारतवर्षस्य चारित्रिकी शिष्टाचारसम्बन्धिनी वा शिक्षा अतीव उच्चस्तरीया अनुकरणीया च वर्तते। अत्र 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।'- इत्यादिरूपेण अयम् उपदेशः दत्तः वर्तते यत् मातापितरौ आचार्यः अतिथिश्च, एते सर्वे देवरूपे अनुभाव्याः सेव्याश्च सन्ति। सहैव 'पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते' इत्यादिवाक्यानुसारेण माता परमगौरवशालिनी वर्तते। अत्र 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।' - इत्यादिरूपेण गुरुः आचार्यः वा परमश्रद्धेयः परममान्यश्च मतः। अत्र 'यत्र' नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'- इत्यादिरीत्या इयम् अपि शिक्षा दत्ता वर्तते यत् जनैः नारीणाम् यथोचितम् सम्मानम् कार्यम्, तासाम् तिरस्कारः न विधेयः। तात्पर्यम् इदम् यत् अत्र जीवनस्य विभिन्नेषु क्षेत्रेषु व्यवहरणीया उन्नता चारित्रिकी शिक्षा दत्ता वर्तते। या भारतीयसंस्कृतेः गौरवम् प्रकटयति। **इयम् अपरा वार्ता यत् इदानीम् भारतीयः अस्त, शिक्षाया** यथोचितरूपेण पालनम् कुर्वन्ति न वा।

प्रागैतिहासिके काले वैदिकानाम् महर्षीणाम् अपि पूर्वजैः यस्याः आधारशिला स्थापिता, यस्याश्च मूलतत्त्वानि विश्वस्य प्राचीनतमे वेदचतुष्टयात्मके वाङ्मये सुनिहितानि विद्यन्ते, सा भास्वती भारतीया संस्कृतिः विभिन्नकालानुरूपम् स्वविकासम् कुर्वन्ती साम्प्रतम् अपि संघर्षसंकुलाय विश्वस्मै किमपि दातुम् समर्था तिष्ठति।

अस्माकम् देशस्य **भारतस्य सांस्कृतिकम् व्यक्तित्वम् एतावत् प्रभावशालि** दुर्दमनीयम् व वर्तते यत् राजनीतिकदृष्ट्या कदाचित् पराभूतम् अपि भारतम् सांस्कृतिकदृष्ट्या कदापि धराभूतम् न अभूत, अपि तु अनया दृष्ट्या तु स्वयम् तेन एव न केवलम् विश्वस्य विभिन्नानि राष्ट्राणि एव प्रभावितानि कृतानि, अपि तु स्वयम् विदेशीयाः स्वशासकाः अपि प्रभाविताः अताः। अत एव **च भारतस्य तस्य प्राचोवयः सरकतेः रवायते इदम् समुचितरूपेण** कथनीयत्वेन आपतति यत्–

'धन्या भारतभूः प्रकामवसुधा प्रत्मा च तत्संस्कृतिः।

(6) अश्माकम् देशस्य गौरवम्–अस्माकम् गौरवपूर्णः देशः, यस्मिन् विश्वस्य प्रचीनतमम् वेदस्वरूपम् वाङमयम् भारतीयवाङ्मयरूपेण विराजते, यस्मिन् विविधतत्त्वप्रकाशकानि

शास्त्राणि विद्यन्ते, यस्य सम्पूर्णम् अपि वाङ्मयम् विश्ववाङ्मयस्य अपूर्वः निधिः वर्तते, यत्र मननशीलाः मुनयः, तत्त्वद्रष्टारः महर्षयः, योगध्यानपरायणाः योगिनः, तपोनिरताः तपस्विनः, स्वचरित्रेण मानवजीवनस्य आदर्शप्रकाशकाः महापुरुषाः महात्मानश्च, शौर्यपराक्रमयुक्ताः अपि क्षमाशीलाः अनुकरणीयचरित्राः राजानश्च जन्म गृहीतवन्तः, यत्रत्या संस्कृतिः मानवसंस्कृतेः एकम् आदर्शभूतम् स्वरूपम् अस्ति, यत्रत्यैः महानुभावैः विश्वेऽस्मिन् सदा शान्तिसन्देशः प्रसारितः, यः सदैव शरणागतरक्षकः, अभूत्, यस्य आत्मा बहुशः आक्रान्तः अपि सन् दुर्दमनीयरूपेण जीवन् अतिष्ठि‍त्, यः इदानीम् अपि जगति किमपि दातुम् योग्यः सन् तत् दातुम् प्रस्तुतः वर्तते, अस्माकम् गौरवस्य हार्दिकस्नेहस्य च वस्तु अस्ति। इमम् प्रति अस्माकम् तथैव आत्मीयता अस्ति यथा जन्मदातारौ स्वमातापितरौ प्रति। अस्माकम् देशः देवानाम् अपि स्पृहणीयः अस्ति, यथा हि–

'गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।'

अस्माकम् अखिलकोटिब्रह्माण्डनायकस्य श्रीमतः भगवतः चरणारविन्दयोः इयम् एव हार्दिकी प्रार्थना अस्ति यत्–

विजयताम् अस्माकम् देशः! विजयताम् भारतमाता!

4.19 अभ्यासः

निम्नलिखित में से किसी एक पर संस्कृत में निबन्ध लिखिये ।

(क) भारतीयसंस्कृतिः

(ख) महाकविदण्डी

(ग) अस्माकम् देशः।